प्राचीन भारतीय अभिलेखों
का
अध्ययन

लेखक
वासुदेव उपाध्याय, एम ए, पी-एच डी
(मगला-प्रसाद पारितोषिक विजेता)
रीडर प्राचीन भारतीय इतिहास एव
पुरातत्त्व
पटना विश्वविद्यालय

प्रकाशक
मोतीलाल बनारसीदास
दिल्ली . वाराणसी .. पटना

लेखक की अन्य रचनाएँ

१ गुप्तसाम्राज्य का इतिहास (२ भाग)
२ पूर्वमध्यकालीन भारत
३ भारतीय सिक्के
४ विजय नगर साम्राज्य का इतिहास
५ भारतीय गौरव
६ भारत के प्राचीन ग्राम
७ Socio-Religious condition of Northern India.
(700-1200 A.D)

लक्ष्मी शंकर

की

स्मृति में

दो शब्द

पिछले कई वर्षों से यह अनुभव कर रहा था कि प्राचीन भारतीय अभिलेखो का वैज्ञानिक रीति से अध्ययन होना चाहिए जिससे उनमे निहित ज्ञान राशि का परिज्ञान इतिहास के विद्यार्थियो को हो सके। अभी तक साङ्गोपाग ढग से अभिलेखो का मूल्याङ्कन नही किया गया था। जिस लेख या प्रशस्ति का सम्पादन हो सका है उसके सीमित क्षेत्र पर ही प्रकाश पडा है। सास्कृतिक विषयो पर पूर्ण रूप से लिखना भी परिस्थिति के अनुसार सम्भव न था। अतएव समस्त विषयो को ध्यान मे रख कर लेखक ने अभिलेखो का अध्ययन आरम्भ किया और प्रत्येक अग पर प्रकाश डालने का प्रयत्न किया है।

भारतीय इतिहास मे अभिलेखो का कितना महत्वपूर्ण स्थान है तथा कैसे अमूल्य साधन हैं, यह विद्वानो से छिपा नही है। उनके अध्ययन से कई सास्कृतिक विषयो पर नवीन प्रकाश पडता है। प्रस्तुत ग्रथ की योजना दो भागो मे की गई है। प्रथम मे भूमिका तथा मूल लेख और दूसरे मे टिप्पणी तथा हिन्दी अनुवाद। प्रथम भाग के पहले खण्ड मे अभिलेखो का विस्तृत अध्ययन है। यो तो प्रत्येक विषय पर एक स्वतत्र ग्रथ तैयार हो सकता है किन्तु प्रत्येक अध्याय मे एक विषय पर सक्षिप्त रूप से विचार किया गया है। इससे पाठकगण लेखो के महत्व, ज्ञानराशि तथा मूल्य का अनुमान कर सकेंगे।

भूमिका मे सामाजिक तथा धार्मिक अवस्था का सक्षिप्त वर्णन है और उस प्रसग मे कुछ ऐसी बातें भी सामने आई हैं जिनका विवरण अभिलेखो के अध्ययन से ही उपस्थित किया जा सका है। आर्थिक विषयों का जिस रूप में विवेचन किया गया है वह अन्य ऐतिहासिक साधनो से सम्भव न था। तिथि तथा सम्वत् सम्वन्धी विचार इस ग्रथ की एक विशेषता है। अभिलेखो पर आधारित भारतीय भाषा एव साहित्य पर तथा वृहत्तर भारत मे उसके प्रसार पर भी प्रकाश डाला गया है।

दूसरे खण्ड मे मौर्य युग से वारहवी सदी तक के अभिलेख सग्रहीत हैं। प्राय समस्त राजवशो के प्रधान एव प्रतिनिधि लेख चुने गए हैं। ऐतिहासिक

दृष्टि से ही उनका संकलन किया गया है ताकि इतिहास के विद्यार्थियों को सुविधा हो। मूल लेख की प्रति (प्रेस कापी) विद्यार्थियों ने तयार की अतएव अशुद्धियों की अधिक सम्भावना है। खेद है कि विषम परिस्थितियों के कारण अशुद्धियाँ रह गई हैं विज्ञ पाठक सुधार कर पढ़ें।

भारतीय पुरातत्व विभाग बिहार रिसर्च सोसाइटी तथा काशीप्रसाद अनुसंधान संस्था की कृपा से अभिलेखों का संग्रह तथा ब्लाक तैयार हो सके हैं।

हरिशयनी एकादशी
पटना विश्वविद्यालय

—वासुदेव उपाध्याय

सांकेतिक शब्दों की तालिका

आ० स० इ० ए० रि०	=आर्केलाजिकल सर्वे आफ इंडिया एनुवल रिपोर्ट
आ० स० रि०	=आर्केलाजिकल सर्व रिपोर्ट
आ० स० मे०	=आर्केलाजिकल सर्वे मेमायर
इ० ए० भा०	=इंडियन एन्टीक्वेरी भाग
ई० पू०	=ईसवी पूर्व
ई० स०	=ईसवी सन्
इ० हि० क्वा०	=इंडियन हिस्टारिकल क्वार्टर्ली
उ० प्र०	=उत्तर प्रदेश
ए० इ० भा०	=एपिग्राफिया इंडिका भाग
ओ० का० प्रो०	=ओरियन्टल कांग्रेस प्रोसीडिंग
का० इ० इ० भा०	=कारपस इन्सक्रिपशनम् इंडिकेरम भाग
का० श्रौ० सू०	=कात्यायन श्रौत सूत्र
गा० ओ० सि०	=गायकवाड ओरियंटल सीरीज
गु० स०	=गुप्त सम्वत्
ज० इ० हि०	=जरनल आफ इंडियन हिस्ट्री
ज० ए० सो० ब०	=जरनल आफ एसियाटिक सोसाइटी, बंगाल
ज० ग्र० इ० सो०	=जरनल आफ ग्रेटर इंडिया सोसाइटी
ज० यू० पी० हि० सो०	=जरनल आफ यू०पी० हिस्टारिकल सोसाइटी
ज० रा० ए० सो०	=जरनल आफ रायल एसियाटिक सोसाइटी
ज० वि० ओ० आर० एम०	=जरनल विहार ओरिसा रिसर्च सोसाइटी
तर०	=राज तरंगिणी
प्र० शि०	=प्रधान शिलालेख
मा० स०	=मालव सम्वत्
मू०	=मूल लेख
वि० स०	=विक्रम सम्वत्

श० का०	—शक काल
शा० प०	—शांति पर्व
सं०	—सम्वत्
स्त० ले०	—स्तम्भ लेख
सा० इ० इ०	—साउथ इंडियन इपिग्राफी
सा० इ० ए० रि०	—साउथ इण्डियन एनुअल रिपोर्ट

विषय-सूची

भूमिका

मूल-लेख

चित्र-सूची

प्रथम-खण्ड

भूमिका

मानचित्र
प्राचीन भारत
शिलालेख ○ स्तम्भलेख ।
प श्चि म प यो धि
पू र्व सा ग र
द क्षि ण ज ल नि धि
ताम्रपर्णी
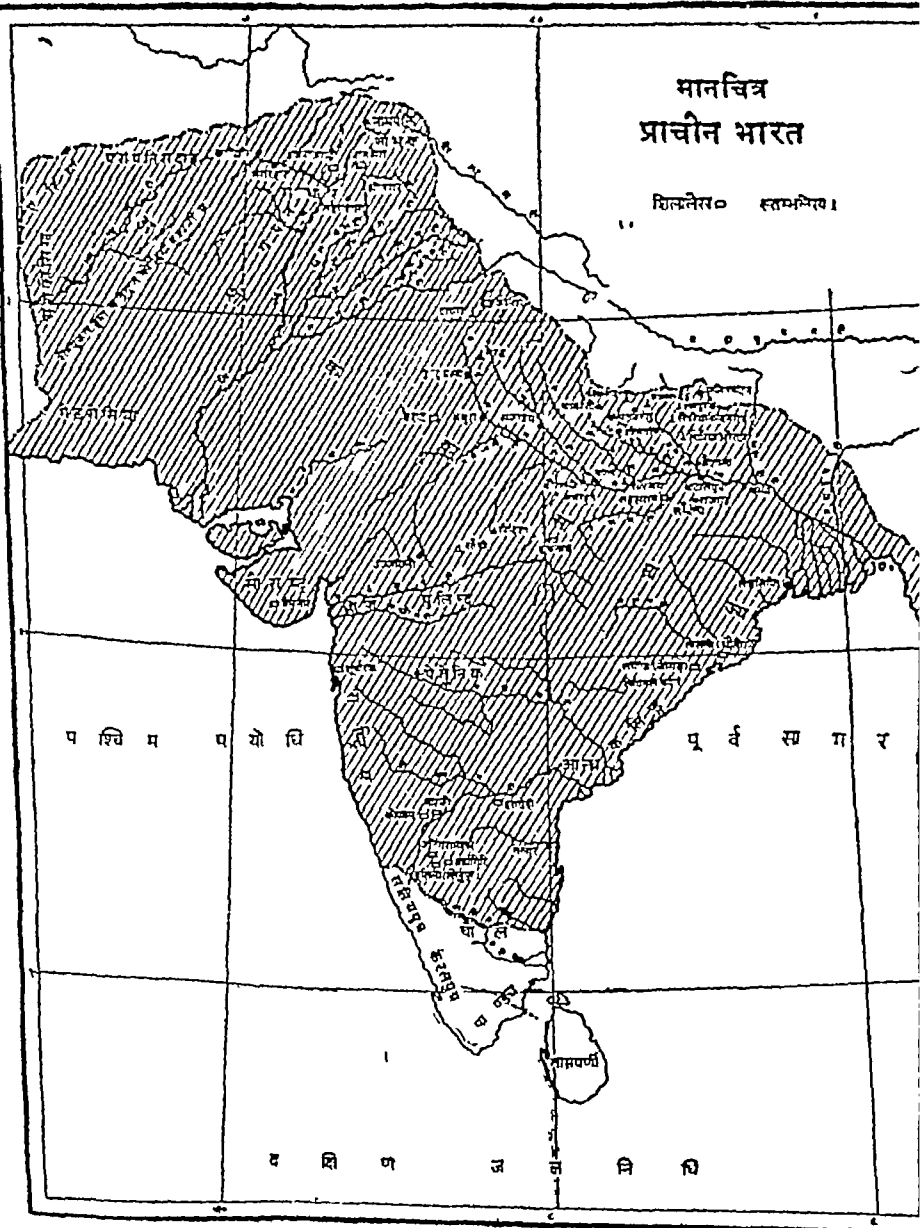
अध्याय १

इतिहास की भौगोलिक पृष्ठ-भूमि

किसी देश की प्राचीन कथा का नाम ही इतिहास है। वर्तमान घटनाओ से इसका विशेष सम्बन्ध नही है। ऐतिहासिक बातें काल तथा स्थान से सीमित हैं। आरम्भ मे तो इतिहास तथा भूगोल के घनिष्ट सम्बन्ध को पृथक नही किया जा सकता। ऐतिहासिक जीवन मे जातियो अथवा समूह को प्राकृतिक परिस्थितियो के अनुकूल ही काल यापन करना पडा था और उन्होने प्रकृति की सहायता लेकर ही किसी स्थान पर निवास किया या भ्रमण किया।

भारतीय इतिहास का भूगोल से इतना पारस्परिक सम्बन्ध रहा कि दोनो का अध्ययन ही यहा के प्रागैतिहासिक जीवन की कथा है। उत्तर तथा दक्षिण की सास्कृतिक विभिन्नता का कारण भौगोलिक कठिनाइयाँ ही थी। केरल तथा उत्तरी-प्रदेशो की सास्कृतिक भिन्नता भौगोलिक स्थिति के द्वारा ही समझी जा सकती है। यह सभी बातें इतिहास के विद्यार्थियो से छिपी नही हैं। इतिहास के प्रधान साधनो मे अभिलेख भी माने गए हैं और उसके अध्ययन से भूगोल का परिज्ञान हो जाता है।

भूगोल तथा इतिहास का सम्बन्ध

प्राचीन भारत का भूगोल जानने के लिए पुराने अभिलेखो से अत्यधिक सहायता मिलती है। विभिन्न वशो के लेखो मे वर्णित मार्ग, नगर, यातायात, तथा विजय की चर्चा मे भौगोलिक स्थिति पर प्रकाश पडता है। साहित्य तथा यात्रा सम्बन्धी ग्रथो से प्राचीन भारतीय भूगोल का जो परिज्ञान होता है, अभिलेखो की सहायता से उनका समीकरण तथा वास्तविक स्थिति निश्चित हो जाती है। लेखो के प्राप्ति स्थान से अमुक साम्राज्य की सीमा ज्ञात होती है तथा भारतीय नरेशो की विजय-यात्रा का मार्ग प्राचीन समय के यातायात तथा व्यापारिक रास्ते से परिचय कराता है।

अध्याय १

इतिहास की भौगोलिक पृष्ठ-भूमि

किसी देश की प्राचीन कथा का नाम ही इतिहास है। वर्तमान घटनाओ से इसका विशेष सम्वन्ध नही है। ऐतिहासिक बातें काल तथा स्थान से सीमित हैं। आरम्भ मे तो इतिहास तथा भूगोल के घनिष्ट सम्वन्ध को पृथक नही किया जा सकता। ऐतिहासिक जीवन मे जातियो अथवा समूह को प्राकृतिक परिस्थितियो के अनुकूल ही काल यापन करना पडा था और उन्होने प्रकृति की सहायता लेकर ही किसी स्थान पर निवास किया या भ्रमण किया।

भारतीय इतिहास का भूगोल से इतना पारस्परिक सम्वन्ध रहा कि दोनो का अध्ययन ही यहा के प्रागैतिहासिक जीवन की कथा है। उत्तर तथा दक्षिण की मास्कृतिक विभिन्नता का कारण भौगोलिक कठिनाइयाँ ही थी। केरल तथा उत्तरी-प्रदेशो की सास्कृतिक भिन्नता भौगोलिक स्थिति के द्वारा ही समझी जा सकती है। यह सभी बातें इतिहास के विद्यार्थियो से छिपी नही हैं। इतिहास के प्रधान साधनो मे अभिलेख भी माने गए हैं और उसके अध्ययन से भूगोल का परिज्ञान हो जाता है।

भूगोल तथा इतिहास का सम्वन्ध

प्राचीन भारत का भूगोल जानने के लिए पुराने अभिलेखो से अत्यधिक सहायता मिलती है। विभिन्न वशो के लेखो मे वर्णित मार्ग, नगर, यातायात, तथा विजय की चर्चा से भौगोलिक स्थिति पर प्रकाश पडता है। साहित्य तथा यात्रा सम्वन्धी ग्रथो से प्राचीन भारतीय भूगोल का जो परिज्ञान होता है, अभिलेखो की सहायता से उनका समीकरण तथा वास्तविक स्थिति निश्चित हो जाती है। लेखो के प्राप्ति स्थान से अमुक साम्राज्य की मीमा ज्ञात होती है तथा भारतीय नरेशो की विजय-यात्रा का मार्ग प्राचीन समय के यातायात तथा व्यापारिक रास्ते से परिचय कराता है।

किसी शासक ने तीर्थयात्रा या दान के प्रसंग में जिन स्थानों का भ्रमण किया हो उसका विस्तृत विवरण लेख में मिलना उचित ही है। दान की चर्चा करते समय नदियों तथा उनके किनारे स्थित नगरों का वर्णन भी अभिलेखों में अधिकतर मिलता है। राजनीतिक तथा धार्मिक कार्यवश दूतों का उल्लेख करते समय विभिन्न प्रदेश के नाम प्रशस्तिकारों ने दिया है। यद्यपि अभिलेखों में स्पष्ट वर्णन उपलब्ध नहीं है तो भी अन्य सम्बन्धित प्रमाणों पर भौगोलिक स्थिति का ज्ञान हो जाता है। उदाहरण के लिए यदि अशोक के स्तम्भ लेखों को देखा जाय तो प्रकट होता है कि वे चुनार प्रस्तर के बने हैं। तीस फीट तक लम्बे हैं तथा बीस टन करीब तौल में होते हैं। यह एक कठिन प्रश्न है कि ऐसे विशाल स्तम्भ किस प्रकार सुदूर प्रदेशों में पहुँचाए गए, जहाँ उन पर लेख खोदे गए थे। साधारणतया यह अनुमान किया जाता है कि नदियों के सहारे बेड़े पर रख कर स्तम्भ को यत्र तत्र पहुँचाया गया होगा। चुनार गंगा नदी के किनारे है तथा गंगा नदी के अन्य कई सहायक नदियाँ भी इसके लिए उपयुक्त थीं। गंगा से यमुना नदी द्वारा स्तम्भ ले जाकर कौशाम्बी में स्थापित किया गया। सांची का स्तम्भ गंगा से यमुना तथा उसकी सहायक नदी चम्बल और चम्बल की सहायक बेस नदी में बड़े के सहारे मालवा प्रदेश पहुँच सका। बेसनगर का हेलियो-डोरस का स्तम्भ भी उसी ढंग से वहाँ पहुँचाया गया होगा। लुम्बिनी का स्तम्भ गंगा घाघरा तथा राप्ती नदियों से होकर रुम्मनदेई में स्थित हुआ। चम्पारन के स्तम्भ गंगा तथा गंडक नदी की सहायता से उत्तरी बिहार में जाकर खड़े किये गये। दिल्ली-टोपरा तथा दिल्ली-मेरठ के स्तम्भ तो यमुना की घाटी में स्थापित किए गए थे। कहने का तात्पर्य यह है कि जल गति से भी भौगोलिक परिस्थितियों का परिज्ञान किया जा सकता है।

राजधानी अथवा शासक का जिस स्थान से सीधा सम्बन्ध था उसका उल्लेख भी लेखों में स्वभावतः पाया जाता है। कलिंग विजय के पश्चात्

अभिलेखों में वर्णित नगर

अशोक की मनोवृत्ति का परिवर्तन हो गया इसलिए उसने कलिंगदेश के अतिरिक्त अन्य लेखों द्वारा विभिन्न प्रान्तों में धर्माज्ञा प्रसारित की "सवे मुनि से पजा ममा। अथा पजाये इच्छामि हकं किंति सवेन हित सुखेन इच्छामि हक। अतएव तोसली उज्जयिनी तथा तक्षशिला कुमार को संदेश भेजा गया। तोसली को वर्तमान धौली (भुवनेश्वर के समीप उड़ीसा) से समीकरण किया जाता है। यह देखने से युद्ध क्षेत्र के समान प्रकट होता है। धौली में अशोक का पृथक शिलालेख चट्टान पर खुदा

है। उज्जयिनी तथा तक्षशिला के कुछ कहने की आवश्यकता नही है। कुछ व्यक्ति वुद्ध का जन्म स्थान कपिलवस्तु ममझ लेते हैं क्योकि वह स्थान शाक्य वश की राजधानी रहा। लेकिन अशोक के रूम्मनदेई (नेपाल तराई) स्तम्भ लेख मे स्पष्ट लिखा है—

हिद वुधे जाते सक्य मुनीति

× × ×

हिद भगव जाते ति लुम्विनि गामे।

अतएव इसके आधार पर सभी मदेह मिट जाता है। मौर्य सम्राट् अशोक के आठवे शिलालेख मे निम्न वाक्य मिलता है—मत्रोधि तेनेसा धर्म-यात्रा। सम्भवत अशोक ने वुद्धधर्म मे प्रवेश कर धर्मयात्रा आरम्भ की और पहले जन्मस्थान लुम्बिनी पहुँचा तत्पश्चात् ज्ञान प्राप्ति के स्थान वोध गया भी गया। "सत्रोधि धर्ममाता" से वोध गया के तीर्थयात्रा का अर्थ ममझना चाहिए। अन्य स्थानो के सम्वन्ध मे कोई सीधा प्रमाण नही मिलता। परन्तु सारनाथ का स्तम्भ लेख तथा धर्म-राजिका स्तम्भ का निर्माण अशोक के सारनाथ तीर्थ यात्रा को प्रमाणित करते हैं। सारनाथ स्तम्भ लेख मे सघ भेद के प्रमग मे पाटलिपुत्र नगर का नाम भी उल्लिखित है।

मौर्यो के उत्तराधिकारी पुष्यमित्र को अयोध्या लेख मे 'कोसलाधिप' कहा गया है। यानी वह उत्तर-कोशल का शासक था जिसकी राजधानी अयोध्या थी। दक्षिण कोशल को महाकोशल कहते थे जिसकी राजधानी त्रिपुरी (जवलपुर, मध्यप्रदेश) थी। दक्षिण भारत के शासक सात वाहन नरेशो के जो लेख प्रकाशित हुए है उनमे गोवधनस (=नासिक) जयस्कन्धावार के रूप मे उल्लिखित है। गोतमी पुत्र शातकर्णी के विजय प्रमग मे प्रदेश तथा नदियो के नाम आते हैं (आगे देखिए) शातकर्णी के समकालीन खारवेल के हाथी गुहा-लेख मे कलिगनगर का नाम आया है (जिस स्थान की मरम्मत खारवेल ने पाचवे वर्ष मे की थी) इस कलिग नगर के समीकरण मे मत भेद है। अभी भुवनेश्वर के समीप शिशुपालगढ की खुदाई हुई है। विद्वानो का मत है कि यही स्थान कलिग नगर माना जा सकता है। वेस नगर के स्तम्भ लेख मे हेलियोडोरस तक्षशिला का यवन दूत (तख्ख सिलाकेन योन दूतेन) कहा गया है। इससे पता चलता है कि तक्षशिला प्राचीन समय मे प्रमुख स्थान समझा जाता था। अशोक के समय से ही शासन का प्रधान केन्द्र था। यूनानी राजा अतिलिकित वहा शासन करता था जिसका दूत हेलियोडोरस था।

कौत्सश्शाव इति ख्यातो वीरसेन कुलाख्यया
शब्दार्थ न्याय लोकज्ञ कवि पाटलिपुत्रक ।

कुमार गुप्त प्रथम के मन्दसोर लेख मे दो प्रधान व्यापारिक नगर का नाम दिया गया है। व्यापारिक सघ (श्रेणी) ने लाट (दक्षिण काठियावाड) से आकर दशपुर (मालवा) को अपना केन्द्र बनाया और कार्य निपुणता तथा दक्षता के कारण लोगो मे विश्वास पैदा कर लिया था। वर्णन सुनिये—

लाट विषयान्नगावृत शैलाज्जगति प्रथित शिल्पा.

× × ×

जातादरा दशपुर प्रथम मनोभि
रन्वागतास्समुत बन्धु-जनास्समेत्य ।

इस स्थान की प्रधानता के कारण ही बन्धु वर्मा को शासन का कार्य सौपा गया था—

तस्मिन्नेव क्षितिपति व्रिपे बधुवर्मण्युदारे
सम्यक्‌ स्फीत दशपुरमिद पालयत्यन्नतामे ।।

कुमार गुप्त के पुत्र स्कन्द गुप्त के शासन काल मे भी व्यापारिक श्रेणिया कार्य करती रही। इन्दोर के ताम्र पत्र मे 'इन्द्रपुर निवासी श्रेणी' का वर्णन है जिसने सूर्य मदिर का जीर्णोद्धार कराया था। (इन्द्रपुर-निवासीन्यास्तैलिक-श्रेण्या) इस स्थान को वर्तमान इन्दौर ही माना गया है जहा ताम्रपत्र प्राप्त हुआ है। इस ताम्रपत्र मे उस धार्मिक कार्य के सम्बन्ध मे इन्द्रपुर निवासी श्रेणी का उल्लेख आवश्यक था। गुप्त नरेशो के दामोदरपुर ताम्रपत्रो मे पुण्ड्रवर्धन (भुक्ति) तथा कोटिवर्ष (विषय) का नाम आया है। दोनो स्थान उत्तर बगाल के राजशाही जिले मे स्थित थे।

गुप्त राजाओ के समकालीन नरेशो के लेखो मे कई नगरो के नाम मिले हैं। सुसानिया शिलालेख मे चन्द्रवर्मन पुष्कर (अजमेर, राजपुताना) का राजा कहा गया है। वेग्राम के ताम्रपत्र मे शासक को पचनगरी (वर्तमान प छिवी, वोगरा) का स्वामी वतलाया गया है। हर्षवर्धन के बास खेरा ताम्रपत्र मे अहिछत्र भुक्ति का नाम आया है जिसका समीकरण वर्तमान रामनगर (बरेली, उत्तर प्रदेश) से किया जाता है। खुदाई मे वहा से सिक्के, प्रतिमाए तथा मुहरें मिली हैं। मध्य युग मे तीर्थो की ओर जनता का ध्यान आकर्षित हो गया था। जहा मौर्ययुग मे कौशाम्बी की (कोसविय) प्रसिद्ध थी आठवी सदी से प्रयाग का महत्व हो गया। अपसद लेख मे तीसरे कुमार गुप्त के सम्बन्ध मे प्रयाग आकर अग्नि मे जल कर बलिदान का विवरण दिया गया है (शौर्य सत्यव्रतधरो य प्रयाग गतो

धने) इसी तरह का वर्णन गांगेयदेव चेदि के लिए मलकापुरी प्रशस्ति में पाया जाता है। उस स्थान पर विवरण आता है कि चेदि राजा सौ पत्नियों के साथ प्रयाग आकर गंगा में डूब कर स्वर्ग प्राप्त किया था।

प्राप्ते प्रयाग वट मूल निवेश बन्धौ
सार्धं शतेन गृहिणीभिरमुत्र मुक्तिम्
(ए. इ. भा. २ पृ. ४)

चन्देल राजा धंग वर्मन के सम्बंध में कहा गया है कि वह काशी कुशिक (कन्नौज) उत्तर कोशल (अयोध्या) तथा इन्द्रप्रस्थ का रक्षक था। इस स्थान पर उपरियुक्त चारों स्थानों का नामोल्लेख है। दान के प्रसंगवश गहड़वाल दानपत्रों में काशी में स्नान कर दान देने का उल्लेख मिलता है [श्रीमद् वाराणस्यां गंगायांस्नात्वा—ए. इ. २१ पृ. ७२, भा. ८ पृ. १५४) इस से प्रकट होता है कि मध्य युग में प्रयाग वाराणसी तथा अयोध्या तीर्थों में लोग यात्रा करते थे। पाल प्रशस्तियों में विशिष्ट स्थानों के नाम प्रचुर मात्रा में मिलता है। पाल नरेश धर्मपाल के खालीमपुर, देवपाल के नालंदा तथा नारायण पाल के भागलपुर ताम्रपत्रों में कई नाम आते हैं। धर्मपाल ने महोदय (कन्नौज) को जीतकर चक्रायुध को सिंहासन पर बैठाया था। अपने शासन के अंत में केदार तथा गंगासागर की तीर्थ यात्रा की थी। देवपाल ने नालंदा में निर्मित विहार को पांच ग्राम दान में दिया था तथा नारायण पाल ने मुंगेर से (मुदगिरि जयस्कन्धावारात्) शासन प्रसारित किया था। इस तरह प्रधान वंश पालराज्य सीमा में स्थित नगरों के नाम उल्लिखित किया गया था।

अयहोल लेख में चालुक्य राजा पुलकेशी प्रथम अपने राजधानी (वातापीपुरी) का स्वामी कहा गया है।

तस्या भवत्तनूजः पोलकेशीय श्रितेन्दु कान्तिरपि
श्री वल्लभोप्ययासीद्वातापिपुरी वधूवरताम्।

उसी लेख में पुलकेशी द्वितीय के विजय यात्रा के सिलसिले में पल्लव राजधानी कांचीपुर के विजय का वर्णन किया गया है।

याकाम्तारसत्लोल्लति रजरज छन्नम्न काञ्चीपुर
प्राकारान्तरित प्रतापमकरोद्यः पल्लवाना पतिम्।

पश्चिम भारत के मैत्रिक नरेश ध्रुव सिंह के लेख के प्रारम्भ में वलभी राजधानी का उल्लेख है (वलभीत परमभट्टारक पादानुध्यातो महाराज ध्रुवसिंह) जिसके आधार मैत्रक राजा वलभी नरेश कहे जाते हैं। यह गुजरात में विद्या का मुख्य केन्द्र भी था। मध्ययुग के चन्देल राजाओं के लेख में कान्यकुब्जाधिपति या

कालिञ्जराधिपति शब्द प्रयुक्त मिलते है। उसका साधारण अर्थ यही था कि कान्यकुब्ज तथा कालिंजर नगरो पर उनका अधिकार था। दिल्ली के स्तम्भ लेख मे विग्रहराज (ग० १२२०) के विन्ध्या से हिमालय तक तीर्थयात्रा की बात लिखी है। (आविन्ध्या दाहिमाद्रेर्व्विरचित विजयस्तीर्थयात्रा) इस आधार पर कहा जा सकता है कि तीर्थ नगरो का ज्ञान लोगों को था। उसे शाकम्भरी का राजा कहा गया है। यानी तोमर नरेश दिल्ली से अजमेर तक शासन करते रहे।

यह कहा गया है कि कुछ लेखो मे शासको के विजय का वर्णन मिलता है जिनके आधार पर प्राचीन भारत के विभिन्न प्रदेश तथा मार्ग की समुचित जानकारी हो जाती है। लेखो मे वर्णित विजय-यात्रा से यह अनुमान लगाना सही न होगा कि सारे विजित प्रदेश राज्य मे सम्मिलित कर लिए गए हो। अशोक के १३वें शिलालेख मे कलिङ्ग विजय का वर्णन मिलता है और

अभिलेखो में सीमा वर्णन

उसी के साथ सीमा पर स्थिति विभिन्न भारतीय यूनानी राज्यो के नाम उल्लिखित हैं उस सूची मे चोड पाण्या, सतियपुतो केतलपुतो, तमपणी (द्वितीय प्रधान शिलालेख) योन कम्बोज-गधरन रठिकपितिनिक (पाचवा शिलालेख) तथा अतियोको, तुरमय अतिकिनि, मक, अलिक सुन्दरो यूनानी नरेशो के नाम (तेरहवें शिलालेख) चोडापेडा के अतिरिक्त मिलते हैं। इसमे सदेह नही कि ये राजा मौर्य साम्राज्य की सीमा पर स्थित थे जिनके लिए "इह च सर्वेषु च अतेषु" प्रयोग किया गया है। दूसरे लेख मे दक्षिण के चोल पाँडया, केरल तथा सिंहल सीमा पर स्थित बतलाए गए हैं तथा पाँचवे शिलालेख मे वर्णित राजा उत्तर पश्चिम भाग मे स्थित थे। यूनानी राजा अकियोक पश्चिमी एशिया मे शासन करता था। मग उत्तरी अफ्रीका मे, तुरमय मिश्र मे, अतिकिनि तथा अलिक सुन्दर एसिया माइनर के समीप शासन करते थे। इससे स्पष्ट होजाता है कि अशोक का राज्य सुदूर दक्षिण से (कुछ भाग छोडकर) सारे भारतवर्ष मे तथा अफगानिस्तान के भू भाग पर फैला था। यद्यपि इसके लिए लेखो मे प्रबल प्रमाण नही मिलता कि कितना भाग उसके पितामह ने विजित किया था किन्तु अशोक कलिंग के अतिरिक्त कुछ भी जीत न सका। उसकी पैत्तिक राज्य की सीमा पर्याप्त थी जिसका अनुमान सीमा पर स्थित शासको की सूची से होता है।

दक्षिण भारत के शासकों को अभिलेख यह बतलाते हैं कि सातवाहन तथा क्षत्रप नरेशो मे कई सदियों तक युद्ध होता रहा। एक के बाद दूसरे वंश की प्रधानता प्रकट होती है। साची के दक्षिणी तोरण पर जो लेख खुदा है वह

शातकर्णी के शासन काल का है। नानाघाट के सातवाहन लेख में नागनिका ने अपने पति शातकर्णी द्वारा वैदिक यज्ञ सम्पादन करने का वर्णन किया है। अतएव यह ज्ञात होता है कि शातकर्णी (ईसा पूर्व द्वितीय शताब्दी) के शासन में सातवाहन राज्य मालवा से महाराष्ट्र यानी (पूना के समीप) तक विस्तृत था कई सदियों तक सातवाहनवंश का कोई लेख मिला नहीं है। द्वितीय शताब्दी में क्षत्रप राजा नहपान का प्रभुत्व होगया जो नासिक व जुन्नार लेखों से प्रकट होता है। नासिक लेख में गोवर्धन (नासिक-महाराष्ट्र) प्रभास (काठियावाड़) भरुकच्छ (भरौच) दशपुर (मालवा) तथा पोखरानि (पुष्कर-अजमेर) के नाम मिलते हैं जिन पर नहपान का अधिकार था। पूना के समीप कार्ले तथा जुन्नार गुहा लेख भी उसका अधिकार सिद्ध करते हैं। इसलिए यह विदित होता है कि सातवाहन को हरा कर क्षत्रप नरेश ने अपना राज्य अजमेर मालवा (राजपूताना) से लेकर महाराष्ट्र तक विस्तृत किया था। यह घटना प्रायः सन् १२४ के समीप की है। कुछ ही दिनों के पश्चात् सातवाहन के प्रतापी नरेश गौतमी पुत्र शातकर्णी ने नहपान को परास्त किया। उसके उत्तराधिकारी पुलमावी के नासिक लेख (१९ वें वर्ष) में उस शातकर्णी का यश वर्णित है। उसके द्वारा विजित प्रदेशों का नाम भी उल्लिखित है। 'खखरात-वंस निरवसेस-करस' (क्षहरात नहपान के वंश का नाश करने वाला) की बात शातकर्णी के सम्बन्ध में कही गई है। इसके अतिरिक्त असिक असक मुलक सुरठ कुकुर अपरान्त अनूप विदर्भ आकरावंति का स्वामी कहा गया है। यानी इस सातवाहन नरेश ने नहपान के प्रदेशों को (राजपूताना सौराष्ट्र बरार, मालवा आदि) जीतकर सातवाहन राज्य में मिला लिया था। उसका उत्तराधिकारी वासिष्ठी पुत्र पुलमावी करीब बीस वर्षों तक (१३ ई० १५ ई०) राज्य कर चुका था कि वह फिर क्षत्रपों द्वारा परास्त किया गया। क्षत्रप वंश का शक्तिशाली नरेश रुद्रदामन ने उसे दो बार हराया (दक्षिणापथ पतेस्सातकर्णी द्विरपि नीव्याजमवजीत्यावजीत्य संबंध विदूरतया) जूनागढ़ के लेख (१५ ई) में पुनः उन्हीं प्रदेशों के नाम उल्लिखित हैं जो सातवाहन के राज्य में सम्मिलित थे। नाम-सूची निम्नप्रकार है—पूर्वापराकरावन्ति अनूप आनर्त सुराष्ट्र श्वभ्र मरुकच्छ सिन्धु सौवीर कुकुर अपरान्त आदि। दोनों सूची के अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि क्षत्रप वंश की प्रतिष्ठा रुद्रदामन ने अतिरिक्त पुनः स्थापित की तथा सातवाहनों को पददलित किया। नासिक गुहा लेख तथा जूनागढ़ लेख के अतिरिक्त अन्य कोई भी प्रमाण नहीं जिस आधार पर पारस्परिक-युद्ध गाथा कही जा सके। केवल लेख ही एक मात्र सहारा है। इसके

पश्चात् सातवाहन वंश के अन्य लेखो मे इस प्रकार का सीधा उल्लेख नही मिलता जिससे दोनो वंश के युद्ध की वार्ता प्रमाणित हो सके। यजश्री शातकर्णी के कई लेख नासिक, कार्ले और कनहेरी गुहा मे उत्कीर्ण हैं जिसका अर्थ यह समझा जाता है कि ई० स० १७५-२०० तक सातवाहन राजा यजश्री का अधिकार महाराष्ट्र (नासिक), कार्ले (पूना) तथा कनहेरी (बम्बई) के भूभाग पर अवश्य था। राजपुताना, मालवा तथा सौराष्ट्र पर वह अधिकार न कर सका। इस तरह वह उस पुराने युद्ध का बदला लेकर क्षत्रप को दक्षिण के पठार मे परास्त किया। क्षत्रप सिक्को के अनुकरण पर चादी के सिक्के भी प्रचलित किए जो क्षत्रप के पराजय का द्योतक है। संक्षेप मे यह कहना नितान्त आवश्यक है कि क्षत्रप तथा सातवाहन लेखो के आधार पर ही ईसवी सन् की पहली तथा दूसरी सदी तक दोनो वंशो की प्रतिस्पर्द्धा, विजय व पतन तथा राज्य विस्तार की जानकारी की जाती है। दक्षिण पश्चिम भारत मे शक्ति तथा प्रभुत्व की उन्नति और पराजय का परिज्ञान अभिलेख ही कराते हैं। अन्यथा सातवाहन-क्षत्रप का इतिहास प्रकाश मे न आता।

ईसवी सन् के आरम्भ मे पश्चिमोत्तर प्रांत मे शासन प्रारम्भ कर कनिष्क ने काशी तक के प्रदेश को जीत लिया। उनका कुर्रम का ताम्रपत्र पेशावर से, मानिक्याला लेख रावलपिंडी से, स्यूविहार ताम्रपत्र बहावलपुर रियासत से, सहेत महेत बुद्ध प्रतिमा लेख बहराइच जिला (उत्तर प्रदेश) से तथा सारनाथ प्रतिमा लेख (जिसमे वाराणसी का उल्लेख है) काशी से मिले हैं जिसके आधार पर कनिष्क की राज्यसीमा पेशावर से वाराणसी तक विस्तृत निश्चित हो जाती है। लेख के प्राप्तिस्थान भी भौगोलिक सीमा पर प्रकाश डालते है।

कलिङ्ग के राजा खारवेल का हाथी गुहालेख से शासक के विजय का पता चलता है। उस लेख में क्रमबद्ध प्रत्येक वर्ष का लेखा उपस्थित किया गया है। खारवेल अपने को कलिङ्ग का राजा (कलिंग-राज-वसे-पुरिस युगे महाराजाभिसेचन पापुनाति) कहता है जिसने दूसरे वर्ष मे सातकर्णी (सातवाहन राजा) को हराया। आठवें वर्ष राजगिरि (पटना जिला) पर आक्रमण किया। बारहवें वर्ष मे उत्तरापथ के मगध नरेश को परास्त किया। उसमे वर्णन है कि अंग मगध के वैभव को लूट लिया। अंग तथा मगध (विहार प्रदेश) का नाम प्रसिद्ध है। अंग भागलपुर के समीप भूभाग तथा मगध पटना तथा गया जिला के लिए प्रयुक्त किया गया है। उसने दक्षिण के पाड्य नरेश को भी विजित किया। इस लेख में कृष्णा नदी (कन्हवेण) तथा गोरथगिरि (बराबर की

पहाड़ियाँ गया बिहार) के नाम आते हैं। इस प्रकार हाथी गुम्फा अभिलेख द्वारा नदी पहाड़ नगरों तथा विभिन्न प्रदेशों की भौगोलिक स्थिति के विषय में हमारी जानकारी होती है। अपने को वह बार बार कलिङ्ग का राजा कहता है। इससे पता चलता है कि राज्य का नाम कलिङ्ग (कलिंग राजवंसे) तथा राजधानी भी कलिंग कहीं (कलिंग नगर) जाती थी। खारवेल की रानी के कुछ लेख उसी स्थान पर मिले हैं जिसमें उसने अपने पति को कलिंग चक्रवर्ती खारवेल-नाम से उल्लेख किया है। उसी मंचपुरी गुहा के दूसरे अभिलेख में खारवेल कलिंगाधिपति कहा गया है। इसलिए यह कहना सर्वथा उचित होगा कि कलिंग राज्य भुवनेश्वर के समीप (उड़ीसा प्रांत) विस्तृत था जिसे आज उड़ीसा का नाम दिया गया है।

इसके समकालीन मगध का राजा पुष्य मित्र था जिसके उत्तराधिकारी धनदेव को अयोध्या की प्रशस्ति में कोसल का राजा कहा गया है। यही प्रदेश पहड़वास लेख में उत्तर कोसल के नाम से उल्लिखित है (ए इ भा २१ पृ ६२)। अतएव इस आधार पर अयोध्या का भाग उत्तर कोसल माना गया है और दक्षिण कोसल को प्रयागस्तम्भ लेख में महा कोसल कहा गया है। लेखों के प्रमाण पर इस ढंग की विभिन्न बातें प्रकट होती हैं।

गुप्त वंश के अभिलेख भी साम्राज्य की भौगोलिक सीमा स्थिर करने में सहायता करते हैं। समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति में आर्यावर्त तथा दक्षिणापथ उत्तरी तथा दक्षिणी भारत के लिए क्रमशः प्रयुक्त किये गये हैं। उस लेख के विस्तृत अध्ययन से ज्ञात होता है कि उत्तरी भारत में उसका राज्य मथुरा तक विस्तृत था। दक्षिण के शासकों की राजधानी भी राजा के व्यक्तिगत नामों के साथ उल्लिखित है। पहला नाम कोसल का है जो दक्षिणापथ की ओर अग्रसर होने पर समुद्रगुप्त द्वारा सर्व प्रथम पराजित किया गया। अतः इसकी स्थिति मध्य प्रदेश में मानते हैं। वह अनेक शासकों को परास्त करता कांची (जिला चिंगलपुट, मद्रास) तक पहुँच गया। उस लेख में दक्षिण भारत के नगरों के नाम मिलते हैं। कामरूप (आसाम) तथा नपाल भी देशों में उल्लिखित हैं कहने का तात्पर्य यह है कि गुप्त लेख में उत्तर तथा दक्षिण भारत के नगरों और प्रदेशों के नाम मिलते हैं। चन्द्रगुप्त द्वितीय के मेहरौली लौहस्तम्भ लेख में पंजाब के जीतने की चर्चा की गई है—

तीर्त्वा सप्त मुखानि येन समरे सिन्धोर्जिता वाह्लीका।

साहित्य ग्रन्थों में भी पंजाब का नाम सप्तसिन्धु के नाम से विख्यात है। महा-

भारत के आधार पर वाह्रीक (वाहलीक) को पूर्वी पजाब मानते है। इस प्रकार सिन्धु घाटी के सात नदियो (झेलम, चनाव, रावी, व्यास, सतलज व काबुल) को सप्त सुवानि सिन्ध कहा गया है। चन्द्रगुप्त द्वितीय के पश्चात् गुप्त राज्य की सीमा बढ न सकी। मेहरौली लौहस्तम्भ, साची वेदिका तथा उदयगिरि गुहा पर खुदे लेख विक्रमादित्य की कीर्ति आज भी गा रहे हैं। उसके पौत्र स्कन्दगुप्त के अभिलेखो मे कई प्रदेश तथा क्षेत्र के नाम आते हैं। स्कन्दगुप्त को हूणो का सामना करना पडा अतएव वह राज्य के-शासन को सुदृढ करने मे लग गया। जूनागढ (काठियावाड) के शिला लेख मे सुराष्ट्र के रक्षण की बात कही गई है (सम्यक् सुराष्ट्रावनि-पालनाय)। उसके इन्दौर (बुलन्दशहर, उत्तर प्रदेश) ताम्रपत्र में गगा यमुना के मध्य भाग (प्रयाग से हरिद्वार तक) को अन्तर्वेद के नाम से पुकारते थे। तत्पश्चात् बुधगुप्त के लेखो के आधार पर भी राज्य सीमा का परिज्ञान होता है। बुधगुप्त के शासन-काल मे कालिन्दी (यमुना) तथा नर्वदा नदियो के मध्य भाग पर सुरश्मिचन्द्र शासन करता था (एरण का शिलालेख)। इस शासक के लेख ही मध्य प्रान्त से लेकर उत्तरी बगाल तक राज्य सीमा का विस्तार बतलाते हैं [एरण (मध्यप्रदेश), सारनाथ (उत्तर प्रदेश) तथा दामोदरपुर (उत्तरी बगाल) का लेख]। एरण के स्थान मे हूण राजा तोरमाण का लेख यह व्यक्त करता है कि बुधगुप्त के पश्चात् मध्य भारत पर हूण अधिकार स्थापित हो गया था। उस लेख मे महाराजाधिराज श्री तोरमाणे प्रशासति" उत्कीर्ण है और इसी हूण नरेश के कुरा (साल्ट रेंज, पजाब) लेख मे राजाधिराज महाराज तोरमाण लिखा है। यह दोनो लेख पजाब से मध्यभारत तक तोरमाण के राज्य-विस्तार की कथा सुनाते हैं।

मध्ययुग के पालवशी अभिलेखो से भौगोलिक बातो की अधिक जानकारी होती है। धर्मपाल के खालीमपुर ताम्रपत्र मे उत्तर प्रदेश के पाचाल तथा कान्य-कुब्ज मत्स्य, अवन्ति (मालवा) तथा गान्धार पश्चिमोत्तर प्रदेश के नाम मिलते हैं। नारायण पाल के भागलपुर दानपत्र मे कान्यकुब्ज के लिए महोदय शब्द का प्रयोग मिलता जिस पर पाल नरेश ने अधिकार कर लिया। नालदा ताम्र-पत्र में वर्णन आता है कि देवपाल ने श्री नगर भुक्ति मे ग्राम दान किया था। (जिसे वर्तमान पटना कमिश्नरी से समता कर सकते हैं।) सेन वश के लेखो से यह पता चलता है कि सामन्तसेन करनाट (दक्षिण भारत) के क्षत्रिय कुल का वशज था। वल्लालसेन का सखाई नगर ताम्रपत्र यही बतलाता है। देवपारा प्रशस्ति मे कामरूप तथा कलिंग प्रदेश के नाम (श्लोक २०, २१) उल्लिखित

है जिनके शासक को विजयसेन ने परास्त किया था। इस प्रकार पाल तथा सेन लेख तत्कालीन भौगोलिक स्थान व प्रदेशों का परिज्ञान कराते हैं।

दक्षिण भारत के लेखों में भी उत्तर भारत की भौगोलिक बातों का वर्णन मिलता है क्योंकि दक्षिण के शासकों ने उत्तरी भारत पर आक्रमण किया था। राष्ट्रकूट नरेश ध्रुव के मोर संग्रहालय के ताम्रपत्र से तथा सजन ताम्रपत्र से उसकी जानकारी होती है। ध्रुव के द्वाब में आने की सूचना निम्न पंक्ति से मिलती है—

गंगा यमुनयोर्मध्य राज्ञो गौड़स्य नश्यत्,
लक्ष्मी लीलार विन्दानि श्वेत छत्राणि योहरत्।

इसी प्रकार गुर्जर प्रतिहार के ग्वालियर प्रशस्ति में युद्ध के प्रसंग में विभिन्न प्रदेश के नाम मिलते हैं। नागभट्ट के लिए एक पंक्ति मिलती है जिसमें आंध्र सिन्ध विदर्भ तथा कलिंग के नाम हैं

यस्यान्ध्रसैन्धव विदर्भ कलिंग भूपः।
कौमार धामानि पतंग समेर पाति॥

वत्सराज के आक्रमण के वर्णन में आनर्त (बम्बई) मालवा तुरुष्क (मुसलमान) वत्स तथा मत्स्य (भरतपुर अलवर आदि) आदि प्रदेशों के नाम आते हैं। चालुक्य लेख (ऐयहोल जैन मंदिर प्रशस्ति) में तत्कालीन भौगोलिक स्थिति का विशद् वर्णन है। मंगलेश नामक राजा ने भारत से बाहर लंका द्वीप (रत्नागिरि के सामने) पर अधिकार कर लिया था। पुलकेशी द्वितीय से संबंधित वर्णन लम्बा है। महाराष्ट्र कोशल (दक्षिण कोशल) तथा कलिंग शासकों को परास्त कर (सकौसला कलिंगा) दक्षिण-पूरब में कांची तथा कावेरी के किनारे तक आक्रमण किया था। इस तरह ऐयहोल के लेख से दक्षिण भारत के विभिन्न प्रांतों की स्थिति तथा नामकरण का पता लगता है। कहने का तात्पर्य यह है कि अभिलेखों के आधार पर भौगोलिक ज्ञान अधिक साकार हो जाता है। वह साहित्यिक वचन को सबल बनाता है पुष्ट करता है तथा एकीकरण निश्चित कर देता है।

भारतीय साहित्य में प्राचीन मार्ग सम्बन्धी विवरण भरे पड़े हैं परन्तु उस तरह का वर्णन अभिलेखों में नहीं मिलता। लेखों में वर्णित राजाओं के यात्रा विवरण से प्राचीन भारत के विभिन्न मार्गों का चित्र सामने विभिन्न मार्ग आ जाता है। साधारण रूप से उन रास्तों की भौगोलिक स्थिति भी ज्ञात हो जाती है। इसके अतिरिक्त लेखों में हाट तथा गुल्म (चुंगी) का वर्णन मिलता है। विभिन्न हाट में नाना प्रकार के

यातायात के उपकरण थे। माल ले जाने के विभिन्न साधनो के कारण चुगी का दर एक सा नही था। इससे भी सुन्दर वर्णन व्यापारिक सस्थाओ (श्रेणी) के चौधरी श्रेणी तथा व्यवसायिक वर्ग के अगुआ सार्थवाह का उल्लेख कई अभिलेखो मे मिलता है। तात्पर्य यह है कि यातायात तथा व्यापार सम्बन्धी लेखो से तत्कालीन भूगोल का परिज्ञान होता है। इस प्रकार अभिलेख प्राचीन भारत के भौगोलिक विवरण उपस्थित करते हैं।

विभिन्न लेखो मे उत्तरी भारत के लिए उत्तरापथ या आर्यावर्त का नाम मिलता है। समुद्रगुप्त के प्रयाग स्तम्भ लेख मे आर्यावर्त शब्द सर्व प्रथम प्रयुक्त हुआ है। ईसवी पूर्व से मध्यकाल तक उत्तरापथ का अधिक प्रयोग लेखो मे किया गया है। दक्षिण भारत को दक्षिणापथ की सज्ञा सर्वत्र मिलती है। नानाघाट लेख मे शातकर्णी तथा रुद्रदामन के जूनागढ लेख मे पुलमावि दक्षिणापथ-पति कहे गये है। प्रयाग स्तम्भ लेख मे वर्णित महेन्द्र (कोसल का राजा) से लेकर धनञ्जय तक सभी दक्षिणापथ के शासक थे। (प्रभृति दक्षिणापथ राज-ग्रहण आदि)। इस प्रकार दो नामो से उत्तर तथा दक्षिण भारत के विशाल भूभाग को व्यक्त किया गया है।

अभिलेखो मे अधिकतर युद्ध गाथा तथा शासन के प्रसग मे विभिन्न श्रेणी के लोगो का वर्णन मिलता है। यो तो बौद्ध साहित्य और जैन अगो से भौगोलिक विषयो का ज्ञान हो जाता है। बुद्ध के एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने के लिए प्रशस्त मार्ग का अनुमान किया जा सकता है। उरुवेला से श्रावस्ती का मार्ग सारनाथ तथा साकेत होकर जाता था जिस मार्ग से होकर अनाथ पीडिक राजगृह आया और भगवान बुद्ध को निमत्रित किया था। स्यात् बुद्ध उसी मार्ग से होकर श्रावस्ती गए जिस मार्ग मे स्थान-स्थान पर आराम भी वर्तमान थे। बिहार प्रान्त का सहसराम नामक स्थान पर हजार आराम (विहार) की कल्पना की जाती है जिससे सहस्र आराम यानी सहसराम नाम पडा। यूनानी राजदूत मेगस्थनीज ने लिखा है कि मार्ग पर प्रस्तर गाड कर उसकी दूरी व्यक्त की जाती थी। कहने का तात्पर्य यह है कि अशोक से पूर्व भारत मे अच्छे मार्ग थे। अशोक स्वय उज्जयिनी तथा तक्षशिला का राज्यपाल था जिन स्थानो पर पहुचने के लिए सुगम मार्ग होगे। अशोक के द्वितीय शिलालेख मे वर्णन आता है कि उसने मार्गों पर कुए खुदवाए तथा वृक्ष लगवाए (पथेसू कूपाच खानापिता ब्रछाच रोपापिता) साची के लेख से यह पता लगता है कि भिक्षु कासमगोत ने बलख तक बौद्धधर्म का प्रचार किया था (मार्शल साची पृ० २९१) इन विभिन्न

एतिहासिक साधनों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि पाटलिपुत्र से तक्षशिला तक राजमार्ग था जिसकी शाखा सारनाथ से कौशाम्बी तथा उज्जयिनी होकर भरौच (बन्दरगाह) तक चली जाती थी। सोपारा का भी नाम प्रथम सदी के नासिक लेख में मिलता है। उसी प्रसंग में यह कहना आवश्यक है कि जो मार्ग नदी को पार कर जाते थे वहाँ पर घाट (ferry) बने थे और उस स्थान पर कर लगाया जाता था जैसा कर आज भी नदी घाट पर लिया जाता है। नासिक लेख में दमा पारदा दमण तापी करवेणा दाहनुका आदि नदियों के नाम आए हैं जिनके घाट कर को ऋषभदत्त ने माफ कर दिया था (नावा पुण्य-तरकरेण) तथा यात्रियों के ठहरने के लिए आरामगृह बनवाया था (एतासां च नदीनां उभतो तीरं सभा प्रपाकरेण)

यदि अभिलेखों में शासकों के आक्रमण-वृत्तांत का अध्ययन किया जाय तो यह पता चलता है कि सेना किसी न किसी सुगम मार्ग से दूसरे राज्य-सीमा तक पहुँचती थी। अशोक के तेरहवें शिलालेख में विवरण दिया

आक्रमण मार्ग

गया है कि कलिंग में डेढ़ लाख व्यक्ति बन्दी बनाए गए और एक लाख युद्ध में मारे गए। इस कलिंग युद्ध में अशोक की कई लाख सेना भी युद्ध स्थल पर गयी होगी। अतः इतने बड़े विशाल सेना के जाने का मार्ग अवश्य प्रशस्त होगा (कलिंग विजित दियड मते प्रन पत-सहस्रे ततो अपवुडे धत सहस-मते तमहते बहु तवत के व मुट) उड़ीसा के स्वतंत्र होने पर खारवेल ने समय पर बड़ी सेना के साथ आक्रमण किया। पश्चिम दिशा में सातवाहन नरेश सातकर्णी (वर्तमान आन्ध्रप्रदेश का राजा) को परास्त किया। सम्भवतः अशोक के मार्ग पर ही उसकी सेना आगे बढ़ी होगी। उस लेख मे यूनानी राजा दिमित के भारत में प्रवेश करने का वर्णन है। गार्गी संहिता के आधार पर यवन आक्रमण की पुष्टि होती है। दिमित ने मौर्य कालीन राजमार्ग को ही आक्रमण का रास्ता चुना होगा जिस पर सुगमता से उसकी सेना पाटलिपुत्र तक पहुँची होगी। गुप्त सम्राट् समुद्र गुप्त का दिग्विजय प्रयागस्तम्भ लेख में वर्णित है। समुद्र गुप्त ने अपने दक्षिण के विजय-यात्रा में एक नवीन मार्ग का अवलम्बन किया जो आजकल प्रयाग से जबलपुर (मध्यप्रदेश) की ओर जाता है। इस विचार पर पहुँचने का कारण यह है कि दक्षिणापथ के पराजित राजाओं में कोसल का प्रथम नाम है जो वर्तमान महा-कोसल (जबलपुर का भाग) माना गया है। इसे पार कर गोड़वाना जंगल (महाकान्तार) होते समुद्रगुप्त कलिंग देश में पहुँचा। दक्षिण-पूर्वी भाग के शासकों का परास्त करता (पिष्ठपुर, महेन्द्रगिरि आदि) वह कांची तक गया तथा

दक्षिण मे अपनी विजय-दुन्दु भी बजाकर पाटलिपुत्र वापस चला आया। उसके पश्चात् चन्द्र गुप्त विक्रमादित्य ने पश्चिम भारत पर विजय किया। उसके उदयगिरी तथा साची लेख इसे प्रमाणित करते हैं।

कृत्स्न पृथ्वी जयारर्थेन राज्ञैवेह सहागत ।

शक नरेश को परास्त कर उज्जयिनी को उसने दूसरी राजधानी बनाई थी। द्वितीय चन्द्र गुप्त के रजत मुद्राए यह बतलाती हैं कि सर्व प्रथम चादी के सिक्के पश्चिम भारत के विजय पश्चात् चलाए गए। गुप्त-युग के पश्चात् ईशान वर्मन तथा हर्ष वर्द्धन ने भी विजय-यात्रा की थी। पाल नरेश धर्मपाल गौड (उत्तरी बगाल) से सेना लेकर कान्य कुब्ज (उत्तर प्रदेश) तक आया जिसे कन्नौज मे गुर्जर प्रतिहार राजा वत्सराज तथा राष्ट्रकूट ध्रुव से सामना करना पडा था। ग्वालियर की प्रशस्ति तथा सजय ताम्रपत्र मे तीनो शासको के युद्ध की चर्चा मिलती है। यह तभी सम्भव था जब सुगमता पूर्वक सेनाए गगा यमुना द्वाब मे पहुंचो हो। वासवाडा ताम्रपत्र मे भी राजा भोज के कोकड विजय (कोकण विजय पर्त्वणि) का उल्लेख है। दक्षिण के चालुक्य पुलकेशी द्वितीय की विजय गाथा अयहोल प्रशस्ति मे विस्तार पूर्वक वर्णित है। अतएव अभिलेखो के अध्ययन से विभिन्न भौगोलिक मार्ग का परिज्ञान हो जाता है। पूर्व के मार्गों के सहारे ही वर्तमान काल मे रेलवे का मार्ग निश्चित किया जा सका है। पेशावर से बगाल, दिल्ली से मथुरा, साची होते बम्बई, पटना से प्रयाग, जबलपुर होकर बम्बई तथा कलकत्ता-मद्रास की रेल यात्रा पुराने मार्ग की याद दिलाती है।

जैसा कहा गया है कि पाटिल्पुत्र से राजमार्ग कौशाम्बी मालवा होते भरौच जाता था। अशोक के शिलालेख सोपारा से प्राप्त हुए हैं जिससे प्रकट होता है कि बन्दरगाहो पर भी शासको का ध्यान था। प्रयाग जबलपुर होकर मथुरा साची होकर मार्ग (वर्तमान समय मे रेलवे) मिल जाते हैं। बम्बई के समीप कल्याण से एक शाखा पूना की ओर जाती थी। कन्हेरी तथा जूनार के गुहा लेखो से कल्याण के व्यापारिक महत्व का पता चलता है [ल्यूडर्स लिस्ट न ९८६, ९८८, १००१ इत्यादि] नासिक गुहा लेख से भरुकच्छ तया सोमारा (भरुकच्छे, शोर्पारगे) पर नहपान के अधिकार का वर्णन है। क्षत्रप वशी शासक रुद्रदामन ने भी समुद्र के किनारे अपना अधिकार कायम रक्खा। आनर्त (उत्तरी काठियावाड सौराष्ट्र (दक्षिणी काठियावाड) कच्छ अपरान्त (उत्तरी कोकण सोमरा के समीप) भरु (भरौच) आदि स्थानो का उल्लेख जूनागढ लेख मे आता है। इस

बन्दरगाह

प्रकार साफ प्रताप नरेश महत्वपूर्ण मार्ग तथा बन्दरगाह पर अधिकार की आवश्यकता समझते थे। यशोवर्मन के मालदा शिलालेख में मार्गपति नामक पदाधिकारी का उल्लेख है जो स्थात सड़कों की देख रेख (यानी समुचित प्रबंध) करता था जिससे सेनाएं भी बराबर उन मार्गों पर इधर उधर जा सके। यह व्यापार के मार्ग पर निगरानी भी रखता था।

व्यापार के प्रबंध का भार पुराने समय में श्रेणी नामक संस्था पर थी जो साझेदारी में व्यापार करती रही। लेखों में श्रेणी का वर्णन कई स्थानों पर किया गया है और विशेष कर दान के प्रकरण में। दाता दान की सामग्री या धन श्रेणी के बैंक में जमा कर देता था। गुप्त युग के दामोदर पुर ताम्र पत्रों में सार्थवाह शब्द का प्रयोग मिलता है जो व्यापार करने वाले पान्थों का अगुवा माना गया है। अमर कोष (१७८) में 'पान्थान वहति सार्थवाह' उल्लिखित है। सार्थ को यात्रा करने वाले पान्थों का समूह कहते है। उस दल का नेता सार्थवाह होता था। कुमार गुप्त प्रथम के अभिलेख में कोटिवर्ष (उत्तरी बंगाल) के सार्थवाह बन्धुमित्र का नाम मिलता है तथा बुधगुप्त के दामोदर पुर ताम्रपत्र में सार्थवाह वसुमित्र का नामोल्लेख है। जातक कथाओं में तो वाणिज्य के सार्थवाह के रूप में कार्य करने की वार्ता कई स्थलों में वर्णित है। तात्पर्य यह है कि व्यापार करने वाले समूह विभिन्न मार्गों से आया जाया करते थे। चाहमान लेखों में इन्हें बाल बारक (बनजारा) कहा गया है) समस्त बनजारेषु—वृषभ भरित

सार्थवाह

अनु पाइकाल यमने ए इ ११पृ ४१) व्यापारियों का समूह बलगाड़ी (वृषभाला सकेषु) पर समान लाद कर बाहर जाया करते थे। घोड़े या बैल पर भी सामान लादकर बाजार में व्यापारी आया करते थे जिन पर शुल्क (चु गी) लगाया जाता था। बसवीं सदी के राजपूत लेखों में 'भण्डपिका' चु गी घर के लिए प्रयुक्त है। मानी सुदूर स व्यापारी सामग्री बेचने बाजार में आया करते थे। बैलगाड़ी भारतवर्ष की अत्यन्त प्राचीन यान थी जिसका प्रयोग आज से पांच हजार वर्ष पूर्व भारत में होता रहा। [मिट्टी की बैलगाड़ी खिलौने के लिए बनाई जाती थी] जिसे लेखों में गाड़ या शकट शब्द मिलते हैं। ईसा पूर्व दूसरी सदी के सात वाहन लेख में शकट शब्द का प्रयोग मिलता है। चाहमान लेख में गाड़ शब्द आता है (किराडका गाड) इन साधनों के द्वारा विभिन्न मार्गों पर आवागमन हुआ करता था। इन सब विवरण की जानकारी के पश्चात यह कहना उचित है कि अभिलेखों से भौगोलिक विषयों का परिज्ञान होता है।

अशोक के प्रथम स्तम्भ लेख मे अन्त महामात्र का उल्लेख मिलता है। सम्भवत. यह कर्मचारी बाहर से आने वाले लोगो पर निगरानी रखता तथा मुद्रापक (पासपोर्ट) का प्रबंध करता था। कौटिल्य ने इस तरह की प्रणाली का वर्णन किया है। मेगस्थनीज द्वारा वर्णित पाटिलपुत्र के छ उपसमितियो मे दूसरी विदेशियो की देख रेख करती थी। समुद्र गुप्त ने सीमा राज्यो से घनिष्ट सम्बन्ध स्थापित किया था। वे सभी गुप्त सम्राट् का लोहा मानते थे। प्रयाग स्तम्भ लेख मे उनसे कर वसूल करने का विवरण मिलता है (समतट डवाक कामरूप नेपाल कर्तृ पुरादि प्रत्यन्त नृपतिभि—सर्व कर दान आज्ञाकरण प्रणाम) साराश यह है कि सीमा पर विदेश से आने वाले लोगो पर निगरानी थी। इससे प्रकट होता है कि मौर्य शासन काल से भारत मे सुगम मार्ग स्थित थे। साहित्य के प्रकरण को यदि अभिलेखो से पुष्ट किया जाय तो प्राचीन भारत का भोगोलिक विवरण सुन्दर रीति से लिखा जा सकता है।

सीमान्त की निगरानी

अध्याय २

प्रशस्ति का विवेचन

भारत के प्राचीन साहित्य में ऐसे ऐतिहासिक ग्रन्थों का अभाव सा है जिन में आधुनिक ढंग तथा वैज्ञानिक विश्लेषण की रीति से इतिहास का वर्णन मिलता हो। इसका यह अर्थ नहीं है कि इतिहास के पठन पाठन से लोग उदासीन थे और ऐतिहासिक ग्रंथ लिखने की ओर अभिरुचि न थी। इतिहास के महत्व को समझकर ही इसे पंचम वेद कहा गया है (इतिहास पुराणंच पञ्चमो वेद उच्यते छा० उ० ७।१।२) जनता तथा राजा के दैनिक जीवन में इतिहास की कहानियाँ सुनने का समय निश्चित था जो इतिहास-प्रेम की बात को प्रमाणित करता है। पुराने साहित्यकार मुख्य विषय के प्रतिपादन में संलग्न रहते थे और जो घटनाएं आवश्यक होती थी उन्हें ग्रंथ में लिख दिया करते थे। इस बात की उन्हें चिन्ता न थी कि घटनाओं को इतिहास का स्वरूप देना है। ग्रंथ लिखते समय तिथि क्रमानुसार विषय का प्रतिपादन मुख्य न था तथा इस ओर भी कम ध्यान रहता था कि उन्हें ऐतिहासिक महत्व देना है। भविष्य में जनता इसे समझकर पढ़ेगी ऐसी धारणा भी विद्वानों में न थी। यही कारण है आधुनिक ढंग पर न लिखने के कारण उन ग्रन्थों को इतिहास की संज्ञा नहीं दी गई है। बहुत समय तक पुराणों को धार्मिक तथा कल्पित वृत्तान्तों का भण्डार समझा जाता रहा परन्तु भारतीय विद्वानों ने उनके अध्ययन से वास्तविक इतिहास का पता लगाया है। पुराणों में वर्णन के आधार पर शासकों का नाम तथा वंश का विवरण उपस्थित किया गया है। उन वंशावली में वैज्ञानिक ढंग से कालक्रम का विचार नहीं दिखलाई पड़ता अतएव उन पर पूर्ण विश्वास नहीं किया जाता। कभी तो उल्लिखित घटनाओं से भ्रमात्मक चित्र सामने आ जाता है। मध्यकालीन अभिलेखों में पुराण को अन्य शास्त्रों के साथ ही उल्लिखित किया गया है।

काव्य लिखते समय लेखको ने ग्रथो मे सरक्षक का नाम प्रसगवश किया है या किसी ऐतिहासिक पुरुष को लेकर नाटक अथवा कथानक की रचना की गई है। वैसे ग्रथो से तत्कालीन सामाजिक इतिहास का ज्ञान हो जाता है। हर्ष चरित, विक्रमाकदेव चरित, गौडवहो तथा रामपालचरित का नाम उल्लेखनीय है जिन ग्रथ रत्नों ने इतिहास लिखेने मे सहायता पहुँचाई है। जैन हरिवश दीघनिकाय, तथा जातक उस श्रेणी तक पहुँचते हैं। यहा तक कि पाणिनि के सूत्रो से ऐतिहासिक गुथ्यिया सुलझाई गई हैं।

काव्य का इतिहास

प्राचीन ग्रथो मे पुष्पिका लिखने की परिपाटी थी जिससे ऐतिहासिक सत्य सम्मुख आ जाता है। हस्तलिखित ग्रथो की पुष्पिकाए विश्वासनीय समझी जाती हैं जो इतिहास जानने मे सहायता पहुँचाती हैं। सामदेव रचित 'यश तिलक' की पुष्पिका मे उल्लेख मिलता है कि वह ग्रथ शक ८८१ चैत्रमास मे चालुक्य राजकुमार के समय मे समाप्त किया गया था जो कृष्ण राज देव का सामत था। यह क्रम कई सदियो तक प्रचलित रहा और तेरहवी सदी मे सायण ने ऋग भाष्य की जो पुष्पिका (निम्न प्रकार से) लिखी थी वह सच्चा ऐतिहासिक विवरण उपस्थित करती है—"इति श्रीमद् राजाधिराज परमेश्वर वैदिक मार्ग प्रर्वतक वुक्क साम्राज्य धुरधरेण सायणाचार्येन विरचिते माधवीये वेदार्थ प्रकाशे ऋकसहिता भाष्ये।" इसके अध्ययन से विजयनगर साम्राज्य के शासक तथा प्रसिद्ध विद्वान सायण के नाम की उपलब्धि होती है। पुष्पिका की इस पक्ति मे कितना इतिहास छिपा है, इसे पाठक स्वय समझ सकते हैं। इस प्रकार के उल्लेख मे एक ही त्रुटि हो कि पुष्पिका से शासक की वशावली या अन्य ऐतिहासिक वार्ता का पता नही चलता। सक्षेप मे यह कहना उचित होगा कि साहित्यकारो ने भारतीय इतिहास का ढाचा हमारे सामने अवश्य रक्खा जिसमे अन्य साधनो से सुन्दरता लाने का प्रयत्न किया गया है।

साहित्य के अतिरिक्त प्राचीन इतिहास जानने के लिए शासको द्वारा सुरक्षित आज्ञापत्र भी सहायक सिद्ध हुए हैं। अशोक के धर्मलेख इसी श्रेणी के है। धौली के लेख मे—देवान पियस वचनेन तोसलिय महामात नगल वियोहालका वतविय—एक प्रकार का शासन-पत्र ही था। केन्द्रीय शासन से जो आज्ञापत्र निकलते थे उनका लेख प्रातीय या स्थानीय कार्यालयो मे रक्खा जाता था। कहा तक उस कार्य का सम्पादन हुआ, उसकी सूचना केन्द्र को अवश्य भेजी जाती होगी। इतना ही

शासन-पत्र

महीं प्रांतीय शासक वार्षिक विवरण भी केन्द्र को समय समय भेजता होगा। भारत से बाहर मध्य एसिया में ऐसे आज्ञापत्र लकड़ी की तख्ती बरतन अथवा चमड़े पर लिखे प्राप्त हुए हैं। इन शासन पत्रों से शासन-सम्बन्धी ऐतिहासिक वृत्तान्त का परिज्ञान हो जाता है।

अधिकतर ऐसे आज्ञापत्र प्रस्तर तथा ताम्रपत्र पर खुदे मिले हैं। पुरातत्व सम्बन्धी खोज में अक्षरों का ज्ञान हो जाने पर उन पत्रों के पढ़ने का अवसर मिला। अंत में प्रशस्तियां या अभिलेख की सहायता से वर्ण

प्राचीन लेख का महत्व

माला का ज्ञान हुआ और तत्पश्चात् प्राचीन हस्तलिखित पुस्तकें तथा आज्ञा-पत्र पढ़े गए। इसके बिना उनका अध्ययन असम्भव था। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि साहित्य जहां दुर्बल है वहां पुरातत्व विषयों की सहायता लेकर इतिहास तयार किया जा सकता है। इतिहासकार लिखित सामग्रियों पर निर्भर करता है परन्तु पुरातत्व हजारों वर्ष पुराने खण्डहरों को खोदकर इतिहास उपस्थित करता है। कौटिल्य रचित अर्थशास्त्र में उल्लिखित बातों को मूर्तिमान या स्पष्टीकरण में अशोक के लेख कितने सहायक सिद्ध हुए हैं, यह किसी विद्वान् से छिपा नहीं है। कालिदास विरचित रघुवंश में विजययात्रा की पुष्टि हरिषेण लिखित समुद्रगुप्त के प्रयाग स्तम्भ लेख से होती है। इसी तरह हर्ष के लेखों से (मधुबन तथा बाँसखेड़ा) बाण के कथन की पुष्टि होती है। अभिलेख में हर्ष के हस्ताक्षर के परीक्षण से राजाज्ञा की प्रमाणिकता की बातें जानी जाती है। संक्षेप में यह कहना उचित है कि ऐतिहासिक साधनों में प्रशस्ति का स्थान सर्वोपरि है। पुरातत्व सामग्रियों में मुद्रा-लेख तथा प्रतिमा-लेख से भी इतिहास का सुन्दर चित्र सामने आ जाता है। यही कारण है अभिलेखों से किसी सामग्री की समता नहीं की जा सकती। इन्हीं अमूल्य अभिलेखों के अध्ययन के फलस्वरूप प्राचीन भारत का इतिहास वैज्ञानिक ढंग पर लिखा गया है। भारतीय संस्कृति की प्रमाणिक रूपरेखा इन्ही प्रशस्तियों तथा लेखों की सहायता से सामने आई है। इनके महान् कार्य का मूल्य आंका नहीं जा सकता अन्यथा भारतीय इतिहास का ज्ञान अधूरा रह जाता है। ऐतिहासिक अनुसंधान में अभिलेखों ने अधिक सहायता की है। छोटे-छोटे लेखों में अमूल्य ऐतिहासिक सामग्री मिली है। उदाहरणार्थ—मास्की लेख के आधार पर ही मौर्य सम्राट् का व्यक्तिगत नाम 'अशोक' प्रकाश में आया अन्यथा उसे प्रियदर्शी की संज्ञा दी गई थी जो अन्य सभी लेखों में पाया जाता है। अशोक के रूम्मनदेई स्तम्भ लेख से बुद्ध का जन्म स्थान तथा मौर्य सम्राट् द्वारा तीर्थ यात्रा के पश्चात् भूमिकर को घटाने का वर्णन पाया जाता है। अन्त में यह

कहना सर्वथा उचित होगा कि भारत के प्राचीन अभिलेख इतिहास की निधि हैं जिन्होने भारतीय गौरव की अभिवृद्धि की है।

अभिलेखो को कई श्रेणियो मे विभाजित करते हैं। अधिकतर लेख राजाज्ञा से खोदे जाते थे तथा उनका एक ध्येय होता था। शासन सम्बन्धी लेखो मे राजनीति की चर्चा मिलती है। दान देने के उपलक्ष मे उत्कीर्ण लेख दान सम्बन्धी अनेक बातो पर प्रकाश डालते हैं। प्रतिमा पर खुदे लेख राजा की धार्मिक भावना का परिज्ञान कराते हैं। राजा के विजय यात्रा का वर्णन से राज्य विस्तार का ज्ञान हो जाता है। कई लेखो मे शासक की दिग्विजय का विवरण पाया जाता है। यदि लेखो का अध्ययन किया जाय तो पता चलता है कि प्रशस्तिकार अपने सरक्षक या आश्रयदाता की प्रशंसा मे कुछ अतिशयोक्ति के साथ लेख उत्कीर्ण कराता था। इसलिए लेखो के अध्ययन करते समय सम्यक रूप से विचार करना जरूरी है।

लेखों का वर्गीकरण अभिलेखो को निम्न श्रेणियो में बाटा जा सकता है।

(१) धार्मिक लेख---ऐसे अभिलेखो मे बहुधा धार्मिक चर्चा की गई है। प्रसगवश अन्य बातो का उल्लेख मिल जाता है। उसका उद्देश धार्मिक कार्य का प्रसार माना जा सकता है जैसे अशोक के धर्म लेख।

(२) प्रशसामय अभिलेख---शासक की प्रशसा ही इसका उद्देश्य होता है। घटनाओ का उल्लेख इस तरह किया जाता है कि उससे शासक के जीवन पर प्रकाश पडता है। यशोवर्मन का मदसोर लेख समुद्रगुप्त का प्रयाग स्तम्भ-लेख, हरहा तथा अयहोल की प्रशस्तिया इसके उदाहरण हैं।

(३) स्मारक-लेख---अशोक का लुम्बिनी लेख। शासक ने किसी घटना के स्मारक मे अभिलेख खुदवाया हो।

(४) आज्ञा-पत्र---दामोदरपुर (उत्तरी बगाल) तथा नालदा के ताम्रपत्र।

(५) दान-पत्र---बराबर का गुहा लेख।

७वी सदी से ९० फी सदी ताम्रपत्र दान-पत्र के रूप मे उत्कीर्ण हैं।

ईसा पूर्व तीसरी सदी से बारहवी सदी तक भारत मे लेख नाना रूप मे उत्कीर्ण होते रहे। अशोक के लेख भारत के प्रत्येक कोने से मिले हैं। मौर्य साम्राज्य के विस्तीर्ण होने पर भी उन लेखो मे कोई भेद नहीं पाया जाता। उनका एक ही उद्देश्य था—धर्मानुशासन। अतएव अशोक के धर्म लेखों में एक रूपकता दिखलाई पड़ती है।

अभिलेखों का महत्व

प्राचीन समय के खण्डहरों तक प्रकाश में आए हैं तथा आज भी खुदाई में नए अभिलेखों का पता चलता है। जिसमें प्राचीन स्थानों की खुदाई अभी आरम्भ भी न हो सकी वहां से अनेक सार गर्भित लेखों का परिज्ञान हो सकता है। अभिलेख सभी साधनों में अधिक विश्वसनीय माने गए हैं तो भी एक ही घटना का विवरण विभिन्न लेखों में एक सा नहीं पाया जाता। विद्वत् समाज उन पर नाना ढंग से विचार करते हैं तथा राजाओं के एकीकरण में मतभेद रखते हैं।

मौर्य युग में प्रायः समस्त भारत की एक भाषा प्राकृत थी तथा लिपि (ब्राह्मी)। इसलिए लेखों में इन बातों में समता है। मौर्य वंश के पश्चात् भारत में साम्राज्य स्थिर न रह सका इसलिए लेख भी समान रूप में नहीं मिलते। विभिन्न राज्यों की पृथक समस्या थी। अतएव उनके लेख उसी प्रान्त की बातों की चर्चा करते हैं। शुंग वंश के लेख आन्ध्रवंश का लेख तथा कलिंग के लेख में विभिन्नता है। यद्यपि सभी एक ही युग (मौर्य काल के बाद) में लिखे गए थे। परन्तु परिस्थिति के अनुसार उनमें भिन्नता आती गई। सातवीं सदी के बाद भारत में छोटे-छोटे राज्य उत्पन्न हो गए। प्रतिहार पाल तथा राष्ट्रकूट वंशों में युद्ध तथा प्रतिस्पर्द्धा की भावना काम करने लगी। विचारकों में राष्ट्रीयता की कमी हो गई। इसलिए लेख सीमित क्षेत्र तथा प्रान्तीय भाषा में उत्कीर्ण होने लगे। क्रमशः हमें लेखों में पर्याप्त अन्तर दिखलाई पड़ता है। पूर्व मध्यकाल में (७ १२ ई तक) लेखों की संख्या अनगिनत होने पर भी व्यापकता में कमी आ गई। वे प्रान्तीय विचार के समर्थक हो गए अतएव उनमें अत्युक्ति का मिलना स्वाभाविक है। इतनी भिन्नता होते हुए भी उन लेखों का विचार पूर्ण अध्ययन हमें इतिहास लिखने में सहायता करता है तथा उसके सहारे राष्ट्रीय इतिहास का निर्माण होता है। साहित्य से उन प्रशस्तियों की बातें भले ही लुप्त हो जाय परन्तु उससे लेखों का महत्व कम नहीं हो सकता। उनका वास्तविक मूल्यांकन बड़ा कठिन है और राजनीतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास की जानकारी निमित्त लेखों का ज्ञान परमावश्यक है।

लेखों का गम्भीर अध्ययन अनेक सांस्कृतिक विषयों पर प्रकाश डालता है। किसी शासक की शक्ति तथा इतिहास में उसका स्थान अभिलेखों से समझा जा सकता है। यदि लेख न होते तो अशोक के जीवन की झांकी हमें नहीं मिल पाती और संसार का महान सम्राट् वह कदापि माना नहीं जाता। उसके धर्मविजय तथा सहिष्णुता की प्रशंसा न होती और आज का भारत अशोक स्तम्भ के सिरे

१ लेख तथा संस्कृति

को अपना राष्ट्र चिन्ह नही स्वीकार करता। कलिंग राजा खारवेल तथा महा-क्षत्रप रुद्रदामन का जीवन वृतात लेख के बिना अलभ्य रहता। हाथी गुम्फा तथा जूनागढ के लेख ही उनके जीवन पर प्रकाश डालते है वरन् नाम के सिवाय सभी अनभिज्ञ रहते।

भारतीय इतिहास मे ऐसे स्थल हैं जिनका विवरण मुद्रा-लेखो पर निर्भर है। भारतीय-यूनानी शासको के विषय मे तथा पश्चिमी भारत के क्षत्रप शासक की वशावली का परिज्ञान मुद्रा-लेख के सहारे होता है। क्षत्रप सिक्को पर महाक्षत्रप (शासक) के साथ सहायक व्यक्ति (क्षत्रप) का नाम ही उत्कीर्ण नही है बल्कि सामाजिक सम्बन्ध भी उल्लिखित है। जैसे पिता पुत्र, भ्राता भगिनी आदि।

गुप्त सम्राट् समुद्रगुप्त का दिग्विजय प्रयाग स्तम्भ पर खुदा है। कालिदास ने रघु का दिग्विजय लिखा तो मेहरौली के लेख से चन्द्रगुप्त के विजय की पुष्टि की जाती है। उसका उदयगिरि तथा सान्ची का लेख पश्चिम भारत पर विजय के जीते जागते प्रमाण है। उन लेखो के बिना गुप्त सम्राटो का जीवन अन्धकार-मय रहता। बाण ने हर्ष का चरित लिखा तो हर्ष वर्णन के मधुबन तथा बासखेडा के लेख राजा के जीवन की घटनाओ को प्रकाश मे लाते हैं। ह्वेनसाग का विवरण अयहोल के लेख से पुष्ट किया जाता है कि हर्ष वर्धन को द्वितीय पुलकेशी ने परास्त किया था। हरहा का लेख मोखरिवश का अद्वितीय इतिहास वर्णित करता है। लेखो का अध्ययन यह बतलाता है कि कन्नौज के लिए धर्मपाल ध्रुव तथा वत्सराज मे युद्ध हुआ था। तीनो शासक क्रमश बगाल, दक्षिण तथा राजपुताना की ओर से आकर महोदय (कान्यकुब्ज) पर प्रभुत्व स्थापित करने के लिए लड गए कान्यकुब्ज पूर्वमध्य युग का प्रधान नगर था। वह प्राचीन पाटलिपुत्र के सदृश विख्यात था।

पुराणो में वर्णित राजवशो का उल्लेख प्राचीन अभिलेखो मे पाया जाता है जिससे पुराणो की प्रमाणिकता मे विश्वास हो जाता है। पुराणो मे मौर्य के पश्चात् शुग लोगो के शासन का वर्णन आता है। पुष्यमित्र शुग ने मौर्य वश का अत किया था। अयोध्या की प्रशस्ति मे पुष्यमित्र को सेनापति (सेनापते पुष्यमित्रस्य) कहा गया है। इसी प्रकार मौर्य वश के बाद दक्षिण भारत मे सातवाहन वश ने शासन किया। पुराणो मे आध्र या आध्रभृत्य कहा गया है जो मुद्रा लेख मे (साद वाहनस) तथा नासिक गुहा लेख मे शातवाहन कुल के नाम से उल्लिखित है। इस प्रकार पुराण के वर्णन को लेखो के विवरण से पुष्ट करते हैं। भारत मे

पुराण तथा लेख

प्राचीन समय के सहस्रों लेख प्रकाश में आए हैं तथा आज भी खुदाई से नए अभिलेखों का पता चलता है। कितने प्राचीन स्थानों की खुदाई अभी आरम्भ भी न हो सकी जहां से अनेक सार गर्भित लेखों का परिज्ञान हो सकता है। अभिलेख सभी साधनों में अधिक विश्वसनीय माने गए हैं तो भी एक ही घटना का विवरण विभिन्न लेखों में एक सा नहीं पाया जाता। विद्वद् समाज उन पर नाना ढंग से विचार करते हैं तथा राजाओं के एकीकरण में मतभेद रखते हैं।

मौर्य युग में प्रायः समस्त भारत की एक भाषा प्राकृत थी तथा लिपि (ब्राह्मी)। इसलिए लेखों में इन बातों में समता है। मौर्य वंश के पश्चात् भारत में साम्राज्य स्थिर न रह सका इसलिए लेख भी समान रूप में नहीं मिलते। विभिन्न राज्यों की पृथक समस्या थी। अतएव उनके लेख उसी क्षेत्र की बातों की चर्चा करते हैं। शुंग वंश के लेख सातवाहन का लेख तथा कलिंग के लेख में विभिन्नता है। यद्यपि सभी एक ही युग (मौर्य काल के बाद) में लिखे गए थे। परन्तु परिस्थिति के अनुसार उनमें भिन्नता आती गई। सातवी सदी के बाद भारत में छोटे-छोटे राज्य उत्पन्न हो गए। प्रतिहार पाल तथा राष्ट्रकूट वंशों में युद्ध तथा प्रतिस्पर्धा की भावना काम करने लगी। विचारकों में राष्ट्रीयता की कमी हो गई। इसलिए लेख सीमित क्षेत्र तथा प्रान्तीय भाषा में उत्कीर्ण होने लगे। क्रमशः हमें लेखों में पर्याप्त अन्तर दिखलाई पड़ता है। पूर्व मध्यकाल में (७ ०–१२ ई तक) लेखों की संख्या अनगिनत होने पर भी व्यापकता में कमी आ गई। वे प्रान्तीय विचार के समर्थक हो गए अतएव उनमें अत्युक्ति का मिलना स्वाभाविक है। इतनी भिन्नता होते हुए भी उन लेखों का विचार पूर्ण अध्ययन हमें इतिहास लिखने में सहायता करता है तथा उसके सहारे राष्ट्रीय इतिहास का निर्माण होता है। साहित्य से उन प्रशस्तियों की बातें भले ही पुष्ट हो जाय परन्तु उससे लेखों का महत्व कम नहीं हो सका। उनका वास्तविक मूल्यांकन बड़ा कठिन है और राजनीतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास की जानकारी निमित्त लेखों का ज्ञान परमावश्यक है।

१ लेख तथा संस्कृति

लेखों का गम्भीर अध्ययन अनेक सांस्कृतिक विषयों पर प्रकाश डालता है। किसी शासक की शक्ति तथा इतिहास में उसका स्थान अभिलेखों से समझा जा सकता है। यदि लेख न होते तो अशोक के जीवन की झांकी हमें नहीं मिल पाती और संसार का महान सम्राट् वह कदापि माना नहीं जाता। उसके धर्मविजय तथा सहिष्णुता की प्रशंसा न होती और आज का भारत अशोक स्तम्भ के सिरे

को अपना राष्ट्र चिन्ह नही स्वीकार करता। कलिंग राजा खारवेल तथा महा-क्षत्रप रुद्रदामन का जीवन वृतान्त लेख के बिना अलभ्य रहता। हाथी गुम्फा तथा जूनागढ के लेख ही उनके जीवन पर प्रकाश डालते है वरन् नाम के सिवाय सभी अनभिज्ञ रहते।

भारतीय इतिहास मे ऐसे स्थल हैं जिनका विवरण मुद्रा-लेखों पर निर्भर है। भारतीय-यूनानी शासको के विषय मे तथा पश्चिमी भारत के क्षत्रप शासक की वशावली का परिज्ञान मुद्रा-लेख के सहारे होता है। क्षत्रप सिक्को पर महाक्षत्रप (शासक) के साथ सहायक व्यक्ति (क्षत्रप) का नाम ही उत्कीर्ण नही है वल्कि सामाजिक सम्वन्ध भी उल्लिखित है। जैसे पिता पुत्र, भ्राता भगिनी आदि।

गुप्त सम्राट् समुद्रगुप्त का दिग्विजय प्रयाग स्तम्भ पर खुदा है। कालिदास ने रघु का दिग्विजय लिखा तो मेहरौली के लेख से चन्द्रगुप्त के विजय की पुष्टि की जाती है। उसका उदयगिरि तथा सान्ची का लेख पश्चिम भारत पर विजय के जीते जागते प्रमाण हैं। उन लेखो के विना गुप्त सम्राटो का जीवन अन्धकार-मय रहता। वाण ने हर्ष का चरित लिखा तो हर्ष वर्धन के मधुवन तथा वासखेडा के लेख राजा के जीवन की घटनाओ को प्रकाश मे लाते हैं। ह्वेनसाग का विवरण अयहोल के लेख से पुष्ट किया जाता है कि हर्ष वर्धन को द्वितीय पुलकेशी ने परास्त किया था। हरहा का लेख मोखरिवश का अद्वितीय इतिहास वर्णित करता है। लेखो का अध्ययन यह वतलाता है कि कन्नौज के लिए धर्मपाल ध्रुव तथा वत्सराज मे युद्ध हुआ था। तीनो शासक क्रमश वगाल, दक्षिण तथा राजपुताना की ओर से आकर महोदय (कान्यकुब्ज) पर प्रभुत्व स्थापित करने के लिए लड गए कान्यकुब्ज पूर्वमध्य युग का प्रधान नगर था। वह प्राचीन पाटलिपुत्र के सदृश विख्यात था।

पुराणो में वर्णित राजवशो का उल्लेख प्राचीन अभिलेखो मे पाया जाता है जिससे पुराणो की प्रमाणिकता मे विश्वास हो जाता है। पुराणो मे मौर्य के पश्चात् शुग लोगो के शासन का वर्णन आता है। पुष्यमित्र शुग ने मौर्य वश का अत किया था। अयोध्या की प्रशस्ति मे पुष्यमित्र को सेनापति (सेनापते पुष्यमित्रस्य) कहा गया है। इसी प्रकार मौर्य वश के वाद दक्षिण भारत मे सातवाहन वश ने शासन किया। पुराणो मे आध्र या आध्रभृत्य कहा गया है जो मुद्रा लेख मे (सात वाहनस) तथा नासिक गुहा लेख मे शातवाहन कुल के नाम से उल्लिखित है। इस प्रकार पुराण के वर्णन को लेखों के विवरण से पुष्ट करते हैं। भारत मे

पुराण तथा लेख

यूनानी राजाओं में मिलिन्द का नाम साहित्य से (प्राकृत ग्रन्थ मिलिन्दपञ्हो) पता चलता है। उसके द्वारा प्रचलित सिक्कों पर खरोष्ठी में महरजस त्रतरस मिनद्रस—लिखा मिला है। उसी राजा का एक लेख पश्चिमोत्तर (सरहदी सूबे) प्रांत के पश्चिम बजौर रियासत में मिला है जिनमें उसका नाम—मिनेद्रस महरजस कटिअस दिवस आदि अंकित है। यह लेख खरोष्ठी तथा प्राकृतभाषा में है। इस तरह लेख के द्वारा उत्तर पश्चिम में उसका शासन प्रमाणित हो जाता है।

हाल में एसे कुछ लेख तथा मुद्रायें उपलब्ध हुई हैं जिससे पता चलता है कि मघ नल मेकल वंशी राजाओं ने तीसरी चौथी शताब्दियों में राज्य किया था। पुराणों में भी इन शासकों के नाम मिलते हैं। इनके लेख रीवा के समीप बन्धोगढ़ तथा प्रयाग के समीप कौशाम्बी से मिले हैं। इस प्रकार पुराणों के कथन की पुष्टि लेखों से हो जाती है। साहित्य (विशेषतया वैदिक साहित्य) में जिन यज्ञों का वर्णन किया है उनके नाम नानाघाटलेख तथा नन्दसा यज्ञस्तम्भ की प्रशस्ति में उल्लिखित हैं। अतएव साहित्य की घटनाओं अथवा विवरण को विश्वसनीय बनाने में अभिलेखों ने पर्याप्त सहायता पहुँचाई है।

भारतीय नरेशों की एक महान् विशेषता रही है कि वे किसी धर्म के कट्टर अनुयायी न थे। अभिलेखों से ही अधिकतर इस बात का परिज्ञान होता है। उन राजाओं के जीवन की यह विशेषता होते हुए भी साहित्य धार्मिक सहिष्णुता कार्यों का ध्यान उस ओर क्यों नहीं गया यह कहना कठिन है। परन्तु विभिन्न शासकों के अभिलेखों के अध्ययन से यह विदित हो जाता है कि अमुक राजा सहिष्णु था। अशोक ने बारहवें प्रधान शिलालेख में स्पष्ट रूप से आज्ञा जारी की थी कि कोई अपने धर्म की प्रशंसा तथा दूसरे धर्म की निन्दा न करे। इस कार्य से अपना धर्म वृद्धि के बदले क्षीण हो जाता है—

"पुजेतिविया तु पर—पासंडा तेन तेन अकरेन। एवं करुं आत्प पासंडं वढेति पर पासंडस पि च उपकरोति। तद् अञथा करोमिनो आत्प पासंडं छणति पर पासंडस च अपकरोति। यो हि कचि आत्प पासंडं पुजयति पर पासंडं गरहति सवे आत्पपासंड भतिय व किंति आत्प पासंडं दिपयमि ति सो च पुन तथ करोतो सो च पुन तथ करोतं सो च पुन तथ करोतं बढतरं उपहनति आत्प पासंडं। सो समवायो एव साधु।

पिछले युग में भी एसी बातों का उदाहरण मिलता है। दक्षिण भारत के सातवाहन नरेशों के लेखों में एक ओर वैदिक यज्ञ का वर्णन है (नाना घाट का लेख) और अपने को एक ब्राह्मण कहते हैं वहीं शासक बौद्ध संघ को गुहा दान करने में गर्व

का अनुभव करता है। नासिक लेखों मे भदावनीय सघ तथा कार्ले गुहा लेख मे महासघिक भिक्षु शाखा को दान देने का विवरण पाया जाता है। आश्चर्य तो यह है कि सातवाहन के उत्तराधिकारी कृष्णा घाटी के शासक इक्ष्वाकु नरेश वैदिक यज्ञ के कर्त्ता थे परन्तु उन्होने बौद्ध धर्मावलम्बी कन्याओ से विवाह किया था। उन्हें किसी धर्म से विरोध नही था। गुप्त नरेशो की भी यही दशा थी। परम वैष्णव होकर भी शैव तथा जैन मतानुयायी पदाधिकारियो को नियुक्त किया तथा प्रोत्साहन दिया था। मध्ययुग के शासक पाल नरेश परमसौगत (बौद्ध) होकर भी ब्राह्मण देवताओ के लिए दान दिया करते थे। धर्मपाल के खालीमपुर ताम्रपत्र मे नर नारायण (विष्णु) के मन्दिर को दान देन का विवरण है। भागलपुर के पत्र मे शिवमदिर को अग्रहार देने का वर्णन है। नारायण पाल ने सौकडो शिवमदिर का निर्माण किया था तथा पाशुपत के आचार्य को मदिर का पदाधिकारी बनाया था। इस प्रकार बौद्ध धर्मानुयायी द्वारा हिन्दू देवो के पूजा निमित्त दान का विवरण सहिष्णुता का परिज्ञान कराता है।

आर्थिक सामाजिक तथा शासन-व्यवस्था

प्राचीन भारत के अभिलेखो का अध्ययन भारतीय समाज के प्रत्येक पहलू पर प्रकाश डालता है। शासक का ध्यान प्रजा के सुख-वैभव की ओर सदा लगा रहता था। अशोक ने स्पष्ट रूप से कहा है कि अमुक कार्य करना श्रेयस्कर है उसके बतलाए मार्ग पर चलने से प्रजा को इस लोक मे सुख मिलेगा तथा बाद मे स्वर्ग को प्राप्ति होगी—साधु य कटविये तथा कलत हिद लोकिक्ये च क आलधे होति पलत च। अनत पुना पशवति तेना धमदानेन (११वा शिलालेख) मौर्य सम्राट् ने प्रजा के सुख के लिए नहरें खुदवाई थी। महाक्षत्रप रुद्रदामन के जूनागढ लेख मे नहर तथा नालियो का विवरण पाया जाता है। प्रथम कुमार गुप्त के बिलसद स्तम्भ-लेख मे प्रासाद के साथ धर्मसत्र (अन्नसत्र) का वर्णन मिलता है। बगाल के बोगरा जिला के एक लेख मे राज्य के अन्न-भण्डार से अकाल-पीडित प्रजा को अन्न विभक्त करने का वर्णन आया है। जनता के कष्ट निवारण के लिए ही अन्न को विभक्त किया गया तथा राजा द्वारा ऋण दिए गए। नालदा के एक ताम्र-पत्र मे ऐसा ही वर्णन आता है कि महाविहार में निवास करने वाले रोगी भिक्षुओ के लिए भोजन, आसन, औषधि, वस्त्र आदि का प्रबन्ध किया गया था। देवपाल का नालदा ताम्रपत्र अपने ढग का अकेला दानपत्र है जिसमे राजा के उदार-हृदय की चर्चा चरितार्थ की जा सकती है। पाल शासक ने जावा के राजा बालपुत्रदेव कीप्रार्थना पर पांच गांव दान मे दिया था, जिस कार्य से उसके विश्वप्रेम की झलक मिलती है। प्रजा

यूनानी राजाओं में मिलिन्द का नाम साहित्य से (प्राकृत ग्रंथ मिलिन्दपञ्हो) पता चलता है। उसके द्वारा प्रचलित सिक्कों पर खरोष्ठी में महरजस ध्रमिकस मिनद्रस—लिखा मिला है। उसी राजा का एक लेख पश्चिमोत्तर (सरहदी सूबे) प्रांत के पश्चिम बजौर रियासत में मिला है जिसमें उसका नाम—मिनेद्रस महरजस कलिजस विजय आदि अंकित है। यह लेख खरोष्ठी तथा प्राकृतभाषा में है। इस तरह लेख के द्वारा उत्तर पश्चिम में उसका शासन प्रमाणित हो जाता है।

हाल में ऐसे कुछ लेख तथा मुद्राएँ उपलब्ध हुई हैं जिससे पता चलता है कि मघ नल मकुल वंशी राजाओं ने तीसरी-चौथी शताब्दियों में राज्य किया था। पुराणों में भी इन शासकों के नाम मिलते हैं। इनके लेख रीवा के समीप बन्धोगढ़ तथा प्रयाग के समीप कौशाम्बी से मिले हैं। इस प्रकार पुराणों के कथन की पुष्टि लेखों से हो जाती है। साहित्य (विशेषतया वैदिक साहित्य) में जिन यज्ञों का वर्णन किया है उनके नाम नानाघाटलेख तथा नन्दसा यज्ञस्तम्भ की प्रशस्ति में उल्लिखित हैं। अतएव साहित्य की घटनाओं अथवा विवरण को विश्वसनीय बनाने में अभिलेखों ने पर्याप्त सहायता पहुँचाई है।

भारतीय नरेशों की एक महान विशेषता रही है कि वे किसी धर्म के कट्टर अनुयायी न थे। अभिलेखों से ही अधिकतर इस बात का परिज्ञान होता है। उन राजाओं के जीवन की यह विशेषता होते हुए भी साहित्य धार्मिक सहिष्णुता बातों का ध्यान उस ओर क्यों नहीं गया यह कहना कठिन है। परन्तु विभिन्न शासकों के अभिलेखों के अध्ययन से यह विदित हो जाता है कि अमुक राजा सहिष्णु था। अशोक ने बारहवें प्रधान शिलाभिलेख में स्पष्ट रूप से आज्ञा जारी की थी कि कोई अपने धर्म की प्रशंसा तथा दूसरे धर्म की निन्दा न करे। इस कार्य से अपना धर्म वृद्धि के बदले क्षीण हो जाता है—

"गुरुविधिम व तु पर-—पषंड तेन तेन प्रकरेन। एवं करतं आत्र प्रषंड वढेति पर-प्रषंडम पि च उपकरोति। तद अनथ करमिनो आत्र प्रषंड क्षणति पर प्रषडस च अपकरोति। यो हि कचि आत्र प्रषंड पुजति पर प्रषंड गरहति सवे आत्मपषड भतिय व किति आत्र पषंड दिपयमि ति सो च पुन तथ करंतं सो च पुन तथ करंतं सो च पुन तथ करतं बढ़तरं उपहंति आत्र प्रषंड। सो समवो वो सधु।

पिछले युग में भी ऐसी बातों का उदाहरण मिलता है। दक्षिण भारत के सातवाहन नरेशों के लेखों में एक ओर वैदिक यज्ञ का वर्णन है (नाना घाट का लेख) और भवन को एक ब्राह्मण कहते हैं वहीं पाण्डव बौद्ध संघ को गुहा दान करने में गर्व

का अनुभव करता है। नासिक लेखो मे भदावनीय सघ तथा कार्ले गुहा लेख मे महासघिक भिक्षु शाखा को दान देने का विवरण पाया जाता है। आश्चर्य तो यह है कि सातवाहन के उत्तराधिकारी कृष्णा घाटी के शासक इच्छाकु नरेश वैदिक यज्ञ के कर्त्ता थे परन्तु उन्होने बौद्ध धर्मावलम्बी कन्याओ से विवाह किया था। उन्हें किसी धर्म से विरोध नही था। गुप्त नरेशो की भी यही दशा थी। परम वैष्णव होकर भी शैव तथा जैन मतानुयायी पदाधिकारियो को नियुक्त किया तथा प्रोत्साहन दिया था। मध्ययुग के शासक पाल नरेश परमसौगत (बौद्ध) होकर भी ब्राह्मण देवताओ के लिए दान दिया करते थे। धर्मपाल के खालीमपुर ताम्रपत्र मे नर नारायण (विष्णु) के मन्दिर को दान देन का विवरण है। भागलपुर के पत्र मे शिवमदिर को अग्रहार देने का वर्णन है। नारायण पाल ने सौकडो शिवमदिर का निर्माण किया था तथा पाशुपत के आचार्य को मदिर का पदाधिकारी बनाया था। इस प्रकार बौद्ध धर्मानुयायी द्वारा हिन्दू देवो के पूजा निमित्त दान का विवरण सहिष्णुता का परिज्ञान कराता है।

प्राचीन भारत के अभिलेखो का अध्ययन भारतीय समाज के प्रत्येक पहलू पर प्रकाश डालता है। शासक का ध्यान प्रजा के सुख-वैभव की ओर सदा लगा रहता था। अशोक ने स्पष्ट रूप से कहा है कि अमुक कार्य करना श्रेयस्कर है उसके बतलाए मार्ग पर चलने से प्रजा को इस लोक मे सुख मिलेगा तथा बाद मे स्वर्ग की प्राप्ति होगी—सावु य कटविये तथा कलत हिद लोकिक्ये च क आलवे होति पलत च। अनत पुना पशवति तेना धमदानेन (११वा शिलालेख) मौर्य सम्राट् ने प्रजा के सुख के लिए नहरें खुदवाई थी। महाक्षत्रप रुद्रदामन के जूनागढ लेख मे नहर तथा नालियो का विवरण पाया जाता है। प्रथम कुमार गुप्त के विलसद स्तम्भ-लेख मे प्रासाद के साथ धर्मसत्र (अन्नसत्र) का वर्णन मिलता है। बगाल के बोगरा जिला के एक लेख मे राज्य के अन्न-भण्डार से अकाल-पीडित प्रजा को अन्न विभक्त करने का वर्णन आया है। जनता के कष्ट निवारण के लिए ही अन्न को विभक्त किया गया तथा राजा द्वारा ऋण दिए गए। नालदा के एक ताम्र-पत्र मे ऐसा ही वर्णन आता है कि महाविहार मे निवास करने वाले रोगी भिक्षुओ के लिए भोजन, आसन, औषधि, वस्त्र आदि का प्रबन्ध किया गया था। देवपाल का नालदा ताम्रपत्र अपने ढग का अकेला दानपत्र है जिसमें राजा के उदार-हृदय की चर्चा चरितार्थ की जा सकती है। पाल शासक ने जावा के राजा बालपुत्रदेव की प्रार्थना पर पाच गाव दान मे दिया था, जिस कार्य से उसके विश्वप्रेम की झलक मिलती है। प्रजा

आर्थिक सामाजिक तथा शासन-व्यवस्था

से युग की समाप्ति पर ही सिंहल के पुरातत्वी मरत वासिंगटन की रानी सोमदेवी ने तालाब का निर्माण कराया था। दक्षिण भारत के मंगलपाद (कन्नड जिला) के लेख में महानाविक सिवक का वर्णन मिलता है, जिससे प्रकट होता है कि व्यापार के लिए भारतीय जहाज लेकर समुद्र पार यात्रा करते थे। इस तरह समाज के आर्थिक जीवन पर व्यापारियों द्वारा प्रकाश पड़ता है।

प्राचीन शासन प्रणाली के सम्बन्ध में भारतीय अभिलेखों में पर्याप्त ढंग से चर्चा की गई है। अशोक के समय से ही पदाधिकारियों की पदवी तथा कार्य के सम्बन्ध में उल्लेख पाया जाता है। इससे यह प्रकट होता है कि प्राचीन राजनीति ग्रंथों में वर्णित कर्मचारियों की नियुक्ति शासक द्वारा की जाती थी, कार्य प्रणाली को व्यावहारिक रूप में दर्शाया गया है। भारतीय लेखों की चर्चा अन्यत्र मिलेगी जिसका विस्तृत विवरण यहां अनपेक्षित है। इस विषय में अधिकतर लेख एक समान समझे जा सकते हैं। दक्षिण भारत का विशिष्ट लेख है जिसका स्थान प्रमुख समझा जाता है। एक तन्जौर के समीप नागूर से तथा दूसरा मद्रास के समीपवर्ती उत्तर मेरूर नामक स्थान से मिला था। इनके अध्ययन से यह ज्ञात हो जाता है कि मध्ययुग के आरम्भ में ग्राम शासन किस ढंग से होता था। सभा ग्राम के सारे कार्य की देखरेख करती थी। धार्मिक, आर्थिक तथा स्थानीय विषय को सभा पूर्ण रीति से सम्पन्न करती थी। उत्तर मेरूर का लेख अपने ढंग का अकेला अभिलेख है जो सभा की विभिन्न उपसमितियों, सदस्यों का चुनाव तथा कार्यप्रणाली पर प्रकाश डालता है। नागूर का लेख ९वीं सदी से ११वीं सदी तक प्रचलित ग्राम शासन का विवरण उपस्थित करता है। जिसप्रकार वर्णन आता है कि राज-राज प्रथम के समय में व्यापारी द्वारा मंदिर को भूमिदान दी गई थी उसकी प्रबंध-समिति की बैठक नागर के राजराजन सभामण्डप में हुआ करती थी (सा इ इ भा. २ लेख न. १२२ सन् १९१) उसमें यह भी कहा गया है कि जो व्यक्ति ग्राम या मंदिर सम्बन्धी कार्य का विरोध करेगा वह ग्राम द्रोहिन समझा जायगा और उसे समाज के अधिकार से वंचित किया जायगा। अधिकतर लेख मंदिर की दीवार पर खुदे हैं इस कारण उनमें धार्मिक चर्चा दान आदि की प्रधानता है। इस तरह ९वीं सदी के नागूर लेख में ग्राम से सम्बन्धित विषयों की चर्चा मिलती है।

उत्तर मेरूर लेख का अध्ययन प्रजातन्त्र ढंग की शासन पद्धति पर प्रकाश डालता है। समिति का रूप उप समिति का चुनाव चुनाव-टिकट तथा

उम्मीदवार सम्बन्धी विषद विवेचन उन प्रशस्तियो मे किया गया है। उससे पता चलता है कि उस भू भाग के निवासी राजनैतिक अधिकार तथा चुनाव सस्था की ओर विशेष ध्यान देते थे। न्याय तथा तार्किक विचारो का आश्रय लेकर अपना कार्यक्रम स्थिर करते थे। उत्तर मेरूर के लेखो मे पल्लव शासन (नवी सदी) मे लेकर १३वी सदी तक चोल साम्राज्य की अवनति काल तक ग्राम शासन प्रणाली का विवेचन किया गया है। विभिन्न वशो का शासन होने पर भी तथा राजनीतिक परिस्थितियो के परिवर्तन होने पर भी ग्राम सभा के कार्य मे कोई भेद नही आ सका। हर एक युग मे सभा ने समान कार्य किया था। दसवी सदी मे चोल राजा राजराजा प्रथम के समय सभा तथा उपममितिया निर्विघ्न रूप से काम करती रही। उत्तर मेरूर के अभिलेखो से स्पष्ट प्रकट होता है कि ग्राम सभा के नियमो मे विभेद न था तथा सदैव नियमित ममझा जाता था। केन्द्रीय सरकार तथा सभा के कार्य का विवेचन करते समय ग्राम के नियमो को आदर मिलता था। यदि मभासद किमी सार्वजनिक कार्य के लिए ऋण लेता तो भविष्य मे चुने जाने वाले सदस्य या उपसमिति को मान्य होता था। उसके मलग्न कार्य को पूरा करना, ऋण को वापस करना तथा मूद देना आदि सभी वातें नई उपसमिति को मानना आवश्यक था। लेख मे वर्णित सभा की शक्ति का अनुमान एक उदाहरण से स्पष्ट हो जाता है। जब सभा ग्राम के सडको की मरम्मत करती या तालाव खुदवाती तो अपने कोष से जमीन खरीद कर उस कार्य को पूरा करती। पेय जल के प्रबध के लिए किसी प्रदत्त वन की आय से १५ फी सदी भाग व्यय किया जाता। और तालाव उपसमिति उसकी निगरानी रखती थी। कहने का तात्पर्य यह है कि नालूर तथा उत्तर मेरूर के लेखो मे अमूल्य ऐतिहासिक सामग्री भरी पडी है विशेषकर ग्राम-शासन का ऐसा सुन्दर मजीव तथा विस्तृत विवरण अन्यत्र कही नही मिलता।

अभिलेखो मे सयुक्त शासन का भी वर्णन आता है। इस प्रसग मे लेखो के आधार पर नारी शासको का वर्णन अप्रासगिक न होगा। कश्मीर सिक्को मे एक मुद्रा लेख (दि क्षेम गुप्त) के आधार पर यह कहा जाता है कि रानी दिद्दा क्षेमगुप्त के साथ शासन करती थी और वाद मे स्वतन्त्र रूप से राज्य करने लगी। इस लिए पिछले मुद्रा लेख मे 'दिद्दा देव्या' लिखा गया। पर काश्मीर की प्रशस्ति मे उसे, राजन' कहा गया है (पुरुष वाचक शब्द राज्य करने के कारण प्रयुक्त हैं)। दक्षिण आध्र प्रदेश मे काकतीय रानी रुद्रम्बा को 'रुद्रदेव महाराज' लेखो मे कहा

गया है। राजपूताना में प्रचलित मध्ययुग के सिक्के पर 'सोमल देवी का मुद्रालेख उत्कीर्ण है जो राजपूत रानी के शासन का द्योतक है। इस प्रकार विभिन्न प्रकार की राजनीतिक बातें अभिलेखों के अध्ययन से विदित होती हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय स्वरूप

यद्यपि प्राचीन अभिलेखों में अन्तर्राष्ट्रीय ढंग की चर्चा बहुत कम मिलती है परन्तु कुछ लेख इस सम्बन्ध में विशिष्ट सूचना देते हैं। अशोक के तेरहवें प्रधान शिलाभिलेख में कई विदेशी नरेशों के नाम उल्लिखित हैं जहां मौर्य सम्राट् ने अपने दूत भेजे थे—

'सो च पुने लधो देवनं प्रियस इह च सवेषु च अंतेषु अषपु पि योजन शतेषु यत्र अंतियोको नम योन-रज परं च तेन अंतियोकेन चतुरे ४ रजनि तुरमय नम अंतिकिनि नम मक नम अलिकसुदरो नम निच चोड-पंड अव तंबपंनिय— योन क बोजेषु छनक देवनं प्रियस ध्रमनुशस्ति अनुवटंति । यत्र पि देवनं प्रियस दुत न प्रचंति आदि । अशोक का मन्तव्य था कि उसका दूत आसानी से विदेशों में भ्रमण करे तथा वहां उन्हें कार्य करने (धर्म प्रचार) में सुविधा मिले। अशोक स्वयं भी विदेशी दूतों को मौर्य साम्राज्य में वैसी ही सुविधा देने के पक्ष में था। ईसा पूर्व प्रथम सदी में तक्षशिला के राजा अंतिलिकित का एक दूत हेलियोडोरस विदिशा में भागभद्र के राजदरबार में आया था। इसकी सूचना बेसनगर के गरुड़ स्तम्भ लेख से मिलती है उसमें निम्न प्रकार का उल्लेख आता है—हेलिओ दोरेण भागवतेन दियस पुत्रेण तक्ष सिलाकेन योन-दूतेन आगतेन। मध्ययुग के एक ताम्रपत्र से अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध पर विशेष प्रकाश पड़ता है। देवपाल देव के नालंदा ताम्रपत्र में वर्णन आता है कि जावा के राजा बालपुत्र देव ने दूत के द्वारा पालनरेश के पास प्रार्थना भेजी थी कि नालंदा में नवनिर्मित विहार को अग्रहार दान दिया जाय। देवपाल ने उसे स्वीकार कर अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त की। वर्णन पठनीय है—

सुवर्णद्वीपाधिप महाराज श्री बालपुत्र देवेन दूतक मुखेन अभिलाषिता यथा मया श्री नालंदायामिहार कारित——

शासनीकृत्य प्रतिपादित।

भारतवर्ष में तीसरी सदी से ही राजदूतों की नियुक्ति की चर्चा लेखों में मिलती है। बृहत्तर भारत के (हिन्द चीन) संस्कृत लेखों में भारतीय दूत का सुन्दर वर्णन मिलता है।

भारतीय अभिलेखों के अध्ययन से यह प्रकट होता है कि विदेशी आक्रमणकारियों ने भारत में आकर अपने शासन सम्बन्धी बातों का विभिन्न आधार पर

भारतीय करण की चर्चा

उत्कीर्ण कराया। उनमे से कुछ इस ओर सकेत करते हैं कि अमुक शासक ने भारतीय धर्म ग्रहण कर भारतीय नाम भी अगीकार किया। यो तो सभी ने भारतीय सस्कृति को अपनाया था परन्तु ऐसा उल्लेख यूनानी तथा शक लेखो मे पाया जाता है। वेसनगर गरुड स्तम्भ पर जो लेख उत्कीर्ण हैं उसमे यूनानी राजदूत हेलियोडोरस को भागवत कहा गया है यानी उसने वैष्णव धर्म स्वीकार कर लिया था। उसी समय के यानी ईसवी पूर्व द्वितीय शताब्दी मे बजौर से एक शरीर-अवशेष सचित सदूक मिला है जिस पर यूनानी राजा मिनेन्डर (मिलिन्द) के समय का लेख खुदा है। अतएव इस लेख के आधार पर अनुमान किया गया कि मिनेन्डर बौद्ध था। इसकी पुष्टि एक प्राकृत ग्रथ "मिलिन्द-पन्हो" से की जाती है जिसमे नागसेन और मिलिन्द के मध्य बौद्ध दर्शन पर प्रश्नोत्तर सग्रहीत है।

ईसवी सन् के आरम्भ मे उत्तर पश्चिम भारत मे कुषाण नरेशो ने शासन किया। कुषाणो के प्रथम राजा वीम कदफिस ने शैवमत को स्वीकार किया जिसका प्रमाण उसके मुद्रा-लेख मे मिलता है। सोने की मुद्रा पर एक ओर राजा का नाम यूनानी अक्षरो मे तथा दूसरी ओर खरोष्ठी मे एक लम्बा लेख खुदा है—महरजस रजदि रजस सर्व लोग इश्वरस महीश्वरस विमि कफिशस। महीश्वर (महेश का पुजारी) की पदवी उसके धार्मिक विश्वास को व्यक्त करती है। उसके उत्तराधिकारी कनिष्क के विषय मे सर्व विदित है कि वह बौद्ध था और उसने बुद्ध धर्म की चौथी सगीति बुलाई थी। साहित्य को छोड कर लेखो के अध्ययन से यही प्रमाणित होता है कि कनिष्क बौद्ध था। सारनाथ के बौद्ध प्रतिमा के आधार शिला पर कनिष्क के तीसरे वर्ष मे एक लेख खोदा गया था जिसमें उस कुषाण नरेश के राज्यपाल खरपल्लाना द्वारा मूर्ति स्थापना का वर्णन मिलता है—महारजस्य कणिष्कस्य स० ३ हे० ३ दि० २०+२——बोधिसत्वो छत्रयष्टि प्रतिष्ठापितो वाराणसिये। कनिष्क के २१ वें वर्ष मे पेशावर के समीप बुद्ध के अवशेष की स्थापना का विवरण लेख मे आया है—भगवतस शक्यमुनिस शरिर प्रदिठवेदि (कुर्रम अवशेष-सदूक वाला लेख) कनिष्क के उत्तराधिकारी नरेश ने भारतीय ढग का अपना नाम वासुदेव रक्खा। हुविष्क के पश्चात् इस प्रकार का नामकरण भारतीय सस्कृति का प्रभाव ही कहा जा सकता है। मथुरा के अनेक प्रतिमा लेखो मे वासुदेव शब्द का प्रयोग उस राजा के लिए किया गया है। ईसवी सन् की दूसरी सदी मे शक नरेशो ने भी शनै-शनै भारतीयता को अगीकार किया। नहपान के जामाता ऋषभदत्त ने तीर्थ-स्थानो पर दान देकर भारतीय सस्कृति मे निष्ठा को प्रकट किया था। नासिक

के गुहा लेख में प्रभास तीर्थ में ब्राह्मण कन्याओं के विवाह निमित्त धन दान दिया। रामतीर्थ में हजारों रुपया ब्राह्मणों में वितरण किया तथा राज्य के अनेक नदियों पर निःशुल्क यात्रा (घाट उतरन) करने की आज्ञा दी। दशपुर, नासिक आदि स्थानों में आराम के लिए गृह (धर्मशाला) तथा जल व सदावर्त का प्रबन्ध किया। इस तरह धर्मशास्त्रों में वर्णित रीति से ऋषभदत्त ने यज्ञ किये। नासिक गुहा लेख का वर्णन पद्म पुराण अग्नि पुराण विष्णु पुराण तथा महाभारत में प्रति पादित धार्मिक चर्चा से मिलता है। ब्राह्मण कन्या का दान पद्म पुराण मे निम्न प्रकार से मिलता है—

साल‌ङ्कारा द्विजश्रेष्ठ कन्यां यच्छति यो नरः
स यच्छन्नह्म सदन पुनर्जन्म न विद्यते।

नासिक लेख में 'पुण्य तीर्थे ब्राह्मणम्य अष्टभार्या प्रदेन' का उल्लेख है। उसी तरह लेख में वर्णित "नावा पुण्य-तर-करेण" पुराणों के मुल्क तर या तर-शुल्क (मशुल्कतर) के समान है। महाभारत (३ ८५ ४२) में रामतीर्थ के स्नान का महत्व बतलाया गया है जिसकी तुलना 'गोवर्धने सुवर्ण मुख दोर्गारिक च रामतीर्थे चरकवर्णेम्य——" की पंक्ति से की जा सकती है। ऋषभदत्त ने उल्लेख किया है कि पुष्कर जाकर उसने अभिषेक किया तथा दान दिया था (ततोस्मि गतो पोसरानि। तत च मया अभिसेको कृतो भीति च गौसहस्त्रानि दत्तानि ग्रामो च) तात्पर्य यह है कि अजमेर के समीप पुष्कर तीर्थ का महत्व ऋषभदत्त मानता रहा। विष्णु संहिता (८५।२) में भी इस तीर्थ का महत्व वर्णित है—

पुष्करे स्नान मात्रतः सर्वे पापस्य पूतो भवति।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि विदेशी शक नरेश भारतीय संस्कृति को अपनाते गए थे। अन्त में पश्चिम भारत के कारदमक वंशी नरेशों के सम्बन्ध मे दो शब्द कहना उचित प्रतीत होता है। रुद्रदामन के सम्बन्ध मे जूनागढ़ के शिला लेख मे एसी बात कही गई है जो उसके भारतीयता की अभिरुचि का द्योतक है। यह आश्चर्य ही है कि शक नरेशों के मुद्रा-लेख प्राकृत में मिलते हैं किन्तु रुद्रदामन की प्रशस्ति संस्कृत में है। इस शक राजा ने अपने पुत्र का नाम रुद्रसिंह रक्खा जो शक नामकरण न होकर भारतीय था। इनके लेखों में भारतीय मास-गणना का आरम्भ दिखलाई पड़ता है। रुद्रसिंह के गुण्डा लेख में वैशाख शुद्ध पचम तिथी रोहिणि नक्षत्र मुहूर्त का उल्लेख है तो जूनागढ़ के दूसरे लेख में "चत्र शुक्लस्य दिवसे पंचम" या रुद्रसेन के गरहा प्रशस्ति मे "भाद्रपद बहुल ५ आदि मास व तिथि का वर्णन भारतीय करण का प्रबल प्रमाण है।

भारतीय इतिहास मे भगवान वुद्ध के महापरिनिर्वाण तथा शरीर के अवशेष सम्वन्धी विवाद की कथा सर्व विदित है। कुशीनगर (कसिया) मे शव के दाह सस्कार करने के पश्चात राख या शेष हड्डियो को आठ भागो मे विभक्त कर दिया गया। वैशाली के लिच्छवी, कपिल-वस्तु के शाक्य, अलकप्प के वुलि, रामग्राम के कोलिय, वैयद्वीय ब्राह्मण, कुमीनारा के मल्ल, दोण के ब्राह्मण तथा पिप्पलीवन के मोरिय नरेशो को वरावर वरावर भाग मिला (महापरिनिव्वान-सूत्त अध्याय १) साची के दक्षिण तथा पश्चिम तोरणो के पट्टियो पर भी अवशेष सम्वन्धी युद्ध चित्र खुदा है। अन्त मे शाति हो जाने पर आठ भाग किया गया जो उस भाग को एक पात्र मे रख कर हाथी के सिरे पर दिखलाया गया है। तात्पर्य यह है कि आठो शासको ने वुद्ध के अवशेष पर स्तूप निर्मित किया। ह्वेनसाँग के कथानुसार अशोक ने उन अवशेष से कुछ भाग निकाल कर चौरासी हजार स्तूप वनवाये। अशोक निर्मित स्तूपो के भग्नावशेष मिले हैं परन्तु किसी स्थान पर उत्कीर्ण लेख प्राप्त नही हुआ जिसमे वुद्ध के शरीर अवशेष की चर्चा की गई हो। हाल ही मे वैशाली की खुदाई से एक स्तूप का पता लगा है जिसमे भगवान के अवशेष हो सकते है। पुरातत्व की खुदाई तथा स्मारक भवनो से यह अर्थ निकाला जा सकता है कि वुद्ध के अवशेष वहाँ होगे। वुद्ध के अवशेष (राख) एक कीमती प्रस्तर सोने, या चादी के सदूक मे रख दिया जाता था। वह कीमती पात्र एक प्रस्तर के सदूक मे रक्खा जाता था जिसके किसी भी भाग पर लेख उत्कीर्ण किया जा सकता है। ऐसे ही सदूके कई स्थानो से प्राप्त हुई है। कभी ढकन या नीचे अथवा सदूक के ऊपरी भाग पर लेख मिले हैं। लेखो से अवशेष की स्थापना की वार्ता (इसी सदूक के अभिलेख मे) उल्लिखित है। सम्भवत वह सदूक स्तूप की खुदवाई मे निकला हो तभी उस में किसी धातु पत्र पर लेख सुरक्षित मिला है। अन्य प्रकार के लेख आधार (ताम्रपत्र) पर भी उत्कीर्ण लेख प्रकाश मे आए है उन सव मे शरीर या धातुएँ शब्द से भगवान के अवशेष को व्यक्त किया गया है।

वुद्ध के अवशेष की वार्ता

भारतीय अभिलेख इस दिशा मे अमूल्य सहायता पहुँचाते है। उनके वर्णन से पता चलता है कि अमुक राजा ने भगवान के शरीर अवशेष की स्थापना की। यह प्रमाण पूर्वक कहना कठिन है कि उन राजाओ को वास्तव मे अवशेष कहा से प्राप्त हुए थे।

सर्वप्रथम लेख वस्ती जिले (उत्तर प्रदेश) के पिपरावा नामक स्थान से मिला था वह लेख ईसा पूर्व चौथी सदी का है—

इदं शरीर-निधानं बुद्धस्य भगवतं धातवानो।

पश्चिमोत्तर प्रांत के समीप बजोर रियासत के शिनकोट स्थान से अवशेष संपुक (casket) के ऊपरी तथा भीतरी भाग पर खुदा लेख प्राप्त हुआ है जो यूनानी राजा मिलिन्द के समय का है (ईसा पूर्व दूसरी सदी) उस सपुक के ढक्कन के अन्दर निम्न लेख खुदा है-प्रण समेव शरीर भगवतो शकमुनिस। पात्र के भीतर भी इसी प्रकार का लेख है—

भगवतु शकिमुनिस प्रम संबुधस शरीर।

इस लेख में बुद्ध के अवशेष को प्राण सहित कहा गया है। इसका तात्पर्य यह है कि पूजा करने पर आश्चर्य जनक फल मिलता है। बौद्ध लोगों का यह विश्वास था कि अवशेष के पूजा से चमत्कार प्रकट होता है। ईसा पूर्व पहली सदी में स्वात नदी की घाटी में स्थित किसी गांव से अवशेष का सपुक (casket) मिला जिसके निचले भाग पर लेख खुदा है—

इम शरीर शक मुनिस भगवतो बहु जण हितिए।

वहां के एक यूनानी शासक ने भगवान का अवशेष जनसाधारण के हित के लिए स्थापित किया। पहली सदी के समय शासक रंजुबल के मथुरा सिंह स्तम्भ पर इसी प्रकार का लेख है वहां स्तम्भ में अवशेष स्थापित करने की चर्चा है।

मे निसिमें (स्तूप) शरिर प्रथिठविदो भक्भवो शक मुनिस बुधस।

तक्षशिला के शासक पटिक के ताम्रपत्र में भी अवशेष स्थापना का वर्णन है—

पति को अप्रतिठवित भगवत शक मुनिस शरिरं प्रतिथवेति।

इस सम्बन्ध में कहना कठिन है कि उस शासक को अवशेष कहां से मिला। परन्तु इसमें तर्क से काम नहीं लिया जा सकता केवल विश्वास करना है। उसी स्थान के समीप कलवान से प्राप्त ताम्रपत्र में भी निम्न प्रकार का वर्णन मिलता है—

इव धितव शरिर प्रइस्तवेति मह बुधमि।

भगवान के अवशेष को राजा अयस ने भ्राता भमिनि दुहिता के साथ गृह स्तूप में स्थापित किया। पहली सदी में यह अवशेष कहां से आया यह अनिर्वचनीय है। तक्षशिला का एक लेख एक चांदी के पत्र पर खुदा मिला है जो सम्भवतः अवशेष पात्र से निकाला गया होगा। उसमें अयस नामक राजा ने धर्म राजिका स्तूप में भगवान का अवशेष स्थापित किया। तक्षशिला में धर्म राजिका स्तूप को अशोक ने बनवाया था। स्यात् उसकी मरम्मत पहली सदी में पहलव राजा अय स की और इसीलिए निम्न प्रकार का उल्लेख किया—

"इश दिवसे प्रदिस्तवित भगवतो धातुओ उरस कोण इतव्हिण पुत्रण वहलिएण रणो अचए णागरे वास्तवेण । तेण इमे प्रदिस्तवित भगवतो धातुओ धमर इए तक्षशिलए ।"

अन्य धातु पत्रो की तरह पेशावर के समीप कुर्रम मे ताम्त्रे का अवशेष-पात्र मिला है जिसके ऊपरी भाग पर अवशेष स्थापना की बात उल्लिखित है—

थूवमि (स्तूप मे) भगवतस शक्य मुनिस शरिर प्रदिठवेदि (प्रतिष्ठापित किया) ।

इस स्तूप का निर्माण अवशेष पर किया गया परन्तु यह ज्ञात नही हो सका कि बुद्ध के शरीर के अवशेष कहा से मिले थे । अफगानिस्तान के खवट नामक स्थान पर स्तूप का भग्नावशेष है जिसमे कासा का पात्र मिला था । इस कांस्य पात्र के नीचे लेख खुदा है ।

"वग्रमारेग्रविहरम्नि थुस्तिमि भगवद शक्य मुणे शरिर परिठवेति"

वग्रमरेग नामक विहार के समीप स्तूप भगवान बुद्ध के अवशेष स्थापित किया गया । यह घटना हुविष्क के शासन काल की है । यानी ईसवी सन् की दूसरी सदी तक लेखो मे अवशेष स्थापना की चर्चा मिलती है। ईसा पूर्व चौथी सदी से लेकर दूसरी सदी तक के लेखो मे बुद्ध के अवशेष स्थापित करने की वार्ता लेखो के सहारे ज्ञात होती है। उसके ऐतिहासिकता पर विवेचन नही किया जा सकता । यहाँ इस बात पर बल देना है कि लेखो के अतिरिक्त बुद्ध के शरीर-अवशेष सम्बन्धी विवरण जानना सम्भव नही था ।

भारतीय लेख तथा बृहत्तर भारत

भारतीय सस्कृतिका बृहत्तर भारत मे विस्तार की चर्चा लेखो द्वारा ही मिलती है। यो तो अन्तर्राष्ट्रीय ढग पर भारत तथा पूर्वी द्वीप समूह के सम्बन्ध का परिज्ञान पाल तथा चोल लेखो से होता है परन्तु चौथी सदी के चम्पा के शिलालेख (न २, ३) मे पुरुष मेध का वर्णन मिलता है। महाराज भद्रवर्मन कहता है कि मै तुम्हें अग्नि को समर्पित करता हू। निम्न पक्ति का उल्लेख इसे प्रमाणित करता है—नमो देवाय भद्रेश्वर स्वामिपाद प्रसादात अग्नयेत्वा जुष्ट करिष्यामि धर्म महाराज श्री भद्रेश्वर वर्मणो यावच्चन्द्रादित्यौ तावत पुत्र पौत्र मोक्ष्यति । पृथिवि प्रसादात कार्य सिद्धास्तु । शिवोदासो वद्धयते (चो दिन लेख, मजूमदार चम्पा लेख न २, ३)

इन्ही पक्तियो मे शिव नामक दास को यूप से बाध कर पुरुषमेध का अनुमान लगाया जा सकता है। इसमे सदेह नही किया जा सकता कि पुरुष-मेध का अनुकरण चम्पा मे भारत से किया गया जहाँ वैदिक (शत० ब्रा०१३

१ २ १ गोप बा ५ ८ आपस्तम्ब (२ २४ १) तथा कात्यायन २ १ १] पौराणिक (वायु पुराण १ ४ ८४) और बौद्ध साहित्य (सूत्रनिपात १ २) में इसका विवरण पाया जाता है। भारत के ब्राह्मणों ने उस उपनिवेश में भारतीय संस्कृति का प्रचार किया था यह मन्त्रों के आधार पर सत्य सिद्ध होता है। मध्य एशिया के नगरों से भी इसी प्रकार सांस्कृतिक प्रसार के विवरण उपलब्ध हैं जो भारतीय संस्कृति के प्रसार का परिज्ञान कराते हैं (स टेम्पी सब भा १ २ १—सरकार सेलक्ट इन्स पृ २१४)

भारतीय अभिलेखों की सहायता से प्राचीन तिथि और काल गणना का ज्ञान हमें हो जाता है। ईसा पूर्व शताब्दी में विक्रम काल गणना का आरम्भ माना गया है जिसकी जानकारी लेखों से ही की जाती है। ऐसी अभिलेखों से तिथि गत के आरम्भ से शक सम्वत (ई ७८) का प्रारम्भ हुआ का ज्ञान जिस का सम्बन्ध कुषाण नरेशों के अभिलेखों में स्थापित किया गया है। कनिष्क से लेकर वासुदेव तक के लेख एक क्रम से १ से ८) तिथि युक्त हैं। नहपान का जूनार लेख ४१ में और रुद्र दामन का जूनागढ़ की प्रशस्ति ७२ वर्ष में उत्कीर्ण की गई थी। इन सब का सम्बन्ध उसी शक सम्वत से निश्चित किया गया है। गुप्त वंश के अभिलेखों का अध्ययन से यही पता लगता है कि उनके लेख गुप्त सम्वत से सम्बन्धित हैं। चन्द्र गुप्त द्वितीय मथुरा लेख की तिथि ८२ और कुमार गुप्त प्रथम का करम दण्डा लेख मे ११७ तिथि मिलता है। मनकुंवार प्रतिमा लेख में १२९ खुदा है तो उसके पुत्र स्कन्द गुप्त के जूनागढ़ प्रशस्ति में १३६ १३७ १३८ तिथियाँ का विवरण पाया जाता है। इस पर विचार करने से यह नहीं कहा जा सकता कि चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने ८२ वर्ष कुमार गुप्त प्रथम १२९ वर्ष तथा स्कन्द गुप्त ने १३८ वर्ष शासन किया। किसी न किसी काल गणना से उनका सम्बन्ध स्थापित करना ही पड़ेगा। कुमार गुप्त प्रथम के मंदसोर लेख ४९३ तथा ५२९ तथा उसी स्थान के यशोवर्मन के लेख में ५८९ अंक उल्लिखित हैं। इन पर विचार कर दोनों तिथि का सम्बन्ध विक्रम सम्वत से स्थिर किया गया है (आगे विस्तृत विवेचन देखिए)। इसी तरह मौखरि नरेश ईशान वर्मा के हर हा लेख की तिथि ६११ (श्लोक २१) मिलती है। उत्तर गुप्त नरेश के अभिलेखों में पहाड़पुर का ताम्रपत्र १५९ तथा एरण का लेख १६१ तिथि युक्त है। कुछ लेख हर्ष सम्वत् से सम्बन्धित किए जाते हैं। इस प्रकार अभिलेखों के अध्ययन द्वारा शासकों की शासन-तिथि निश्चित हो जाती है।

भारतीय अभिलेखों में कभी एक छोटी सी घटना का गम्भीर रूप में

चित्रण मिलता है। इसका कारण यह था कि प्रशस्तिकार अपने सरक्षक शासक की मुक्त कठ से प्रशसा कर उस के चरित को अतिरजित करता था। इस प्रकार की अत्युक्ति पूर्ण प्रशस्ति मध्य युग मे अधिक पाई जाती है। गुप्त लेख मे एक स्थान पर ऐसी घटना का उल्लेख है जो इतिहास की कसौटी पर नही उतरती।

लेखो में अत्युक्ति

मेहरौली के लेख मे एक पक्ति मे चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य की विजय वर्णित है—

तीर्त्वा सप्त मुखानि येन समरे सिन्धोर्जिता वाह्लिका
यस्याद्याप्यधिवास्यते जलनिधि वींर्य्यानिलैर्द् क्षिण ।

चन्द्रगुप्त द्वितीय को दक्षिण का विजयी कहा गया है परन्तु अन्य प्रमाणो से यह सत्य ज्ञात नही होता। इसे अलकारिक विवरण मानना पडेगा। छठी सदी के मध्य मे वासुल नामक प्रशस्ति लेखक ने मालवा के शासक यशोधर्मन की विजय यात्रा का वर्णन अतिरजित शब्दो मे किया है। मदसोर के लेख मे विवरण मिलता है कि यशोधर्मन ने लौहित्य (आसाम) मे पश्चिमी समुद्र (रत्नाकर) तथा हिमालय से महेन्द्र पर्वत तक भू भाग पर अधिकार कर लिया था। तत्कालीन इतिहास का अनुशीलन यह बतलाता है कि पश्चिम भाग मे चालुक्य वश का राज्य था। मगध मे पिछले गुप्त नरेश शासन कर रहे थे। प्रशस्ति मे इन शासको के पराजय का विरण उपस्थित नही किया गया है। श्लोक पठनीय है—

आ लौहित्योपकण्ठात्तलवन गहनोपत्यकाद्य महेन्द्रा—
दा गङ्गाश्लिष्ट-सानोस्तुहिन शिखरिण पश्चिमादा पयोधे ।
सामन्तैर्यस्य बाहु-द्रविण हृत मदै पादयोरानमद्भि—
श्चूडारत्नाङशु-राजि-व्यतिकर-शबला भूमिभागा क्रियन्ते ।।

इतना ही नही यशोधर्मन के दूसरे अभिलेख मे राजस्थानीय (राज्यपाल) अभयदत्त के सम्बन्ध मे यह कहा गया है कि वह विन्ध्या से अरब सागर तक शासन करता था। यह वास्तविक मे सच्ची घटना नही कही जा सकती। (मदसोर शिलालेख मा० स० ५८९, का० इ० इ० ३ पृ० १५२ श्लोक १९) मध्ययुग के अभिलेखो मे छोटे शासक के लिए भी परम भट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर की पदवी उल्लिखित की गई है। सम्भवत लेख लिखने वाले को इस पदवी का वास्तविक अर्थ अज्ञात था अथवा अपने सरक्षक राजा के महान् विजेता या शक्तिशाली नरेश दिखलाने का प्रयत्न था। हर्ष से पूर्व महाराजाधिराज की पदवी चक्रवर्ती नरेश के लिए ही प्रयुक्त होती थी। समुद्रगुप्त ऐसे विजेता को केवल महाराजाधिराज कहा गया है जबकि पिछले गुप्त-नरेश (मगध के शासक) जीवित गुप्त को देववर्नाक लेख मे महान् उपाधि—परम भट्टारक महाराजाधिराज

है। समुद्रगुप्त प्रयाग की प्रशस्ति तथा अन्य सभी गुप्त लेखो मे 'लिच्छवी-दौहित्र' कहा गया है। वह लिच्छवी राजकुमारी कुमारदेवी का पुत्र था, इसलिए "लिच्छवी-दौहित्रस्य महादेव्या कुमारदेव्या मुत्पन्न" उल्लिखित है। इसकी पुष्टि चन्दगुप्त प्रथम के मुद्रा लेख से की जाती है। राजा द्वारा प्रचलित स्वर्ण सिक्के के अधोभाग पर "कुमार देवी श्री तथा चन्द्रगुप्त" का नाम खुदा है तथा पृष्ठ भाग पर 'लिच्छवय उत्कीर्ण है। इससे तथ्य का पता लग जाता है कि चन्द्रगुप्त का विवाह लिच्छवी वशजा कुमारदेवी से हुआ था। समुद्रगुप्त को इसी कारण लिच्छवी दौहित्र कहा गया है। इस प्रकार के अन्य दृष्टात भी दिये जा सकते हैं। गुप्त वश की एक मुहर पर प्रथम कुमार गुप्त के पश्चात् पुरुगुप्त का नाम मिलता है और दूसरे अभिलेखो मे स्कन्दगुप्त प्रथम कुमार गुप्त का पुत्र तथा उत्तराधिकारी कहा गया है। इस प्रश्न को लेकर ऐतिहासिक विवाद खडा हो गया जिसका समाधान अभी तक न हो सका कि कुमार गुप्त प्रथम का वास्तविक उत्तराधिकारी कौन था? ये थोड से उदाहरण ही पर्याप्त हैं जो वैज्ञानिक रीति तथा तुलनात्मक अध्ययन के महत्व पर प्रकाश डालते हैं।

लेखों की अपूर्णता तथा दोष

प्राचीन भारतीय लेखो मे शासको की विशेष चर्चा की गई है। उनके धार्मिक कृत्य पर भी विशेष ध्यान दिया गया है परन्तु प्रजा के प्रति उनके कर्त्तव्य का विवरण नही के बराबर है। राजनीतिक वार्त्ताओ को किसी प्रकार सन्तोष जनक नही समझा जा सकता। राज्य मे नियमो का कौन निर्माता था या किस रूप में प्रजा शासक को उपनियम तैयार करने मे सहायता करती थी आदि बातें प्रकाश मे नही आई हैं। अभिलेखो मे दान का वर्णन सर्वदा स्मृतियों पर अवलम्बित है, पर आश्चर्य यह है कि दान ग्राही तथा दान कर्ता के सक्षिप्त चर्चा के अतिरिक्त वर्णों का तुलनात्मक अध्ययन नही मिलता। धर्म शास्त्रकारो ने वर्णों के कार्यों, अधिकार तथा स्थिति का सुन्दर वर्णन दिया है किन्तु प्रशस्तिकार इस विषय मे मौन हैं। ब्राह्मण किसी अपराध मे मृत्युदण्ड से मुक्त समझा जाता रहा परन्तु लेखो मे इस सिद्धान्त का उल्लेख नही है। वैश्य तथा शूद्र के श्रम, पारिश्रमिक, वस्तुओ के मूल्य, उत्पादन सीमा, उनकी आवश्यकता, सापेक्षिक उपभोग आदि विषयो का ज्ञान अभिलेखो से उपलब्ध नही है। शासक आर्थिक उन्नति मे किस रूप से सहायता करता था या किस मार्ग से प्रोत्साहन देता यह भी अज्ञात हैं। साहित्यक आधार पर जितना परिज्ञान है उसे अभिलेखों से प्रमाणित नहीं कर पाते हैं। कुछ अशों में भारतीय प्रशस्तिया अपूर्ण हैं तथा इन दोषो का कारण भी अज्ञात है।

अध्याय १

अभिलेख लिखने के आधार

प्राचीन भारतीय इतिहास लिखने में प्रशस्तियों के महत्व की चर्चा की गई है। प्राचीन समय में राजाश्रय पाकर कविगण को प्रशंसा के शब्द लिखते समय अथवा किसी घटना का उल्लेख आवश्यक हुआ तो लिखने के आधार वस्तु (जिन पर लेख लिखा जाय) को ढूंढना पड़ा। जिस समय की बात कही जा रही है उस समय कागज तथा ताड़पत्र या भोजपत्र का भी प्रयोग लोग नहीं जानते थे। लेखन कला का जन्म भारत में हो गया था। शिक्षा कण्ठगत थी इसलिए वेदों के लिखने की भी आवश्यकता न थी। ईसा पूर्व सदियों में सर्व प्रथम प्रस्तर का आधार बनाकर लिखना प्रारम्भ किया गया। तत्पश्चात धातुओं का प्रयोग होने लगा। इसके अतिरिक्त अन्य वस्तुएं भी काम में लाई जाती थी जिन पर सामयिक वृतान्त खुदवाया गया। उन्हीं का विवरण अगली पंक्तियों में उपस्थित किया जायगा। यहां इतना कहना आवश्यक है कि प्रस्तर को स्थायी समझ कर लेख उत्कीर्ण किए गये। साधारणतः जितने प्रकार की आधार वस्तुएं काम में लाई जाती थी उन पर खुदे वृतान्त को लेख कहते हैं। राजाज्ञा द्वारा प्रस्तर या धातु पर उत्कीर्ण लेख प्रशस्ति शब्द से प्रसिद्ध है। प्रस्तर कई रूप में आधार निमित्त प्रयुक्त हुआ।

ईसा पूर्व सदियों में मौर्य सम्राट् अशोक ने अपने धर्म-लेख को समस्त जनता की जानकारी के लिए स्थान-स्थान पर खुदवाया था। उसके

शिलाखण्ड

चौदह लेख राज्यसीमा के शिलाओं पर खुदे थे जिनको प्रधान शिला लेख के नाम से पुकारते हैं। उसके लेख उत्तर पश्चिम मनसरा (पेशावर जिला) तथा काठियावाड़ के गिरनार से लेकर पूरब में धौली (उड़ीसा) तक और उत्तर में कालसी (देहरादून उत्तर प्रदेश) से दक्षिण यरगुडी (करनूल मद्रास) में पाये गये हैं। उत्तर मौर्य काल में पुष्य

मित्र शुग का एक लेख अयोध्या से प्राप्त हुआ है जिसमे उसके जीवन की मुख्य घटनाओ का उल्लेख मिलता है। वह लेख दरवाजे के ऊपरी चौखट पर खोदा गया था। ईसवी सन् की पहली तथा दूसरी सदियो मे शक व कुषाण नरेशो ने भी प्रशस्तिया खुदवाई थी। हुविष्क तथा सोडास का मथुरा शिला लेख तथा कनिष्क का मानिक्याला उल्लेखनीय है। सबसे प्रधान लेख महाक्षत्रप रुद्रदामन का है जो १५० ई० मे गिरनार मे खोदा गया था। वह लेख अशोक के गिरनार वाले लेख के शिलाखण्ड पर ही उत्कीर्ण है। यही लेख सस्कृत साहित्य का सबसे पहला गद्य खण्ड है जो साहित्य के इतिहास पर प्रकाश डालता है। रुद्रदामन के सामाजिक तथा राजनीतिक जीवन का सारा वृतान्त उपस्थित करता है।

गुप्त वश के शासन आरम्भ होने पर अनेक प्रशस्तिया लिखी जाने लगी। सर्व प्रथम समुद्रगुप्त ने प्रशस्ति खुदवाने का श्री गणेश किया। उसके पुत्र द्वितीय चन्द्रगुप्त ने भी शिला खण्ड पर लेख खुदवाया जिसमे उस वश का इतिहास भरा पडा है। उसके उत्तराधिकारियो मे प्रथम कुमार गुप्त का मदसोर का लेख तथा स्कन्द गुप्त का जूनागढ का लेख प्रसिद्ध है। छठी सदी के राजा यशोवर्मन की प्रशस्ति इसी श्रेणी मे रक्खी जाती है। मौखरि राजा ईशान वर्मा की प्रशस्ति (हरहा का लेख) अनेक दृष्टियो से महत्वपूर्ण है। इसमे मौखरि इतिहास के अतिरिक्त मालव सम्वत् का उल्लेख पाया जाता है। पिछले गुप्त नरेशो के लेखो मे अपसद (गया, बिहार) का लेख मुख्य माना जाता है।

पूर्व मध्य काल (७००-१२०० ई०) मे भारत मे कोई एक छत्र सम्राट् न था। छोटे-छोटे राजा सीमित क्षेत्र मे शासन करते रहे। ऐसी दशा मे राजाज्ञा को सीमा या प्रान्तो के शिला खण्डो पर उत्कीर्ण कराने का प्रश्न ही न रहा। सम्भवत उन्हे उचित स्थान न मिल सका। उस समय सामाजिक परिवर्तन के कारण राजा तथा प्रजा के सम्मुख लेख खुदवाने का नवीन उद्देश आया। राजाज्ञा के प्रसार के लिए लेख नही खुदवाये गये किन्तु दान तथा धार्मिक वृतान्त लिखने की परिपाटी चल निकली। यही कारण है कि शिला खण्डो पर प्रशस्ति न खुदवा कर अन्य आधार स्तम्भ अथवा ताम्रपत्र का प्रयोग होने लगा। दूसरे शब्दो मे यह कहा जा सकता है कि प्रस्तर पर प्रशस्ति खुदवाने की विशेषता पूर्व मध्य युग मे नही पाई जाती।

शिलाखण्ड के पश्चात् प्रस्तर का दूसरा रूप स्तम्भ हैं जिस पर लेख लिखवाने की प्रथा ईसा पूर्व सदियो से भारत में चल पडी। स्तम्भों के वर्तमान स्थान

स्तम्भ

से बहुधा लोगों में भ्रम हो जाता है कि स्तम्भ जहाँ पर खड़े हैं वहीं पर आरम्भ से स्थित हैं। परन्तु सभी के लिए यह कथन उचित नहीं है। मुसलमान बादशाहों ने उन्हें स्थानान्तरित भी किया है। जैसे प्रयाग के किले में खड़ा स्तम्भ (जिस पर अशोक तथा समुद्रगुप्त का लेख खुदे हैं।) कौशाम्बी से तथा दिल्ली में फिरोजशाह कोटला पर स्थित अशोक स्तम्भ अम्बाला या मेरठ से लाया गया था। किन्तु आज भी ऐसे स्तम्भ हैं जो मूल स्थान पर खड़े हैं। जैसे सारनाथ तथा लौरिया के स्तम्भ। अशोक के चौदह प्रधान शिलालेखों के बाद सात स्तम्भ लेखों की गणना होती है जिनमें रुपनाथ लौरिया दिल्ली स्तम्भों का नाम लिया जा सकता है। इसके अतिरिक्त साँची सारनाथ तथा कौशाम्बी के स्तम्भ लेख द्वितीय श्रेणी में रक्खे जाते हैं। स्तम्भों पर लेख खुदवाने का कारण यह था कि वहां शिला खण्ड उपलब्ध नहीं है उस स्थान पर राजाज्ञा की घोषणा स्तम्भ लेख द्वारा की जाती थी। रुपनाथ (मध्य प्रदेश) सारनाथ (उत्तर प्रदेश) तथा लौरिया (चम्पारन बिहार) आदि स्थानों में किसी प्रकार का प्रस्तर खण्ड अथवा पर्वत श्रेणी न होने के कारण अशोक ने स्तम्भों पर धर्म लेख खुदवाये थे। ये सभी स्थान उसके राज्य सीमा में स्थित हैं। ईसा पूर्व दूसरी सदी में यूनानी राजदूत हेलियोडोरस ने भी अपनी धार्मिक भावना को व्यक्त करने के लिये भिलसा (प्राचीन विदिशा) में स्तम्भ पर लेख खुदवाया था। यह आज भी मूलस्थान को सुशोभित कर रहा है और खम्भा बाबा के नाम से प्रसिद्ध है।

गुप्त राजाओं ने भी प्रशस्ति खुदवा कर विजय का वर्णन किया था। सर्व प्रथम कवि हरिषेण ने समुद्रगुप्त के दिग्विजय का विवरण प्रयागस्तम्भ पर उत्कीर्ण किया जिसमें सम्राट् के सम्पूर्ण विजय का वर्णन है। यह लेख अशोक के कौशाम्बी स्तम्भ पर निचले भाग में खुदा है। उसके वंशज प्रथम कुमार गुप्त तथा स्कन्द गुप्त ने स्तम्भ पर लेख खुदवा कर गुप्त वंश की कीर्ति को प्रसारित किया था। स्कन्द का भितरी वाला लेख शासक के विजय व हूणों के पराजय का विस्तृत विवरण उपस्थित करता है। उसके पश्चात् बुधगुप्त तथा भानु गुप्त के स्तम्भ लेख महत्वपूर्ण माने जाते हैं। प्रस्तर के अतिरिक्त द्वितीय चन्द्रगुप्त ने लोहे का स्तम्भ तैयार कराया तथा लेख अंकित कराया था। यह संसार का एक अद्वितीय धातु स्तम्भ है जो दिल्ली के समीप मेहरौली में कई सौ वर्षों से खड़ा है। छठी सदी का यशोधर्मन का मंदसोर स्तम्भ उस शासक के बल तथा विजय की कथा सुनाता है। इस तरह भारत के प्राचीन शासक गण अपनी कीर्ति कथा के विस्तार के लिए स्तम्भों पर लेख उत्कीर्ण कराते थे।

इस भावना का बडा ही सुन्दर वर्णन समुद्रगुप्त के स्तम्भ लेख मे पाया जाता है —कीर्तिमिति स्त्रिदशपति भवन गमनावास ललितसुख विचरणामाक्षाण इव भुवो वाहुरयमुच्छ्रित स्तम्भ । भाव यह है कि सारी पृथ्वी के विजय से जो कीर्ति मिलती है उसे स्वर्ग तक पहुचाने के लिए ऊचा स्तम्भ पृथ्वी के बाहु के समान है।

मध्यकाल मे भी यत्र तत्र स्तम्भ खडा करने का वर्णन मिलता है। परन्तु उन पर लेख खुदवाने का विशेष महत्व नही समझा जाता था।

भारतवर्ष मे ईसवी सन् के आरम्भ से महायान शाखा में भक्ति का समावेश हुआ जिसके कारण प्रतिमाओ का निर्माण होने लगा। यो तो साहित्यिक

प्रतिमायें

आधार पर मूर्तियो के निर्माण का प्राचीनतम प्रमाण मिलते हैं परन्तु उतने पुराने उदाहरण नही मिले हैं। भागवतधर्म ने जब बौद्धमत को प्रभावित किया, तो पूजा के निमित्त बुद्ध की मूर्ति तैयार की गई। प्रस्तर के इस तीसरे रूप (प्रतिमा) पर भी लेख अकित किये जाने लगे। जो व्यक्ति उसका दान करता था या जिस शासक के समय में मूर्ति बनी, उस विषय का विवरण प्रतिमा-लेख मे पाया जाता है। अधिकतर प्रतिमाओ के आधार-शिला पर लेख उत्कीर्ण किये जाते थे। कभी उनके पृष्ठ भाग पर भी लेख मिलते हैं। इस प्रसग मे मौर्यकाल पूर्व पटना तथा पारखम यक्ष प्रतिमाओ का नाम लिया जा सकता है। मध्ययुग की कुछ सूर्य मूर्ति के पृष्ठ भाग पर उत्कीर्ण लेख पाये गये हैं। पूर्व मध्ययुग (७००-१२०० ई०) की बौद्ध प्रतिमाओं के सिरे भाग पर विशिष्ट लेख (निम्न पद) उत्कीर्ण किया जाता था—

यो धर्म्मा हेतु प्रभवा, हेतु तेषा तथागतोह्यवदत्
अवद्च्च यो निरोधो एव वादी महाश्चमण

ईसवी सन् की पहली सदी मे बोधगया मे विशाल बुद्ध मूर्ति तथा मथुरा के अनेक प्रतिमाओं के आधार शिला पर लेख खुदे मिले हैं। मथुरा से इस प्रकार का बौद्ध तथा जैन प्रतिमा लेख पर्याप्त सख्या मे उपलब्ध हुए हैं। उनमे अधिकतर कुषाणवशी लेख हैं और शक सम्वत् मे तिथि भी उल्लिखित है। सारनाथ से एक विशाल बोधिसत्व प्रतिमा मिली है जिस पर कनिष्क के महाक्षत्रप (राज्यपाल) खरपल्लाना द्वार लेख खुदवाया गया था। हुविष्क के समय मे बौद्ध तथा जैन प्रतिमाऐं अधिकतर लेख के आधार थी। उनसे कुषाण इतिहास पर प्रकाश पडता है। मथुरा के क्षत्रप शासको ने भी मूर्तियो पर लेख खुदवाये थे। यह क्रम बढ़ता ही गया। गुप्त शासको ने भी कुछ मूर्तियो पर लेख

खुदवाया था जिसमें मनकुमार की बौद्ध प्रतिमा प्रसिद्ध है। करमदण्डा के शिवलिङ्ग पर भी गुप्त लेख मिला है।

पिछले गुप्त नरेशों में द्वितीय कुमार गुप्त बुधगुप्त तथा आदित्यसेन ने क्रमशः बुद्ध प्रतिमा तथा सूर्य मूर्ति के आधार प्रस्तर पर लेख अंकित कराया था। मध्य प्रदेश के एरण नामक स्थान पर वराह भगवान् की विशालकाय मूर्ति है जिस पर हूण राजा तोरमाण के समय की प्रशस्ति है। इस तरह जन प्रतिमाओं और आयागपट्ट पर लेख पाये जाते हैं। कसिया के महावीर निर्वाण मूर्ति पर भी लेख खुदा है। यद्यपि कुछ लेखों का कोई ऐतिहासिक महत्व नहीं है किन्तु इससे पता चलता है कि मूर्तियों के आधार शिला पर कुछ लेख उत्कीर्ण किये जाते थे। धातु प्रतिमाओं पर उस अनुपात में कम लेख अंकित किये जाते थे (धातु मूर्तियाँ लेख रहित नहीं होती थीं)। उन प्रतिमाओं का भारतीय कला के इतिहास में विशेष स्थान है और उन पर लिखित लेखों से इतिहास की जानकारी में भी सहायता मिलती है।

प्राचीन समय में बुद्ध के शरीर अवशेष पर अशोक ने असंख्य स्तूप बनवाया था जिसका उल्लेख चीनी यात्रियों ने किया है। किसी पात्र में फूल (अवशेष) रख दिये जाते और उस पर अण्डाकार या अर्द्ध वृत्ताकार ढाँचा तैयार किया जाता था जो स्तूप के नाम से प्रसिद्ध है। उस स्तूप के बाहर चारों तरफ घेरा (वेष्टनी) तैयार किया जाता जिसमें द्वार (तोरण) भी बने रहते थे। उसी वेष्टनी के स्तम्भ या सूची पर लेख उत्कीर्ण मिलते हैं। तोरण भी लेखों के आधार थे भारहुत अमरावती तथा साँची की वेष्टनी इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं।

स्तूप

स्तूप के भी भीतर फूल (अवशेष) सोने या कीमती पत्थर के पात्र में रखा जाता तथा उस फूल-पात्र को प्रस्तर के बाक्स में रखते थे। कभी उस पत्थर के पात्र के ढक्कन पर भी लेख मिलता है। ऐसे पात्रों पर उपलब्ध लेखों में पीपरावा [बस्ती जनपद प्रदेश] का पात्र-लेख सबसे पुराना है जिस पर अशोक से पूर्व लिपि में लेख अंकित है। साँची के द्वितीय स्तूप के ऊपरी भाग से एक पात्र मिला था जिसमें अवशेष रखा था। पात्र पर म अक्षर अंकित था जिससे विद्वान् यह अनुमान लगाते हैं कि यह सारिपुत्र के नाम का संक्षिप्तीकरण है। अन्य पात्र लेख से बुद्ध के प्रधान शिष्य मोग्गलान का भी नाम मिला है। इससे प्रकट होता है कि यह स्तूप उन दोनों शिष्यों के स्मारक स्वरूप (अवशेष के पात्र) तैयार किया गया था। उन

अवशेष-पात्र

पश्चिमी प्रात के वजीर रियासत मे मिलिन्द के समय का एक पात्र लेख प्राप्त हुआ है जिसके अन्दर और ढक्कन के दोनो तरफ खरोष्ठी मे लेख खुदा है। (ए० इ० २४ पृ० ७) अफगानिस्तान के बीमरान स्तूप मे भी एक लेख उपलब्ध हुआ है जो कनिष्क के शासन-काल का है। मथुरा मे भी अवशेष पात्र मिले है जिन पर लेख उत्कीर्ण है। इस तरह स्तूप से सम्बन्धित पात्र भी हमे बहुत सी बातो का ज्ञान कराते है।

स्तूप की वेष्टनी तथा तोरण पर भी लेख खुदे मिले है। साची के दक्षिण तोरण पर सातवाहन राजा शातकर्णी का नाम है। इस स्थान की वेष्टनी पर विभिन्न व्यक्तियो तथा व्यापारियो के नाम खुदे है जिन्होने उसे दान मे दिया था तथा प्रत्येक मे 'दानम्' शब्द इसे प्रमाणित करता है। साची के अतिरिक्त भारहुत की वेष्टनी पर कई जातक का नाम तथा उसका चित्रण मिला है। इस प्रसग मे यह कहा जा सकता है कि वेष्टनी पर बौद्ध कथानको तथा ऐतिहासिक घटनाओ का जितना प्रदर्शन किया गया है, उन सबका ज्ञान भारहुत वेष्टनी पर अकित लेखो से हो जाता है। सातो मानुषी बुद्ध के नाम वही से मिलता है। उदाहरण के लिए "भगवतो विपसिनो बोधि" अथवा "भगवतो शकमुनिनो बोधो" प्रस्तर पर प्रदर्शन करते समय उस जातक के उल्लेख से लोगो की विशिष्ट जानकारी हो जाती है। बुद्ध का जन्म, ज्ञान, महाकपि जातक, यक्ष, यक्षिणी के नाम आदि उसी स्थान के अकित पक्ति सेस्पष्ट हो जाता है। पूरब के तोरण पर खुदा यह "सुगाना राज्ये रओ गागीपुतस कारित तोरणम्" लेख घोषित करता है कि भारहुत की वेष्टनी शुग काल (इसवी पूर्व द्वितीय सदी) मे तैयार की गई थी। वही से श्रावस्ती के जेतवन और अनाथ पीडक सेठ का नाम ज्ञात हो सका है। अमरावती तथा मथुरा मे इस तरह के अनेक स्तूपो के भग्नावशेष निकले है। मथुरा के सिंह सिरे के लेख से पता चलता है कि कुषाण के पश्चात् उत्तर पश्चिम भारत की दूसरी शक्ति ने मथुरा पर अस्थायी रूप से अधिकार कर लिया था। उसके प्रातपति रजुवल और सोडास शासन कर रहे थे। इस प्रकार पात्र तथा वेष्टनी या तोरण पर उल्लिखित लेखो के सविस्तृत अध्ययन से बहुत से ऐतिहासिक तथ्यो का पता लगता है।

मद्रास प्रान्त के गटूर जिले मे नागार्जुनी पर्वत के समीप स्तूप के अवशेष मिले है जिन पर वीरपुरुषदत्त (तीसरी सदी) के कई लेख खुदे है जिनमे वीरपुरुषदत्त द्वारा अग्निहोत्र, अग्निष्टोम, वाजपेय तथा अश्वमेध करने का विवरण पाया जाता है यद्यपि वह लेख 'नमो भगवते बुधस' से प्रारम्भ होता है। यह लेख शासक के सहिष्णुता को प्रमाणित करते हैं।

भारतवर्ष में बौद्ध धर्म के अभ्युदय के साथ भिक्षुगण भी घर बार छोड़कर विहार में निवास करने लगे। उस कार्य के लिये ऐसा स्थान चुना गया जो नगर के समीप हो। भिक्षु प्रतिदिन भिक्षा माग कर सन्ध्या समय विहार में लौट आते। इसलिये भिक्षुओं के रहन के लिये नगर से ५ से ८ मील की दूरी पर पर्वतों में गुफायें तयार होने लगीं। गुहा या गुफा की संख्या सह्याद्रि (पश्चिमी घाट) में अधिक है। पश्चिमी भारत में प्राय बौद्ध गुफायें हैं। नासिक इलोरा अजंता भाजा कार्ले कन्हेरी आदि गुहा ऐसे स्थान हैं जहां भिक्षु निवास करते थे। सबसे प्राचीन बराबर पर्वत (गया बिहार) में भी कुछ गुफायें हैं। उड़ीसा में (यानी पूर्वी भारत) में जैन गुफाये हैं। जैसे मंचपुरी रानी गुम्फा आदि। भारत के पर्वतों में गुहा खोदने की प्रथा प्राचीन है। ऐतिहासिक काल क्रमानुसार सब से प्राचीन बराबर की गुफाओं का वर्णन आता है जो मौर्य काल में तयार की गई थीं। उनमें अशोक के १२वें तथा १९वें वर्ष का लेख खुदा है। उस सुन्दर गुहा को आजीविक साधुओं को दान में दिया गया था—लाजिना पियदसिना दुवाडस वसाभिसितेना इयं निगोह कुभा दिना आजीविकेहि।

गुफा

गुहा खोदने का क्रम चलता रहा। उड़ीसा में भुवनेश्वर के समीप हाथी-गुम्फा मे राजा खारवेल की एक लम्बी प्रशस्ति मिली है जिसमें कलिंग राजा के जीवनघटनाओं का पता चलता है। ईसवी सन् की दूसरी सदी में नासिक जुनार, कार्ले की गुफाओं में क्षत्रप नहपान के जामाता उषवदत्त के कई महत्त्वपूर्ण लेख उत्कीर्ण मिले हैं। उसमें खोदने वाले व्यक्ति का नाम नहीं मिलता किन्तु लेख में दान का वर्णन मिलता है और उत्कीर्ण तिथि के आधार पर नहपान का काल स्थिर किया जाता है। नासिक गुहा लेखों से शक-सातवाहन संघर्ष के इतिहास पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। राजनीतिक सामाजिक तथा आर्थिक दशा का परिज्ञान हो जाता है। शक लोग किस तरह भारतीय संस्कृति को अपना रहे थे यह उसके अध्ययन से प्रकट हो जाता है। उन गुफाओं का लेख अत्यन्त महत्व-पूर्ण है।

गुप्तकाल मे गुहा-निर्माण की कला उन्नत अवस्था को प्राप्त कर चुकी थी। द्वितीय चन्द्रगुप्त की उदयगिरि गुहा अत्यन्त प्रसिद्ध है। यहीं उसका बयासिवें (८२) वर्ष का लेख भी खुदा है। उस काल में अजंता में कई गुहाये तैयार की गईं। यथागत उनमे सुन्दर सामाजिक चित्र तथा बुद्ध के जन्म की कहानियाँ भी (जातक) चित्रित हैं। इसी सदी के वाकाटक राजा हरिषेण का लेख भी वहीं खुदा हुआ है। ग्वालियर के समीप बाघ की गुफाये सुन्दर

चित्रकला से सम्बन्धित हैं। नासिक तथा कनहेरी के लेख ऐतिहासिक हैं। इलोरा की प्रसिद्ध गुफा (कैलाशनाथ मन्दिर) को राष्ट्रकूट नरेश कृष्ण प्रथम ने तैयार किया था जो भारत की अद्वितीय गुहा है। गुहा लेख तो ऐतिहासिक घटनाओ को बतलाते ही हैं किन्तु धार्मिक जगत् की भी अनेक बाते ज्ञात हो जाती हैं। पश्चिमी सह्याद्रि की बौद्ध गुफाओ तथा पूरब मे उदयगिरि (उडीसा) की जैन गुफाओ के सदृश ब्राह्मण धर्मावलम्बियो ने भी इसका अनुकरण किया। गुप्त सम्राट् चन्द्रगुप्त द्वितीय की उदयगिरि (भिलसा के समीप) की वैष्णव गुफा, इलोरा तथा एलेफेन्टा की शैव गुहाएँ और दक्षिण मे महाबलिपुरम् गुफाएँ अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। तात्पर्य यह है कि गुफा मे ऐतिहासिक लेख खोदने के बाद बौद्ध कलाकारो ने चित्र के कारण उनकी सुन्दरता बढा दी। यहाँ तक कि अजता तथा बाग की ससार प्रसिद्ध गुफाएँ उत्कृष्ट चित्रो के कारण अद्वितीय हैं।

ताम्रपट्टिका

ताम्रपट्टिका पर लेख अकित करने का विशेष कारण था। पूर्व मध्य युग (७००-१२०० ई०) मे सामाजिक परिस्थिति मे परिवर्तन होने लगा। बौद्ध धर्म मे वज्रयान के कारण नाना भाति के प्रस्तर तथा धातु प्रतिमायें पूजानिमित्त तैयार होने लगी। वहा धर्म प्रचार के लिये लेख खुदवाना महत्वपूर्ण कार्य न रहा पर मूर्तियो के आधार शिला पर दानकर्त्ता का नाम आवश्यक समझा गया। हिन्दूमत मे पाचरात्र के अनुसार चर्या और क्रिया प्रधान धार्मिक कार्य थे। इस कारण इन दोनो कार्यों के लिये दान का विशेष महत्व था। मदिर निर्माण या पूजा व्यय के लिए धन की आवश्यकता थी। अतएव दान देकर ताम्रपट्टिका पर भूमि का पूर्ण विवरण भी लिखना जरूरी हो गया। दानपत्र (ताम्रपत्र) लिख कर दानग्राही को दे दिया जाता जिसे वह सुरक्षित रखता था। उस दशा मे दान लिखने का कार्य ताम्रपट्टिका के अतिरिक्त शिला पर सम्भव नही था। दान लेने वाला सरलता से ताम्रपत्र का वर्षो तक सग्रह रखता जिसके कारण उनके वशज उस भूमि या धन का उपयोग करते रहते। प्राचीन भारत के अनेक ताम्रपत्र खोज से मिले हैं जिनके अध्ययन से ज्ञान-राशि मिली है।

यद्यपि प्रस्तर के बाद धातु की वस्तुओ का प्रयोग लेख लिखने के लिये हुआ था किन्तु यह परिपाटी अत्यन्त प्राचीन नही है। ईसवी सन् के बाद से ही ताम्रपट्टिका का प्रयोग होने लगा। सहगौरा का ताम्रपत्र (मौर्यकालीन) इसका अपवाद है। शक तथा पह्लवयुग से पट्टिका का प्रयोग तक्षशिला के लेख (२१ ई०) कलवान (७७ ई०) तथा स्यूविहार लेख के लिये (८९ ई०)

भारतवर्ष में बौद्ध धर्म के अभ्युदय के साथ भिक्षुगण भी घर बार छोड़कर विहार में निवास करने लगे। उस कार्य के लिये ऐसा स्थान चुना गया जो नगर के समीप हो। भिक्षु प्रतिदिन भिक्षा मांग कर सन्ध्या समय विहार में लौट जाते। इसलिये भिक्षुओं के रहने के लिये नगर से ५ से ८ मील की दूरी पर पर्वतों में गुफायें तयार होने लगीं। गुहा या गुफा की संख्या सह्याद्रि (पश्चिमी घाट) में अधिक है। पश्चिमी भारत में प्रायः बौद्ध गुफायें हैं। नासिक एलौरा अजंता भाजा कार्ले कन्हेरी आदि गुहा ऐसे स्थान हैं जहाँ भिक्षु निवास करते थे। सबसे प्राचीन बराबर पर्वत (गया बिहार) में भी कुछ गुफायें हैं। उड़ीसा में (यानी पूर्वी भारत) में जैन गुफायें हैं। जैसे मंचपुरी रानी गुम्फा आदि। भारत के पर्वतों में गुहा खोदने की प्रथा प्राचीन है। ऐतिहासिक काल क्रमानुसार सब से प्राचीन बराबर की गुफाओं का वर्णन आता है जो मौर्य काल में तैयार की गई थीं। उनमें अशोक के १२वें तथा १९वें वर्ष का लेख खुदा है। उस सुन्दर गुहा को आजीविक साधुओं को दान में दिया गया था—लाजिना पियदसिना दुवाडस वसाभिसितेना इयं निगोह कुभा दिना आजीविकेहि।

गुहा खोदने का क्रम चलता रहा। उड़ीसा में भुवनेश्वर के समीप हाथी-गुम्फा मे राजा खारवेल की एक लम्बी प्रशस्ति मिली है जिसमें कलिंग राजा के जीवनघटनाओं का पता चलता है। ईसवी सन् की दूसरी सदी में नासिक, जुनार, कार्ले की गुफाओं में क्षत्रप नहपान के जामाता उषवदत्त के कई महत्त्वपूर्ण लेख उत्कीर्ण मिले हैं। उनमें खोदने वाले व्यक्ति का नाम नहीं मिलता किन्तु लेख में दान का वर्णन मिलता है और उत्कीर्ण तिथि के आधार पर नहपान का काल स्थिर किया जाता है। नासिक गुहा लेखों से शक-सातवाहन संघर्ष के इतिहास पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। राजनीतिक सामाजिक तथा आर्थिक दशा का परिज्ञान हो जाता है। शक लोग किस तरह भारतीय संस्कृति को अपना रहे थे यह उसके अध्ययन से प्रकट हो जाता है। उन गुफाओं का लेख अत्यन्त महत्त्व पूर्ण है।

गुप्तकाल मे गुहा-निर्माण की कला उन्नत अवस्था को प्राप्त कर चुकी थी। द्वितीय चन्द्रगुप्त की उदयगिरि गुहा अत्यन्त प्रसिद्ध है। वहीं उसका बयासिवें (८२) वर्ष का लेख भी खुदा है। उस काल में अजंता में कई गुहायें तयार की गईं। प्रधानतः उनमें सुन्दर सामाजिक चित्र तथा बुद्ध के जन्म की कहानियाँ भी (जातक) चित्रित हैं। छठी सदी के वाकाटक राजा हरिषेण का लेख भी वहीं खुदा हुआ है। ग्वालियर के समीप बाग की गुफायें मुख्यतः

लेख दान का विषय, दान कर्ता, दान ग्राही, भूमिकर आदि विषयो पर प्रकाश-डालते हैं। इसी प्रकार अन्य ताम्रपत्रो मे अनेक राजाओ के विषय मे जानकारी की जाती है। यदि सम्पूर्ण दानपत्र को विषय वार विभाजन किया जाए तो निम्नप्रकार की बाते ज्ञात होती हैं—

(१) शासक का वश परिचय जिसके समय मे ताम्रपत्र लिखा गया। उस राजा का सक्षिप्त वृतान्त, विजय आदि।

(२) दान लेने वाले व्यक्ति का वश, वैदिक शाखा तथा गोत्र का वर्णन।

(३) अग्रहार भूमि, उसका माप तथा सीमा।

(४) विभिन्न कर की सूची। दान भूमि मे राजकीय कर सग्रह दानग्राही करता था।

(५) राज कर्मचारियो की लम्बी सूची मिलती है जिन्हें अग्रहार भूमि की सूचना दी जाती थी।

(६) दान का अवसर (विजय, तीर्थ, ग्रहण तथा धार्मिक कार्य)

(७) मगलमय तथा श्राप युक्त पद। दान कर्ता के उत्तराधिकारी श्राप के भय से उस दान भूमि को वापस नही लें, इसलिए अनेक धर्म श्लोक अत मे उद्धृत किए जाते थे।

भारतीय इतिहास मे सिक्को पर लेख खुदवाने का कार्य यूनानी शासको ने उत्तर पश्चिम भारत मे प्रारम्भ किया। भारतीय यूनानी इतिहास की जानकारी तथा शासको का नाम मुद्रा-लेख से ही होता है।

सिक्के

उन पर खुदे लेख से दियोदोतस, यूथिडिमस दिमित, अपलदतस या मिलिन्द आदि के नाम जाने जाते हैं। जो इतिहास साहित्यक आधार पर ज्ञात है उसकी पुष्टि मुद्रालेख से हो जाती है। प्राचीन भारत के सघ सिक्को पर प्रजातत्रका नाम—मालवा, आर्जूनायन या यौधेय आदि खुदे मिले हैं।

मालवाना जय । यौधेयगणस्य जय आदि

उससे लेखन-शैली तथा तिथियो का ज्ञान होता है। यूनानी सिक्को के अनुकरण पर पह्लव तथा कुषाण राजाओ ने मुद्रा पर लेख अकित कराया। कुषाण नरेशो ने पूर्व प्रचलित चाँदी सिक्को को हटाकर स्वर्ण-मुद्रा तैयार किया जिससे पता चलता है कि उनका कार्य अन्तर्राष्ट्रीय नीति पर आधारित था। साइबेरिया से सोना मगाकर कुषाण राजाओ ने उत्तर प्रदेश से मध्य एसिया पर्यन्त भू भाग पर स्वर्ण मुद्रा का प्रचलन किया। वीम कदफिस सर्व प्रथम नरेश था जिसकी स्वर्ण मुद्राए, आर्थिक तथा धार्मिक इतिहास पर प्रकाश डालती हैं। मुद्रा-लेख 'मह-

पाये जाते हैं।

ताम्रपत्रों के अध्ययन से कई विषयों पर प्रकाश पड़ता है। इसमें राजनीति के साथ कई प्रकार के सामाजिक अथवा धार्मिक उल्लेख पाये जाते हैं। गुप्त शासन काल में इसका अधिक प्रचार हुआ। अधिकतर ताम्रपत्रों पर दान का विवरण लिखकर दानग्राही को दे दिया जाता था। कभी-कभी राजा विजय के स्मारक में दान पत्र लिखकर ब्राह्मण को दे दिया करते। प्राचीन ताम्रपत्रों का उद्देश राजनीतिक न था। प्रसंग वश उसमें शासन सम्बन्धी बातों का समावेश मिलता है। ताम्रपत्रों में वर्णित दान का उल्लेख यह बतलाता है कि अमुक स्थान दान कर्ता के राज्य सीमा में था।

प्रथम कुमार गुप्त के दामोदरपुर (उत्तरी बंगाल) ताम्रपत्र में जमीन बिक्री का वृतान्त पाया जाता है। स्कन्द गुप्त का इन्दौर वाला ताम्रपत्र गुप्त काल का महत्वपूर्ण शासन समझा जाता है। उसके बाद शासन करने वाले हस्तिन तथा संक्षोभ के अनेक ताम्रपत्र मध्यभारत के खोह नामक स्थान से पाये गये हैं। उनमें सब प्रकार के कर (टक्स) से मुक्त भूमि के दान का वर्णन मिलता है। छठीं सदी में गुप्त राजाओं से उत्तरी बंगाल में कई ताम्रपत्र मिलवाया जिनका बहुत ही ऐतिहासिक महत्व है। दामोदरपुर के ताम्रपत्र ग्राम तथा विषय (जिला) सम्बन्धी शासन पर प्रकाश डालते हैं। ग्राम सभा को भूमि विक्रय का अधिकार था। सभासदों का चुनाव प्रत्येक पाँचवें वर्ष होता था। इस तरह की बातों की जानकारी दामोदरपुर व फरीदपुर के ताम्रपत्रों के अध्ययन से हो जाती है। हर्ष वर्धन के समय में बांसखेरा तथा मधुबन नामक ताम्रपत्र उत्कीर्ण किये गये थे। इनसे उस राजा के जीवन घटनाओं का परिज्ञान हो जाता है। सबसे विशेष बात यह है कि उन ताम्रपत्रों में तिथियों का उल्लेख भी मिलता है। गुप्त काल में गुप्त सम्वत् तथा हर्ष के ताम्रपत्रों में हर्ष सम्वत् का प्रयोग है। संक्षोभ के ताम्रपत्र में 'गुप्त नृप राज्यभुक्तौ' का उल्लेख यह बतलाता है कि बुंदेलखंड के शासक गुप्तों के अधीन थे। बंगाल के राजा देवपाल का नालंदा ताम्रपत्र-लेख अन्तर्राष्ट्रीय ढंग का लेख माना जाता है। उसमें सुमात्रा के राजा बालपुत्रदेव द्वारा पालवंशी देवपाल से नालंदा में निर्मित विहार के लिए भूमिदान की प्रार्थना की गई है। मध्ययुग में धार्मिक भावना की प्रगति के कारण छोटे-छोटे राजा भी ताम्रपट्टिकाओं पर दान का उल्लेख खुदवाते रहे। राजपूत नरेश तथा दक्षिण के राजाओं ने अधिकाधिक लेख ताम्र पत्रों पर ही खुदवाये थे। मध्ययुग में जितने शासन (ताम्रपत्र) मिले हैं उनमें गहड़वाल नरेश गोविन्दचन्द्र के ताम्रपत्र संख्या में अधिक हैं। इन पट्टियों पर खुदे

लेख दान का विषय, दान कर्ता, दान ग्राही, भूमिकर आदि विषयों पर प्रकाश डालते हैं। इसी प्रकार अन्य ताम्रपत्रों में अनेक राजाओं के विषय में जानकारी की जाती है। यदि सम्पूर्ण दानपत्र को विषय वार विभाजन किया जाय तो निम्नप्रकार की बातें ज्ञात होती हैं—

(१) शासक का वंश परिचय जिसके समय मे ताम्रपत्र लिखा गया। उस राजा का संक्षिप्त वृत्तान्त, विजय आदि।

(२) दान लेने वाले व्यक्ति का वंश, वैदिक शाखा तथा गोत्र का वर्णन।

(३) अग्रहार भूमि, उसका माप तथा सीमा।

(४) विभिन्न कर की सूची। दान भूमि मे राजकीय कर संग्रह दानग्राही करता था।

(५) राज कर्मचारियों की लम्बी सूची मिलती है जिन्हे अग्रहार भूमि की सूचना दी जाती थी।

(६) दान का अवसर (विजय, तीर्थ, ग्रहण तथा धार्मिक कार्य)

(७) मंगलमय तथा श्राप युक्त पद। दान कर्ता के उत्तराधिकारी श्राप के भय से उस दान भूमि को वापस नही लें, इसलिए अनेक धर्म श्लोक अंत मे उद्धृत किए जाते थे।

भारतीय इतिहास मे सिक्कों पर लेख खुदवाने का कार्य यूनानी शासकों ने उत्तर पश्चिम भारत मे प्रारम्भ किया। भारतीय यूनानी इतिहास की जानकारी तथा शासकों का नाम मुद्रा-लेख से ही होता है। उन पर खुदे लेख से दियोदोतस, यूथिडिमस दिमित, अपलदतस या मिलिन्द आदि के नाम जाने जाते हैं। जो इतिहास साहित्यक आधार पर ज्ञात है उसकी पुष्टि मुद्रालेख से हो जाती है। प्राचीन भारत के सब सिक्कों पर प्रजातंत्रका नाम—मालवा, आर्जूनायन या यौधेय आदि खुदे मिले हैं।

सिक्के

मालवाना जय । यौधेयगणस्य जय आदि

उससे लेखन-शैली तथा तिथियों का ज्ञान होता है। यूनानी सिक्कों के अनुकरण पर पह्लव तथा कुषाण राजाओं ने मुद्रा पर लेख अंकित कराया। कुषाण नरेशों ने पूर्व प्रचलित चाँदी सिक्कों को हटाकर स्वर्ण-मुद्रा तैयार किया जिससे पता चलता है कि उनका कार्य अन्तर्राष्ट्रीय नीति पर आधारित था। साइबेरिया से सोना मंगाकर कुषाण राजाओं ने उत्तर प्रदेश से मध्य एसिया पर्यन्त भू भाग पर स्वर्ण मुद्रा का प्रचलन किया। वीम कदफिस सर्व प्रथम नरेश था जिसकी स्वर्ण मुद्राएं, आर्थिक तथा धार्मिक इतिहास पर प्रकाश डालती है। मुद्रा-लेख 'मह-

रजस रजतिरजस सर्वलोग ईश्वरस महीश्वरस विम कदफिसस त्रतर" यह बतलाता है कि वह शिव का पुजारी था। यह धार्मिक परम्परा कुषाण राजा वासुदेव तक चलती रही। पहलव लेख बतलाते हैं कि राजा मोग ने इसी पदवी धारण किया था (रजतिरजस महतस) उस पदवी को कुषाण राजाओं ने भी प्रचलित किया था। कुषाण राजा कनिष्क के मुद्रा लेख से पता चलता है कि बौद्ध शासक ने हिन्दू देवता (शिव) यूनानी देवता (मरदोचा आदि) ईरानी देवता (सूर्य आदि) तथा बौद्ध देवता (बुद्ध) को सहिष्णुता के कारण ही सिक्कों पर स्थान दिया था।

उसी के अधीन गवर्नर पश्चिमी भारत में महाक्षत्रप पदवी धारण कर राज्य करते रहे। वास्तविकता तो यह है कि पश्चिमी भारत के शक जाति का पूरा इतिहास मुद्रा लेखों से ज्ञात हो जाता है। उनके लेखों में पिता पुत्र या शासक तथा उसके उत्तराधिकारी के नाम अंकित रहते हैं—

(१) राज्ञो महाक्षत्रपस दामजदस पुत्रस
राज्ञो महाक्षत्रप रुद्रसिंहस

(२) राज्ञो क्षहरातस नहपानस

पश्चिमी भारत तथा उत्तरी भारत में चौथी सदी से गुप्त सम्राटों ने राज्य आरम्भ किया और पिछले कुषाण नरेशों के सिक्कों के अनुकरण पर अपनी मुद्रा नीति स्थिर की। उनके स्वर्ण मुद्राओं पर राजा के नाम के साथ संस्कृत भाषा में छंदोबद्ध लेख खुदा है। सम्भवतः उस समय संस्कृत राजभाषा थी। संस्कृत साहित्य के उपगीति व पृथ्वी आदि छंदों में लेख अंकित कराए गए। राजा के लिए चाँदी के सिक्कों पर 'परम भागवत' की उपाधि मिलती है जिससे उनके वैष्णव मतानुयायी होने का प्रमाण मिलता है। कई घटनाएं उन मुद्रा-लेखों से प्रकट होती हैं—उदाहरणार्थ

(१) समरशतवितत विजयो जितरिपु रजितो दिवं जयति
(२) राजाधिराज पृथिवीमवित्वा दिवं जयत्याहृतवाजिमेध
(३) अप्रतिरथो विजित्य क्षितिं सुचरितैः दिवं जयति

मुद्रा लेखों से समुद्र गुप्त के युद्ध में विजयी होने तथा अश्वमेध यज्ञ करने का परिज्ञान होता है। चन्द्र गुप्त द्वितीय के मुद्रा पर परमभागवतो महाराजाधिराज श्री चन्द्रगुप्त' अंकित है। कुमार गुप्त प्रथम के मुद्रा लेख—(अ) कुमार गुप्तो युधि सिंह विक्रम तथा (ब) भर्ता खड्गत्राता कुमार गुप्तो जयत्यनिशम् राजा के हाथों सिंह तथा गैंडा के मारने की घटना वर्णित करते हैं।

गुप्त वंश के पश्चात् मध्ययुग में विदेशी जाति हूण भी भारत में आकर

भारतीय सस्कृति के उपासक हो गए, जिसकी जानकारी उनके मुद्रा लेख से होती है। हूण राजा मिहिर के सिक्को 'जयतुवृष' उत्कीर्ण है जो उसे शैवमतावलम्बी घोषित करता है। कहने का साराश यह है कि मुद्रा लेख वास्तविक इतिहास के अध्ययन मे सहायता करते हैं।

इस प्रसग मे यह कहना आवश्यक है कि सिको पर खुदे लेख की लिपि भारतीय लिपि के विकास को बतलाती है। यूनानी राजा दिमित, पतलेव, अगुथकल, अपलदतम या मिलिन्द ने उत्तर पश्चिम भारत मे प्रचलित खरोष्ठी का प्रयोग किया था। पश्चिमी भारत मे क्षत्रप शक नरेशो ने ब्राह्मी का प्रयोग किया। प्रजातत्र शासको के सिक्को पर ब्राह्मी अ कित है। गुप्त राजाओ ने गुप्त लिपि को प्रयुक्त किया। मध्ययुग के सिक्को पर नागरी लिपि मे शासको का नाम-श्रीमत् गोविन्द चन्द्र देव, गागेदेव, परिमर्दिदेव, पृथ्वीराजदेव आदि लेख अकित है। सक्षेप मे यह कहा जा सकता है कि मुद्रा पर खुदे लेख भारतीय लिपि के विकास का भी परिज्ञान कराते हैं।

प्रशस्ति लिखने के आभार की सूची मे मुद्रा या मुहरें की गणना विशेष रूप से की जाती है। इन मुहरो को विषय के विचार से कई भागो में विभक्त

मुहरें

किया जा सकता है। धार्मिक मुहरे जिनका सम्बन्ध मदिर या विहार से था। दूसरे विभाग मे राजकीय मुहरो को रखा जा सकता है जिन पर शासक का नाम खुदा रहता था और साधारणतया वे ताम्रपट्टिओ से जुडे रहते थे। तीसरे विभाग मे कर्मचारियो की मुहरें हैं जिन्हें कार्यालय से पत्रव्यवहार मे प्रयोग किया जाता था। कुछ निजी मुहरे भी खुदाई से मिली हैं जिसमे व्यक्तिगत लेख खुदा है। यदि प्रयुक्त सामग्री की दृष्टि से देखा जाय तो पता चलता है कि मुहरो मिट्टी, ताम्र। कास्य, प्रस्तर तथा हाथी दाँत की, बनाई जाती थी। इस तरह की मुहरें भीटा (प्रयाग के समीप उत्तर प्रदेश) से प्राप्त हुई हैं। धातु की मुहरो पर लेख उत्कीर्ण कर किसी देवता को आकृति भी ऊपरी भाग मे तैयार की जाती थी। देवता की प्रतिमा से विभिन्न मतो का परिज्ञान हो जाता है। भीटा की मुहरो पर शिव लिङ्ग त्रिशूल तथा वृषभ की आकृति मिलती है तथा नीचे गुप्त लिपि मे लेख अकित है। नालदा से जो ताम्बे या मिट्टी की धार्मिक मुहरें प्राप्त हुई हैं उन पर बुद्ध की प्रतिमा है। राज वशो मे सम्बन्धित कुछ लेखो के आरम्भ मे जो मुहरें जुडी हैं या निर्मित हैं उनमे भी धर्म का ज्ञान होता है। गुप्त वश के भितरी मुद्रा हर गरुड की आकृति है तथा नीचे कुमार गुप्त प्रथम से द्वितीय कुमार गुप्त तक वश वृक्ष का उल्लेख है। इसमे उसे वैष्णव मत से सम्बन्धित मुद्रा

मानते हैं। पालवंशी नरेश धर्मपाल के खालीमपुर ताम्रपत्र के ऊपरी भाग में बुद्ध का प्रतीक (धर्मचक्र तथा दो हिरन) तथा राजा का नाम श्री धर्मपाल देवस्य खुदा है। देवपाल के नालन्दा ताम्रपत्र में भी ऐसी ही मुद्रा संलग्न है जो राजा को बौद्ध घोषित करती है। इसी प्रकार सेन वंश में शिव की प्रतिमा (सदाशिव) धर्म मत से सम्बन्ध प्रकट करता है।

पूर्व मध्ययुग से मुहरों का सुन्दर इतिहास क्रमबद्ध रूप में है। प्रत्येक ताम्रपत्र से एक धातु मुद्रा (अंगूठी की तरह) जुड़ी रहती थी। वही उस शासन को प्रमाणित करती थी। यह मुद्राएं राजकीय विभाग में रखी जाती हैं। उन पर कुल देवता या ध्वज का चिह्न अंकित मिलता है। जिन्हें शासक सिक्के या ध्वज पर स्थान देते रहे। मिट्टी मुद्रा सर्व वर्मन मौखरि का असीरगढ़ की मुद्रा तथा हर्षवर्धन की सोनपत वाली मुहर राजकीय श्रेणी में रखी जा सकती है। इस प्रसंग में भीटा से प्राप्त कुछ मुहरों का उल्लेख आवश्यक प्रतीत होता है। यहां से सातवाहन नरेश वासिष्ठी पुत्र सातकर्णी की मुहर मिली है जिससे उस वंश का सम्बन्ध प्रकट होता है (आ स रि १९११ १२ पृ ५१) पांचवीं सदी से मिट्टी की मुहरें वैशाली (बसाढ़) तथा नालंदा में अधिक संख्या में मिली हैं। मिट्टी की मुहर धातु के सांचे से तैयार की जाती जिस पर आकृति तथा लेख दोनों उभर आता था। वास्तविकता तो यह है कि सांचा ही लेख का असली आधार था जिसमें उल्टे रीति से आकृति या लेख उत्कीर्ण किए जाते थे। मृत पिंड पर दबाव डालने से सांचे की सारी कलात्मक नमूना उभर आता। उस कच्ची मिट्टी को आग में पका देते ताकि पक्की मिट्टी की मुहर स्थायी रह सके। नालंदा की ऐसी मुहरें धार्मिक हैं। बुद्ध की प्रतिमा तथा "ये धर्मा हेतु प्रभवा' आदि मंत्र खुदा है। कुछ मुहरें संघ के आचार्य से सम्बन्धित मिली हैं (आ स मे नं ५९) भीटा से प्राप्त मुहरों का विशेष महत्व है। उनमें कुछ पदाधिकारियों के कार्यालय से तथा कुछ निगम (व्यापारिकसंघ) से सम्बन्धित हैं। महासेनापति महादण्डनायक अथवा कुमारामात्याधिकरणस्य लेख खुदे हैं। कुछ पर निगम शब्द का उल्लेख मिलता है। इसी प्रकार वैशाली (मुजफ्फरपुर, बिहार) की मुहरें तत्कालीन शासन पद्धति पर प्रकाश डालती हैं इन पर गुप्त लिपि में कर्मचारियों के कार्यालय तथा श्रेणी (पद) से सम्बन्धित लेख खुदे हैं।

लेख निम्न प्रकार के हैं—

(१) तीरभुक्त्युपरिकाधिकरणस्य
(तीरभुक्ति के राज्यपाल का कार्यालय)

(२) कुमारामात्याधिकरणस्य
(कुमारामात्य के कार्यालय का)
(३) श्रेष्ठि निगमस्य
(श्रेष्ठी के सघ का)
(४) श्रेष्ठी श्री दासस्य
(श्री दास सेठी की मुहर)

इतना ही नही वैशाली के राजकुमार गोविन्द गुप्त तथा रानी ध्रुव देवी (चन्द्र गुप्त द्वितीय की पत्नी) के नाम भी मुहरो मे खुदे मिले है।

भीटा से व्यक्तिगत मुहरें भी प्राप्त हुई हैं जिन पर 'आदित्यस्य', कौसिक-देवस्य, वसुदेवस्य, पुसमितस या विष्णुचन्द्र नामक व्यक्तियो के नाम अकित हैं। इसी प्रकार स्थान से सम्बन्धित 'चित्रग्राम' या 'विछीग्राम' लेख अमुक ग्राम की मुहर कहे जा सकते हैं (आ स रि १९११-१२ ष्ट० ५६८) कुछ दिन हुए काशी के समीप राजघाट की खुदाई मे बहुत सी मुहरे मिली हैं जिनको लिपि के आधार गुप्त कालीन माना गया है। अधिकतर मुहरो पर धार्मिक लेख खुदे हैं। उनके अध्ययन से पता चलता है कि काशी मे शैवमत का कितना अधिक प्रचार था।

इस प्रसग मे प्रागऐतिहासिक युग के नगर मोहेनजोदडो व हरप्पा से प्राप्त मुहरो के सम्बन्ध मे कुछ कहना अप्रासगिक न होगा। आधुनिक समय मे अहम-दाबाद के पास लोथल मे जो खुदाई हो रही है वहा भी वैसी ही मुहरें निकली हैं। वह मुहरें सज्जी की बनती थी और उन पर धातु की नुकीली कील से (Burin) चित्रमय लिपि मे कुछ खोदा गया है। उन पर गैंडा, हाथी, शेर, बैल, भैंस आदि की आकृतिया हैं। जो कुछ खुदा है वह अभी तक पढा नही जा सका है। सम्भवत ये मुहरें तावीज की तरह पहनी जाती थी। उस लिपि का ज्ञान हो जाने पर यह कहा जा सकेगा कि ईसा पूर्व तीन हजार वर्ष मे उस भाग के लोग कौनसी भाषा जानते थे।

वेदिका

प्राचीन समय मे स्तूप के चारो तरफ वेदिका तैयार की जाती थी ताकि जनता उस पवित्र स्तूप को ससार से पृथक समझे। साची, बोधगया, भारहुत तथा अमरावती की वेदिकाओ का नाम इस प्रसग में लिया जा सकता है। यद्यपि साची की वेदिका सादी है और अन्य सभी खुदी हैं तथापि उन पर अधिक लेख अकित हैं। जिस व्यक्ति ने वेदिका के किसी हिस्से को दान किया था, वहा उसका नाम खुदा है। साची के मुख्य वेदिका पर गुप्त सम्राट् द्वितीय चन्द्रगुप्त का लेख अकित है।

इसी तरह भारहुत में शुंग कालीन लेख मिलता है (सुंगानां राज्ये)। जातक कथाओं तथा यक्ष (मानुषी) और मृग के वृक्ष में अप्सराओं के नाम अंकित हैं। बोधगया की वेदिका पर ईसा पूर्व तिथि में लेख नहीं मिलता परन्तु बाद में उस पर लेख खुदवा दिया गया जिससे बोधगया के इतिहास पर प्रकाश पड़ता है। अमरावती के लेख से पता चलता है कि सातवाहन नरेशों के समय में इसका निर्माण हुआ था। सांची के दक्षिण तोरण पर भी सातकर्णी का नाम मिलता है। इस तरह वेदिकाओं पर उत्कीर्ण लेख इतिहास पर प्रकाश डालते हैं।

आयागपट्ट

यह जैन धर्म से सम्बन्धित एक चार कोना प्रस्तर है जिस पर तीर्थंकर महावीर की मूर्ति तथा अष्ट मांगलिक वस्तुओं की आकृति खुदी रहती है। मथुरा के कंकाली टीला से एक आयागपट्ट मिला है जिस पर अमोहिनी का लेख मिलता है। [अमोहिनिय सहा पुत्रेन पालघोषेन पोठघोषेन धनघोषेन आर्यवती (जन आयागपट्ट) प्रतिमापिता] तीर्थंकर की मूर्ति विशेष महत्वपूर्ण है और उसके पूजा के निमित्त आयागपट्ट का दान किया जाता था। यों तो इस तरह के प्रस्तर पर शुंग तथा पुष्यमित्र का लेख अयोध्या से मिला है परन्तु आयागपट्ट जैन धर्म में पूजा निमित्त तैयार किया जाता था।

ईंट तथा मृत्तिका-पात्र

पुराने समय में मन्दिर तथा प्रतिमा के नीचे कुछ ईंटों पर लेख या अक्षर खोदे जाते थे जिनको कनिंघम ने पता लगाया था। मथुरा संग्रहालय में ईसा-पूर्व पहली सदी के ईंट सुरक्षित हैं जिन पर अक्षर खुदे हैं। ईंट के अतिरिक्त मिट्टी के पात्रों पर पर भी लेख मिलते हैं। कुम्हरार की खुदाई से पात्र के एक हिस्से पर गुप्त लिपि में 'आरोग्य विहारे भिक्षुसंघस्य' लिखा मिला है। इस तरह के ईंट या पात्र पर लेख सदा कम मिलते हैं। भारत में इस तरह लिखने की परिपाटी कम होगी।

लिखन के आधार सम्बन्धी प्रश्न को समाप्त करते यह संकेत करना आवश्यक प्रतीत होता है कि ईसवी सन् के कई सदियों बाद भोजपत्र ताड़पत्र वस्त्र चमड़ा तथा कागज पर पुस्तकें लिखी गईं। ईरानी भाषा में चमड़ा को पुस्तक कहते हैं इसलिए ग्रन्थ को पुस्तक का नाम दिया गया। उड़ीसा में ताड़पत्र पर सूई की नोक से अक्षर खोदे जाते थे और बाद में उस पर स्याही का लेप लगाया जाता। यही कारण है कि लेखन के कार्य से 'लिपि' शब्द की उत्पत्ति हुई। इस प्रश्न का विस्तृत विवरण यहाँ अप्रासंगिक होगा।

अध्याय ४

प्रशस्ति-अंकन के सुअवसर एवं स्थान

प्राचीन भारत के समस्त अभिलेखों के अध्ययन मे यह स्पष्ट हो जाता है कि राजा (शासक) तथा व्यक्ति विशेष द्वारा लेख विभिन्न अवसरो पर उत्कीर्ण किए गए थे। पिछले धर्मशास्त्र ग्रन्थो मे ऐसा ही उल्लेख पाया जाता है। स्मृतिचन्द्रिका के व्यवहार भाग मे "लौकिक राजकीय च लेख्य विद्याद् द्विलक्षगम् (लेख राजा तथा प्रजा का)" दो प्रकार के लेख का वर्णन मिलता है। शासक अपनी राज-आज्ञा को प्रजा तक पहुचाने के लिए लेख खुदवाते थे। उस समय राजाज्ञा को चिरस्थायी करने का अन्य साधन न था अत लेख अकित करना आवश्यक हो गया। अशोक ने अपनी धार्मिक आज्ञाओ को प्रस्तर तथा स्तम्भो पर खुदवाया था। उसके चौदह शिलालेख उसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए खुदवाए गए थे। उन मे धार्मिक कार्य अथवा पदाधिकारी की नियुक्ति तथा उपदेश की ओर लोगो का ध्यान आकर्षित किया गया है। अशोक ने मठ मे मतभेद देखकर गौड स्तम्भ लेख तैयार कराया था ताकि भिक्षु डर कर शान्त हो जाय और विहारो की पवित्रता बनी रहे। अशोक के लेखो को आज्ञापत्र की श्रेणी मे रखा जा सकता है।

(कार्यमादिश्यते येन तदाज्ञापत्रमुच्यते-स्मृतिचन्द्रिका)

इन धार्मिक-पत्रो के खुदवाने का कोई निश्चित अवसर न था पर अशोक ने अहिंसा मे प्रजा की आस्था लाने के लिए लेखो को उत्कीर्ण कराया (से अज यदा धम्मलिपि लिखिता)। समाज मे सदाचार लाना उसका मुख्य ध्येय था। लेकिन अशोक के बाद ऐसे लेख कम मिलते हैं। भिलसा के गरुड़ स्तम्भ की प्रशस्ति मे उसी प्रकार से सदाचार की बातें (तीन मार्ग) उल्लिखित मिलती है (त्याग, आत्म सयम तथा राग रहित)।

त्रिनि अमृत पदानि इअ सु-अनुठितानि।
नेयति स्वर्ग दम चाग अप्रमाद।

कालान्तर में धर्मलिपि का स्वरूप परिवर्तित हो गया और धार्मिक अवसर (यात्रा तथा दान आदि) पर लेख उत्कीर्ण होने लगे।

अशोक ने स्वयं लुम्बिनी स्तम्भ पर लिखा है कि भगवान बुद्ध का यह जन्म-स्थान था इस कारण यह स्तम्भ-लेख अंकित किया गया (हिद बुधे जाते सक्य

मुनिति सिला-विगड़ भीचा कालापित सिला थभे च उस

धार्मिक अवसर पापिते) इसका भाव यह है कि बौद्ध तीर्थ की यात्रा कर

अशोक ने लेख खुदवाया था। नासिक लेख में महाक्षत्रप नहपान के जामाता उषवदात ने पुष्कर तीर्थ (अजमेर, राजपुताना) में जाकर दान किया और लेख खुदवाया। मध्ययुग में गहड़वाल नरेश गोविन्द चन्द्रदेव के अनेक ताम्रपत्र काशी के पास कमौली ग्राम से मिले हैं जिनमें ताम्रपट्टिका पर तीर्थ यात्रा से सम्बन्धित लेख खोदने का विवरण पाया जाता है।

ईसवी पूर्व सदियों में सातवाहन नरेश सातकर्णी ने अनेक वैदिक यज्ञ किया था जिसका विवरण उसकी पत्नी नागनिका ने नानाघाट के स्थान पर उत्कीर्ण कराया। ऐसी ही घटना गुप्त सम्राट् समुद्रगुप्त के अश्वमेध सिक्कों पर अंकित है। मुद्रालेख में "राजाधिराज पृथिवीमवित्वा दिवं जयत्या हृत वाजिमेध" उत्कीर्ण है। इससे समुद्र गुप्त द्वारा अश्वमेध यज्ञ की घटना को चिरस्थायी बना दिया गया। सातकर्णी के समकालीन भारतीय स्तूपों से सम्बन्धित वेदिका अथवा तोरण पर ऐसे लेख मिले हैं जिनसे पता चलता है कि विभिन्न लोगों ने उसे तैयार किया था। सांची की वेदिका तथा तोरण पर अनेक लेख उत्कीर्ण हैं। भारहुत वेदिका पर भी ऐसे लेखों की कमी नहीं है। दक्षिण भारत के अमरावती वेदिका पर भी लेख उत्कीर्ण हैं। ईसवी सन् के आरम्भ से मूर्तियों की आधार शिला पर लेख खुदवाने की परिपाटी चल पड़ी। कुषाण युग के बुद्ध प्रतिमा पर ऐसे अनेक लेख मिले हैं। सारनाथ की प्रसिद्ध बोधिसत्व की प्रतिमा के नीचे भाग पर कनिष्क के तीसरे वर्ष का लेख खुदा है। मध्ययुग में प्रतिमा के आधार शिला तथा प्रतिमा के पिछले भाग की ओर लेख उत्कीर्ण कराने का अधिक प्रचलन था। प्रायः बौद्ध प्रतिमाओं के ऊपरी सिरे की ओर एक ही मंत्र उत्कीर्ण मिलता है।

ये धम्मा हेतु प्रभवा हेतुं तेषां तथागतो ह्यवदत्
तेषां च यो निरोधो एवं वादी महाश्रमण।

छठी सदी से बारहवीं सदी तक पूर्वी भारत के प्रस्तर तथा धातु मूर्तियों पर यह लेख मिला है। आधार शिला पर उत्कीर्ण लेखों में तिथियां भी मिलती

है। जिमसे बगाल के पालवशी राजाओ के नाम तथा तिथि ज्ञात हो जाती है। पालयुग के हिन्दू प्रतिमाओ के ऊपरी भाग पर भी लेख खोदने की परिपाटी चल पडी थी। कही प्रतिमाओ के दान का भी विवरण है।

भारत एक धर्म प्रधान देश है और दान का विवरण साहित्य के अतिरिक्त लेखो मे अधिक पाया जाता है। याज्ञवल्क्य स्मृति मे यह उल्लेख मिलता है कि दान देकर राजा को स्थायी रूप मे लेख लिखवा देना **दान का अवसर** चाहिए।[१]

दत्वा भूमि निवंध वा कृत्वा लेख्य तु कारयेत्।
पट्टे वा ताम्र पट्टे वा स्वमुद्रोपरिचिन्हितम्।

प्राचीन युग के शासक इस वात को ध्यान मे रखकर प्रस्तर या ताम्रपट्टिका पर लेख खुदवाते रहे। मौर्यकालीन गया जिला (विहार) मे स्थित वरावर पर्वत का गुहा लेख दान का सवसे प्राचीन उदाहरण है। ईसा पूर्व सदियो मे साची वेदिका पर उस अश के दान कर्त्ता का नाम खुदा है। नासिक लेख मे उपददत्त द्वारा दान का उल्लेख मिलता है कि तीन हजार कार्षापण श्रेणियो के वैक मे सूद पर जमा किया गया था। उस आय को भिक्षुओ के भोजन तथा चीवर के निमित्त व्यय किया जाता था। उषवदत्त ने प्रभास नामक तीर्थ मे आठ ब्राह्मण कन्या के विवाह निमित्त दान दिया तथा दमण ताप्ती आदि नदियो के घाट को नि शुल्क घोषित किया। राम तीर्थ के ब्राह्मण साधुओ के लिए गुप्त दान मे दिया था। गुप्त युग से अग्रहार देने की परिपाटी चल पडी। ब्राह्मण ग्रन्थो मे यज्ञ (इष्ट) तथा दान (पूर्त) का वर्णन मिलता है। पुराने समय मे गुहा, चैत्य, मण्डप, वापी आदि दान मे दिये गये थे परन्तु कालान्तर मे (प्राय गुप्त युग के पश्चात्) ब्राह्मणो के अतिरिक्त सस्थाओ को भूमिदान की प्रथा चल पडी थी। भूमिदान को शासन कहते थे और अधिकतर ताम्रपत्र पर खुदे है। पहाडपुर, दामोदरपुर, खोह तथा प्रभावती गुप्ता का पूना ताम्रपत्र गुप्त युग के शासन माने जा सकते हैं। पूर्व मध्य काल मे भी ऐसे लेखो की कमी न थी। वासखेरा ताम्रपत्र, वलभी दान पत्र, वाकाटक नरेशो के ताम्रपत्र, वादामी के चालुक्य राजाओ के शासन, राष्ट्रकूट, प्रतिहार, चेदि तथा गहडवाल नरेशो के अनेक ताम्रपत्र इसी श्रेणी मे रक्खे जाते हैं। प्रत्येक ताम्रपत्र मे मगलाचरण के पश्चात् राजा की वशावली, भूमि का नाम, सीमा कर आदि का नाम, दान ग्राही की विद्वता एव गुणो की प्रशसा तथा शासन के पदाधिकारियो के नाम मिलते हैं। ब्राह्मणो को अग्रहार देने के अतिरिक्त सस्थाओ को जो भूमि दान मे दी जाती थी उसका भी विवरण

---

१ विस्तृत विवरण अगले पृष्ठों में देखिए।

ताम्रपत्र पर अंकित होता था ।

बंगाल के पाल नरेश देवपाल का नालंदा ताम्रपत्र विशेषरूप से उल्लेखनीय है। पाल नरेश ने जावाद्वीप के शासक बालपुत्र देव द्वारा निर्मित नालंदा के विहार को पाँच गाँव दान में दिया था। इस कारण यह ताम्रपत्र वैदेशिक सम्बन्ध पर भी प्रकाश डालता है। ह्वेनसांग ने लिखा है कि नालंदा महाविहार को दो सौ ग्राम दान में दिए गए थे। पाल राजाओं ने विक्रमशीला विश्वविद्यालय को भी आर्थिक सहायता दी तथा दान देकर शासक ने पवित्र भावनाओं का परिचय दिया था।

मंदिरों का निर्माण तथा पुनरुद्धार का भी विवरण लेखों में भरा पड़ा है। कुमार गुप्त प्रथम के मंदसौर वाले लेख में श्रेणी द्वारा सूर्य मंदिर के निर्माण का विवरण निम्न प्रकार है —

श्रेणी भूत: भवनमतुलं कारितं दीप्त रश्मे

निर्माण के समान मंदिरों के पुनरुद्धार का काम उतना ही पवित्र तथा धार्मिक समझा जाता था। लेखों में 'खण्ड स्फुट संस्कार' शब्दों में उसकी अभिव्यक्ति की गई है। दामोदरपुर के ताम्रपत्र में श्वेत वाराह स्वामिनी देवकुल खण्ड स्फुट प्रति संस्कार करणाय वाक्य से वराह स्वामी के मन्दिर के उद्धार की बात उल्लिखित है। राजपूताना के लेखों में इस तरह का अधिक विवरण पाया जाता है। परमार लेख में विधवा रानी द्वारा मंदिर के जीर्णोद्धार कर पुण्य अर्जन का कथन मिलता है। लेखों में निम्न प्रकार के वाक्य मिलते हैं—

खण्ड स्फुट देवगृह जगती समरचनार्थम्
(ए इ १२ पृ ११५)

खण्ड स्फुट विघटित पतित संस्कारार्थम
(का इ इ ४ पृ १५)

खण्ड स्फुटित समरचनादिषु धर्मोपियोग्यं कर्तव्यम्
(ए इ ११ पृ १२)

इस उदाहरण से स्पष्ट प्रकट होता है कि दसवीं सदी के बाद मंदिरों का संस्कार अत्यन्त पुण्य का कार्य समझा जाने लगा। सम्भवत मुसलमानों द्वारा मंदिरों के नष्ट किए जाने पर धर्मात्मा लोगों का ध्यान निर्माण से हटकर संस्कार की ओर आकृष्ट हुआ। जौनपुर के एक लेख (ए इ भा २) तथा आसाम के लेख (इ हि क्वा भा २२ पृष्ठ १७) में इसी प्रकार का अधूरा उल्लेख मिलता है।

प्राचीन भारत मे विजय यात्रा के समाप्त हो जाने पर शासक लेख उत्कीर्ण कराते ताकि उनके विजय का विवरण अन्य लोग तथा उत्तराधिकारियो को ज्ञात हो जाय। इस प्रसग मे प्रयाग का स्तम्भ लेख, उदयगिरि लेख, अयहोल की प्रशस्ति, जोधपुर का अभिलेख तथा भोर सग्रहालय का ताम्रपत्र क्रमश समुद्र गुप्त, द्वितीय चन्द्रगुप्त चालुक्य राजा द्वितीय पुलकेशी, प्रतिहार नरेश भोज तथा राष्ट्रकूट ध्रूवराज के विजय का वृत्तात उपस्थित करता है। उनमे राजाओ के दिग्विजय व युद्ध मे विजय का विवरण दिया गया है। इन लेखो का मुख्य ध्येय राजा की विजय कीर्ति को चिरस्थायी करना था अतएव प्रशस्तिकार ने अपने आश्रयदाता या शासक के विजय का सुन्दर वर्णन किया है। गुप्त सम्राट द्वितीय चन्द्र गुप्त का मेहरौली लोहस्तम्भ पर चन्द्र नाम से शासक के विजय का वर्णन अकित है। यशोधर्मन का मदसोर का लेख उसके युद्ध कौशल का वर्णन करता है। उसीमे उसके हाथो हूण नरेश के पराजय का विवरण मिलता है।

विजय यात्रा

तीर्त्वा सप्त मुखानि येन समरे सिन्धोर्जिता वाह्लिका
यस्याद्याप्यधिवास्यते जलनिधि वींर्य्यानिलैर्दक्षिण।

(मेहरौली लेख)

आ लौहित्योपकण्ठात्तलवन गहनो पत्यकादा महेन्द्रा
दा गङ्गाश्लिष्ट-सानोस्तुहिन शिखरिण पश्चिमादा पयोध
चूडा-पुष्पोपहारैर्म्मिहिर कुल नृपेणार्च्चित पाद युग्म

(मदसोर की प्रशस्ति)

ऐसे स्थानो पर राजा की कीर्ति को चिरस्थायी करने की भावना काम करती थी अत उनमे कुछ अत्युक्ति भी मिलती है।

मध्य युग के परमार लेख मे तो "कोकण विजय पर्ववर्णि" वाक्य का स्पष्ट उल्लेख है। गाहडवाल प्रशस्ति जयचन्द्र के अभिषेक के अवसर पर अकित की गई थी। इस प्रकार शासक के विजय यात्रा के अन्त मे भी प्रशस्ति अकित करान की परिपाटी चल पडी।

प्राचीन समय मे सामाजिक अवसरो पर लेख उत्कीर्ण कराने की परिपाटी अधिक नही थी परन्तु मध्ययुग की प्रशस्तियो मे इसका वर्णन पाया जाता है। गाहडवाल राजा जयचन्द्र ने राजकुमार के जन्म तथा चूडा-कर्म के अवसर दान दिया था। दानपत्र मे "राजपुत्र श्री हरिश्चन्द्र नाम करणे" का उल्लेख है। इनके अतिरिक्त मध्ययुग मे अनेक त्योहारो पर भी दान देने का विवरण

सामाजिक अवसर

पाया जाता है। संक्रान्ति अक्षय तृतीया राम नवमी कृष्णजन्माष्टमी यहा सप्तमी एकादशी तथा अधिक मास में भी दान दिया जाता था। माता-पिता के 'पार्वणि श्राद्ध' के अवसर पर गाहड़वाल तथा कलचुरी नरेशों द्वारा दान का उल्लेख निम्न शब्दों में मिलता है।

"आश्विन मासि कृष्णपक्षे १५ पितृ
साम्वत्सरिक पार्वण श्राद्धे
वा
मांमय देवस्य सम्वत्सरे श्राद्धे'
वा
आत्मीय मातु राज्ञी श्री साम्वत्सरिके'

पिछले गुप्त नरेश भानु गुप्त के एरण के लेख में गोपराज की स्त्री के सती होने का वर्णन है जिससे पता चलता है कि सती होने के अवसर पर यह लेख उत्कीर्ण कराया गया था।

छाया च दुर्ग समुद्गृ प्रकाशं
स्वर्गगतो दिव्य नरेन्द्र कल्प'
भक्तानुरक्ता प्रिया च कान्ता
भार्यावलग्नानुगताग्निराशिम्।

प्राचीन युग में मिट्टी की मुहरों पर अभिलेख द्वारा अंकित अनेक लेख मिले हैं। वैशाली में ऐसे लेखों की अधिकता है जिन्हें श्रेणी मुख्य द्वारा व्यवहार के प्रसंग में तयार किया गया था। व्यापार की वृद्धि के लिए

व्यापारिक अवसर

ही सिक्के तैयार किए जाते थे जिन पर कई ढंग के मुद्रा-लेख खोदे जाते थे। इस प्रकार व्यापार को लेकर भी मुद्राओं पर लेख खुदवाया जाता था। जिन मुहरों को श्रेणियाँ तयार करती उसमें अपना नाम अंकित कराती। श्रेष्ठी सार्थवाह कुलिक निगमस्य (वैशाली की मुहर) तथा कुलिक निगमस्य (बसाढ़ मुहर) लिखा मिला है। सिक्कों पर धार्मिक नीति को अपनाने से राजाओं का नाम खोदा गया। यूनानी राजाओं शक नरेश तथा बाद में गुप्त सम्राटों के सिक्कों पर पदवी युक्त शासक का नाम पाया जाता है। (देखिए मुद्रालेख) यद्यपि लेखों के अध्ययन से अधिकतर किसी विशेष अवसर का पता नहीं चलता परन्तु राज्य के आर्थिक दशा सुधारने के लिए या व्यापार में सरलता के लिए कई प्रकार के सिक्के तयार किये गये। गुप्त युग के पश्चात् संगठित व्यापार न होने के कारण ही सिक्कों का प्रचलन कम हो गया।

कुछ गौण अवसरो पर भी राजा लेख खुदवाया करते थे। महा क्षत्रप रुद्रदामन ने सुदर्शन झील की मरम्मत करने के समय जूनागढ वाला लेख उत्कीर्ण कराया था। आदित्यसेन के अपसद लेख का समय भी वैसा ही था। उस समय रानी कोणदेवी ने तालाव खुदवाया था।

साधारण समय

राज्ञा खानितमद्‌भुत सुपयसा पेपीय मान जनै
स्तस्यैव प्रिय भार्यया नरपते श्री कोणदेव्या सर।

प्राचीन समय से ही भारतवर्ष मे नगर ऐसे स्थान पर स्थापित हुए जिनका किमी न किसी प्रकार का स्थानीय अथवा भौगोलिक महत्व था। साम्राज्य की सुरक्षा के लिए महत्वपूर्ण स्थान पर नगर वसाए गए तथा तीर्थ स्थानो पर अच्छे प्रकार के नगरो का निर्माण किया गया। राजधानी साम्राज्य का केन्द्र होने के कारण सर्वदा प्रसिद्ध नगरी थी। यो तो जनता के आवागमन के निमित्त सुरक्षित मार्ग वने थे परन्तु व्यापारिक केन्द्रो ने भी शासक का ध्यान आकर्षित किया और कालान्तर मे वे स्थान सास्कृतिक केन्द्र हो गए। प्रशस्ति खुदवाने के विभिन्न स्थानो की परीक्षा यह वतलाती है कि राजधानी, महत्वपूर्ण नगर, तीर्थ स्थान एव जयस्कन्धावार की ओर शासको का ध्यान गया और उन स्थानो पर अभिलेख खोदे गए।

प्रशस्ति खुदवाने का स्थान

भारतीय पुरातत्व के इतिहास मे सर्व प्रथम अशोक के लेखो का स्थान आता है। उसने वौद्धधर्म मे दीक्षित होने के पश्चात् ही साम्राज्य के विशिष्ट तथा वौद्धधर्म से सम्वन्धित स्थानो पर लेख अकित कराया। कुछ लेख प्रान्त की राजधानी तथा विशिष्ट स्थानो पर मिले है। धौली (भुवनेश्वर के समीप) का लेख यह वतलाता है कि उडीसा को जीत कर उसने राजाज्ञा निकाली। इसी के सदृश तक्षशिला भी प्रान्त का प्रधान नगर था। सीमा प्रान्त पर मानसेरा व शहवाजगढ़ी के लेख इसी वात की पुष्टी करते है। दक्षिण मे मैसूर प्रान्त के व्रह्मगिरि मे उसके लेख मिले हैं। उसे धम्मघोष के प्रसार निमित्त तथा प्रजा की जानकारी के लिए अनेक स्थानो पर धर्मलेख उत्कीर्ण कराना पडा था। विहार के चम्पारन जिले मे लौरिया तथा रमपुरवा के स्तम्भ लेख, कालसी, (उत्तर प्रदेश) गिरनार (काठियावाड) तथा येरुगुडी (करनूल जिला, मद्रास) के लेख सीमा पर स्थित हैं। यद्यपि लेख सर्वत्र खोदे जा सकते थे पर स्थान का चुनाव भी एक मुख्य विषय था। भगवान बुद्ध के जीवन से सम्वन्धित महत्वपूर्ण स्थानो पर अशोक ने लेख अकित कराया। सारनाथ (प्रथम प्रवचन का स्थान

धर्म चक्र परिवर्तन) कौशाम्बी (बुद्ध का निवास-स्थान तथा राज मार्ग पर स्थित प्रधान नगर) तथा सांची (बुद्ध के स्तूप के समीप) में लेख युक्त स्तम्भ खड़े हैं। अशोक का स्तम्भ रुम्मनदेई में भी खड़ा है जो स्थान सिद्धार्थ का जन्म-स्थान माना जाता है। इसी के महत्व को समझकर ही उसने तीर्थयात्रा की तथा निम्नलिखित बातें स्तम्भ पर खुदवाईं।

हिद बुधे जाते साक्य मुनीति
हिद भगवं जाते ति लुंमिनि गाम उबलिके कटे।

इस प्रकार अशोक के लेख कई बातों पर प्रकाश डालते हैं। लेख धर्म प्रचार के सबसे अधिक साधन माने गये हैं तथा इसी कारण प्रधान स्थान सीमा तथा धार्मिक केन्द्र पर धर्म लेख अंकित किए गए।

अशोक के बाद भी प्राचीन शासकों ने अपनी सीमा के भीतर प्रशस्तियां खुदवायीं। पह्लव राजाओं ने तक्षशिला में महपाल का लेख गुलार तथा मालिक में मौर खरामन का लेख मूलामद में मिलते हैं। ये सभी स्थान उन राजाओं के राज्य सीमा में स्थित थे। कनिष्क के समय की मूर्ति पर लेख खुदा था जो सारनाथ में शासन करने वाले महाक्षत्रप खरपल्लाना से सम्बन्धित है। गुप्त नरेशों ने इस ढंग को निबाहा परन्तु सारनाथ से प्राप्त लेख तो धार्मिक स्थान से ही सम्बन्धित कहा जा सकता है। समुद्रगुप्त ने कौशाम्बी के महत्व को समझ कर ही अपने विजय यात्रा का वर्णन अशोक के स्तम्भ पर लिखवाया था। उत्तरी भारत से दक्षिण जाते समय इसी मार्ग से होकर व्यापारी जाया करते थे। उदयगिरि के स्थान पर जो लेख मिले हैं वह चन्द्रगुप्त द्वारा उज्जयिनी जाते समय अंकित किया गया होगा क्योंकि चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य की दूसरी राजधानी उज्जयिनी थी। प्राचीन समय में मालवा का अत्यन्त महत्व था। विदिशा तथा उज्जयिनी प्रान्त की राजधानी के रूप में स्थित रही। मंदसोर (मालवा) की प्रशस्तियां (यशोधर्मन तथा कुमार गुप्त प्रथम) इस बात को पुष्ट करती है कि राजमार्ग में स्थित होने के कारण यहां श्रेणी कार्य करती रही जिसके कारण यह मुख्य नगर हो गया। वैशाली एक प्रधान नगर व संघ का केन्द्र था इसलिए विभिन्न कार्यालयों की मुहरें यहां मिली हैं। काशी (राजघाट) की मुहरें धार्मिक भाव को लेकर अंकित की जिसमें शैवमत सम्बन्धी बातों का पता चलता है। तीर्थ होने के कारण मध्य देश के गाहड़वाल नरेश गोविन्दचन्द्र देव ने काशी के समीप कमौली में अधिक दान दिया था जिसका उल्लेख कमौली से प्राप्त ताम्रपत्रों में मिलता है।

तीर्थ को छोड कर जयस्कन्धावार (सेना कैम्प) मे भी लेख अकित करने की आज्ञा दी जाती थी। वह सदा विजय के उपलक्ष मे किया जाता था। वलभी तथा वासखेडा का ताम्रपत्र, खालीमपुर और मुगरे का

जयस्कन्धावार

ताम्रपत्र आदि उल्लेखनीय है। सातवाहन राजा के नासिक लेख मे तो निम्नलिखितपक्ति से यह स्पष्ट हो जाता है—

सेनाये वेजयतिये विजय खधावारा (विजय स्कान्धावार) गोवधनस बेना कटक स्वामि गोतमि पुतो सिरि सदकणि आनपयति।

विजय स्कन्धावारात् भद्रपत्तन वासकात् (वलभी लेख)

महानौहस्त्यश्व जयस्कन्धावारात् श्री वर्धमान कोट्या (वासखेडा ताम्रपत्र)

श्री मुद्गिरि समावासि श्रीमद् जयस्कन्धावारात् (पाल लेख)

इस प्रकार सेना के कैम्प से लेख खुदवाने या घोषित करने की प्रथा की जानकारी हो जाती है।

पुराने समय मे जिस स्थान का कोई सास्कृतिक महत्व था वहा भी प्रतिमा स्थापना के समय मूर्ति के आधार शिला पर लेख अकित कराते थे। मथुरा तथा सारनाथ से ऐसे अनेक मूर्ति-लेख प्रकाश मे आए

प्रधान नगर

हैं। सारनाथ मे गोविन्द चन्द्र की रानी कुमार देवी तथा महीपाल (बगाल के पाल नरेश) के लेख खुदाई से निकले हैं। इसी तरह नालदा भी शिक्षा का एक प्रधान केन्द्र था। यशोधर्मन के मत्री मालाद के लेख तथा देवपाल का ताम्रपत्र प्रशस्ति नालदा महाविहार के विषय मे प्रकाश डालते हैं। उस युग मे सस्था को दान देने का महत्व था। नालदा महाविहार के विद्यार्थियो के लिए जावा के राजा बालपुत्र देव ने विहार निर्मित किया जिस के रक्षण, भिक्षुओ के भोजन, आवास, चिकित्सा आदि प्रबध के लिए कई सौ गाँव दान मे दिए गए थे। वह एक अन्र्राष्ट्रीय केन्द्र हो गया था जहा विदेशो के विद्यार्थीगण पढने के लिए आए थे। नालदा का वर्णन सुनिए—

नालदा गुण वृन्द लुब्ध मनसा
भक्त्या च शौद्धोदने
बुद्धाशैल सरिस तरग तरला
लक्ष्मी इमाम शोभनाम्

यस्ते नीप्रव सौवधाम नवल-
संपार्श्व मित्र भिया
नाना सव गुम भिक्षु संघ वसति
तस्या विहार: कृत:।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि राज्य सीमा राजधानी जयस्कन्धावार, तीर्थ तथा सांस्कृतिक केन्द्रों में लेख उत्कीर्ण करना आवश्यक था। राजधानी में लेख अधिक संख्या में उत्कीर्ण हुआ करते थे।

आधुनिक काल में कई लेख मूल स्थान पर स्थित नहीं हैं इसलिए कदापि भ्रम हो सकता है। अशोक के स्तम्भ अम्बाला तथा मेरठ से दिल्ली में फिरोज तुगलक द्वारा लाए गए। कौशाम्बी का स्तम्भ भी आज प्रयाग के किले में है। ताम्र पत्र तो निश्चित स्थान पर अधिकतर मिलते ही नहीं परन्तु वर्णन से या वर्णित परम्परा से उस स्थान का समीकरण किया जाता है।

अध्याय ५

अभिलेखों से इतिहास-ज्ञान

इस वात की पुनरावृत्ति करने की आवश्यकता नही प्रतीत होती कि प्राचीन भारतीय इतिहास की मूल्यवान सामग्रियो मे उत्कीर्ण लेख, सर्वोपरि माने गए हैं। ऐतिहासिक लेखो के मूल्याकन मे सतर्क रहना पडता है और यह आवश्यक नहीं कि सारी बातें सत्य मान ली जाय। सातवी सदी के पश्चात् प्रशसात्मक लेख मिलते हैं जिनमे कुछ वातें राजा को प्रसन्न करने के लिए लिखी गई थी। उदाहरणार्थ यह कहा जा सकता है कि स्कन्द गुप्त के वाद गुप्त साम्राज्य की श्री समाप्त हो गई। मगध के पिछले गुप्त नरेश सामान्य ढग से शासन करते थे परन्तु देव वरनार्क लेख मे जीवित गुप्त के लिए महान् पदवी—परम माहेश्वर परम भट्टारक महाजाधिराज परमेश्वर—लिखी है जो समुद्रगुप्त के लिए भी नही प्रयुक्त की गई थी। अतएव अतिशयोक्ति को हटाकर लेख पर विचार किया जाता है। लेख के विश्वसनीय होने की बात सर्वप्रथम देखी जाती है। जो उल्लेख मिलता है उसकी पुष्टि अन्य साधनो से होने पर उसकी मर्यादा निश्चित की जाती है। किसी लेख के विषय मे उसकी उपयोगिता पर ध्यान देना चाहिए। यह जानना आवश्यक है कि लेख द्वारा इतिहास-निर्माण मे कितनी सहायता मिली है, तभी प्रशस्ति को ऐतिहासिक मान सकते हैं। तात्पर्य यह है कि अभिलेखों को उपरिलिखित चारो वातो से तौलकर ही इतिहास लेखन आरम्भ किया जा सकता है। कभी-कभी एक ही वात की पुष्टि अनेक लेख करते हैं, अतएव सभी का महत्व एक-सा नही माना जा सकता। इतिहास लिखने मे जितनी सहायता लेखो ने की है उतना अन्य पुरातत्व सामग्रियो के अध्ययन से नही मिलता।

प्राचीन अभिलेख अशोक, कनिष्क खारवेल, गोतमीपुत्र शातकर्णी, रुद्रदामन, समुद्रगुप्त, द्वितीय पुलकेशी, धर्मपाल तथा ध्रुव आदि शासको के सम्वन्ध मे अनेक

यस्तो मौर्यत सौधधाम धवल-
संघार्थ मित्र श्रिया
नाना सद गुण भिक्षु संघ वसति
तस्मा विहारः कृत ।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि राज्य सीमा राजधानी जयस्कन्धावार, तीर्थ तथा सांस्कृतिक केन्द्रों में लेख उत्कीर्ण करना आवश्यक था । राजधानी में लेख अधिक संख्या में उत्कीर्ण हुआ करते थे ।

आधुनिक काल में कई लेख मूल स्थान पर स्थित नहीं हैं इसलिए कदापि भ्रम हो सकता है । अशोक के स्तम्भ अम्बाला तथा मेरठ से दिल्ली में फिरोज तुगलक द्वारा लाए गए । कौशाम्बी का स्तम्भ भी आज प्रयाग के किले में है। ताम्र पत्र तो निश्चित स्थान पर अधिकतर मिलते ही नहीं परन्तु वर्णन से या ऐतिह्य परम्परा से उस स्थान का समीकरण किया जाता है ।

मे छठी सदी के राजा यशोवर्मन का नाम लिया जा सकता है। मदसोर (मालवा) के लेख मे वर्णन आता है कि उसने लौहित्य (आसाम) तक विजय किया। परन्तु तत्कालीन राजनीतिक परिस्थित मे मालवा से आसाम तक का विजय सम्भव नही था। अतएव मदसोर का लेख (इ० ए० १८ पृ० २१९) विश्वसनीय नही है। मध्य युग मे कन्नौज पर अधिकार करने के लिए प्रतिहार, राष्ट्रकूट तथा पाल नरेशो मे परस्पर युद्ध हो रहा था। इस युद्ध की कथा भोर-सग्रहालय-लेख (ए० इ० २२ पृ० १७६), खालीमपुर प्रशस्ति (ए० इ० भा० ४) तथा ग्वालियर प्रशस्ति (आ० स० रि० १९०३-४ पृ० २८०) मे वर्णित है। उसमे ध्रुव, धर्मपाल तथा वत्सराज के विजय पराजय की बाते लिखी है। तीनो वशो के लेख यह बतलाते हैं कि शासको मे वशानुगत युद्ध की भावना काम कर रही थी और इन्द्र ने भी उत्तरी भारत पर आक्रमण किया था। देवपाल प्रतिहार नरेश से ईर्ष्या करता रहा तथा दोनो मे युद्ध भी हुआ था। इसी प्रकार अयहोल की प्रशस्ति मे द्वितीय पुलकेशी की जीवन-कथा विस्तृत रूप से कही गई है। उस लेख (ए० इ० ६ पृ० ३) से ही पता चलता है कि चालुक्य नरेश ने कन्नौज के राजा हर्षवर्धन को परास्त किया था [भयविगलित हर्ष येन चाकारि हर्ष] इस प्रकार अभिलेखो का मूल्य तथा इतिहास के साधन होने की बातें आकी जा सकती।

प्रशस्तियो के अध्ययन से राजवशो के वश परम्परा का पता चलता है। जिस शासक के राज्यकाल मे कोई अभिलेख उत्कीर्ण होता उसके पूरे वशवृक्ष का उल्लेख किया जाता था। ईसवी पूर्व सदियो मे ऐसी परिपाटी नही मिलती। ई० स० १५० मे जूनागढ के लेख मे रुद्रदामन की तीन पीढियो का नाम है—स्वामी चष्टनस्य पौत्रस्य राज्ञ क्षत्रयस्य सुगृहित नाम्न स्वामि जयदाम्न पुत्रस्य राज्ञो महा-क्षत्रयस्य—रुद्रदाम्नो। (ए० इ० ८ पृ० ४२)। पश्चिमी भारत के शक क्षत्रपो के मुद्रा-लेख मे पिता-पुत्र दोनो का नाम निम्न प्रकार से मिलता है—

वशवृक्ष

राज्ञो महाक्षत्रपस्य दामजद श्री पुत्रस्य राज्ञो क्षत्रपस्य सत्यदाम्न। इसी रूप से मुद्रालेख द्वारा क्षत्रपो का वश-वृक्ष तैयार किया जाता है। गुप्त लेखो मे वश वृक्ष की परम्परा चरमसीमा को पहुँच गयी थी। जिस शासक का लेख उत्कीर्ण किया जाता उसके पूर्व पुरुषो की नामावली अवश्य लिखी जाती थी। स्कन्द गुप्त के भीतरी स्तम्भ लेख मे पूरी वशावली निम्न प्रकार से दी गयी है—

महाराज श्री गुप्त प्रपौत्रस्य महाराज श्री घटोत्कच पौत्रस्य महाराजाधिराज

बातें बतलाते हैं। उनके प्रताप तथा कीर्ति की गाथा सुनाते हैं अन्यथा उन राजाओं का यश तथा शक्ति का परिज्ञान सम्भव न था। अशोक के धर्मलेख ही मौर्य साम्राज्य की विशेषता बतलाते हैं। कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में शासन-पद्धति का विस्तृत वर्णन किया है परन्तु राज्य विस्तार का उल्लेख तक नहीं है। अशोक के लेखों से ही उसके पितामह चन्द्रगुप्त मौर्य की शक्ति का अनुमान होता है। यों तो उसके लेख प्रायः सम्पूर्ण भारत पर विस्तृत साम्राज्य की जानकारी कराते हैं परन्तु तेरहवें लेख से अशोक द्वारा कलिंग मात्र विजय की बात कही गयी है। इससे यह निष्कर्ष निकाला जाता है कि कलिंग को छोड़कर हिमालय से मद्रास तक का प्रदेश चन्द्रगुप्त मौर्य ने जीता था। अशोक के धर्मलेख का अध्ययन अधिक समय तक विद्वानों को भ्रम में डाले था कि उसका नाम प्रियदर्शी था परन्तु मास्की (आंध्र प्रदेश) के लेख से उसके नाम—अशोक का पता चला। उड़ीसा के राजा खारवेल के सम्बन्ध में पूरी जानकारी हाथी गुहा लेख से होती है। वही लेख सारा इतिहास बतलाता है और खारवेल का जीवन वृत्तान्त उसी से प्रकाश में आया है। उसकी अनुपस्थिति में खारवेल के सम्बन्ध में सभी बातें लुप्त हो जायेंगी। कनिष्क के लेख इस बात को प्रमाणित करते हैं कि उसका राज्य पेशावर से वाराणसी तक विस्तृत था। कुर्रम (ए इ २ पृ १५५) तथा सारनाथ का प्रतिमा लेख (ए इ ८ पृ १७१) उपर्युल्लिखित बातों की पुष्टि करते हैं। दक्षिण में मौर्यों के उत्तराधिकारी सातवाहन नरेश ईसा पूर्व दूसरी सदी से चौथी शताब्दी (ईसवी सन्) तक शासन करते रहे। उस वंश के सबसे प्रतापी राजा गोतमी पुत्र शातकर्णी की कीर्ति तथा विजय नासिक गुहा के दीवार पर खुदी है। उसी वर्णन से नहपान की पराजय की बात ज्ञात होती है। महाक्षत्रप रुद्रदामन की ख्याति उसके जूनागढ़ लेख से प्रकट होती है जिसमें दक्षिणापथपति (सातवाहन) के दो बार परास्त करने की बात उल्लिखित है। दक्षिणापथ पतेस्सातकर्णेद्विरपि नीर्व्याजमवजी त्यावजीत्य सम्बन्धा विदूरतया—ए इ ८ पृ ४२) इन राजाओं के यश वर्णन की तरह गुप्त सम्राट् समुद्र गुप्त की दिग्विजय गाथा प्रयागस्तम्भ लेख में वर्णित है। इससे पता चलता है कि समुद्र ने पाटलिपुत्र से उड़ीसा होकर कांची तक विजय पताका फहराई थी। उसने धर्मविजयी राजा की तरह दक्षिण के शासकों को परास्त कर मुक्त कर दिया। उत्तर भारत में उसकी दूसरी नीति थी और इस भाग के कई प्रदेशों को विजित कर अपने साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया था।

जैसा कहा गया है कि लेखों में कभी अत्युक्तिमय उल्लेख होता है उस प्रसंग

प्रतिहार शासक महेन्द्रपाल की राजमुद्रा मे उस वंश के राजा तथा रानी का क्रमवद्ध नाम मिलता है। उसका अनुवाद निम्न प्रकार है—"परम वैष्णव देवराज रानी भूमिकादेवी उसके पुत्र परममाहेश्वर वत्सराज रानी सुन्दरीदेवी उसके पुत्र परमभागवती भक्त भागभट्ट रानी इष्टादेवी उसके परमादित्य भक्त रामभद्र रानी अप्पादेवी उसके पुत्र परमभागवत भोज रानी चन्द्रभट्टारिका देवी उसके पुत्र परमभागवत महेन्द्रपाल रानी देहनागादेवी" के नाम मिलते हैं। इस दिशा मे ज्ञानवर्द्धक राजमुद्राओ मे नालदा तथा वसाढ़ की मुद्राओ का उल्लेख किया जा सकता है। उनसे कई सस्थाओ तथा पदाधिकारियों के नाम मिलते हैं। इसी रूप मे मौखरि नरेश ईशान वर्मा के हरहा प्रशस्ति का नाम लिया जा सकता है। उसमे पूरे वश का उल्लेख करते समय सर्ववर्मन मौखरि का नाम आता है जिसके सम्बध मे अन्य साधनो से कुछ ज्ञात नही है। हर्ष वर्धन के वासखेडा ताम्रपत्र मे नरवर्धन से हर्षवर्धन तक शासको तथा रानियो के नाम मिलते हैं। इस रूप मे दक्षिण के राजा गुर्जर प्रतिहार के जोधपुर प्रशस्ति मे, अयहोल की प्रशस्ति मे, चालुक्य वश तथा राष्ट्रकूट वशी भोर सग्राहलय ताम्रपत्र मे समस्त राजाओ के नाम उल्लिखित हैं। वगाल के पाल वश के राजाओ के विषय मे खालीमपुर ताम्रपत्र विशेष उल्लेखनीय है। इस तरह प्राचीन लेखो के अध्ययन से अनेक भारतीय शासको के वश वृक्ष का ज्ञान सरलता से हो जाता है।

उत्कीर्ण लेखो के अतिरिक्त मुद्रा लेखो भी भारतीय इतिहास निर्माण मे सहायता मिलती है। उदाहरणार्थ सम्भूति का नाम सर्वप्रथम सिक्के पर ही खुदा मिला है। इतिहास मे ऐसे काल विभाग हैं जिनका ज्ञान मुद्रा-लेख से किया जाता है। जटिल प्रश्न भी सुलझ जाते हैं। अज्ञात युग पर प्रकाश पडता है। भारतीय यूनानी तथा शक राजाओ के सिक्को का अध्ययन ही उनके इतिहास को प्रकाशित करता है। उनके लेख शासको के नाम तथा क्रम का निश्चिय करते हैं। उसी से राजाओ की सख्या वतलाई जाती है। पश्चिमी भारत के शक क्षत्रप सिक्को पर शासक का नाम तथा तिथि का उल्लेख मिलता है। लेख तथा तिथि के आधार पर राजाओ की वशावली तथा शासन का क्रम प्राय निश्चित हो गया है। उदाहरण के लिए राज्ञो महाक्षत्रपस रुद्रसिहस पुत्रस महाक्षत्रपस सगदामन [तिथि १४४ (१४४+७८) = २२२ ई०]

गण सिक्के भी शासक का नाम वतलाते हैं। कुणिन्द के सिक्को पर 'राज्ञो कणीदस अमोघ भूतिस महरजस' खुदा मिला है। कुषाण सिक्कों पर कदफिस कनिष्क तथा वासुदेव आदि के नाम मिलते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि

श्री चन्द्रगुप्त पुत्रस्य कुमारदेव्यामुत्पन्नस्य महाराजाधिराज श्री समुद्रगुप्तस्य पुत्र तत्परिग्रहितो महादेव्या ध्रुवदेव्यामुत्पन्न: परम भागवतो महाराजाधिराज श्री कुमारगुप्तस्य

प्रथित विपुल धामा नामत: स्कन्दगुप्त:

इसी तरह बिहार शिलालेख में अंतिम पंक्ति के स्थान पर 'कुमारगुप्त तस्य पुत्र: तत्पादानुध्यात: परम भागवतो महाराजाधिराज श्री स्कन्दगुप्त।' लिखा मिलता है। इससे गुप्त वंश के राजाओं के साथ रानियों के भी नाम मिलते हैं। यदि कुमारगुप्त द्वितीय की भीतरी राजमुद्रा के लेख पर विचार किया जाय तो गुप्तों के दूसरे वंश परम्परा का ज्ञान हो जाता है। कुमार गुप्त प्रथम तक सभी नामों में समता है परन्तु उसके बाद स्कन्दगुप्त का नाम न आकर पुरु गुप्त का नाम आता है। लेख इस प्रकार है— श्री कुमारगुप्त तस्य पुत्र तत्पादानुध्यातो महादेव्या अनन्तदेव्यामुत्पन्नो महाराजाधिराज श्री पुरुगुप्त तस्य पुत्रः पादानुध्यातो महादेव्यां श्री चन्द्रदेव्यां उत्पन्न: महाराजा धिराज श्री नरसिंहगुप्त तस्य पुत्र तत्पादानुध्यातो परमभागवतो महाराजाधिराज श्री कुमारगुप्त:। इस ढंग से लेखों के आधार पर गुप्त वंशावली का पता लग सका है। सभी लेखों में वंशवृक्ष का उल्लेख नहीं होता था परन्तु यह बतलाना कठिन है कि किस अवसर पर कर्मचारी (प्रशस्तिकार) वंश वृक्ष का उल्लेख करता था अथवा केवल उस लेख से सम्बन्धित राजा का केवल नाम दिया करता था। ऐसी घटना मिहिर कुल के लेखों से भी पायी जाती है। उसके ग्वालियर वाले शिलालेख (५१५ ई) में तोरमाण का भी नाम आता है—

श्री तोरमाण इति य: प्रथितो प्रभूत पुण्य।

× × ×

तस्योदित कुल कीर्ति पुत्रोऽतुलविक्रम पति पृथ्व्या:

मिहिरकुलेतिख्यातो ।

गुप्त कालीन वाकाटक राजा विन्ध्यशक्ति के ताम्रपत्र मे उसके पितामह प्रवरसेन तथा पिता सर्वसेन का नाम मिलता है।

"प्रवरसेन पौत्रस्य श्री सर्वसेन पुत्रस्य धर्म्म महाराजस्य वाकाटकानां श्री विन्ध्यशक्ति—।

प्रभावती गुप्ता के पूना ताम्रपत्र में तो वाकाटक वंशवृक्ष के स्थान पर गुप्त वंशावली का उल्लेख है जिसका अर्थ यह है कि प्रभावती गुप्ता गुप्त वंश की राजकुमारी थी और रानी हो जाने पर भी इनकी सहायता से शासन करती रही। प्रस्तर या धातु पत्र पर खुदे लेखों से जो वंशावली मिलती है उस तरह

स्तम्भ लेख भी उसके विजय का द्योतक है। उमके पिता समुद्रगुप्त के दिग्विजय का वर्णन हरिषेण ने प्रयाग के स्तम्भ-लेख मे किया है जिससे प्रकट होता है कि समुद्रगुप्त मध्य प्रदेश होकर उडीसा पारकर काची तक गया था। दक्षिण के राजाओ को परास्त कर उसने मुक्त भी कर दिया जो गुप्त सम्राट् को कर देने लिए उद्यत हो गए। हरिषेण ने उत्तरी भारत के नागवशी राजाओ के पराजय का सुन्दर वर्णन किया है।

स्कन्द गुप्त के भीतरी स्तम्भ लेख के अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि हूणो ने कुमार गुप्त के वृद्धावस्था मे गुप्त राज्य पर आक्रमण किया था। जिन को वडी कठिनाई से स्कन्द ने परास्त किया। वर्णन निम्न प्रकार से आता है—
(का० इ० इ० ३ पृ० ५३)

(१) हूणैर्य्यस्य समागतस्य समरे दोर्म्यां धरा कपिता
(२) विचलित कुल लक्ष्मी-स्तम्भनायोद्यतेन
(३) पितरि दिवमपेते विप्लुता वश-लक्ष्मी
भुजवल विजतारिर्य्य प्रतिष्ठाप्य भूय।

छठी सदी के राजा यशोधर्मन के मदसोर लेख बतलाता है कि स्कन्द गुप्त के बाद हूणो का आधिपत्य मध्य भारत मे हो गया था। तोरमाण का एरण लेख (का० इ० इ० ३पृ० १५९) तथा मिहिरगुल की ग्वालियर प्रशस्ति (वही पृ० १६२) इसके प्रमाण हैं कि हूण नरेश ग्वालियर के भूभाग मे शासन कर रहे थे। यशोधर्मन ने पुन उन्हे परास्त किया जो उसकी प्रशस्ति से स्पष्ट हो जाता है।

ये भुक्ता गुप्त नाथैर्न्न सकल वसुधा क्रान्ति दृष्ट प्रतापै
र्नाज्ञा हूणाधिपाना क्षितिपति मुकुटाध्यासिनी यान्प्रविष्ठा

इस तरह उल्लेखो से युद्ध की कहानी ज्ञात हो जाती हैं।

मध्य युग के आरम्भ से ही उत्तर तथा दक्षिण के शासको की युद्धगाथा उनकी प्रशस्तियो मे मिलती है। हरहा लेख मे ईशान वर्मा मौखरि की विजय कथा मिलती है तो कमौली के ताम्रपत्रो मे गोविन्द चन्द्रदेव की चर्चा है। अयहोल के लेख मे द्वितीय पुलकेशी द्वारा अनेक राजाओ के अतिरिक्त कन्नौज नरेश हर्षवर्धन के पराजय का वर्णन मिलता है। भोर सग्राहलय ताम्रपत्र मे राष्ट्रकूट नरेश दन्तिदुर्ग, कृष्ण तथा ध्रुव आदि के युद्धो का विवरण पाया जाता है।

श्री काची पति गगवेगीकुयता ये मालवेशादय
प्राज्याना नयतिस्म तान् क्षितिभृतो य प्रातिराज्यानपि

पाल राजा धर्मपाल के साथ युद्ध की सूचना निम्न पक्ति से मिलती है—

प्रशस्तियों के अतिरिक्त सिक्कों से राजाओं के नाम मिल जाते हैं। जहाँ तक नाम का सम्बन्ध है गुप्त सिक्के भी इससे (नाम) रहित नहीं है। अंत में यह कहना आवश्यक हो जाता है कि प्रशस्तियों के सदृश मुद्रा लेखों से वंशावली का ज्ञान नहीं हो सकता। केवल क्षत्रप सिक्के दो पीढ़ियों के नाम उपस्थित करते हैं। अन्यथा व्यक्तिगत नाम तथा तिथि की जानकारी सिक्कों पर खुदे मुद्रा-लेख से होती है।

कौशाम्बी से प्राप्त सिक्कों के आधार पर नए मघ वंश का पता चलता है। इस प्रकार मुद्रा लेख से भी इतिहास के ज्ञान वर्द्धन में सहायता मिलती है।

युद्ध-गाथा

प्रायः उत्कीर्ण लेखों में किसी न किसी वंश के शासक के विजय गाथा, युद्धगाथा तथा सन्धि की बातें लिखी रहती हैं। अशोक के तेरहवें शिलालेख से ही यह ज्ञात हो सका कि वह कलिङ्ग पर युद्ध करने के पश्चात अहिंसा का पालक हो गया। भेरी घोष को धम्म घोष में परिवर्तित कर दिया और उसने बुद्धमत के प्रचार निमित्त देशान्तर में धर्मदूत भेजा था। अयोध्या का लेख यह स्पष्ट कर देता है कि पुष्य मित्र ने दो अश्वमेध यज्ञ किया था [द्विरश्वमेध याजिनः सेनापतेः पुष्य मित्रस्य] पूरब में उदयगिरि के हाथी गुम्फा लेख में खारवेल का का विजय वर्णित है। नासिक से प्राप्त लेखों में सातवाहन राजा गौतमीपुत्र शात कर्णि तथा क्षत्रप नहपान के युद्ध का वर्णन पाया जाता है। इस वर्णन से प्रकट होता है कि नहपान को गौ शातकर्णी ने परास्त किया था। उसकी पुष्टि जोगल थम्बी सिक्कों से होती है। नहपान के दसहजार चाँदी के सिक्कों को गौतमीपुत्र शातकर्णी ने पुनः मुद्रित किया था। काठियावाड़ का जूनागढ़ का लेख यह बतलाता है कि महाक्षत्रप रुद्रदामन ने १५ ई में अपने वंश की खोई प्रतिष्ठा को पुनः स्थापित किया तथा वह पुलमावी को परास्त कर मालवा महाराष्ट्र काठियावाड़ सिन्ध आदि प्रांतों पर राज्य करने लगा। अंतिम समय सातवाहन नरेश गौतमी पुत्र यज्ञ श्री शातकर्णी ने परास्त कर उन क्षत्रप नरेशों को फिर नीचा दिखाया। नासिक कार्ले कन्हेरी तथा जुनार आदि स्थानों पर उसके लेख मिले हैं। इस विजय के स्वरूप यज्ञ श्री ने चाँदी के सिक्के निकाले। उन्हीं क्षत्रपों को चौथी सदी में गुप्त सम्राट चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने परास्त कर गुप्त साम्राज्य को पश्चिमी भारत में विस्तृत किया था। उज्जैन मालवा में दो लेख खुदवाया। उदयगिरि (भिलसा के समीप) गुप्त लेख उस विजय को प्रमाणित करता है (कृत्स्न पृथ्वी जयार्थेन राजैवेह सहागत) मेहरौली का

स्तम्भ लेख भी उसके विजय का द्योतक है। उमके पिता समुद्रगुप्त के दिग्विजय का वर्णन हरिषेण ने प्रयाग के स्तम्भ-लेख मे किया है जिससे प्रकट होता है कि समुद्रगुप्त मध्य प्रदेश होकर उडीसा पारकर काची तक गया था। दक्षिण के राजाओ को परास्त कर उसने मुक्त भी कर दिया जो गुप्त सम्राट् को कर देने लिए उद्यत हो गए। हरिषेण ने उत्तरी भारत के नागवशी राजाओ के पराजय का सुन्दर वर्णन किया है।

स्कन्द गुप्त के भीतरी स्तम्भ लेख के अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि हूणो ने कुमार गुप्त के वृद्धावस्था मे गुप्त राज्य पर आक्रमण किया था। जिन को वडी कठिनाई से स्कन्द ने परास्त किया। वर्णन निम्न प्रकार से आता है—
(का० इ० इ० ३ पृ० ५३)

(१) हूणैर्य्यस्य समागतस्य समरे दोर्म्या धरा कपिता
(२) विचलित कुल लक्ष्मी-स्तम्भनायोद्यतेन
(३) पितरि दिवमपेते विप्लुता वश-लक्ष्मी
भुजवल विजतारिर्य्य प्रतिष्ठाप्य भूय।

छठी सदी के राजा यशोवर्मन के मदसोर लेख वतलाता है कि स्कन्द गुप्त के बाद हूणों का आधिपत्य मध्य भारत मे हो गया था। तोरमाण का एरण लेख (का० इ० इ० ३पृ० १५९) तथा मिहिरगुल की ग्वालियर प्रशस्ति (वही पृ० १६२) इसके प्रमाण हैं कि हूण नरेश ग्वालियर के भूभाग मे शासन कर रहे थे। यशोवर्मन ने पुन उन्हें परास्त किया जो उसकी प्रशस्ति से स्पष्ट हो जाता है।

ये भुक्ता गुप्त नार्थैर्न्न सकल वसुधा क्रान्ति दृष्ट प्रतापै
नाज्ञा हूणाधिपाना क्षितिपति मुकुटाध्यासिनी यान्प्रविष्ठा

इस तरह उल्लेखो से युद्ध की कहानी ज्ञात हो जानी हैं।

मध्य युग के आरम्भ से ही उत्तर तथा दक्षिण के शासको की युद्धगाथा उनकी प्रशस्तियो मे मिलती है। हरहा लेख मे ईशान वर्मा मौखरि की विजय कथा मिलती है तो कमौली के ताम्रपत्रो मे गोविन्द चन्द्रदेव की चर्चा है। अयहोल के लेख मे द्वितीय पुलकेशी द्वारा अनेक राजाओ के अतिरिक्त कन्नौज नरेश हर्षवर्धन के पराजय का वर्णन मिलता है। भोर मग्राहल्य ताम्रपत्र मे राष्ट्रकूट-नरेश दन्तिदुर्ग, कृष्ण तथा ध्रुव आदि के युद्धो का विवरण पाया जाता है।

श्री काची पति गगवेगीकुयता ये मालवेशादय
प्राज्याना नयतिस्म तान् क्षितिभृतो य प्रातिराज्यानपि

गंगा यमुनयोर्मध्ये राज्ञो गौडस्य नश्यत
लक्ष्मी लीला विस्तानि स्वेत छत्राणि यो हरत् ।

पूर्वी भारत में बंगाल का शासक धर्मपाल भी एक विजयी नरेश था। उसके विजय का वर्णन खालीमपुर ताम्रपत्र पर उल्लिखित है। कन्नौज के राजा इन्द्रायुध को परास्त कर चक्रायुध को गद्दी पर बैठाया जिस कार्य को अनेक शासकों ने स्वीकार किया। बारहवें पद्य में लिखा है—

भोजरमत्स्य समद्रै कुरु यदुयवन अवन्ति गान्धार किरर भूपति
व्यालोल मौलि प्रणति परिणत साधु संगीर्यमान
हृष्यति पंचाल वृद्धो धृतकनकमय स्वाभिषेकोदकुम्भो
दत्त श्री कान्यकुब्ज सललित चलित भ्रूलता लक्ष्मयन ।

इस प्रकार अनेक उदाहरणों द्वारा यह प्रमाणित किया जा सकता है कि लेखों के अध्ययन से विभिन्न शासकों के युद्ध व विजय का वृत्तांत प्राप्त होता है।

प्राचीन समय में लेख विशिष्ट स्थान पर उत्कीर्ण कराए जाते थे तथा उद्देश्य की पूर्ति के लिए शासकों ने विभिन्न स्थानों पर खुदवाया। सीमा पर

राज्य सीमा

खुदवाने का विशेष महत्व था। विजय अथवा आज्ञा सम्बन्धी घोषणा प्रजा के लिए उतना ही आवश्यक थी जितनी प्रत्यन्त नृपति के लिए।

मौर्य सम्राट् अशोक के धर्म लेखों के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि भारत वर्ष का अधिक भाग मौर्य शासन में रहा। पश्चिमी भाग में अफगानिस्तान से उड़ीसा तक तथा हिमालय की तराई से (नेपाल की तराई का स्तम्भ लेख रुम्मन-देई तथा कालसी के लेख) मद्रास प्रान्त के ब्रह्मगिरी (करनूल जिला) तक अशोक के शिलालेख पाये जाते हैं। इससे यह कहा जाता है कि उतने भूभाग पर उसका राज्य विस्तृत था। अशोक के द्वितीय तथा तेरहवें शिलालेख में प्रत्यन्त (सीमा) नृपतियों के नाम मिलते हैं जिससे पूर्व वर्णित बातों को बल मिलता है। (चोल पांड्य केरल आदि राज्यों) को छोड़कर समस्त भारत पर उसका शासन था। मौर्य युग के पश्चात् सातवाहन वंश का राज्य-विस्तार अभिलेखों तथा सिक्कों की प्राप्ति से ज्ञात हो जाता है। शातकर्णी राजा का नाम सांची के दक्षिण तोरण पर खुदा है। उसका नाम नानाघाट के लेख (पूना के समीप) में उल्लिखित है तथा उसी को हाथी गुम्फा लेख में पश्चिम दिशा का शासक कहा गया है। इससे यह प्रकट होता है कि मालवा से महा-राष्ट्र तक उसका राज्य फैला था। उसके दो सदियों बाद सातवाहन राजा यज्ञ श्री शातकर्णी के लेख नासिक, कार्ले कन्हेरी आदि स्थानों से मिले हैं तथा

उसकी मुद्राओ की उपलब्धि आध्रदेश, बम्बई, महाराष्ट्र प्रदेशो से हुई है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि सातवाहन नरेश उन प्रदेशो पर अवश्य शासन करता था। क्षत्रप राजा नहपान का लेख भी उन्ही स्थानो मे (नासिक, कार्ले तथा जूनार) प्राप्त हुए हैं जिसके अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि नहपान अजमेर से पूना तक राज्य करता था और उसको परास्त कर ही सातवाहन नरेश गोतमी पुत्र शातकर्णी तथा उसके वशज शासन करने लगे। क्षत्रप तथा सातवाहन अभिलेखो के अध्ययन से दोनो वशो के परम्परागत शत्रुता तथा पराजय व विजय का परिज्ञान हो जाता है।

ईसवी सन् के बाद कुषाण वश का शासन पेशावर से काशी तक विस्तृत था। पूर्वी सीमा के प्रमाण मे सारनाथ की बुद्ध प्रतिमा का लेख उपस्थित किया जा सकता है। उस मूर्ति लेख मे यह वर्णन मिलता है कि कनिष्क के तीसरे राज्य वर्ष मे महाक्षत्रप खरपल्लाना (जो कनिष्क का गवर्नर था) के समय यह प्रतिमा प्रतिष्ठापित की गई। अतएव यह निर्विवाद है कि सारनाथ तक कनिष्क का राज्य फैला था। गुप्त वश के अभिलेख मे भी राजाओ के दिग्वजय तथा राज्य विस्तार की वार्ता वर्णित है। प्रयाग स्तम्भ लेख मे हरिषेण ने समुद्रगुप्त द्वारा विजित नरेशो का नामोल्लेख किया है, उसमे "दक्षिणापथ राज ग्रहण मोक्ष" वाक्य मिलता है जिससे सिद्ध होता है कि समुद्र गुप्त ने 'धर्म विजयी' नीति को ध्यान मे रखकर समस्त राजाओ को मुक्त कर दिया था। उत्तरी भारत के नागवशी (मथुरा के समीप) राजाओ को परास्त कर उत्तर प्रदेश तक राज्य विस्तृत किया। उसके पुत्र द्वितीय चन्द्रगुप्त के उदयगिरि (भिलसा के पास) तथा साची के लेख बतलाते हैं कि सम्राट् ने मालवा पर अधिकार कर लिया था। उसके सेनापति ने वर्णन किया है—

कृत्स्न पृथवी जयार्थेन राज्ञै सह सहागत।

पाटलिपुत्र से वीरसेन इस प्रदेश को जीतने के लिए राजा के साथ वहा (मालवा) गया था। इसके अतिरिक्त द्वितीय चन्द्रगुप्त के चादी के सिक्के यह बतलाते हैं कि सौराष्ट्र तथा काठियावाड के शासक क्षत्रपो के जीतने के पश्चात् ही उसने सर्व प्रथम रजत मुद्राओ का प्रचलन किया (जो क्षत्रप सिक्को के अनुकरण पर निकाले गए।) जूनागढ का शिलालेख यह प्रमाणित करता है कि सौराष्ट्र स्कन्द गुप्त के अधिकार मे था और उसके शासन पश्चात् पृथक हो गया। कालान्तर मे गुप्त वश की अवनति आरम्भ हो गई। अवनति काल मे भी बुद्ध गुप्त का राज्य-विस्तार की जानकारी उसके एरण (मध्य प्रदेश) सारनाथ प्रतिमा लेख (उत्तर प्रदेश) नालदा की मुद्रा (बिहार) तथा दामोदर-

पुर के ताम्रपत्र (उत्तरी बंगाल) से होती है तथा प्रकट होता है कि बंगाल से उत्तर प्रदेश तथा मध्य प्रदेश तक बुद्ध गुप्त शासन करता था। गुप्त युग के पश्चात् भारत में कई छोटे-छोटे राज्य हो गए तथा साम्राज्य की भावना का अन्त हो गया। लेखों के प्राप्ति स्थान से उस वंश का प्रभाव अवश्य ज्ञात हो जाता है। उदाहरणार्थ मौखरि वंश का लेख हरहा (बाराबंकी जिला) तथा नागार्जुनी गुहा (गया जिला) से मिले हैं जो सिद्ध करते हैं कि गया से अवध तक मौखरि वंश का प्रभाव फैला था। पालवंशी राजा धर्मपाल के अभिलेख तथा अन्य कई लेखों से यह प्रमाणित होता है कि धर्मपाल ने गुर्जर प्रतिहार तथा राष्ट्रकूट अधिकार हटाकर कन्नौज पर शासन स्थापित किया। उत्तरी बिहार तथा मगध में (मुंगेर भागलपुर व नालंदा आदि) पालवंशी लेख बिहार प्रान्त को पाल राजाओं के अधीन घोषित करते हैं। यह स्थिति बीसवीं सदी तक बनी रही जब कि १९१२ ई॰ में बंगाल से बिहार का प्रदेश पृथक किया गया।

राजाओं की समकालीनता

लेखों में संरक्षक के वर्णन के अतिरिक्त समकालीन शासकों के नाम भी प्रसंग वश मिलते हैं अथवा राजा के साथ युद्ध में सहायक या प्रतिद्वन्द्वी का नाम देना प्रशस्तिकार के लिए आवश्यक हो जाता था। इसी कारण अशोक के द्वितीय प्रधान शिलालेख में चोड़ पाण्ड्य सतियपुत्रो केरल पुतो आदि छोटे राजाओं के नाम आते हैं जो सुदूर दक्षिण में शासन करते थे। उसी समय में यवन राजा अन्तियोक का भी नाम आता है। तेरहवें प्रधान लेख में भी उन राजाओं तथा कुछ अन्य शासकों (अन्तिकीन मग आदि कई यूनानी राजाओं) के नाम मिलते हैं जिन्हें अशोक ने धर्म से प्रभावित किया था। ईसवी पूर्व पहली सदी में कुषाण राजा कुजल कदफिस के सिक्के पर हरमेयस का नाम भी मिलता है जिससे प्रकट होता है कि यूनानी राजा हरमेयस कुजल कुषाण का समकालीन शासक था। गिरनार के लेख में रुद्रदामन के द्वारा सातवाहन राजा के परास्त करने का उल्लेख मिलता है। इससे पता चलता है कि महाक्षत्रप रुद्रदामन सातवाहन नरेश गौतमी पुत्र शातकर्णी या पुलमावी का समकालीन था। इसी प्रकार हरिषेण ने प्रयाग की स्तम्भ प्रशस्ति में उन राजाओं के नाम दिए हैं जो भारत में राज्य करते थे और जिनको समुद्रगुप्त ने हराया था। इनके अतिरिक्त प्रत्यन्त नृपति (सीमा पर राज्य करने वाले शासक) के भी नाम आए हैं। अतः उस सूची में ऐसे राजाओं के नाम हैं जो समुद्र गुप्त के समकालीन माने जा सकते हैं। कुमार गुप्त तथा स्कन्दगुप्त के लेखों में हूण

आक्रमण का वृतान्त मिलता है। सम्भवत तोरमाण स्कन्दगुप्त का समकालीन शासक था। पिछले गप्त वश के अपसद लेख मे हर्ष वर्धन के साथ माववगुप्त का सम्बन्ध वतलाया गया है। अतएव दोनो को समकालीन मानने मे किसी को आपत्ति नही हो सकती। अयहोल लेख हर्ष तथा पुलकेशी द्वितीय के युद्ध द्वारा समकालीनता वतलाता है। कहने का तात्पर्य यह है कि लेखो के आधार पर राजाओ की समकालीनता स्थिर करने मे वडी सहायता मिलती है और उस प्रमाण के सहारे अनेक राजाओ की तिथि निश्चित की जाती है।

भारतीय लेखो के अध्ययन से प्राचीन भारत के शासन-पद्धत्ति का ज्ञान सुलभ हो जाता है। प्रशस्ति उत्कीर्ण करते समय अथवा राजाज्ञा प्रसारित करते समय कुछ पदाधिकारियो का उल्लेख आवश्यक ढग से किया जाता था। जिन कर्मचारियो से सम्वन्धित आज्ञा अथवा प्रजा के हित के लिए जैसी आज्ञा घोषित होती, दोनों अवस्थाओ मे पदाधिकारियो को पदेन सम्बोधित करना पडता था। दान के अवसर विभिन्न परिस्थिति उत्पन्न हो जाती है। जिन अग्रहार का विवरण दान-पत्र मे लिखा जाता था, उससे सम्वन्वित समस्त कर्मचारियो का उल्लेख नितान्त आवश्यक था। जिस भूमि से राजकर ग्रहण किया जाता, दान देने पर उमका अधिकार दानग्राही को मिल जाता था। अतएव राज कर्मचारियो को यह वतलाना आवश्यक था कि अमुक क्षेत्र से कर (टैक्स) की वसूली नही की जाय। यही कारण है कि ताम्रपट्टियो पर विभिन्न पदाविकारियो के नाम उल्लिखित किये जाते थे।

शासन-व्यवस्था

मौर्य कालीन शासन-व्यवस्था का परिज्ञान अशोक के लेखो से होता है। यद्यपि कौटिल्य ने अर्थ-शास्त्र मे शासन-पद्धति का विस्तृत विवरण दिया है तथापि अशोक के पाँचवें शिलालेख मे धर्ममहामात्र नामक नए कर्मचारी की नियुक्ति का वर्णन है। तीसरे शिलालेख मे राजुक प्रादेशिक तथा युक्त नामक पदाधिकारियो को प्रजाहित के लिए राज्य मे भ्रमण करने की आज्ञा दी गई थी। चौथे स्तम्भ लेख मे अशोक ने स्वयं राजक तथा परिपद् के विभिन्न कार्यों का विवेचन किया है। उन्हें प्रजा हित के चिन्तन पर विशेष वल दिया है। वह सव वातो की जानकारी चाहता था। उसके लेखो से पता चलता है कि पाटलिपुत्र, कौशाम्वी तक्षशिला उज्जैयिनी तोसल्ली, सुवर्णगिरि नामक प्रातो मे साम्राज्य विभक्त था। वहाँ राजकुमार भी प्रातपति के रूप मे शासन करते रहे। कौसविय महामात्र (कौशाम्वी स्तम्भ लेख) तोसलिय महामात्र (धोली का पृथक् शिला-लेख), उजेनिते पि चु कुमाले, तखशिलाते (वही) समापाय महामता (जौगढ

लेख) पाटलिपुत्र (सारनाथ स्तम्भ लेख) तथा सुवर्ण गिरि से अयपुत्र महामात्रानं (सिद्धपुर शिलालेख) आदि उदाहरण उपरियुक्त कथन को प्रमाणित करते हैं। सम्भवतः कई सदियों तक यही प्रणाली कार्यान्वित होती रही।

ईसवी सन् के पश्चात् कुषाण नरेशों के राज्यपाल सारनाथ मथुरा तथा काठियावाड़ में शासन करते थे। तत्पश्चात् गुप्त लेखों में गुप्त शासन प्रणाली का विस्तृत वर्णन पाया जाता है। प्रयाग के स्तम्भ लेख से पता चलता है कि हरिषेण महादण्ड नायक सन्धिविग्रहिक तथा कुमारामात्य के पद को सुशोभित कर चुका था। चन्द्रगुप्त द्वितीय के समय में सनकानिक महाराज सामंत तथा वीरसेन सेनापति था [उदयगिरि का लेख] गुप्त लेख यह बतलाते हैं कि साम्राज्य कई प्रांतों में बंटा हुआ था। तिरामुक्ति (तिरहुत बिहार) काठियावाड़ मंदसोर, कौशाम्बी पुण्ड्रवर्द्धन भुक्ति (उत्तरी बंगाल) तथा मीनपुर भुक्ति (पाटलिपुत्र) के नाम मिलते हैं। पहला नाम वैशाली की मुहर (तीरामुक्त्या उपरिकर अधिकरणस्य) में उल्लिखित है। गुप्त लेखों से इन प्रांतों (भुक्ति) पर शासन करने वाले राज्यपाल के नाम भी प्राप्त होते हैं तथा राष्ट्रीय मौलिक भोगपति तथा गोप्ता शब्दों का प्रयोग उस पद के लिए किया गया है (विस्तृत विवेचन के लिए देखिए—लेखक का ग्रंथ-गुप्त साम्राज्य का इतिहास भाग २) कुमारगुप्त प्रथम तथा स्कन्दगुप्त के लेख इस विषय में अधिक सहायक सिद्ध होते हैं। प्रांतों को जिला (विषय) मे विभक्त किया गया था जिसके सम्बन्ध में विशेष उल्लेख वैशाली की मुहरों तथा दामोदरपुर (उत्तरी बंगाल) के ताम्रपत्रों में मिलता है। इसका अध्ययन यह बतलाता है कि मंत्रीगण पाँच वर्ष के लिए नियुक्त किए जाते थे। नगर के कार्यालय को अधिकरण कहते थे। वैशाली के मुहरों में कुमारामात्य पदवी भी मिलती है। कुमार गुप्त के करम दण्डा शिवलिङ्ग लेख से स्पष्ट प्रकट होता है कि गुप्तकाल में मंत्रीपद वंशानुगत था। चन्द्रगुप्त द्वितीय के मंत्री शिखरस्वामी के पश्चात् उसका पुत्र पृथिवीषेण गुप्त सम्राट् कुमार गुप्त प्रथम के मंत्री पद पर आसीन था।

काठियावाड़ में पर्णदत्त तथा नगर शासक के लिए स्कन्दगुप्त ने चक्रपालित की नियुक्ति की थी। जिसका वर्णन जूनागढ़ के लेख में निम्न प्रकार से मिलता है—

> का शक्तिमेक खल पर्णदत्तो भारस्यतस्यो द्वहन समर्थ।
>
> पूर्व तरस्वी विधि पर्णदत्त नियुज्य राजा धृतिमांस्तथाभूत।

चक्रपालित के लिए लिखा है—

> स सन्निमुक्तो नगरस्य रक्षां विशिष्य पूर्वान् प्रचकार सम्यक्।

यदि मध्ययुग के आरम्भ से ही ताम्रपत्रो का अध्ययन किया जाय तो प्रकट होता है कि राजा सरकारी कर्मचारियो को दान की सूचना देते समय सबको सम्बोधित करता रहा और इसीलिए खालीमपुर, नालंदा, मुगेर आदि ताम्रपत्रो मे अनेक पदाधिकारियो का उल्लेख किया गया है। निम्नलिखित सूची से तत्कालीन स्थिति का पता लग सकता है—

राजा राजानक राजपुत्र, राजामात्य, सेनापति, विषयपति, भोगपति षष्ठाधिकृत, दण्डशक्ति दण्डपाशिक, चोरोद्धरणिक, दौहसाधसाधनिक, दूत, खोल गमागमिक अभित्वरमाण, हस्त्यश्वगोमहिष्यजाविकाध्यक्ष, नौकाध्यक, वलाध्यक्ष, तारिक, शौल्किक, गुल्मिक, आयुक्तक, चाट, भट, ज्येष्ठ कायस्थ, महामहत्तर दशग्रामिक, विषय व्यवहारिन (खालीमपुर ताम्रपत्र), महाप्रभातर, महासामन्त महाक्षपटलिक, रणाधिकृत आदि पदाधिकारियो के नाम। विषय के अन्तर्गत अनेक ग्राम थे जिसका मुखिया महत्तर कहलाता और ग्राम की ईकाई स्वतत्र थी।

राजतत्र व प्रजातत्र प्रणाली

प्रशस्तियो तथा मुद्रा-लेख का अध्ययन यह बतलाता है कि प्राचीन युग मे दो प्रकार के शासन-राजतत्र तथा प्रजातत्र—वर्तमान थे। प्रजातत्र के लिए गण या सघ शब्द का प्रयोग मिलता है। यद्यपि चन्द्रगुप्त मौर्य ने साम्राज्य भावना को प्रोत्साहित किया परन्तु सघ शासन को नष्ट न कर सका। उत्तरी विहार मे वृज्जि सघ इतिहास मे प्रसिद्ध प्रजातत्र था। अशोक के शासनकाल मे वही भावना काम करती रही। उसने राजतत्र को ही वल दिया और उसके प्रभाव से राजतत्र की प्रतिष्ठा भी स्थिर हो गई। साम्राज्य के दवाव मे सघ शासक सिर न उठा सके। अभिलेखो के अनुशीलन से पता चलता है कि राजतत्र के साथ सघशासन भी प्रचलित रहा। ईसा पूर्व सदियो मे भारत मे प्रचलित सिक्को का मुद्रा-लेख इस वात को प्रमाणित करते हैं। यौधेय, कुणिन्द, आर्जुनायन, तथा मालव सघ शासको के सिक्को पर साफ तौर से लेख खुदा है—जैसे यौधेय गणस्य जय, मालवाना गणस्य जय आर्जुनायनाना जय आदि लेख ऊपर लिखे कथन की पुष्टि करते है। मालव गण का उल्लेख तथा यौधेय गण का वर्णन शक नरेश नहपान के नासिक तथा रुद्रदामन के जूनागढ लेखो मे क्रमश पाया जाता है। [ए० इ० भा० ८ वीर शब्द जानोत्सेका विधेयाना यौधेयाना] समुद्र गुप्त के प्रयाग स्तम्भ लेख से पता चलता है कि गुप्त नरेश ने "मालवार्जुनायन यौधेय माद्रकाभीर" सघो को परास्त किया। इसके बाद सघ शासन का अस्तित्व मिट गया। तात्पर्य यह है कि ईसा पूर्व तीसरी सदी से चौथी शताब्दी यानी सात सौ वर्षों तक दो प्रकार के शासन (राजतत्र तथा प्रजातत्र) का उल्लेख अभिलेखो

में पाया जाता है। इसके बाद प्रजातन्त्र राजतन्त्र में विलीन हो गया। मध्ययुग से सब शासकों (सभापति) की कोई पदवी लेखों में नहीं पाई जाती परन्तु साम्राज्य स्थापना के पश्चात् राजाओं की महान् पदवियों का वर्णन मिलता है।

अशोक के लेखों में उन महान पदवियों के नाम नहीं आते हैं जिनका उल्लेख पीछे के लेखों में सर्वत्र पाया जाता है। शक पह्लव राजाओं के सिक्कों पर यूनानी पदवी बसिलियस बसिलियन' का भारतीय अनुवाद महरजस रजरजस महतस अंकित मिलता है। उन्हीं के लिए प्रयाग स्तम्भ लेख में शाहानुशाही पदवी लिखी गयी है। पश्चिमी भारत के शक शासकों के सिक्कों पर महाक्षत्रप की उपाधि मिलती है जो राजा के समान स्वतंत्र पदवी थी। गुप्त काल से राजा की पदवियों का ढंग ही बदल गया। सर्वप्रथम गुप्त राजा महाराज की पदवी से विभूषित था। चन्द्रगुप्त प्रथम ने महाराजाधिराज की उपाधि धारण कर महान सम्राट होने की घोषणा की। लेखों में परमेश्वर चक्रवर्ती या सम्राट भी उसी तरह प्रयुक्त किया जाता था। उसके उत्तराधिकारी चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य ने सम्राट् की पदवी के साथ परमभागवत की धार्मिक उपाधि ग्रहण की। इंदौर के ताम्रपत्र में सर्वप्रथम गुप्त सम्राट के लिए परमभट्टारक महाराजाधिराज की उपाधि मिलती है और उस समय से यह प्रचलित होकर पूर्व मध्यकाल की प्रशस्तियों में प्रयुक्त है। हर्षवर्धन तथा मौखरि लेखों में राजा के लिए महाराजाधिराज की पदवी ही मिली है लेकिन पिछले गुप्त तथा अन्य समकालीन राजाओं के लिए उससे भी महान पदवी "परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर" का उल्लेख कर और उनकी रानियों के लिए भी परम भट्टारिका लिखकर महान राजा होने का व्यर्थ दावा किया गया है। पूर्व मध्यकाल में सारा देश छोटे छोटे राज्यों में बटा था अतः उन छोटे शासकों के लिये बड़ी उपाधि अर्थ हीन सिद्ध होती है। केवल पदवी धारण करने से महान सम्राट नहीं बन सकते। इसी कारण लेखों में उल्लिखित पदवियां निरर्थक हैं उदाहरणार्थ परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर जीवित गुप्त ऐसे छोटे राजा के लिए प्रयुक्त है। वलभी दानपत्र में साधारण शासक की पदवी परममाहेश्वर परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर चक्रवर्ती उल्लिखित है (ए इ पृ (७)। गुप्त राजाओं के वास्तविक सम्राट होने पर भी इस महान उपाधि के धारण करने का अवसर न मिल सका जिसको छोटे छोटे राजाओं ने ग्रहण किया था।

लेखों से पता चलता है कि सारा राज्य कई प्रान्तों में बटा रहता था जिनको 'भुक्ति' कहते थे। 'भुक्ति' को छोटे जिलों में बांटते थे जिनको प्रशस्तियों में

'विपय' कहा गया है। शासन के सुप्रबध के लिए इसको भी छोटे भागो मे वाटा गया था। जो "ग्राम" के नाम से पुकारे जाते हैं। केन्द्र मे राजा स्वय शासन करता था और उसके सलाह के लिए मत्रिपरिपद नियुक्त था। जिसे अशोक के प्रधान शिलालेखो मे परिपद कहा गया है।

अशोक ने कलिग लेख मे कहा है "मेरी प्रजा मेरे बच्चो के समान है और मैं चाहता हू कि सब को इस लोक तथा परलोक मे सुख तथा शाति मिले।" यह प्राचीन राजाओ का आदर्श था जिसके कारण राजा तया प्रजा मे सुख शाति वनी रहती थी।

धौली के पृथक शिलालेख मे अशोक ने कहा था—

"सवे मुनिसे पजा ममा। अथा पजाये इच्छामि हक
कित सवेन हित सुखेन हिदलोकिके पाललोकिके"

उसके पश्चात भी राजा सदा प्रजा चिन्तन मे लगे रहते थे। जूनागढ के लेख मे महाक्षत्रप रुद्रदामन ने उल्लेख किया है कि मत्रियो के विरोध करने पर भी प्रजा के सुख तथा भलाई के लिए निजी धन से उसने बाध बधवाया था। (अपीड-यित्वा करविष्टि प्रणय क्रियाभि पौरजानपद जन स्वस्मात्कोशा महता त्रिगुण दृढतर विस्तारायाम सेतु विधाय सर्वतटे सुदर्शन तर कारितमिति (ए० इ० ८पृ० ४२) उसी स्थान के गुप्त लेख से पता चलता है कि स्कन्द गुप्त भी पश्चिमी प्रात के योग्य शासक के लिए चिन्ता करता रहा है। (सर्वेषु देशेषु विषाय गोप्तृन सचिन्तया मास बहु प्रकारम्) इस प्रकार राजाओ के गुण के सम्बन्ध मे हमारी जानकारी बढती है।

इतना ही नही, पाल नरेश धर्मपाल के खालीमपुर लेख से विदित होता है कि उसके पिता गोपाल ने 'मात्स्यन्याय' को समाप्तकर वगाल मे शाति की स्थापना की। इसीलिए जनता ने उन्हें चुनकर पालवश का शासक बनाया (ए० इ० ४)।

मात्स्यन्यायमुपोहितु प्रकृतिभि लक्ष्मा कर ग्राहित
श्री गोपाल इति क्षितिश शिरशा चूडामणि तत्सुत।

इन सब विवरणो से राजा के प्रजाहित चिन्तन तथा आदर्श राजशासन की वातो का परिज्ञान होता है।

अभिलेखो में उल्लिखित पदाधिकारी

इस की पुनरावृति की आवश्यकता नही है कि पूर्व मध्ययुग से ताम्रपत्रो मे पदाधिकारियो के अधिक नाम मिलते हैं। इस का एक मात्र कारण यह था दान करते समय अग्रहार पर राजकीय अधिकार दानग्राही को सौंप दिया जाता था और दान भूमि से प्रत्येक प्रकार का कर दानग्राही ग्रहण करता। इसलिए यह आवश्यक

था कि सभी अधिकारियों को दान भूमि के सम्बन्ध में सूचना मिल जाय और कालान्तर में उस क्षेत्र से कर ग्रहण करने का प्रयत्न न किया जाय। इसी प्रसंग में दान कर्ता शासक की पदवियाँ उल्लिखित हैं तथा पदाधिकारियों की चर्चा आज्ञा प्रदान करते समय की गई है। गुप्त लेख वधाकी की मुहरें तथा पालयुग की प्रशस्तियों में भी अधिक नाम मिलते हैं। कन्नौज के राजा चन्द्रदेव के अभिलेख में यही नाम मिलते हैं (ए इ भा १४ पृ १४) अक्षर क्रम से निम्न लिखित उपाधि नाम दिए जा रहे हैं—

अन्तःपुरिक—महल का प्रबन्धक (पहले इसके लिए प्रतिहार शब्द का प्रयोग किया जाता था) अशोक के लेख में "स्त्रीध्यक्ष महामात्र' का भी यही कार्य था।

अन्तपाल—सीमा अधिकारी यह साम्राज्य की सीमा की निगरानी करता था।

अन्त महामात्र—सीमा सम्बन्धी राजनीति-विचारक।

अग्रहारिक—दान तथा अग्रहारभूमि का पदाधिकारी उसे 'दानाध्यक्ष' भी कहा गया है। अशोक के लेख में धर्ममहामात्र के नाम से उल्लेख मिलता है।

आयुधागाराध्यक्ष—शस्त्रशाला का अध्यक्ष।

अक्षपटलिक—लेख प्रमाण का सुरक्षित करने वाला। मध्ययुग के लेखों में इसी को महाक्षपटलिक' कहा गया है।

आकराध्यक्ष—खान का निरीक्षक।

अश्वाध्यक्ष—घुड़सवारों का उच्च अधिकारी। पूर्व मध्ययुग के अभिलेखों में 'भटाश्वपति' का नाम मिलता है जो पैदल तथा अश्वारोही टुकड़ी का अधीक्षक होता था।

आटविक—जंगली जातियों का मुख्य।

आमात्य—सचिव कुमारामात्य से तात्पर्य राजकुमार के सचिव से है जो राज्यकार्य की सहायता करता था।

उपरिक— } ग्राम का पति [वर्तमान राज्यपाल गुप्त मुद्राओं के उपरिक महाराज]
[illegible]— } जमीन नापने वाला

करणिक अथवा कारणिक—हिसाब देखने वाला (वर्तमान मुनीम)।

कर्मान्तिक—कारखाने का उच्च अधिकारी।

कुप्याध्यक्ष—जंगल की पैदावार का निरीक्षक।

करितुरगपत्तनाकर स्थान विषय गोकुल प्रमुखाधिकार पुरुषान्——जिला का एक अधिकारी जो शहर के हाथी, घोडे, गाय तथा कान का देखरेख करता था (ए० इ० १४ पृ० १९४)

कुमारामात्य——प्रातपति का मत्री। प्रातपति के पद पर कुमार नियुक्त किया जाता था अतएव मत्री को कुमारामात्य कहा गया। गुप्त युग से ही लेखो तथा मुद्राओ मे यह शब्द आता है। अतएव राजकुमार का मत्री इसे मानना चाहिए। कुछ विद्वान् कुमार के सदृश इसका अधिकार समझते हैं।

कोटपाल——दुर्ग का अधिकारी——मध्ययुग के लेखो मे यह शब्द अधिकतर पाया जाता है। (इसका रूप मुसलिम युग मे कोतवाल हो गया)

खोल——खालीमपुर ताम्रपत्र मे प्रयुक्त। वास्तविक तात्पर्य अज्ञात है।

गमागमिक——राजकीय आज्ञा को शीघ्र ले जाना तथा वापिस लेने वाला अधिकारी (खालीमपुर लेख)।

ग्रामपति——ग्राम का मुखिया (इसे महत्तर भी कहते थे) दोनो शब्द लेखो मे एक ही अर्थ मे प्रयुक्त हुए हैं।

ग्रामिक——ग्राम के मुख्य पदाधिकारी——यह महत्तर से सर्वथा भिन्न कर्मचारी था। पाल लेखो मे 'दश ग्रामिक' शब्द मिलता है। सम्भवत वह राजकीय पदाधिकारी दस ग्रामो का प्रबधक था। ग्रामपति से वह भिन्न व्यक्ति है।

ग्रामकूट——मध्य युग के लेखो मे अधिक प्रयुक्त है। यह ग्राम का कोई उच्च अधिकारी होगा।

गोऽध्यक्ष——गाय का निरीक्षण राजकीय कार्य समझा जाता था। पशुधन की ओर भी शासक का ध्यान था। पाल लेखो से दूसरा शब्द "गोकुल प्रमुखाधिकारी" मिलता है। जिसका तात्पर्य वही है। गो का निरीक्षक।

गोप——ग्राम का लेखा रखने वाला। यह ग्रामपति की सहायता किया करता था।

गोप्ता——प्रातपति (सर्वेषु देशेषु विधाय गोप्तृन्) स्कन्द का जूनागढ लेख।

गोल्मिक या गुल्मिक——जगल का अधिकारी।

चाट——पुलिस का सिपाही।

चौरोद्धरणिक——चोर को पकडने वाला तथा उसकी परीक्षा करने वाला।

ज्येष्ठ कायस्थ——ताम्रपत्रों का लेखक कायस्थ कहलाता था गावो का प्रमाण-पत्र रखने वाला। प्रथम कायस्थ शब्द भी दामोदरपुर ताम्रपत्र लेख मे

के बिगडने से गाव का रक्षक दुसाध कहलाया और बाद मे एक जाति बन गई ।

धर्ममहापात्र—अशोक के पाचवे शिलालेख मे इस पदाधिकारी का नाम आया है । वह राजकीय दान तथा धार्मिक कृत्यों का प्रबधक था ।

ध्रुवाधिकरण—भूमिकर का ग्रहण कर्ता ।

नगराध्यक्ष—शहर का निरीक्षक ।

नगर श्रेष्ठिन—व्यवसायी सघ का अध्यक्ष ।

नौकाध्यक्ष—जहाजरानी का प्रधान अधिकारी ।

नैमित्तिक—पूर्वमध्य युग मे राजदरबार का ज्योतिषी । वह यात्रा या भविष्य सम्बन्धी बाते कहा करता था (भविष्यवाणी) ।

परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर—शासक की पदवी ।

प्रतिहार—राजकीय महल का प्रबधक । पिछले लेखो मे "महाप्रतिहार' से इसी का तात्पर्य समझना चाहिए ।

प्रमातार—भूमि का मापक—(सर्वे करने वाला)

प्रमातृ—न्यायाधीश ।

प्रातपाल—प्रदेश का राज्यपाल ।

पुरोहित—पूर्वमध्य युग के लेखो मे यह राजा के धार्मिक कृत्यो का करने वाला। यो तो वैदिक काल मे पुरोहित का नाम आता है परन्तु पाचवी सदी तक के लेखो मे कम पयुक्त हैं ।

पुस्तपाल—प्रमाण पत्रो का सग्रह कर्ता । यह "अक्षपटलिक" का सहायक था ।

बालाधिकृत—सेना का स्वामी । "महाबलाधिकृत" सेना का सर्वोच्च अधिकारी । इसकी समता 'सेनापति' तथा 'महा सेनापति' से क्रमश किया जाता है ।

बलध्यक्ष—सेना का छोटा अधिकारी (एक टुकडी का स्वामी) ।

विनियुक्तक—विशेष कार्य के निमित्त नियुक्त अधिकारी । तदायुक्तक भी इसी से समता रखता है । सम्भवत वह जिला के प्रबध मे सहायक था । आयुक्तक से राज्य के साधारण कार्य का निरीक्षक समझना चाहिए ।

विषयपति—जिलाधीश

विषय पुरुषान्—जिला के साधारण कर्मचारी

विषय व्यवहारिन—जिला का न्यायाधीश

भट—सेना का सिपाही (सैनिक)

भोगपति—गुप्त तथा पाल लेखों में प्रांतपति के लिए प्रयुक्त।

भाण्डागारिक—सेना की सामग्री पहुँचाने वाला कर्मचारी इसे रण 'भाण्डागारिक' भी कहते थे।

भिषग—गुप्त-पाल लेखों में प्रयुक्त

मंत्री—सामान्य केन्द्रीय सरकार से सम्बन्धित

महत्तर—गाँव का मुखिया

महादण्डनायक
या
महारौद्र साधनिक
या
महा मंत्री
महादण्डनायक
महा महत्तर
महाक्षपटलिक
महा भाण्डागारिक
महा प्रमातार
महा प्रतिहार
— इन पदाधिकारियों का उल्लेख 'महा' शब्द को छोड़कर ऊपर किया गया है। मध्ययुग के लेखों में पदवियों को उच्च दिखलाने के लिए महा शब्द जोड़ दिया गया है परन्तु कार्य में समता है।

महासेनापति—सेनापति के सदृश पद

महासामंत—सामंत (अधीनस्थ राजा या शासक) के समान ही पद।

महामात्र—प्रधान मंत्री

युक्त—साधारण अर्थ में सहयोगी—अशोक के लेख में धर्ममहामात्र के अधीनस्थ कर्मचारी कहा गया है। खालीमपुर ताम्रपत्र में युक्तक शब्द उसी अर्थ में प्रयुक्त है।

राज, राजानक, राणक या राज राजन्यक — पालवंशी लेखों (खालीमपुर ताम्रपत्र) में यह पदवियाँ अधीनस्थ सामंत के लिए प्रयुक्त हैं। उसी वंश के मुंगेर दान पत्र में राणक शब्द उल्लिखित है। 'राज' भागलपुर ताम्रपत्र तथा 'राज राजन्यक' बानगढ़ की प्रशस्ति में मिलता है। इन सभी शब्दों का प्रयोग (छोटे शासक) के लिए है। देवपारा के अभिलेख में व्यापारिक संघ के मुख्य की पदवी के रूप में उल्लिखित है। सम्भवतः आर्थिक क्षेत्र में सभी सामंतों ने संघ तयार कर लिया था।

राजपुत्र—राजा का पुत्र यानी राजकुमार। प्राचीन समय मे राजकुमार प्रान्त का स्वामी प्रान्तपति हुआ करता था। अशोक भी सम्राट् होने से पूर्व उज्जैन तथा तक्षशिला का राज्यपाल था। पूर्व मध्ययुग के लेखो मे केन्द्रीय सरकार के पदाधिकारियो की सूची मे राजपुत्र का उल्लेख मिलता है। सम्भवत वह शासक की सहायता किया करता था।

राजामात्य—राजा का मत्री (केन्द्रीय प्रशासन से सम्वन्धित)

राजस्थानीय—वैदेशिक विभाग का मत्री।

राजुक—प्रान्त का राज्यपाल। अशोक के शिलालेख मे यह नाम मिलता है पर वास्तविक तात्पर्य विवादास्पद है।

रानी—राजा की पत्नी। किस पत्नी को रानी कहा जाता था यह कहना कठिन है। पट्टमहिषी के अतिरिक्त अन्य स्त्री को रानी से सम्वोधित किया जाता होगा। पूर्व मध्ययुग के पदाधिकारियो की सूची मे रानी का उल्लेख मिलता है।

लक्षणाध्यक्ष—सिक्को का अध्यक्ष

विनय स्थिति स्थापक—मध्ययुग के लेखो मे यह पदवी धार्मिक कृत्य के प्रवधक मत्री के लिए प्रयुक्त मिलता है। अशोक के लेख मे इसे 'धर्म महा-मात्र कहा गया है।

सन्निधातृ—महल का देख रेख करने वाला कर्मचारी। पिछले अभिलेखो मे इसके स्थान पर प्रतिहार शब्द का प्रयोग मिलता है।

सामत—राजा के अधीनस्थ शासक। पूर्व मध्ययुग मे इसे "महासामत" कहा गया है।

सार्थवाह—व्यापारिक सघ का अगुआ जो विदेश से व्यापार करता था।

सेनापति—सेना का प्रधान। "महा सेनापति" शब्द भी उसी के लिए प्रयुक्त मिलता है।

सन्धि विग्रहिक या महा सन्धि विग्रहिक—युद्ध तथा सधि का निर्णय करने वाला पदाधिकारी। समुद्रगुप्त के प्रयाग स्तम्भ लेख मे वर्णन आता है कि हरिषेण सधि विग्रहिक के पश्चात् कुमारामात्य या महादण्डनायक के पदो पर कार्य करता रहा।

शौल्किक—चुगी के विभाग का अध्यक्ष। लेखो मे चुगीघर को मण्डपिका कहा गया है। उस कर (हाटक) को ग्रहण कर सरकारी कोष मे भेजना उसका मुख्य कार्य था। कौटिल्य ने इसे शुल्काध्यक्ष कहा है।

षष्ठाधिकृत—इस शब्द का अर्थ है छठें भाग का स्वामी। यानी वह

कर्मचारी राजकीय कर (छठें भाग) को वसूल करता था। यों तो साहित्य में इस बात का अत्यधिक प्रमाण है कि राजा पदाधिकार के छठें भाग को ग्रहण करता था परन्तु लेखों में ऐसे पदाधिकारी का नाम केवल ताम्रपत्र में मिलता है। अशोक के लुम्बिनी लेख में 'अठभगिए च' (आठवा भाग) का उल्लेख आता है अशोक ने कर को घटा कर आठवा भाग कर दिया। तात्पर्य यह है कि इससे अधिक राजकीय कर (छठा भाग) था। खालीमपुर के ताम्रपत्र में यह पदवी मिलती है।

हस्त्यश्वगोमहिष्यजाविकाध्यक्ष—खालीमपुर ताम्रपत्र में पाल युग के एक पदाधिकारी का नाम है यह पशुधन की देख-रेख करता था। हाथी घोड़ा गौ भैंस बकरी आदि का अध्यक्ष।

क्षत्रप—पश्चिम भारत (सौराष्ट्र गुजरात मालवा) के शक राजा क्षत्रप पदवी से विभूषित किए गए थे। यह ईरानी पदवी क्षत्रपावन का विकृत रूप है। उसका संस्कृत रूप क्षत्रप है। प्राकृत में खतप मिलता है। क्षत्रप महाक्षत्रप (स्वतंत्र शासक) के अधीन सहायक के रूप में काम करता था। मुद्रा लेखों में यह पदवियां सर्वत्र पाई गई हैं। कार्ले तथा नासिक के गुहा लेख में नहपान क्षत्रप ही कहा गया है, परन्तु वह स्वतंत्र रूप से शासन करता था। [वधास मासे राओ क्षहरातस क्षत्रपस नहपानस] (नासिक गुहा) तथा क्षहरातस खतपस नहपानस (कार्ले गुहा) मिलता है। जुन्नार गुहा लेख में 'महाक्षत्रपस स्वामिनहपानस' उत्कीर्ण है। (ए इ भा ८ प ८२) अतएव यह कहा नहीं जा सकता कि क्षत्रप परतंत्र शासक तथा नरेश की पदवी थी। महाक्षत्रप या क्षत्रप उपाधियों के सम्बन्ध में अंतिम निर्णय करना कठिन है। दोनों पदवियां स्वतंत्र शासक के लिए उपयुक्त हैं। पर क्षत्रप मुद्रा लेखों से पता चलता है कि महाक्षत्रप क्षत्रप से बड़ी उपाधि थी। किन्तु कनिष्क का अधीनस्थ राज्यपाल खरपल्लाना सारनाथ प्रतिमा लेख में 'महाक्षत्रप' कहा गया है।

क्षेत्रप—पाल प्रशस्तियों में क्षेत्र का मापक इस पदवी से पुकारा जाता था।

क्षेत्रपाल—उत्तरवर्ती क्षेत्रप के सदृश भूमि सम्बन्धी कार्य कर्ता। निरीक्षक।

प्राचीन माहित्य के अध्ययन मे भागधुक (राजकीय कर को सग्रह करने वाला) तथा समाहर्ता (उपहार ग्रहण करने वाला) के नाम (रत्निन की सूची मे) मिलते है। कृपक तथा पशुपालक मे करग्रहण किया जाता था। वैदिक साहित्य मे गाय तथा घोडो को कर स्वरूप मे देने का विवरण है। अर्थशास्त्र तथा यूनानी लेखको के वर्णन मे पता लगता है कि पैदावार का पच्चीस फी मदी किसानो से 'कर' वसूल किया जाता था जिसे अशोक ने रुम्मनदेई क्षेत्र के निवासियो के लिए कम कर दिया था। स्मृतिकारो ने एक प्रकार के कर का उल्लेख नही किया है। वह आठ से तेतीस प्रति शत कहा गया है (मनु ८, १३०, गौतम १०, २४–२७, अर्थशास्त्र ५, २)। सम्भवत भूमि के उर्वरा होने के अनुसार ही कर मे असमानता थी [धान्यानामष्टमो भाग पष्ठोद्वादश एव वा-मनु ७ १३०) प्राचीन समय मे ब्राह्मण तथा मदिर आदि सस्थाओ को दान देते समय भूमि का स्वामित्व भी राजा के पास न रह पाता था। ग्राम मे अन्य व्यक्तियो की भूमि उन्ही के पास रह जाती थी पर सारे ग्राम का कर दान ग्राही को देना पडता था [यूय समुचित भाग भोग कर हिरण्यादि प्रत्यायोपनयन करिष्यथ आज्ञा श्रवणविधेयाश्च भविष्यथ—का० इ० इ० भा० ३ पृ० ११८, १२६, १३३, ए० इ० २ पृ ३०४, भा० १९ पृ० १५]

अभिलेखो में कर सम्बन्धी चर्चा

अभिलेखो का वर्गीकरण करते समय यह कहा जा चुका है कि अधिकतर लेख दान से सम्बन्ध रखते है और ईसवी सन् की छठी शताब्दी से ताम्रपत्रो मे ऐसा विवरण पाया जाता है। इससे पूर्व सदियो मे दान का वर्णन नही के बराबर है। जहाँ दान का उल्लेख है उस स्थान पर दानग्राही को कर से मुक्त करने का विवरण दिया गया है। अभिलेखो मे विभिन्न कर के नाम यथास्थान मिलते हैं परन्तु उसकी मात्रा का अनुमान छठी सदी पूर्व सदियो मे नही लगाया जा सकता। केवल कर शब्द से ही सतोष करना पडता है।

अशोक के रुम्मनदेई स्तम्भ लेख मे वर्णन आता है कि सम्राट अशोक ने लुम्बिनी की यात्रा की तथा उसी की याद मे राजकीय कर घटा कर आठवा भाग (अठ-भागियेच) कर दिया। अर्थ शास्त्रियो ने पैदावार का छठा भाग भूमि कर के रूप मे लेने का वर्णन किया है। मौर्य काल मे भी यही अनुपात रहा होगा केवल रुम्मनदेई नेपाल तराई भूभाग मे अशोक ने इसे कम कर दिया और उस भूभाग की जनता आठवा भाग ही कर दिया करेगी। ईसवी सन् की दूसरी सदी के लेख मे (जूनागढ शिला लेख) महाक्षत्रप रुद्रदामन ने स्पष्टतया उल्लेख किया है कि वह कर (भूमि-कर) तथा विष्टि (बेगार) से

प्रजा का पीड़न नहीं करता था (अपीडयित्वा कर विष्टि प्रणयक्रियाभिः—ए इ भा ८ पृ ४२)। अर्थात् सुदर्शन झील में बांध को सुदृढ़ करने के लिए उसने अस्थायी कर नहीं लगाया और अपने कोष से ही उसका निर्माण किया था। सातवाहन नरेश गौतमीपुत्र सातकर्णी के नासिक लेख में सबदान को कर मुक्त करने की बात कही गई है (एतस चस खेतस परिहार वितराम अपावेसं अनवमस अलोन खादकं अरठसविनयिकं सवजात पारिहारिक च) वासिष्ठी पुत्र पुलमावी के कार्ले प्रशस्ति में "सकरेण् करुदयम मेम —का उल्लेख किया गया है यानी उस भाग का राजकीय कर भी दान के साथ दिया गया था (ए इ भा ७ पृ ६१)। उस नरेश ने अपने पिता को धर्मानुसार कर ग्रहण करने वाला शासक कहा है (धर्मोपार्जित-कर-विनियोग-करस नासिक लेख ए इ भा ८ पृ ६)। गुप्त युग के लेखों में भी केवल 'कर' शब्द का उल्लेख पाया जाता है। प्रयाग स्तम्भ लेख में वर्णन है कि सम्राट् समुद्रगुप्त ने उत्तरी भारत के सामंतों को पराजित किया और दक्षिण के विजित शासक 'कर' देने के पश्चात् मुक्त कर दिए गए। (सर्व कर दानाज्ञाकरण प्रणामागमन परितोषित-प्रचण्ड-शासनस्य—प्रयागस्तम्भ लेख)।

गुप्तों के समकालीन दक्षिण के वाकाटक नरेशों ने प्रशस्तियों में किसी विशेष कर का नाम नहीं दिया है। परन्तु प्रवरसेन द्वितीय का इंदोर ताम्रपत्र तथा प्रभावती गुप्ता के वाकाटक लेखों में विभिन्न नामों द्वारा ग्रहीत कर से मुक्त करने की चर्चा मिलती है। उस दान को अकरदायि (कर से रहित) अचरासन (उस भूमि में चरागाह नहीं रह सकता) अपशुमध्य (उस भूमि में पशु वध नहीं हो सकता) अपुष्पक्षीर संदोहः (उस भूमि से पुष्प या दूध के रूप में ग्रहित कर नहीं लिया जायगा) अलवण क्लिन्न क्रेणि खनक (उस भूमि से नमक खान से नहीं निकाला जायगा या वहां शराब नहीं बनाया जा सकता) तथा अचटभट प्रावेश्य (जिस भूमि में सैनिक या सिपाही प्रवेश नहीं कर सकता) कह कर वर्णित किया गया है। जो भूमि दान में दी गई है उसमें खान से निकली कोई अमूल्य वस्तु (सोपनिधि) दानग्राही को मिलती थी और गड़े धन का मालिक (सनिधि) भी वही व्यक्ति समझा जाता था। (ए इ १५ पृ ४१ तथा भा २४ पृ ५२ इ हि क्वा भा १९ पृ १८२)

गुप्त युग के पश्चात छठी सदी के लेखाम दामोदरपुर तथा फरीदपुर (बंगाल) के ताम्रपत्रों में स्पष्टतया उल्लेख मिलता है कि छठा भाग ही राजकीय कर था जिसे दानग्राही मुक्त कर दिया गया था। जिन शब्दों से यह तात्पर्य निकाला जाता है—(धर्म परत्वापादित धर्मषड्भाग भाक् या धर्मषड्भाग-लाभ) ऐसे चार

जिटर या वसाक ने राजकीय कर (छठें भाग) का अर्थ व्यक्त किया है। धर्मषड् भाग से राजा के छठे भाग का तात्पर्य है और राजा कर की तरह धर्म (पुण्य) के छठें भाग को भी ग्रहण करता है। पाल वशी खालीमपुर ताम्रपत्र मे इस कर को वसूल करने वाला पदाधिकारी "षष्ठाधिकृत" कहा गया है (सेन—बगाल के अभिलेख स० १)। यानी दसवी सदी तक पैदावार का छठा भाग ही राजकीय कर समझा जाता था।

ताम्रपत्रो मे दान की भूमि को सभी कर से मुक्त करने का वर्णन मिलता है। हर्षवर्धन के समय से विभिन्न करो (स्थायी या अस्थायी) के नाम मिलते हैं। भूमि-कर नकद या सामान के रूप मे दिया जाता था। कुछ अस्थायी कर थे और कुछ चुगी या बेगार के स्वरूप मे ग्रहण किये जाते थे।

भागकर—इससे राजकीय कर छठे भाग का बोध होता है। कई लेखो मे उद्रग कह कर भी इसका अभिप्राय व्यक्त किया गया है। जातक मे इस भाग लेने वाले को द्रोणमापक कहा गया है।

भोगकर—यह कर 'भाग' से भिन्न था। सम्भवत' स्थायी रूप मे कर को भाग कहते थे और समयानुकूल भूमि जोतने पर कृषक को कर देना पडता था जिसे भोग कह सकते है। उपरि शब्द भी इसी तरह के कर का बोधक है।

सधान्य हिरण्य—इससे तात्पर्य यह था कि भूमि कर का कुछ अश धान्य रूप मे तथा कुछ नकद दिया जाता था। लेखो मे हिरण्य राजकीय कर के लिए ही प्रयुक्त है (जहाँ नकद कर दिया जाता था)। गुर्जर प्रतिहार लेख मे वर्णन आता है कि ग्राम के आय से ५०० द्रम मदिर मे दिए गए थे। (इ० ए० भा० १६ पृ० १७४) उडीसा के लेख (ए० इ० १२ पृ० २०) तथा दक्षिण की प्रशस्ति मे भी नकद सिक्का कर मे देने का विवरण है (सा० इ० इ० म० ४, ५) खेत की पैदावार मे राजा को कुछ सम्बन्ध न था। सभी लेखो मे 'हिरण्य' का अधिक प्रयोग मिलता है।

हाटक—पालवशी दानपत्रो मे इस शब्द से चुगी का तात्पर्य समझा जाता है। हाट (बाजार) से जो कर लिया जाय वह हाटक कहलाता।

अचाटभट प्रावेश्य—इन शब्दो के प्रयोग से एक प्रकार के अस्थायी कर का बोध होता है जो ग्राम मे सैनिक तथा पुलिस सिपाही (चाट भट) के प्रवेश करने पर ग्रामवासियो को देना पडता था। इसमे उनके भोजन सम्बन्धी व्यय सम्मिलित है। यह यदा कदा देना पडता था।

दशापराध—वलभी लेखों में इसका प्रयोग मिलता है। यह अस्थायी दण्ड था जो अपराधी से वसूल किया जाता था।

भूतवात प्रत्याय—वलभी तथा दक्षिण भारत के राष्ट्रकूट लेखों में इस अस्थायी कर का उल्लेख मिलता है। भूतवात से सुरक्षित (आयात) तथा निर्गत वस्तुओं पर लगाए गए कर का बोध होता है। कुछ विद्वान् इसे भूतप्रेत को हटाने के लिए लगाए टैक्स (कर) से तात्पर्य समझते हैं। स्यात् ग्राम में भूत चाण्डाल तथा प्रेत की स्थिति से लोगों को भय बना रहता था जिसे हटाने के लिए पूजा-पाठ या तर्पण किया जाता होगा। उसी काम के व्यय को भूतवात कहते थे।

विष्टि-बेगार—जिस काम की मजदूरी न देना पड़े। जो गरीब व्यक्ति अस्थायी कर नहीं दे सकता वह बेगार देता था। इस प्रकार स्थायी तथा अस्थायी कर के नाम विभिन्न लेखों में आता है। सभी कर एक लेख में भी उल्लिखित हैं (ए इ १ पृ ८८)

दानपत्रों में निविधर्म या 'भूमिछिद्रन्याय' शब्दों का प्रयोग स्थायी ढंग के दान के लिए किया गया है। जो व्यक्ति बंजर भूमि को जोतकर उपजाऊ बना लेता वह उसका स्थायी मालिक हो जाता था। भूमिछिद्र न्याय उसी अर्थ में प्रयुक्त है यानी स्थायी स्वामित्व। उस दान को वापस लेने में पाप लगता था। समस्त कर दानग्राही ही वसूल कर सकता था। उस भूमि से राजा को (दान कर्ता को) सभी प्रकार की आय से हाथ धोना पड़ता था। राजा अपना स्वामित्व दानकर्ता को अर्पित कर देता। सम्भवतः कलिंग में इस तरह की दान प्रणाली का अभाव पाया जाता है। एक लेख में 'कर-शासन' शब्द का प्रयोग मिलता है जिसका तात्पर्य यह है कि दानग्राही को उस भूमि का कर राजकोष में जमा करना पड़ेगा। (ए इ २९ पृ १९०)

अध्याय ६

प्राचीन भारतीय अभिलेखों में वर्णित समाज

भारतीय समाज की सर्व प्रमुख सस्था को ''वर्णाश्रम' कहते है जिसके आधार पर हिन्दू समाज अवलम्बित है। भारत के उन्नयन तथा गौरवमय जीवन का वहुत कुछ श्रेय इसी सस्था को हैं। इसके उत्पत्ति तथा विकास के प्रसग मे दो मत व्यक्त किए गए हैं-जीवविद्या तथा दार्शनिक। किसी भी पक्ष के विपय मे विचार करना हमारा उद्देश्य नही है। इतना कहना पर्याप्त होगा कि वैदिक कालीन वर्ण कालान्तर मे जाति का वोधक हो गया। स्मृतियो मे चार वर्णो के नाम मिलते हैं—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र जिसमे प्रथम तीन को 'द्विज' कहा गया है। भारतीय अभिलेखो का उद्देश्य वर्णाश्रमधर्म का वर्णन उपस्थित करना नही था केवल शासन या दान के प्रसग वश वर्ण के नाम उल्लिखित मिलते हैं। मौर्य सम्राट अशोक ने लेखो मे यह विचार व्यक्त किया था कि समाज मे ब्राह्मणो का दर्शन करना तथा दान देना श्रेयस्कर है [वाम्हण समणान सावुदान। ब्रम्हण समणान सपटिपति, वाम्हण-समणान दसणे च दाने। शिलालेख ३, ४, ८]

वर्णाश्रम सस्था

दक्षिण भारत मे मौर्य राजाओ के उत्तराधिकारी सातवाहन नरेश गर्व के साथ अपने को ब्राह्मण कहते थे तथा नासिक लेख मे क्षत्रियो (शत्रु) के मान मर्दन का विवरण भी उपस्थित किया गया है। गौतमी पुत्र शातकर्णि अपने पुत्र पुलमावी के लेख मे ''एक वम्हण'' कहा गया है तथा ''खतिय-दपमान मदनस'' का उल्लेख भी है (नासिक गुहा लेख) उसके समकालीन क्षत्रप राजा नहपान के लेखो मे दान के प्रसग मे ब्राह्मण का नाम मिलता है। (देवान ब्राह्मणाना च कर्षापण सहस्राणि सतरि-दिन। देवताभ्य ब्राह्मणेभ्य पोडश ग्राम देन-नासिक का लेख) इस प्रकार समाज मे तथा दानग्राही के नाते लेखो मे ब्राह्मणो

दशापराध—वलभी लेखों में इसका प्रयोग मिलता है। यह अस्थायी दण्ड था जो अपराधी से वसूल किया जाता था।

भूतवात प्रत्याय—वलभी तथा दक्षिण भारत के राष्ट्रकूट लेखों में इस अस्थायी कर का उल्लेख मिलता है। भूतवात से सुरक्षित (आयात) तथा निर्यात वस्तुओं पर लगाए गए कर का बोध होता है। कुछ विद्वान् इसे भूतप्रेत को हटाने के लिए लगाए टक्स (कर) से तात्पर्य समझते हैं। स्यात् ग्राम में भूत चाण्डाल तथा प्रेत की स्थिति से लोगों को भय बना रहता था जिसे हटाने के लिए पूजा-पाठ या समर्पण किया जाता होगा। उसी कार्य के व्यय को भूतवात कहते थे।

विष्टि-बेगार—जिस कार्य की मजदूरी न देना पड़े। जो गरीब व्यक्ति अस्थायी कर नहीं दे सकता वह बेगार देता था। इस प्रकार स्थायी तथा अस्थायी कर के नाम विभिन्न लेखों में आता है। सभी कर एक लेख में भी उल्लिखित हैं (ए इ १ पृ ८८)

दानपत्रों में निधिसर्ग या 'भूमिछिद्रन्याय' शब्दों का प्रयोग स्थायी ढंग के दान के लिए किया गया है। जो व्यक्ति बंजर भूमि को जोतकर उपजाऊ बना लेता वह उसका स्थायी मालिक हो जाता था। भूमिछिद्र न्याय उसी अर्थ में प्रयुक्त है यानी स्थायी स्वामित्व। उस दान को वापस लेने में पाप लगता था। समस्त कर दानग्राही ही वसूल कर सकता था। उस भूमि से राजा को (दान कर्ता को) सभी प्रकार की आय से हाथ धोना पड़ता था। राजा अपना स्वामित्व दानकर्ता का अर्पित कर देता। सम्भवतः कलिंग में इस तरह की दान प्रणाली का अभाव पाया जाता है। एक लेख में 'कर-शासन' शब्द का प्रयोग मिलता है जिसका तात्पर्य यह है कि दानग्राही को उस भूमि का कर राजकोष में जमा करना पड़ता। (ए इ २९ पृ १६७)

निरत' कहा गया है—

वर्णानान् प्रतिष्ठापयता स्वधर्मे

(इ० ए० २१ पृ० २५५)

पालवशी आगागाद्दी लेख मे तृतीय विग्रहपाल चारो वर्णों का सरक्षक कहा गया है—चातुर्वर्ण्य समाश्रम (वही पृ०९९) । इसी के सदृश उडीसा का राजा क्षेमनकर "वर्णाश्रम परमोपासक" पदवी से विभूषित है। सक्षेप मे कहा जा सकता है कि समाज को विघटन से बचाने के लिए शासको ने वर्णाश्रम धर्म (पालन करने के निमित्त) का समादर करने की आज्ञा प्रकाशित की। गुप्त युग से पूर्व विदेशी आक्रमणकारी भारतीय समाज मे विलीन हो गए। ७ वी सदी मे ईस्लाम का आगमन भारत मे हुआ और भारतीय समाज के सामने जटिल समस्या उपस्थित थी। वर्णाश्रम का पालन स्यात् उसके समाधान का एक मार्ग समझा गया और राजाओ ने उसके लिए आज्ञाए जारी की (वे स्वय भी सतर्क थे। चहमान राजा के सिवालिक स्तम्भ लेख मे म्लेच्छो से पृथक रहने की बात कही गई है। (ए० इ० १९ पृ० २१५) मेधातिथि ने भी (मनु २, २३) ऊपर लिखित विचार का समर्थन किया है। उसने टीका मे लिखा है कि क्षत्रिय राजा को चातुवर्ण्य की स्थापना मे सलग्न रहना चाहिए—

(यदि कश्चित्क्षत्रियादि जातोयो राजा साध्वाचरणो मेल्छान् पराजयेत चातुर्वण्य वासयेत्) ।

जैसा कहा गया है कि मध्य युग के प्रशस्तिकार चातुर्वण्य का उल्लेख करते हैं परन्तु अभिलेखो मे एक पचम वर्ण-चाण्डाल-का भी नाम मिलता है। दान पत्रो मे ग्राम सम्बन्धी वार्ता मे "ब्राह्मण चण्डाल पर्य्यन्त" शब्दो का उल्लेख है यानी चार वर्ण तथा चाण्डाल वही निवास करते थे। स्मृतियो मे भी उस पचम अत्यन्ज का वर्णन मिलता है जो अनुलोम तथा प्रतिलोम विवाह से उत्पन्न हुए थे। उस युग मे कार्य तथा स्थान के कारण भी जातियो मे विभेद हो गया जिसके नाम लेख मे मिलते हैं। यो तो अलबेरूनी ने सोलह, इब्न खुर्दजवा सात तथा कल्हण ने चौसठ जातियो का वर्णन किया है जो यह बतलाता है कि पूर्वमध्य युग मे (७००-१२०० ई०) पाच वर्णों से सम्बन्वित अनेक जातिया प्रसिद्ध हो गई थीं।

ब्राह्मण अपनी विद्वता शुद्ध आचरण तथा व्यवहार कुशलता के लिए चारो वर्णों में श्रेष्ठ माने गए हैं। तीनो वर्ण इनके बतलाए मार्ग पर चलते थे।

ब्राह्मण

त्रयो वर्णा ब्राह्मणस्य वशे वर्तेरन् तेषा ब्राह्मणो धर्मान् प्रब्रुयात् (वशिष्ठ १।१०।४१) । गुप्त युग से पूर्व के ब्राह्मणो की स्थिति के विषय मे ऊपर कहा जा चुका है। गुप्तकाल

का उल्लेख है। क्षत्रिय नाम भी युद्ध तथा उपहार देने के प्रसंग में उल्लिखित मिलता है। दूसरी सदी के महाक्षत्रप रुद्रदामन का जूनागढ़ लेख यह बतलाता है कि इसने क्षत्रियों में वीर यौधेयगण को पराजित किया था। इसी तरह गुप्त युग के एक लेख में तीनों वर्णों का उल्लेख आता है। इन्दौर (बुलन्दशहर उत्तर प्रदेश) नामक स्थान से एक दान पात्र ब्राह्मण को भेंट किया गया जिसके दाता क्षत्रिय वणी अचलवर्म एवं भ्रुकुण्ड सिंह थे। ये दोनों व्यक्ति वणप वृत्ति से जीवन यापन करते थे। अतएव उस इन्दौर लेख में दान के प्रसंग में ब्राह्मण क्षत्रिय तथा वैश्य वर्णों के नाम मिलते हैं—

चातुर्विद्य सामान्य ब्राह्मण राणायणीयो वर्षगण-सगोत्र इन्द्रपुरक वाणिग्भ्यां क्षत्रियाचल वर्म भ्रुकुण्ठसिंहाभ्याम्। (स्कन्द गुप्त का इन्दौरलेख)

गुप्तयुग के पश्चात सम्भवतः वर्णाश्रम संस्था में कमजोरियां आने लगी थी इसीलिए पूर्व मध्य युग (७ १२ ई) के लेखों में शासक का कर्तव्य समझा गया है कि समाज को समुचित रूप से स्थिर रखने के लिए वर्णाश्रम धर्म की रक्षा करें। गुप्तों के सामन्त संक्षोभ के सम्बन्ध में खोह ताम्रपत्र में "वर्णाश्रम धर्म स्थापना निरतेन परम भागवतेन संक्षोभेन' उल्लेख मिलता है (का इ इ ३ पृ ११४) हर्ष वर्धन के पिता प्रभाकर वर्धन के समक्ष यह समस्या थी अतएव वह इसकी रक्षा में दत्त चित्त से लगा रहा। अतः बांसखेड़ा के ताम्रपत्र में उसे "वर्णाश्रम व्यवस्थापन प्रवृत' कहा गया है (ए इ ४ पृ १) मौखरि नरेश अवन्ति वर्मन के लिए भी इन शब्दों का प्रयोग मिलता है (ए इ २४ पृ ९४) काम रूप के राजा भास्कर वर्मन के लेख में वर्णन आता है कि वर्णाश्रम संस्था (जो पूर्व काल में अव्यवस्थित थी) को उसने सुव्यवस्थित किया—

अवकीर्ण वर्णाश्रमधर्म्म प्रविभागाय निर्म्मितो

(निधान पुर ताम्रपत्र ए इ १२ पृ ७५)

११वीं सदी के राजा इन्द्रपाल ने वर्णाश्रम की मर्यादा स्थिर करने का प्रयत्न किया था—

सम्यक् विभक्त चतुराश्रम वर्णधर्मा

(गोहाटी ताम्रपत्र—ज ए सो ब १८९७ पृ १२५)

स्यात् पूर्व मध्यकाल में यह एक महत्व पूर्ण प्रश्न था और समाज को सुस्थिर (विघटन न होने देना) रखना शासक का परम कर्तव्य था। यही कारण था कि बंगाल के बौद्धधर्मानुयायी पाल राजा भी वर्णाश्रम के व्यवस्था में प्रयत्न शील थे। बानगढ़ लेख में (ए इ १४ पृ १२५) उन्हें 'मर्यादा परिपालनैक

निरत' कहा गया है—

वर्णानान् प्रतिष्ठापयता स्वधर्मे

(इ० ए० २१ पृ० २५५)

पालवंशी आमागाछी लेख मे तृतीय विग्रहपाल चारो वर्णो का सरक्षक कहा गया है—चातुर्वर्ण्य समाश्रम (वही पृ०९९)। इसी के सदृश उडीसा का राजा क्षेमनकर "वर्णाश्रम परमोपासक" पदवी से विभूषित है। सक्षेप मे कहा जा सकता है कि समाज को विघटन से बचने के लिए शासको ने वर्णाश्रम धर्म (पालन करने के निमित्त) का समादर करने की आज्ञा प्रकाशित की। गुप्त युग से पूर्व विदेशी आक्रमणकारी भारतीय समाज मे विलीन हो गए। ७ वी सदी मे ईस्लाम का आगमन भारत मे हुआ और भारतीय समाज के सामने जटिल समस्या उपस्थित थी। वर्णाश्रम का पालन स्यात् उसके समाधान का एक मार्ग समझा गया और राजाओ ने उसके लिए आज्ञाए जारी की (वे स्वय भी सतर्क थे। चहमान राजा के सिवालिक स्तम्भ लेख मे म्लेच्छो से पृथक रहने की बात कही गई है। (ए० इ० १९ पृ० २१५) मेधातिथि ने भी (मनु २, २३) ऊपर लिखित विचार का समर्थन किया है। उसने टीका मे लिखा है कि क्षत्रिय राजा को चातुवर्ण्य की स्थापना मे सलग्न रहना चाहिए—

(यदि कश्चित्क्षत्रियादि जातीयो राजा साध्वाचरणो मेल्छान् पराजयेत चातुर्वण्य वासयेत्)।

जैसा कहा गया है कि मध्य युग के प्रशस्तिकार चातुर्वण्य का उल्लेख करते हैं परन्तु अभिलेखो मे एक पचम वर्ण-चाण्डाल-का भी नाम मिलता है। दान पत्रो मे ग्राम सम्बन्धी वार्ता मे "ब्राह्मण चण्डाल पर्यन्त" शब्दो का उल्लेख है यानी चार वर्ण तथा चाण्डाल वही निवास करते थे। स्मृतियो मे भी उस पचम अत्यन्ज का वर्णन मिलता है जो अनुलोम तथा प्रति लोम विवाह से उत्पन्न हुए थे। उस युग मे कार्य तथा स्थान के कारण भी जातियो मे विभेद हो गया जिसके नाम लेख मे मिलते हैं। यो तो अलबेरूनी ने सोलह, इब्न खुर्दजबा सात तथा कल्हण ने चौसठ जातियों का वर्णन किया है जो यह बतलाता है कि पूर्वमध्य युग मे (७००-१२०० ई०) पाच वर्णो से सम्बन्वित अनेक जातिया प्रसिद्ध हो गई थी।

ब्राह्मण अपनी विद्वता शुद्ध आचरण तथा व्यवहार कुशलता के लिए चारो वर्णों में श्रेष्ठ माने गए हैं। तीनो वर्ण इनके बतलाए मार्ग पर चलते थे।

ब्राह्मण त्रयो वर्णा ब्राह्मणस्य वशे वर्तेरन् तेषा ब्राह्मणो धर्मान् प्रब्रुयात् (वशिष्ठ १।१०।४१)। गुप्त युग से पूर्व के ब्राह्मणो की स्थिति के विषय मे ऊपर कहा जा चुका है। गुप्तकाल

में ब्राह्मणों का आदर तथा सम्मान था। छठी सदी के बाद भी ब्राह्मण विद्या में अग्रणी थे इसीलिए पूर्व मध्यकाल की प्रशस्तियों में उनके कुल के साथ विद्या की भी चर्चा की गई है। दान सम्बन्धी वर्णन तथा समाज में उनके स्थान में कुछ अन्तर दिखलाई पड़ता है। उस युग में ब्राह्मणों में इतनी उप-जातियां तथा जीविका के साधन हो गए थे कि समाज में पुराने ढंग की श्रेष्ठता स्थायी न रह सका। क्षत्रिय समाज के अगुआ हो गए और उनके आदेशानुसार ब्राह्मण कार्य करने लगे। यद्यपि साहित्य में पंचगौड़ का विवरण मिलता है परन्तु अभिलेखों में कान्यकुब्ज मथिल तथा सरयूपारी के नाम उल्लिखित हैं। ब्राह्मणों के उपनाम स्थान के आधार पर (Territorial Basis) स्थिर किया गया था। कन्नौज के कान्यकुब्ज बंगाल के गौड़ (गौड़ स्थान का भी नाम था) मिथिला के मथिल सरस्वती भागों के निवासी सारस्वत तथा उड़ीसा (उत्कल) के ब्राह्मण पांचवें स्थान पर थे। लेखों में जहां ब्राह्मण के बहिर्गमन का वर्णन है वहां कान्यकुब्ज का नाम सर्व प्रथम आता है। आसाम में मथिलों के (ए इ ८ पृ १२) तथा गौड़ ब्राह्मण (ए इ २१ पृ २११) के आगमन का विवरण लेखों में मिलता है। गहड़वाल नरेशों के गोरखपुर के लेख में सरयुपारी ब्राह्मण का उल्लेख है (गोविन्दचन्द्रदेव का पाली ताम्रपत्र-ए इ ५ पृ ११४) पंचगौड़ के अतिरिक्त शाकद्वीपी (जिनका नाम मग भी था) ब्राह्मण का वर्णन गोविन्दपुर के लेख (ए इ २ पृ ३३३) में स्पष्ट रूप से पाया जाता है। शकद्वीप से आने के कारण वे शाकद्वीपी कहलाए तथा इनका संबंध ईरान के मग-मगिया—मगियन से बतलाया जाता है। ये सूर्य के पुजारी माने जाते हैं तथा तांत्रिक भी समझे जाते हैं (मग से अंग्रेजी का शब्द मैजिक बना है)—शाकद्वीपस्स दुग्धाम्बु निधि वलयितो यत्र विप्रे मगाख्या यही। इस प्रकार उत्तरी भारत में ब्राह्मण छः विभागों में विभक्त थे और पृथक्-पृथक् नाम से विख्यात थे।

ब्राह्मणों का वर्गीकरण

भारत में छठी सदी के पश्चात गोत्र तथा वैदिक शाखा के आधार पर ब्राह्मणों का वर्गीकरण किया गया था। ये दोनों बातें प्रायः प्रत्येक दान पत्र में मिलती हैं। १२ वीं सदी के मदनपाल के ताम्रपत्र में जो क्रम है (यानी गोत्र तथा शाखा का नाम) उसी को लेकर उप जातियां बनती गईं। उस लेख में पांच सौ ब्राह्मणों के नाम आते हैं और "नाना गोत्रेभ्यश्चतुश्चरणेभ्यः श्रुति पाठकेभ्य पंच शत संख्येभ्य ब्राह्मणेभ्यो" (ए इ १४ पृ २ २) वाक्य द्वारा उन्हें पृथक बतलाया गया है। चन्देल राजा परमर्दि के सेमरा लेख में वैदीष

गोत्र के नाम मिलते हैं (ए० इ० ४ पृ० ११५-६) अत्रि वाभ्रव्य, वन्वुल-वशिष्ठ वत्स विष्णुवृद्ध आदि के परीक्षण से पता लगता है कि काश्यप तथा भारद्वाज गोत्र अधिक लोक प्रिय थे। चन्द्रावती तथा कलहा दानपत्रो मे अधिक गोत्र उल्लिखित हैं (ए० इ० १४ पृ० ८७) कात्यायन, काश्यप—सावर्ण तथा शान्डिल्य। कन्व, गालव, पीपलाद, दर्भ आत्रेय (ए० इ० १४ पृ० २०२) वर्तमान समय मे भी यही गोत्र समाज मे प्रचलित हैं। इसी प्रकार शाखा के सम्वन्ध मे भी उल्लेख मिलता है। पूर्व मध्यकाल मे (७००-१२०० ई०) जो ब्राह्मण जिस वैदिक शाखा का अध्ययन करता था उसी से वह प्रसिद्ध था और अन्य ब्राह्मण से पृथक हो जाता था। दानग्राही के साथ वैदिक शाखा का उल्लेख परमावश्यक हो गया। कलहा ताम्रपत्र (गोरखपुर, उ० प्र०) मे छादोग्य, वाजसनेय तथा माध्यन्दिन शाखाध्यायी ब्राह्मणो को दान देने का वर्णन मिलता है (ए इ ७ पृ ८७) दूसरे लेख मे आश्वलायन, शाखायन (ऋग्वेद) कौथुम राणायनीय (सामवेद) तथा कठ (कृष्ण यजुर्वेद) शाखाओ के नाम मिलते हैं कि दानग्राही इन वैदिक शाखाओं का पण्डित था (ए इ ९ पृ ११६) मालवा की एक प्रशस्ति मे तीन ब्राह्मणो को दान दिया गया जिनका निम्न प्रकार से वर्गीकरण किया गया (ए इ ९ पृ ११५) था।

(१) माध्यन्दिन (शु० यजुर्वेद) शाखा का ब्राह्मण
(२) आश्वलायन (ऋग्वेद) ,, ,,
(३) कौथुम (सामवेद) ,, ,,

कन्नौज शासक भोज के दौलतपुर दानपत्र मे ऋग्वेद के आश्वलायन शाखा तथा गहड़वाल नरेश गोविन्द चन्द्र देव के लेख मे वाजसनेय (यजुर्वेद) तथ शाखायन (ऋग्वेद) शाखाओ के नाम मिलते हैं (ए इ ३ पृ २१२ तथा वही ८ पृ १५४–६) पाल नरेश देवपाल के समय मे आश्वलायन तथा कौथुमी शाखाओं के पण्डित ब्राह्मणो को दान दिया गया था (ए इ २१ पृ २५५, ए इ १५ पृ २९५) सेनवशी शासक वल्लालसेन के समस्त प्रशस्तियो में तथा लक्ष्मणसेन की दो प्रशस्तियो मे वैदिक शाखा के आधार पर ब्राह्मण पृथक-पृथक वर्णित हैं – (नईहटी, गोविन्दपुर, तरपन्डीही, मधैनगर और दीनाजपुर लेख) निधानपुर के ताम्रपत्र मे एक सौ उनईस ब्राह्मणो को शाखाओ के आधार पर वर्ग मे विभाजित किया गया है। ११९ मे ५६ वाजसेनेय शाखा, ११ छादोग्य शाखा, ३८ वह्‌वृच शाखा और शेप तैतरीय शाखा के ब्राह्मण कहे गए हैं (ए इ १९ पृ ११८) अतएव सक्षेप मे यह कहना पर्याप्त होगा कि गोत्र तथा वैदिक शाखा के आधार पर उचित रीति मे ब्राह्मणो का वर्गीकरण किया गया था। कालान्तर

में इससे उपजातियां बनती गई।

यों तो धर्मग्रंथों में ब्राह्मणों के लिए षट्कर्म (यजन याजन अध्ययन अध्यापन दान प्रतिग्रह) का वर्णन मिलता है तथा पूर्व मध्यकालीन लेख

ब्राह्मणों का जीविका साधन

में (ए इ १ पृ १४६—षट्कर्मनिरतश्च—ब्राह्मणा ए इ १ पृ १२८—षट्कर्माभिरताम ब्राह्मणाम आदि) भी उन्हीं छः कर्मों का उल्लेख है परन्तु ब्राह्मणों को इन कार्यों के अतिरिक्त अन्य साधन भी ढूंढने पड़े। विशेषकर मंदिरों में पुरोहित का काम करने लगे जिसका अत्यधिक विवरण गहड़वाल प्रतिहार, परमार, कलचुरि, पाल तथा सेनवंश की प्रशस्तियों में मिलता है। पूजा के अतिरिक्त पुरोहित मंदिर के प्रबन्ध की देख रेख करता था। मंदिरों में वह कथावाचक (बहमान लेख—ए इ ११ पृ ४५) का भी कार्य करता था। राजघराने में ज्योतिषी के कार्य निमित्त ब्राह्मणों को ही बुलाया जाता था। इस तरह कार्यों को सम्पन्न कर ब्राह्मण मंत्री तथा सेनापति के ऊंचे पद को भी सुशोभित करता था। (ए इ १ पृ २२२ भा १५ पृ २ ५ भा ४ पृ १५८—ब्राह्मण सेनापति मदनपाल शर्मन' का उल्लेख पाया जाता है। सेना में मृत्यु हो जाने पर ब्राह्मण के परिवार को राजा मृत्युक वृत्ति दिया करता था (ए इ १६ पृ २७२)। इस तरह क्षत्रिय धर्म का कार्य सम्पन्न कर वह जीविकोपार्जन करने लगा।

पाल प्रशस्तियों में नारायणपाल के ब्राह्मण मंत्री गुरव मिश्र तथा दर्भ मिश्र के नाम मिलते हैं जिन्होंने विद्या तथा कार्य कुशलता के कारण मंत्री पद को सुशोभित किया था (ए इ २ पृ १६) इसी तरह दर्भपाणि तथा केदार मिश्र के नाम आते हैं जो क्रमशः देवपाल तथा सुरपाल के मंत्री थे। गहड़वाल राजा गोविन्दचन्द्र के प्रधान मंत्री भट्ट लक्ष्मीधर का नाम गर्व के साथ लिया जा सकता है जिसने कृत्य-कल्प-तरु नामक निबन्ध की रचना की थी (ग ओ सी म १ पृ १) इसकी समता विजयनगर के राजा बुक्क के मंत्री सायण तथा माधव से की जा सकती है। पूर्व मध्यकालीन लेखों में वर्णन है कि ब्राह्मण कृषि कर्म भी करने लग थे। स्यात् यह आपद्धर्म था परन्तु दानपत्रों में 'भुज्यमानमस्य कर्षयतः कर्षयतो' ऐसा उल्लेख मिलता है (ए इ ९ पृ १११ इ ए १६ पृ २ ८) अर्थात् दान से हल जोतने का तात्पर्य है। राजपूताना के एक लेख में ऐसा वर्णन आया है कि राजा ने ब्राह्मणों से कृषि-कर्म त्यागने की प्रार्थना की और वेदाध्ययन में समय व्यतीत करने का आदेश दिया—

यो विप्रान मितान् हृलि कलयत कार्श्येन वृतेरल वेद सागम पाठयत् कलि-गल ग्रस्ते धात्रीतले (ए इ. २१ पृ २७८–८२) इसका कारण यह हो सकता है कि स्मृतिकार पराशर ने आपतधर्म मे कृषि के लिए आदेश दिया है–पट्कर्म भिरतो विप्र कृषिकर्म च कारयेत्। स्यात् इस युग मे ब्राह्मणो को पट्कर्म के अतिरिक्त अन्य साधन का अवलम्बन करना आवश्यक हो गया था।

ब्राह्मणो का देशान्तर गमन

ईसवी सन् की सातवी सदी के पश्चात् उत्तर पश्चिम से ईस्लाम के आक्र-मण के कारण मध्यदेश (गगा यमुना घाटी) मे ब्राह्मणो का निवास कष्ट कर हो गया और बहुत से अन्य स्थानो को चले गए। ब्राह्मणो का देशान्तर गमन मध्ययुग की विशेष घटना है जिसका वर्णन केवल प्रशस्तियो मे ही पाया जाता है। मध्यदेश के ब्राह्मणो को सर्वत्र समादर मिला और राजाओ ने दान देकर उन्हे वसने के लिए आग्रह किया। वगाल के पाल राजाओ ने आगुन्तक ब्राह्मणो को दान दिया जिसका उल्लेख वदलस्तम्भ तथा आमागछी वाले लेख मे है (ए इ २ पृ १८०, इ ए १४ पृ १६६, २१ पृ ९७) लक्ष्मणसेन के सात लेखो मे देशान्तर गमन करने वाले ब्राह्मणो को दान देने का विवरण है (वैरकपुर नईहटी, गोविन्दपुर, तरपडीही, अनुलिया, मधैनगर, सुन्दरवन आदि) अधिक-तर वगाल के लेखो मे "मध्यदेश विनिर्गत" (मध्यदेश से देशान्तर गमन) वाक्य का उल्लेख है। विग्रहपाल के लेख में तो कोलञ्च (कन्नौज) से वगाल मे जाने वाले (देशान्तर गामी) ब्राह्मणो का वर्णन है (ए इ २९ पृ ५६) तथा महीपाल के लेख मे हस्तिपाद (मध्यदेश) ग्राम का नामोल्लेख है। वहा से ब्राह्मण वगाल गए। परमार राजा वाक्पति द्वितीय के प्रशस्ति मे छ बीस ब्राह्मण के नाम मिलते हैं जो विभिन्न स्थानो से आकर मालवा मे वस गए थे। उन स्थानो मे मध्यदेश (सम्भवत कन्नौज) तथा मझवली (देवरिया उत्तर प्रदेश) के नाम प्रमुख हैं। कान्यकुब्ज तथा सरयूपार से ब्राह्मणो ने मालवा मे शरण ली, वहा वस गए और दानग्राही के रूप में प्रतिष्ठित रहे। १० वी सदी मे वगाल के अतिरिक्त मालवा मे ब्राह्मणो का गमन जीविका के लिए हुआ। कन्नौज तो छठी सदी के पश्चात् उत्तरी भारत मे प्राचीन पाटलिपुत्र का स्थान ग्रहण कर चुका था जिसके विजय निमित्त शासकगण युद्ध करते रहे। वहा के निवासी ब्राह्मणो को भी उस स्थान का गर्व था और जहा भी देशान्तर गमन किया, वहा के लेख में "मध्यदेश विनिर्गत ब्राह्मण" के नाम से विख्यात रहे। विद्वानो का विश्वास है कि कान्यकुब्ज ब्राह्मणो ने ही वगाल मे 'कुलीन प्रथा' का आरम्भ किया।

गुप्त युग से पूर्व अभिलेखों में विभिन्न जातियों के नाम प्राय नहीं मिलते। स्कन्द गुप्त के इन्दौर वाले लेख में दो क्षत्रिय व्यक्तियों के नाम-अचलवर्मा तथा भृकुण्ठसिंह दान के प्रसग में मिलते हैं। सातवीं सदी से

क्षत्रिय

शासन सम्बन्धी अभिलेखों में क्षत्रिय का नाम आता है जो राजनीतिक परिस्थिति के कारण समाज म अग्रणी हो गए थे और ब्राह्मणों को भी उनके आदेशानुसार काम करना पड़ता था। अलबरूनी के कथनानुसार क्षत्रियों को भी ब्राह्मण के सदृश मृत्युदण्ड नहीं दिया जाता था। पूर्व मध्य युग में क्षत्रियों के लिए 'राजपुत्र' शब्द का प्रयोग मिलता है और उनके निवास भूमि को राजपुत्रावा कहा गया। बंगाल के लेखों में वर्णन मिलता है कि शासक राजपुत्र (राजपूत) वंश में उत्पन्न हुए थे (ए इ १४ पृ १५८ इ ए भा १५ पृ ३ ८) ऐसा वर्णन प्राय उत्तरी भारत के सभी राजवंशों के लेख में पाया जाता है। प्रशस्तियों में वर्णित पदाधिकारियों की सूची में युवराज राजपुत्र कहा गया है यानी वह क्षत्रिय जाति का वंशज था (सोड्ढेव का कहला ताम्रपत्र—ए इ ७ पृ ८५) राजपूत की उत्पत्ति के विषय में विद्वानों म मतभेद रहा और कुछ विद्वान यह विचार रखते थे कि राजपूत प्राचीन क्षत्रिय के वंशज नहीं हैं। राजपूतों को अग्निकुल का बतलाया जाता है। राजपूत नरेशों के अभिलेखों का अध्ययन सिद्ध करता है कि वे सभी प्राचीन क्षत्रिय वर्ग के वंशज हैं।

इस युग में राजपूत दो उपविभाग में विभक्त हो गए। (१) शासक (२) साधारण क्षत्रिय वर्ग। शासकों की श्रेणी में कुछ विदेशी भी घुस गए थे। जिनका वैवाहिक सम्बन्ध राजघराने मे होने लगा था। कलचुरी लेख (ए इ २ पृ ४) में वर्णन आता है कि हूण राजकुमारी अवल्लदेवी का विवाह चेदि राजा कर्ण से हो गया। इन्हीं कारणों से समाज म विदेशी हूण का आदर होने लगा। मेवाड़ के (५१ ई) एक लेख में मंदिर प्रबन्ध समिति का हूण सरदार भी सदस्य था और ऊँचे वर्ग मे समादर पाता था (इ ए ५८ पृ १६१) साधारण श्रेणी के राजपूत सैनिक का कार्य करते थे। चंदेल शासक की ओर से युद्ध में मारे जाने पर सैनिक के परिवार को वृत्ति (मृत्युक-वृत्ति) दिया जाता था—युद्धक युद्धमृत—पाले युनाथ सामन्त मान्ने प्रसादेन मृत्युक वृत्ती पालवं दत्वा प्रदत्त इति (ए इ १६ पृ २७५) दक्षिण भारत में इस वृत्ति को नत्तर पाल्मे (खून का दान) कहा गया है। चन्देल तथा गहड़वाल लेखों में इस प्रकार की जनक वृत्ति का विवरण पाया जाता है। (इ ए १८ पृ ११९) चन्देल नरेश परमर्दि न सैनिकों को बहादुरी के लिए 'वीरमुख्य' की उपाधि दी थी और

तगमा (राजपट्ट) भी दिया गया (ए० इ० ४ पृ० १३१, भा० २ पृ० ३४४. भा० १ पृ० ३३३)।

राजकीय अभिलेखो के अध्ययन से प्रकट होता है कि उस समय (७००-१२०० ई तक) राजकुमार को कुशल शासक बनने के लिए समुचित ढग से शिक्षा दी जाती थी जिसका आभास राजाओं के शास्त्रीय गुणो से होता है। मालवा के एक चहमान लेख मे निम्न प्रकार का वर्णन आता है—

वक्तृत्वो च कवित्व तर्क कलन प्रज्ञात शास्त्रागम
श्री मद्वाकपति राजदेव इति य सद्भि सदा कीर्त्यते।
(ए इ १ पृ २३५)

प्रतिहार लेख मे भी ऐसा ही वर्णन मिलता है—

व्याकरण तर्को ज्योतिशास्त्र कलाचित
सर्व भाषा कवित्व च विज्ञान सुविलक्षणम्।
(ए इ १८ पृ ९६)

इस प्रकार के उल्लेख कई स्थानो मे मिलते हैं। तात्पर्य यह है कि समाज मे क्षत्रिय वर्ग को शिक्षा तथा शासन के कारण आद रथा। वही शासक तथा समाज के रक्षक थे।

वैश्य जाति

स्मृतिकारो के कथनानुसार वैश्य का द्विज मे तीसरा स्थान था जिनका कार्य कृषि तथा पशु पालन बतलाया गया है (वाणिज्य कर्षण चैव गवा च परिपालनम्-अत्रि) गुप्त युग के पश्चात भारतीय लेखो मे दान के प्रसग मे कृषि, कर, पशु, व्यापारिक चुगी आदि का वर्णन किया गया है। अग्रहार भूमि मे बाजार आदि की चुगी दानग्राही को ही मिलती थी। वणिक शब्द का प्रयोग वैश्य वर्ग के लिए प्राय सर्वत्र लेखो मे किया गया है। कुम्भकार, ताम्बूलिक स्वर्णकार (हेमकार) माली आदि के नाम मिलते हैं। सुनार लेख खोदता था। माली पुष्प माला देवगृह मे अर्पित करता था। तमोली या तेली (तेलिक श्रेणी) कर देते अथवा पूजा की सामग्री (पान या दीप के लिए तेल) दिया करते थे। सियादोनो लेख मे इन सभी प्रकार के वणिक लोगो के नाम मिलते हैं (ए० इ० १ पृ० १७५ भा० १९ पृ० ५७ भा० १८ पृ० ९७, भा० १ पृ १६०) व्यापार के अनसार वणिक श्रेणियो मे विभाजित थे। स्थानीय व्यापारी (वणिक) घोडे या बैल के पीठ पर सामान बाजार मे ले जाता। विदेश जाने वाले वणिक को 'सार्थवाह, कहा गया है वही कारवा ले चला करते थे। उभयमाग्रीव समायात सार्थ उष्ट्र १० वृष २० उभयादपि उर्द्ध सार्थ प्रति (ए० इ० ११ पृ० ६०) किराना के व्यापारी का भी उल्लेख मिलता है (ए० इ० ११ पृ० ४३)

अभिलेखों में तैल के कारखाना (मिल) चलाने वाले वणिक वर्ग का उल्लेख है। उनका उद्योग बड़े पैमाने पर चलता था। दान के प्रसंग में वर्णन आता है कि रथयात्रा के समय कारखाने से पूजा निमित्त द्रव्य दिया जाता और प्रत्येक मिल (चाक्र) से दीपार्थ तेल अर्पित किया जाता था (ए इ १ पृ १७७-आ ११ पृ ४२)

वैश्य वर्ग को व्यापार तथा व्यवसाय सम्बन्धी कर देना पड़ता था। एक सिक्का, दो सिक्का या अधिक द्रव्य विभिन्न सामग्री तथा उनकी तौल पर वसूल किया जाता जिसका वर्णन परमार चामुण्ड राय के लेख (ए इ २१ पृ ४८) तथा चाहमान अभिलेख (ए० इ भा ११ पृ ४१) में मिलता है। इस प्रकार वणिक जाति व्यापार से जीविकोपार्जन करती थी। लेखों में आवागमन के साधनों में बलगाड़ी ऊँट, घोड़ा तथा नाव के नाम उल्लिखित हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि प्राचीन भारतीय अभिलेखों के परिशीलन से वणिक व्यापार-सामग्री तथा आवागमन के साधन आदि सम्बन्धित विषयों पर प्रकाश पड़ता है। इससे विचित्र बात यह है कि वणिक वर्ग का समूह (जिसे श्रेणी कहते थे) बैंक का भी कार्य करता था (नासिक के लेख) समाज में दान देने के कारण वणिक वर्ग का आदर था। वे मंदिर प्रबन्ध समिति या जिला शासन समिति के सदस्य चुन लिए जाते थे जो उनके आदर का द्योतक है। उनके समूह (श्रेणी) पर जनता का इतना अधिक विश्वास था कि सब लोग अपना धन उनके बैंक में जमा करते रहे अथवा दान का धन उनके पास जमा रहता जिसकी सूद से पूजा का कार्य सम्पन्न किया जाता था।

पूर्वमध्यकालीन अभिलेखों के अध्ययन से भारतीय समाज में 'कायस्थ' नामक जाति की स्थिति का परिज्ञान होता है जिसका नाम चारों वर्णों में नहीं मिलता (चत्वारो वर्णा ब्राह्मणक्षत्रिय विट्शूद्राः) धर्मशास्त्र

कायस्थ

तथा पूर्व के लेखों में कायस्थ एक लेखक के रूप में वर्णित है (कायस्थगणका लेखकाश्च-मिताक्षरा याज्ञ १।३३५)।

प्रायः प्रशस्ति के अन्त में कायस्थेन लिखितं वाक्य का प्रयोग मिलता है। गुप्तकालीन दामोदर पुर ताम्रपत्रों में प्रथम कायस्थ अथवा ज्येष्ठ कायस्थ का नाम आता है (ए इ १५) जिसे श्री राखाल दास बनर्जी लेखक समझते हैं (दि एज आफ इम्पीरियल गुप्त पृ ८)। तात्पर्य यह है कि गुप्त पूर्व लेखों से किसी जाति विशेष का बोध नहीं होता पर लेखकों के समूह को कायस्थ कर मानते रहे जो आगे चलकर जाति के रूप में परिचित हो गया। राजपूत लेखों में भी कायस्थ लेखक के लिए प्रयुक्त मिलता है। चाहमान प्रशस्ति में निम्न उल्लेख है—श्रीमद् गोविन्द चन्द्रस्य नृपतेराज्यमाश्रित

ताम्रमेतत सुरादित्य कायस्थ सर्वशास्त्रवित (सहेतमहेत लेख–ए० इ० ११ पृ० २५) परन्तु मध्यकालीन (चन्देल, चेदि चहमान) प्रशस्तियो मे "कायस्थ वश या कायस्थ जातीय" (ए० इ० ११ पृ० ५३) का भी उल्लेख आया है। बगाल से गौड कायस्थ का अधिक वर्णन मिलता है जो प्रशस्ति लिखने मे दक्ष थे और सुन्दर अक्षर लिखने के कारण मध्यप्रदेश तथा राजपूताना मे निमन्त्रित किए जाते थे। (लिखिता रुचिराक्षरा गौडेन-ए० इ० १ पृ० १२९ व १४७)। चन्देल प्रशस्ति (खजुराहोलेख) (ए० इ० भा १ पृ० १४७) चेदि लेख (ए० इ० १ पृ० ३६) तथा चहमान अभिलेखो में (ए० इ० ११ पृ० ३२, इ० ए० ५९ पृ० १६२) गौड कायस्थ के नाम आते हैं [लिखित श्री गौडान्वय कायस्थ] चन्देल राजा परमर्दि के लेख का रोचक वर्णन सुनिए—

विरचित शुभकर्मान्नाम कायस्थवश
सकल गुण गुणाना वेश्म पृथ्वीवराख्य
अलिखदवनि पालस्याज्ञया धर्मलेखी
स्फुट ललित निवेशैरक्षरैस्ताम्रपट्टम् (ए० इ० १४ पृ० १४)

खजुराहो की प्रशस्ति से प्रकट होता हैं कि कायस्थ 'करण' या करणिक नाम से भी पुकारे जाते थे।

सस्कृतभाषाविदुषा जयगुण पुत्रेण
कौतुका लिखिता रुचिराक्षरा
प्रशस्ति करणिक जट्टेन गौडेन (ए० इ० १ पृ० १२९)

सातवी सदी से समाज मे कायस्थ समूह को एक जाति के रूप मे स्थित पाते हैं। प्रशस्तियो मे कायस्थ जातीय, गौड कायस्थ वश या गौडान्वय कायस्थ आदि उल्लेखो से उपर्युक्त कथन की पुष्टि होती है। कायस्थ जाति की शाखाए स्थान विशेष से प्रसिद्ध हुई। मथुरा के कायस्थ माथुर कहलाए (मथुरा पुरी विनिर्गत कायस्थ या माथुरान्वय कायस्थ (ए० इ० १९ पृ० ५०, भा० ११ पृ० ५७) गौडकायस्थ के विषय मे ऊपर कहा जा चुका है। तीसरा उपविभाग श्रीवास्तव का है जो सम्भवत श्रावस्ती (गौड जिला उत्तर प्रदेश) के निवासी थे। यो तो उसका भाव लक्ष्मी (श्री) का निवास हो सकता है पर इससे स्थान का तात्पर्य नही निकलता और शाखाए स्थान के नाम से ही विख्यात थी [ए० इ० ४ पृ० १०४ व १५३ भा० १९ पृ० २१०)

शूद्र तथा चाण्डाल

वर्ण व्यवस्था मे शूद्र को अतिम स्थान दिया गया है। शूद्र का धर्म द्विजाति मात्र की सेवा थी। (शूद्र धर्मो द्विजाते शुश्रुषामिता) महाभारत (शा० प० २९४, ४) के वर्णन मे शूद्र की उन्नत परिस्थिति का आभास मिलता है और सेवावृत्ति न मिलने

पर वैश्य की तरह व्यापार से जीविकोपार्जन की आज्ञा उन्हें दी गई है।

वाणिज्यं पशुपाल्यं च तथा शिल्पोपजीवनम्
शूद्रस्यापि विधीयन्ते यथा वृत्तिर्न जायते।

धर्म शास्त्र तथा स्मृतियों में जिस विस्तार के साथ शूद्र जाति के विषय में चर्चा की गई है, वह ढंग अभिलेखों में नहीं मिलता। अशोक के लेखों में शूद्र (दास) के साथ समुचित व्यवहार (दस भटकसि सम्म परिपति–९वां लेख) करने का आदेश दिया गया है। कालान्तर में किसी स्थान पर शूद्र का उल्लेख आता है परन्तु किसी विशेष बातों का वर्णन नहीं है। दान-पत्रों में पदाधिकारियों के साथ 'ब्राह्मण चाण्डाल पर्यन्तान' वाक्य का अधिकतर उल्लेख है जिससे प्रकट होता है कि शूद्र चाण्डाल से पृथक जाति थी। चारों वर्णों के लोग एक साथ नहीं रहते थे। उस समय शूद्र अस्पृश्य नहीं माने जाते रहे और वर्तमान काल की तरह उनको हीन नहीं समझा जाता था।

पूर्वमध्यकाल (७००–१२०० ई०) की प्रशस्तियों में चाण्डाल का बहुधा उल्लेख आता है। पाश्र्वांकी पत्र में निम्न वर्णन आता है—

(१) प्रतिवासिनो ब्राह्मणोत्तराम् चाण्डाल पर्यन्तान् (मानक पुर लेख इ ए १५ पृ १९)

(२) मेद चाण्डाल पर्यन्ता (महीपाल का बानगढ़ लेख–ए इ १४ पृ० १२७)

(३) महत्तर कुटुम्बी प्रयोग मेदान्धक चाण्डाल पर्यन्तान समाज्ञापयति (मू पर लेख इ ए २१ पृ० २५६)

स्मृति ग्रन्थों के आधार पर चाण्डाल प्रतिलोम विवाह की संतान कहा जाता है और अस्पृश्य समझा गया था (ब्राह्मण्यां शूद्र जनित चाण्डालो धर्म वर्जित) मुसलमान लेखक अलबेरूनी ने धर्म के अनुसार कई प्रकार के अन्त्यज (अस्पृश्य) का नाम दिया है। चाण्डाल सबसे नीच समझा गया और अंगिरस(४ ५) के कथनानुसार शूद्र को भी चाण्डाल पात्र में जल पीने पर प्राय श्चित करना पड़ता था।

चाण्डाल (अन्त्यज) के अतिरिक्त कई लेखों में जंगली जाति का भी वर्णन मिलता है जिससे शासक भी भय खाता था। कलचुरि लेख में भील नामक जाति (ए इ १९ पृ २१०) महाबाहु कही गई है। वल्लाल सेन के लेख में भिल्ल शबर पुलिन्द के नाम आते हैं (ए० इ० भा० १ पृ० ११४)। ये जातियां जंगल में निवास करती थी और राजाज्ञा के विरोध करने पर कुचल दी जाती थी ताकि समाज में शान्ति बनी रहे। ७वीं सदी के पश्चात भारतीय लेखों में मुसलमानों के लिए म्लेच्छ शब्द का प्रयोग मिलता है। चाहमान लेखों में इस शब्द का

अधिक उल्लेख है। गहडवाल वश के अभिलेख हम्मीर शब्द का प्रयोग करते हैं जो मुसलमान राजकुमार के लिए प्रयुक्त था।

जब उत्तरी भारत मे इस्लाम आक्रमण तेजी पर था उस समय (१०-१२ वी सदी) के लेख हिन्दू नरेश के साथ उनके युद्ध का विवरण उपस्थित करते हैं। उसी प्रसग मे म्लेच्छ या हम्मीर शब्दो का प्रयोग मिलता है। [ग्वालियर प्रशस्ति ए० इ० भा० १८ पृ० १०७, इ० ए० १८ पृ० १६ ए० इ० भा० ४ पृ० ११०, इ० ए० ४१ पृ० १०] सिक्को के मुद्रालेख भी इसकी पुष्टि करते हैं। कई सिक्को पर 'श्री हम्म वीर' खुदा है। अमीर शब्द हम्मीर का अपभ्रंश है जो अफगान सुरतान के लिए प्रयुक्त होता है। तीसरा शब्द-तुरुष्क भी लेखो मे उल्लिखित है जो मुसलमान जाति के लिए प्रयुक्त किया गया था। गहडवाल लेख इस शब्द से भरे पडे हैं (ए० इ० ९ पृ० ३२९, इ० इ० क्ला० २३ पृ० ४-६ ए० इ० ८ पृ० २९५, भा० १३ पृ० २९७) इस तरह अभिलेखो के सहारे चारो वर्णों के अतिरिक्त अन्त्यज, जगली जाति तथा मुसलमानो के उत्तरी प्रदेशो मे निवास करने की बातें ज्ञात हो जाती हैं।

प्राचीन आश्रम सस्था मे मनुष्य का जीवन चार भागो मे विभक्त था—ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ तथा सन्यास। अत्यन्त प्राचीन समय मे इन चार आश्रमो का क्रम लोगो को ज्ञात न था। यति तथा साधु समाज मे वर्तमान थे परन्तु वे सन्यासी नही कहे जा सकते। तपस्या की भावना सम्भवत लोगो मे अज्ञात थी। ब्राह्मण ग्रन्थो मे भस्म लगाए साधु का वर्णन मिलता है। उपनिषद (बृहदारण्यक) मे मोक्ष प्राप्ति के लिए गृह त्यागने की चर्चा की गई है। छादोग्य मे ब्रह्मचारी, गृहस्थ तथा सन्यासी की बातें मिलती हैं। सूत्रग्रथो मे हमे सर्वप्रथम चार आश्रमो के नाम मिलते हैं तथा मनुस्मृति मे (अध्याय ६) क्रम पाया जाता है।

आश्रम सस्था

अशोक ने लेखो मे—"ब्राह्मण श्रमणाना दसण" ब्राह्मण तथा साधु के दर्शन करने की बातें कही हैं। बुद्धधर्म मे वर्णाश्रम सस्था को नगण्य समझकर छोटा बालक भी सीधे भिक्षु हो जाता था। इस प्रथा को रोकने के लिए भारतीय समाज ने प्रयत्न किया और प्रत्येक आश्रम के पालन करने के महत्व को बतलाया। गुप्त-युग तक समाज मे द्वद था कि कौनसा आदर्श माना जाय परन्तु गुप्तकाल के पश्चात् आश्रम ने समाज मे घर बना लिया जिससे लेखो मे अप्रत्यक्ष रूप से चर्चा मिलती है। कर्णदेव चेदि के गोरहा ताम्रपत्र मे चारो आश्रम का उल्लेख निम्न पक्तियो मे किया गया है—

नीतेषु प्रमदा वियोद विधिना, प्रागु ब्रह्मचारि व्रत

सार्द्धं बन्धुतया गृहस्थ पदवीं कात्यागृहस्थापनात्
वानप्रस्थ पदं वनाश्रम वशात् भैक्षाच्यतिसो स्थिति

(ए इ ११ पृ १४४)

कन्नौज के राजा भोजदेव (आठवीं सदी) के लेख में वाजसनेय शाखा के विद्यार्थी (ब्रह्मचारी) का नाम मिलता है (ए इ ५ पृ २१२)। उसी तरह रतलाम ताम्रपत्र में वाजसनेय शाखा के ब्रह्मचारी को ग्राम दान में देने का उल्लेख है (भा प्रा रि १९ २-३ पृ २१७) पहमान लेख में आजन्म ब्रह्मचारी का वर्णन सुनिए—

आजन्म ब्रह्मचारी दिगम्बर वसन संयतात्मा तपस्वी

(ए इ २ पृ १२१)

देवपाल की प्रशस्ति में सामवेद के अध्ययन करने वाला ब्रह्मचारी हरिस्वर नाम से उल्लिखित है (हरिस्वर ब्रह्मचारी सामवेदिन—ए इ १५ पृ २९८)।

ब्रह्मचारी विद्या समाप्त कर गृहस्थाश्रम में प्रवेश करता था—इस प्रकार का वर्णन लेखों में आया है (गृहाश्रमा वाप्ति परो गृहिण्य ज ए सो बं १८९७ पृ २९२ गृहाश्रम पेसु ए इ २ पृ १६२)। गहड़वाल वंश के लेखों में होम तथा तर्पण का अधिक वर्णन आता है जिसे गृहस्थ सम्पन्न किया करते थे (ए इ ४ पृ १५८ भा १९ पृ २९१) दूसरे शब्दों में यह भी लिखा है कि परिपक्व अवस्था में राजा घर छोड़ कर जंगल चले जाते थे। यानी गृहस्थाश्रम के पश्चात् वानप्रस्थ में प्रवेश करते थे। ताकि तपस्या कर मोक्ष की प्राप्ति हो सके।

गुर्जर प्रतिहार नरेश नाग संसार को चंचल तथा नाशवान समझकर छोटे भ्राता भोज को राज्य सौंप कर जंगल चला गया और धार्मिक जीवन व्यतीत किया (ए इ १८ पृ ९९—नागभटस्य आत्मने पुण्ये नदी निर्झर शोभिते) उसी प्रशस्ति में भिक्षादित्य नामक नरेश का उल्लेख मिलता है जिसने पुत्र को गद्दी देकर गंगा के किनारे तपस्या आरम्भ की—

भिक्षादित्य तपोमति। येना राज्यं इत्यंयेन
पुत्र पुत्राय दत्तवान्। गंगाद्वारे ततोगत्वा
वर्षाण्यष्टादशस्थित। अन्ते च अनशनं कृत्वा
स्वर्गलोक समागत (ए इ १८ पृ ९८)

पाल नरेश विग्रहपाल ने भी ऐसा ही किया था और पुत्र नारायणपाल को सिंहासन का भार देकर स्वयं तपस्वी बन गया (भागलपुर ताम्रपत्र इ ए १५)
सेन-शासक सामन्तसेन (१५ १५०ई) न वृद्ध होकर वानप्रस्थ आश्रम

को अपनाया था तथा गंगा के किनारे जगल मे रहने लगा (ए इ १ पृ. ३०८) जयपालदेव की प्रशस्ति मे व्यक्ति के आयु का भी उल्लेख मिलता है कि पचास वर्ष के पश्चात् राजा तपस्या करने जगल मे चला गया। इस प्रकार आश्रमो के अवधि का परिज्ञान होता है कि ब्रह्मचर्य २५ वर्ष, गृहस्थ २५ वर्ष (जिसके पश्चात् वानप्रस्थ) वानप्रस्थ में भी २५ वर्ष व्यतीत करना पडता था। अतएव प्रशस्तियो के आधार पर स्मृति ग्रन्थो मे वर्णित आश्रमो की चर्चा पुष्ट हो जाती है।

सन्यासी एव मठाधीश

अभिलेखो का अध्ययन यह बतलाता है कि साधु बौद्ध भिक्षुओ की तरह जीवन व्यतीत करते थे। यो तो सन्यासी के लिए "कोपिनमात्र वसन तथा मितभिक्षा भोजी" की बातें लिखी हैं तथा उनके योग तप की भी चर्चा मिलती है—

योग तप कर्म रतो नित्य कर्म सन्यासि (ए० इ० १८ पृ० २१०)

आठवी सदी के पश्चात् उत्तरी भारत मे बौद्ध विहारो के सदृश सन्यासी के लिए मठ पर्वतो को खोदकर बनने लगे। इलौरा तथा एलेफेन्टा की गुफाए उन्हीं विहारो के अनुकरण पर तैयार की गई थी। हिन्दू सन्यासी परिव्राजक भी कहे जाते थे तथा अधिकतर शिव के पुजारी होते थे। शिव को आदर्श योगी मानते हैं इसलिए उनसे प्रेरणा मिलती थी। दानपत्रो मे शिव मन्दिर तथा मठ के लिए दान का वर्णन मिलता है जहा सन्यासी रहा करते थे। कलचुरी रत्नदेव (१२ वी सदी) ने इस प्रकार का मठ तैयार कराया था (ए० इ० ११ पृ० २६५, २१ पृ० १४८) अभिलेखो मे मठ तैयार कर साधु को समर्पित करने का भी विवरण पाया जाता है (ए० इ० १ पृ० २५९, राजपुताना सग्रहालय लेख १९२२-२३ पृ० २) उत्तरी भारत के लेखो मे अनेक स्थलो पर मठ निर्माण तथा परिव्राजक को दान देने का वर्णन मिलता है। कालान्तर मे साधु मठाधीश बन गए, यही कारण है कि मध्यकालीन लेखो मे परिव्राजक नृपति का उल्लेख किया गया है। (ए० इ० २१ पृ० १२६)। मठाधीश के पास अधिक सम्पत्ति हो जाती थी पर दान की सम्पत्ति बेचने का अधिकार न रहता था। कलचुरी लेख मे शैवसाधु की सम्पत्ति को बन्धक रखने का पता चलता है (आ० स० इ० ए० रि० १९३५-३६ पृ० ९१) ७ वी सदी के पश्चात् व्यक्ति से अधिक सामाजिक सस्थाओ (जैसे मन्दिर, मठ, विद्यालय) को दान देने का विवरण लेखो मे मिलता है। वह दान कार्य विशेष के लिए दिया जाता था। कालान्तर मे मठ का मुख्य साधु, अधिकारी के रूप मे कार्य करते हुए मठाधीश हो गया और सारी सम्पत्ति का स्वामी बन बैठा। इसी रूप से सन्यासी मठाधीश होकर शासक की तरह कार्य सम्पन्न करने लगे।

अभिलेखों के गहन अध्ययन से एक विचित्र घटना का परिज्ञान होता है जिसका उल्लेख केवल पूर्वमध्ययुग के लेखों में ही पाया गया है। यों तो जीवन का अन्तिम लक्ष्य मोक्ष-प्राप्ति ही माना गया है परन्तु इसकी बलिदान करके उपलब्धि के निमित्त मृत्यु की प्रतीक्षा करनी पड़ती है। के उपाय ७ १२ ई के लेखों में स्वर्ग प्राप्ति के लिए अनेक उपायों का वर्णन मिलता है। पुराणों में अग्नि में जलना विष पी लेना जल में डूब जाना तथा अनशन करना आदि उपायों से आत्म हत्या करने का आदेश दिया गया है (इस धार्मिक हत्या से पाप नहीं होता था) इन बलिदान के मार्गों का इस युग में अक्षरशः पालन किया गया। मध्यप्रदेश के जौरा ताम्रपत्र में उल्लेख आता है कि कलचुरि नरेश गांगेयदेव अपनी सौ पत्नियों के साथ अग्नि में जल मरा। उल्लेख निम्न प्रकार है—

प्राप्ते प्रयाग वटमूल निवेश बन्धौ
सार्द्धं शतेन गृहिणीभिरमुत्र मुक्तिम् (ए इ २ पृ ४)

ऐसा उदाहरण कुमारगुप्त तृतीय के सम्बन्ध में मिलता है—अम्भसीव करीषाग्नौ मग्न स पुष्प पूजित (का इ इ ३ पृ ४२) मध्ययुग के चन्देल राजा धंग ने भी प्रयाग में अग्नि में जलकर बलिदान किया था (ए इ १ पृ १४)। अभिलेखों में अनशन करने का मार्ग भी उल्लिखित है। प्रति हार राजा विक्रमादित्य ने अनशन से शरीर त्यागा था (अन्ते च अनशनं कृत्वा स्वर्ग लोक समागत ए इ १८ पृ ९९-८) वेदिवंश के लेख में ऐसा ही विवरण पाया जाता है (ए इ २२ पृ १११) आसाम के एक लेख में निम्न पंक्ति मिलती है—

अनशन विधिना भीरस्त्वेमति माहेश्वरे लीन
(गौहाटी ताम्रपत्र ज ए सो ब १८ ७ पृ २९)

हिन्दुओं के अतिरिक्त जैन साधु भी अनशन से बलिदान किया करते थे (ए इ २ पृ ९८)। इस तरह धार्मिक ढंग से आत्म बलिदान करने की क्रिया उत्तरी भारत में प्रचलित थी। काश्मीर में तो अनशन के प्रबन्ध के लिए एक पदाधिकारी नियुक्त था जो प्रायोपवेश कहलाता था। इस ढंग से तपस्या कर वह व्यक्ति मुक्ति प्राप्त करता था।

राजपुताने के लेख में एक नए उपाय का संकेत मिलता है जिसे 'कायवध' कहते हैं। इस कार्य से यात्री उपवास कर ब्राह्मण राजा को अपनी इच्छा पूर्ति के लिए बाध्य करता था। चाहमान लेख में इस शब्द का प्रयोग धार्मिक भाव को छोड़कर सांसारिक लाभ (अर्थ) के लिए किया गया है। अतएव 'कायवध'

को वलिदान के आदर्श श्रेणी मे नही रख सकते ।

अस्माक मध्यान् कोपि ब्राह्मणो निगमते पेट पृष्टि
दर्शयति गृह्यमाणस्तु 'कायव्रनं' कृत्वा मृयते
(ए० इ० ११ पृ० ४०)

दक्षिण भारत मे इस युग मे राजा के चिता पर दरबारी का भी वलिदान किया जाता था। उमे 'मामखाम' कहते थे। जितने उच्च पदाधिकारी राजा के साथ भोजन (पका चावल) करते थे उन सभी को राजा के चिता पर जलना पडता था (दक्षिण भारत के शिलालेख १९२९-३० न० २६७, १९३४-३५ न० १२२-५) इसलिए सक्षेप मे यह कहा जाता है कि धार्मिक भावना से वलिदान (आत्म-हत्या) करने का प्रचलन सर्वत्र था।

प्राचीन भारतीय अभिलेखो के स्वरूप को जानते हुए उनके अध्ययन से सस्कार सम्वन्धी चर्चा की आशा नही की जा सकती किन्तु दान के प्रकरण मे कुछ मस्कार के नाम मिलते हैं। मनुष्य जीवन मे पोडश सस्कार, सम्पन्न सामाजिक सस्कार किए जाते हैं। गुप्त पूर्व लेखो मे तो कोई प्रसग ही नही आता जब सस्कार के सम्वन्ध मे दो चार वातें कही जाय । सातवी सदी के पश्चात जातकर्म, नामकर्म, विवाह तथा श्राद्ध का उल्लेख मिलता है। गहडवाल राजा जयचन्द्र ने अपने पुत्र हरिश्चन्द्र के जन्म (जात कर्म) तथा नामकरण के अवसर पर दान दिया था (ए० इ० ४ पृ० १२६ इ० ए० १८ पृ० १२९) जो कमौली ताम्रपत्रो मे उल्लिखित हैं। विवाह तथा श्राद्ध के विषय मे सीधा वर्णन नही मिलता। कलचुरी प्रशस्तियो मे कर्णदेव द्वारा गागेयदेव के श्राद्ध करने का विवरण पाया जाता है—

(१) समग्र श्रद्धया श्राद्ध विधाय (ए० इ० २ पृ० ३१०)
(२) सम्वत्सरिकपार्वणि श्राद्धे (ए० इ० ४ पृ १०५)

विवाह के विपय मे अभिलेखो की चर्चा नही के वरावर है। उत्तरी भारत के लेखो मे विवाहिता स्त्री के लिए तीन नामो का उल्लेख आताहै—भार्या, गृहिणी तथा पत्नी।

(अ) द्वे भार्ये (ए० इ० २९ पृ० ५४)
(व) सार्धशतेन गृहिणी (ए० इ० १२ पृ० २०५)
(स) वि पत्नी श्री हरिश्चन्द्राख्य पत्नी भद्रा च क्षत्रिया
(ए० इ० १८ पृ० ९५)

इसके अतिरिक्त तिपेरा लेख मे पाराशव पुत्र का नाम आता है जिससे पता चलता है ब्राह्म विवाह के अतिरिक्त अनुलोम प्रथा भी प्रचलित थी [ए० इ० १५ पृ० ३०५) अनुलोम प्रथा (ब्राह्मण वर अन्य वर्ण की कन्या) का प्रचलन

अभिलेखों के गहन अध्ययन से एक विचित्र घटना का परिज्ञान होता है जिसका उल्लेख केवल पूर्वमध्ययुग के लेखों में ही पाया गया है। यों तो जीवन का अन्तिम लक्ष्य मोक्ष-प्राप्ति ही माना गया है परन्तु इसकी वलिदान करने उपलब्धि के निमित्त मृत्यु की प्रतीक्षा करनी पड़ती है। के उपाय ७ १२ ई के लेखों में स्वर्ग प्राप्ति के लिए अनेक उपायों का वर्णन मिलता है। पुराणों में अग्नि में जलना विष पी लेना जल में डूब जाना तथा अनशन करना आदि उपायों से आत्म-हत्या करने का आदेश दिया गया है (इस धार्मिक हत्या मे पाप नहीं होता था) उन बलिदान के मार्गों का इस युग में अक्षरश: पालन किया गया। मध्यप्रदेश के एक ताम्रपत्र में उल्लेख आता है कि कलचुरि नरेश गांगेयदेव अपनी सौ पत्नियों के साथ अग्नि में जल मरा। उल्लेख निम्न प्रकार है—

प्राप्ते प्रयाग वटमूल निवेश बन्धौ
सार्धं शतेन गृहिणीभिरमुत्र मुक्तिम् (ए इ २ पृ ४)

ऐसा उदाहरण कुमारगुप्त तृतीय के सम्बन्ध में मिलता है—अम्भसीव करीषाग्नीमग्न स पुष्प पूजित (का इ इ ३ पृ ४२) मध्ययुग के चन्देल राजा धंग ने भी प्रयाग में अग्नि में जलकर बलिदान किया था (ए इ १ पृ १४)। अभिलेखों में अनशन करने का मार्ग भी उल्लिखित है। प्रतिहार राजा भिल्लादित्य न अनशन से शरीर त्यागा था (अन्ते च अनशनं कृत्वा स्वर्ग लोक समागत ए इ १८ पृ ९९-८) चैदिवंश के लेख में ऐसा ही विवरण पाया जाता है (ए इ २२ प १६५) आसाम के एक लेख में निम्न पंक्ति मिलती है—

अनशन विधिना वीरस्तेजसि माहेश्वरे लीन
(नौगग ताम्रपत्र ज ए सो बं १८९७ पृ २९)

हिन्दुओं के अतिरिक्त जैन साधु भी अनशन से बलिदान किया करते थे (ए इ २ पृ ९८)। इस तरह धार्मिक ढंग से आत्म बलिदान करने की क्रिया उत्तरी भारत में प्रचलित थी। काश्मीर में तो अनशन के प्रबन्ध के लिए एक पदाधिकारी नियुक्त था जो प्रायोपवेश कहलाता था। इस ढंग से तपस्या कर वह व्यक्ति मुक्ति प्राप्त करता था।

राजपूताना के लेख में एक नए उपाय का संकेत मिलता है जिसे 'कामार्त' कहते हैं। इस कार्य से यानी उपवास कर ब्राह्मण राजा को अपनी इच्छा पूर्ति के लिए बाध्य करता था। चाहमान लेख में इस शब्द का प्रयोग धार्मिक भाव को छोड़कर सांसारिक लाभ (अर्थ) के लिए किया गया है। अतएव 'कामार्त'

को बलिदान के आदर्श श्रेणी मे नही रख सकते ।

अस्माक मध्यान् कोपि ब्राह्मणो निगमते पेट पृष्टि
दर्शयति गृह्यमाणस्तु 'कायव्रतं' कृत्वा मृयते
(ए० इ० ११ पृ० ४०)

दक्षिण भारत मे इस युग मे राजा के चिता पर दरवारी का भी बलिदान किया जाता था। उसे 'मामखाम' कहते थे। जितने उच्च पदाधिकारी राजा के साथ भोजन (पका चावल) करते थे उन सभी को राजा के चिता पर जलना पडता था (दक्षिण भारत के शिलालेख १९२९-३० न० २६७, १९३४-३५ न० १२२-५) इसलिए सक्षेप मे यह कहा जाता है कि धार्मिक भावना से बलिदान (आत्म-हत्या) करने का प्रचलन सर्वत्र था।

प्राचीन भारतीय अभिलेखो के स्वरूप को जानते हुए उनके अध्ययन से सस्कार सम्वन्धी चर्चा की आशा नही की जा सकती किन्तु दान के प्रकरण मे कुछ सस्कार के नाम मिलते हैं। मनुष्य जीवन मे षोडश सस्कार सम्पन्न सामाजिक सस्कार किए जाते हैं। गुप्त पूर्व लेखो मे तो कोई प्रसग ही नही आता जब सस्कार के सम्वन्ध मे दो चार बातें कही जाय । सातवी सदी के पश्चात जातकर्म, नामकर्म, विवाह तथा श्राद्ध का उल्लेख मिलता है। गहडवाल राजा जयचन्द्र ने अपने पुत्र हरिश्चन्द्र के जन्म (जात कर्म) तथा नामकरण के अवसर पर दान दिया था (ए० इ० ४ पृ० १२६ इ० ए० १८ पृ० १२९) जो कमौली ताम्रपत्रो मे उल्लिखित हैं। विवाह तथा श्राद्ध के विषय मे सीधा वर्णन नही मिलता। कलचुरी प्रशस्तियो मे कर्णदेव द्वारा गागेयदेव के श्राद्ध करने का विवरण पाया जाता है—

(१) समग्र श्रद्धया श्राद्ध विधाय (ए० इ० २ पृ० ३१०)
(२) सम्वत्सरिकपार्वणि श्राद्धे (ए० इ० ४ पृ १०५)

विवाह के विषय मे अभिलेखो की चर्चा नही के बराबर है। उत्तरी भारत के लेखो मे विवाहिता स्त्री के लिए तीन नामो का उल्लेख आताहै—भार्या, गृहिणी तथा पत्नी।

(अ) द्वे भार्ये (ए० इ० २९ पृ० ५४)
(ब) सार्धंशतेन गृहिणी (ए० इ० १२ पृ० २०५)
(स) वि पत्नी श्री हरिश्चन्द्राख्य पत्नी भद्रा च क्षत्रिया
(ए० इ० १८ पृ० ९५)

इसके अतिरिक्त तिपेरा लेख मे पाराशव पुत्र का नाम आता है जिससे पता चलता है ब्राह्म विवाह के अतिरिक्त अनुलोम प्रथा भी प्रचलित थी [ए० इ० १५ पृ० ३०५) अनुलोम प्रथा (ब्राह्मण वर अन्य वर्ण की कन्या) का प्रचलन

के कारण ही ब्राह्मण हरिश्चन्द्र ने क्षत्रिय कन्या से विवाह किया था (तेन श्री हरिश्चन्द्रेण परिणीता द्विज आत्मजा द्वितीया क्षत्रिया ए इ १८ पृ ९५) चेदिराजा यश कर्ण ने हूणराजकुमारी से विवाह किया (ए इ २ पृ ४)। इस तरह के अनेक अन्तर्जातीय विवाह के उदाहरण लेखों में भरे पड़े हैं। मुसलमान लेखकों—इब्न खुरदबा तथा अलबेरूनी ने भी अन्तर्जातीय विवाह की चर्चा की है।

बहु पत्नी व्रत

अभिलेखों के परिशीलन से यह प्रकट होता है कि साधारण जनता में एक साथ अनेक विवाह करने का प्रचलन न था। केवल राजघरानों में बहु पत्नी व्रत का उल्लेख पाया जाता है। प्रतिहार वंश के जोधपुर प्रशस्ति में आदि पुरुष हरिश्चन्द्र की दो पत्नियाँ थीं। (ए इ १८ पृ ९५) उसी के वंशज महेन्द्र पाल ने एक साथ दो स्त्रियों से विवाह किया था। (ए इ १४ पृ १७६) परमार प्रशस्ति में जयदेव प्रथम विरुप के सम्बन्ध में उल्लेख है कि राजा ने सोलंकी तथा धवल वंशी राजकुमारियों से शादी की थी (ए इ २२ पृ ५६ के आगे) चन्देल लेख में मदन वर्मन तथा देवपाल के लिए ऐसा ही विवरण पाया जाता है (ए इ १ पृ २ भा १ पृ ४८) पाल्हण देवी तथा लीला देवी चाहमान राजा राज्यपाल की पत्नी कही गई हैं। रामा तथा पद्मा गंगाधर की भार्या थीं (ए इ ११ पृ ११ भा २१ पृ १९) गहड़वाल नरेश गोविन्द चन्द्र देव ने पाँच राजकुमारियों से विवाह किया था जबकि उसके पिता मदन पाल की दो धर्म पत्नियाँ थीं (ए इ ९ पृ १२४) सबसे विचित्र बात तो यह है कि चेदि राजा गांगेय देव की सौ रानियाँ थीं जो उसके साथ अग्नि में जलकर स्वर्ग लोक सिधारीं (ए इ २ पृ ४ भा १२ पृ २११ सार्धं शतेन गृहिणी) संक्षेप में कहा जा सकता है कि राजाओं की एक साथ कई रानियाँ महल में रहती थीं जो बहु पत्नी व्रत का द्योतक है।

सती प्रथा

प्राचीन प्रशस्तियों में विधवा के आत्म-बलिदान का उतना विवरण नहीं मिलता जितना स्मृतिकारों ने वर्णन किया है। गुप्त युग से पूर्व इस सम्बन्ध में कुछ कहना कठिन है परन्तु गुप्त कालीन स्मृतियों में विधवा के जीवन के दो मार्ग बतलाया गया है। ब्रह्मचारिणी अथवा सती। विष्णु (२५।१४) तथा बृहस्पति (२५।११) ने इन दो मार्गों का वर्णन किया है। किन्तु सती प्रथा का अभाव न था और छठी सदी के एरण (मध्य प्रदेश) लेख में भानुगुप्त के सेनापति गोपराज की पत्नी के सती होने का उल्लेख मिलता है।

भक्ता मुरक्ता च प्रिया च कान्ता भार्याविलग्नानुगताग्निराशिम् ।

बाण ने लिखा है कि राज्यश्री स्वेच्छा से सती होने को तैयार थी । इस प्रकार पूर्व मध्य युग मे सती प्रथा का प्रचलन प्रकट होता है । मध्ययुग के मुसलमान लेखक सुलेमान तथा अलबेरूनी ने रानियो के सती होने की बातें लिखी है । कलचुरी नरेश गांगेयदेव की सौ स्त्रिया आग मे जल मरी थीं परन्तु इसे सहमरण का नाम दिया जा सकता है । राजतरगिणी में कल्हण ने रानियो के सती होने का उल्लेख किया है (तर० ७, ७२४, ८५९) जोधपुर के एक लेख मे राजपूत रानियो के सती होने की चर्चा की गई है (ए० इ० २० पृ० ५८) इस प्रकार मध्य प्रदेश तथा राजपूताने मे सती होने या सहमरण का उदाहरण मिलता है । राजपुताने के इतिहास मे हजारो स्त्रियो के अग्नि मे जलने की बातें उल्लिखित हैं लेकिन उसे जौहर का नाम दिया गया है । सती के वास्तविक अर्थ से वह न्न है ।

गणिका

भारत में सगीत का प्रेम सदा से एक-सा रहा तथा ऊँचे श्रेणी के लोग सगीत तथा गणिका से सम्बन्धित रहते थे । प्राचीन लेखो में भी सगीत का किसी न किसी रूप से उल्लेख पाया जाता है । अशोक ने अपने धर्मशासन मे उस 'समाज' की निन्दा की है जहा सगीतमय और वैभवपूर्ण जीवन व्यतीत किया जाता हो । विद्वानो के समाज (एक चा समाजा साधुमता) को श्रेष्ठ बतलाया है । मौर्य युग के पश्चात् कलात्मक उदाहरणो से इस बात का परिज्ञान होता है कि समाज की जनता सगीत में चि रखती थी (जिसे राजा के भय से लोगो ने दबा रक्खा था) और इसीलिए भारहुत के स्तम्भ पर सगीत का प्रदर्शन पाया जाता है । वहा अप्सराएँ नृत्य कर रही हैं तथा अनेक वाद्य बज रहे हैं । दक्षिण भारत अमरावती की कला मे भी ऐसा ही प्रदर्शन है । बोधिसत्व के सम्मुख तुषितस्वर्ग मे अप्सराए नृत्य कर रही हैं और उन्हें ससार में अवतरित होने का आग्रह किया जा रहा है । वही बोधिसत्व हाथी के रूप में मायादेवी के गर्भ मे आए । लेखो मे गणिका द्वारा शासक की प्रशसा करने का भाव उल्लिखित है । सामन्तसेन के यश को गाती हुई अप्सराओ का विवरण देवपारा प्रशस्ति मे मिलता है—(ए० इ० १ प० ३१० पद्य ५)

उद्गीयन्ते यदीयासवल दुद्धि जलो
लोल शीतेपु सेतो
कच्छान्तेपु अप्सरोभिर्दशरथ तनय
स्पर्द्धया युद्ध गाथा

अभिलेखों का अध्ययन यह बतलाता है कि गणिका समाज में फैली थीं और आसाम में तो उनके साथ ग्राम-दान का वर्णन पाया जाता है (तेजपुर ताम्रपत्र ज ए सो बं ९ पृ ७६६) बाघ की गुफाओं में सुन्दर वस्त्र पहने नर्तकी का समूह चित्रित है। पूर्व मध्ययुग में भगवान को प्रसन्न करने के लिए मन्दिरों में गणिका रक्खी जाती थी इसी कारण नट-मण्डप नामक मन्दिर का प्राकार तैयार किया गया। देवपारा लेख में इस तरह की मन्दिर-गणिकाओं का वर्णन है (ए० इ १ पृ ३१) खजुराहो तथा भुवनेश्वर मन्दिरों की दीवालों पर गणिकाओं के चित्र खुदे हैं जो नाना प्रकार के वाद्यों का प्रयोग कर रही हैं। १२ वीं सदी के चहमान लेख में वेश्याओं पर लगाए गए कर (टैक्स-रूपजीवा) का उल्लेख है जिसे शासक ने कारणवश माफ कर दिया (आ स रि० ए रि १९ ८९ पृ ११९) यह है कि इस तरह के शुल्क का वर्णन अन्यत्र नहीं मिलता परन्तु कला तथा लेखों का अध्ययन यह प्रकट करता है कि सांसारिक तथा देवकार्यों में गणिका की सहायता ली जाती थी। प्राचीन भारतीय समाज में उन्हें तिरस्कृत करने की भावना न थी।

प्रत्येक समाज में वस्त्र तथा आभूषण सर्वप्रिय वस्तु तथा आवश्यक सामग्री समझी गई है। लेखों में इसका विस्तृत विवरण नहीं मिलता केवल गौणरूप से कुछ उल्लेख पाया जाता है। अशोक के धर्मशासन में (सारनाथ

वस्त्राभूषण तथा शृंगार के साधन

कौशाम्बी तथा साँची स्तम्भ) वर्णन मिलता है कि संघ में भेद पैदा करने वाले भिक्षु या भिक्षुणी को सफेद वस्त्र पहना कर बहिष्कृत कर दिया जायगा। गृहस्थ लोग सफेद वस्त्र तथा भिक्षु रंगीन (पीला) वस्त्र धारण करते थे। अत भिक्षु के लिए सफेद वस्त्र निन्दनीय समझा जाता था। अशोक ने उनकी निन्दा की ओर संकेत किया था। उसके पश्चात् दान के प्रसंग में भिक्षुओं को चीवर (अधो-वस्त्र तथा चपारी) देने का वर्णन नासिक लेख में पाया जाता है। (मविलेवि विवरिक गुहानमूले च ए इ ८ पृ ८२) भागलपुर ताम्रपत्र में भी दान के विभिन्न कार्यों में चीवर दान का उल्लेख मिलता है (ए इ १७)। सम्भवत प्रशस्तियों में वस्त्राभूषण के उल्लेख का अवसर न रहा इसलिए उनमें संतोषप्रद उल्लेख नहीं मिलता। प्रतिमाओं के परीक्षण से अधिक बातों का पता चलता है।

शृंगार के प्रसाधनों में बाल सँवारने सिंदूर लगाने तथा अंजन देने का वर्णन पाया जाता है। बालों के नाना प्रकार की बंधियों की जानकारी खुदे चित्रों से ही आती है। महेन्द्रपाल की पहला प्रशस्ति मे शत्रुओं के स्त्रियों के

सीधे वालों (घुघराले या ग्रथियुक्त नही) का वर्णन है जो पति के मरने पर विधवा हो गई थी (ए० इ० १ पृ० २४६) ।

करतलस्थगिताधर पल्लवा प्रतनुकान्ति कपोल तलोदरम्
सिपिचुरमु जलैर्यदरिस्त्रियस्सरलित प्रचुरालक जालका ।

सिन्दूर ललनाओ के सौभाग्य का चिन्ह था (युद्ध मे) पति की मृत्यु के कारण विधवाएँ उसे प्रयुक्त नही करती। चन्देल नरेश के खजुराहो लेख में वैसा ही वर्णन आता है कि वह सौभाग्य चिन्ह नष्ट हो गया था और कुकुम का भी प्रयोग समाप्त कर दिया गया था (ए० इ० १ पृ० १२९)

सिन्दूर भूषणविवर्जित मास्य पद्म उत्सृष्ट हार वलय कुचमण्डलञ्च ।

आखो मे अञ्जन लगाने का वर्णन अभिलेखो मे कम मिलता है। उस सम्बन्ध मे धनिक के नगर लेख की निम्न पक्ति सुनिए —

भ्रूभङ्गया रहितैरनन्यगतिभि सन्त्यक्त कालाञ्जनै
(भारत कौमुदी भा० १ पृ० २७४)

ऐसा ही वर्णन अन्य स्थानो पर आता है (ए० इ० २६ पृ० २५४) इस तरह चित्रों के अतिरिक्त अभिलेखो मे भी यदा कदा उल्लेख मिलता है जो समाज मे शृगारिक प्रसाधन के प्रयोग का द्योतक है।

छठी सदी से पूर्व के लेखो मे भोजन के प्रसग मे विभिन्न वस्तुओ का नाम नही मिला, केवल दान के धन से भोजन वस्त्र के व्यय का उल्लेख पाया जाता है। नासिक लेख मे ब्राह्मणो के लिए भोजन निमित्त ग्राम-

भोजन तथा पेय दान का उद्देश्य बतलाया गया है—षोडश ग्रामदेन अनुवर्ष ब्राह्मण शतसाहस्री भोजापयित्वा (ए० इ० ८ पृ० ७८)। गुप्त लेख मे भी इसी तरह का वर्णन आता है कि पचीस दीनार भिक्षु के भोजन निमित्त दिया गया—तात्वत्पचभिक्षवो भुजता रत्नगृहे (का० इ० इ० ३ पृ० ३१) छठी शताब्दी के अभिलेखो मे सत्र (=छत्र) शब्द का प्रयोग मिलता है जिसका भाव भोजन वितरण के स्थान से है। वहा पर बिना मूल्य के भोजन विभक्त किया जाता था। यह अवस्था प्राचीन कालीन समाज मे सर्वत्र वर्तमान थी और गृहहीन भूखें एव साधुओ को भोजन दिया जाता था। आठवी सदी के नालदा ताम्रपत्र मे "सम्यग् बहुघृत दधिभि व्यजनै युक्तमन्नम्" (ए० इ० २० पृ० ४४) का उल्लेख है। यानी घी, दूध दही आदि तथा अन्य व्यजन के साथ भोजन विभक्त किया जाता। गेहू तथा चावल के प्रयोग का विवरण मिलता है। भगवान के लिए नैवेद्य भी अन्न से तैयार किया जाता था। राजपुताने के एक लेख मे आटा चावल को घी मे पकाने का विवरण आता है। नैवेद्य के लिए दो सेर आटे के लिए आठ कलस (एक माप) घी की आवश्यकता पडती थी

(ए इ २ पृ ५०) गन्ना की खेती का वर्णन चीनी के प्रयोग की बातें बतलाता है (इ ए ११पृ० २९) तेल घी का प्रयोग तो अत्यधिक मात्रा में होता था क्योंकि भोजन के अतिरिक्त मन्दिर में दीपक जलाने के काम आता था। यह भोजन सम्भवतः ऊँचे श्रेणी के लोगों के लिए था। स्मृतियों में भोजन सम्बन्धी चर्चा विशेष रूप से मिलती है और स्मृतिकारों ने वैज्ञानिक ढंग से भोजन सामग्रियों पर विचार किया है। दानपत्रों में सभत्स्या कार' (मछली के सागर सहित) शब्द से यही तात्पर्य समझा जा सकता है कि समाज में कुछ व्यक्ति मछली तथा मांस का भी प्रयोग करते थे। गहड़वाल लेखों में 'सजल समत्स्य' शब्दों का प्रयोग अधिक मिलता है (ए इ भा ४ ८,११ पृ १५४ ७१)। इसके अतिरिक्त व्यापार के सिलसिले में किराना शब्द का (किराणक) उल्लेख यह प्रकट करता है कि भोजन में मसाले का भी प्रयोग अवश्य होता था (ए इ ११ पृ ४१)।

भोजन सामग्री के मुख्य सम्बन्धी बातों का सीधा उल्लेख अभिलेखों के अध्ययन से नहीं मिलता तो भी कुछ उदाहरण ऐसे हैं जिनसे तत्सम्बन्धी अर्थ निकाला जा सकता है। ईसवी पूर्व के लेखों में एसा कोई संदर्भ नहीं भोजन का है परन्तु दूसरी सदी के नहपान कालीन नासिक लेख में मूल्य पर्याप्त वर्णन है। यह पंक्तियाँ निम्न रूप से अंकित हैं—
कहापणा सहस्रानि त्रीणि ३ संघस चातुदिसस ये इमस्मिं लेणे वसतान भवसन्ति चिवरिक कुशनमूले च। एते च कहापणा प्रयुक्ता गोवधनं वाथवासु श्रेणिसु। कोलिक निकाये २ वृधि पडिक सत। अपर कोलिक में १ वधि पाउन पडिक सत। एते च कहापना अपडिदातवा वधि भोज्या (ए इ ८पृ ८२) एतो चिवरिक सहस्रानि वे २ ये पडिक सते। एतो मम लेने वसथुवाम भिखुनं वीसाय एकीकस चिवरिक बारसक। ये सहस्र प्रयुक्तं पायुन पडिक सते अतो कुशन मूले।

तीन हजार कार्षापण भिक्षुओं के वस्त्र तथा भोजन के निमित्त संघाराम संघ के पास जमा किया। उसमें दो हजार एक पण प्रति सौ सूद के दर से तथा एक हजार तीन चौथाई पण प्रति सौ के दर से। दो हजार के सूद से बीस भिक्षुओं का वस्त्र व्यय तथा एक हजार की सूद से भोजन व्यय चलेगा। मूल धन व्यय नहीं होगा। केवल सूद का प्रयोग ही होगा। इसका तात्पर्य यह है कि बीस भिक्षुओं के लिए बीस पण (सिक्का) वस्त्र में तथा साढ़े सात कमा भोजन में प्रति वर्ष (?) व्यय किया जाता था। इस तरह प्रति भिक्षु के आने प्रतिमास भोजन व्यय पड़ता होगा। अतः यह अनुमान लगाया जा सकता

है कि भोजन सामग्री अत्यन्त सस्ते दाम पर बिकती थी।

चौथी शताब्दी के गुप्त लेख मे भी अन्य प्रकार का वर्णन आता है। द्वितीय चन्द्रगुप्त के गढवा लेख मे ब्राह्मण के भोजन निमित्त दस दीनार (स्वर्ण-मुद्रा) देने का उल्लेख मिलता है। इसमे सूद के दर का उल्लेख नही है। दूसरे लेख मे बारह दीनार को सूद पर देने का वर्णन है जिसकी आय से एक भिक्षु को भोजन व्यय दिया जाता था। यानी चारसौ वीस (१ दीनार = ३५ रजत मुद्रा) रुपया का सूद भोजन के लिए पर्याप्त था। यदि सूद का दर एक कार्षापण प्रति सौ मान लिया जाय तो वर्ष मे एक व्यक्ति के भोजन के लिए चार रुपया तीन आने की आय होगी। यानी छ आने प्रति मास के हिसाब से भोजन व्यय प्रति व्यक्ति होता है। चातुर्दिशायर्भ सघायाक्षनी विदत्ता दीनारा द्वादश। एतेषा दीनाराणा या वृद्धि रूपजायते तथा दिवसे दिवसे सघ मध्य प्रविष्ट भिक्षोरेको भोजयितव्या (का० इ० इ० ३ न० ६३) साराश यह है कि गुप्त युग तक भोजन व्यय नाममात्र का था। सामग्रिया अत्यन्त सस्ती थी। ईसवी सन् की पहली सदी से पाचवी सदी तक भोजन सामग्री का मूल्य प्राय समान था।

जहा तक पेय का प्रश्न है लेखो मे तीन प्रकार की नशीली चीजो के नाम मिलते हैं।

(१) सुरापान या मधुपान
(२) सोमरस
(३) रसवती या ताडी

प्रथम पेय—शराव का प्रयोग ब्राह्मण से भिन्न जातिया करती रही। जोधपुर की प्रशस्ति से पता चलता है कि ८वी सदी मे राजपुताने के क्षत्रिय सुरापान से प्रेम रखते थे। गुर्जर प्रतिहार राजा हरिश्चन्द्र की दो रानिया थी। ब्राह्मण कन्या तथा राजपूत कन्या से उसने विवाह किया था। लेख मे वर्णन है कि राजपूत कन्या की सन्तान सुरापान मे अभ्यस्त थी।

राज्ञी भद्रा च यात्सूते ते भूता मधुपायिन
(ए० इ० १८ पृ० ९५)

उसी वश के ग्वालियर प्रशस्ति से स्त्रियो के शराव पीने की चर्चा मिलती है (ए० इ० १८ पृ० १०८ पद्य ६) अलवेरूनी ने भी ऐसा ही लिखा है कि क्षत्रिय वर्ग के लोग शराव पीते थे। पूर्व मध्ययुग (७००–१२०० ई०) मे क्षत्रिय वर्ग के लिए सम्भवत शराव लोक प्रिय हो गया था। मध्यभारत के अनेक दानपत्रो मे आम्र तथा मधूक (महुआ) वृक्ष के साथ ग्रामदान का विवरण पाया जाता है (ए० इ० भा० ४ पृ० ११९, भा० ८ पृ० १५४, भा० २१ पृ० ९५)

इस मधूक पुष्प से एक तरह का रस (शराब) तैयार किया जाता है पर यह कहना कठिन है कि दानग्राही ब्राह्मण प्रयोग करते थे या नहीं। बलहार दान लेन के कारण ग्राम में मधूक से तयार रस को ब्राह्मणों द्वारा विक्रय करने की भी बात सोची जा सकती है। लेखों के आधार पर इतना कहा जा सकता है कि उस रस (सोमरस ?) का प्रयोग जनता करती हो।

तीसरा पेय ताड़ी है जिसे कलचुरी लेख में रसवती कहा गया है (ए इ २१ पृ ९५) वर्तमान समय में भी ताड़ी निम्न श्रेणी के लोगों का पेय है। कौटिल्य ने पुल्कसा नामक जाति का उल्लेख किया है जो शराब का काम करता था। आजकल की पासी जाति से इसकी समता की जा सकती है। शराब-व्यापारी वणिक वर्ग के कलवार उपशाखा का नाम (कल्लपाल) लेखों में मिलता है। प्रशस्ति में वर्णन है कि इस वर्ग को भी मद्यमाण्ड की संख्या पर 'कर' चुकाना पड़ता था। निम्नलिखित वर्णन सुनिए—

समस्त कल्लपालानां मध्ये यस्य यस्य सत्कमद्यभाण्डे वि पद्यते विक्रय जाति यत्र स चन्द्रार्कं यावत् विग्रहपाल सत्कत्रमार्धिका दातव्या (ए इ १ पृ १७४) आधा सिक्का—आठ आना (विग्रहपालीय द्रम) एक मद्यमाण्ड पर टैक्स के रूप में देना पड़ता था। परमार प्रशस्ति (१ ७८ ई) में भी 'कर' देने की बात लिखी है (ए इ १४ पृ २९८) इस प्रकार शराब तथा रसवती पर 'कर' के प्रसंग में पेय के नामों की जानकारी होती है।

प्राचीन स्मृतियों में वर्णन है कि साधु तथा ब्रह्मचारी भिक्षा मांग कर अपना जीवन निर्वाह करते थे। बौद्ध संघ में भिक्षु तथा भिक्षुणी ग्रामों में भिक्षा मांग कर विहारों में लौट जाते। समाज मे गृहस्थ भी समाज में भिक्षा उनको भोजन देना अपना कर्तव्य समझते थे। इसलिए वर्णाश्रम मांगने की प्रथा धर्म तथा समाज की स्थिति से भिक्षा मांगने का कार्य बढ़ता ही गया। ब्राह्मण साधु तथा भिक्षुओं की संख्या भी बढ़ती गई। यद्यपि प्रशस्तियों में भिक्षा मांगने के सम्बन्ध में कुछ कहा नहीं गया है तथापि उनके अध्ययन से इस विषय पर प्रकाश पड़ता है। मौर्ययुग से ग्रामों से कुछ मील दूर विहार बनवाए गए थे। जिसका मुख्य उद्देश्य यही था कि भिक्षु भिक्षा मांग कर सरलता से कुटा में लौट जाए। पूर्वी तथा पश्चिमी भारत की सह्याद्रि गुहाएं उसके साक्षात उदाहरण हैं। गुप्त युग तक अजंता की गुफाएं, सारनाथ श्रावस्ती तथा नालंदा के विहार तथा मध्ययुग की इलौरा से उपरियुक्त कथन की पुष्टि करती हैं।

७ ०-१२ ई के अभिलेखों में पर्याप्त रूप से दान का वर्णन मिलता है

प्रशस्तियो के विवरण से पता चलता है कि ग्रामदान या धनदान विद्वान ब्राह्मणो को दिया जाता था जो प्राय अध्यापन का काम करते थे। शिक्षा सस्थाओं, मदिर या विद्यालयो को भी दान दिया जाता था।

समाज ने व्यक्ति से अधिक सस्थाओ को महत्व दिया। शिक्षालयो मे भूमि या धन दान देकर ब्रह्मचारी या भिक्षु को भिक्षा कार्य से मुक्त कर दिया जाता था। सस्थाओ मे ही भोजन वस्त्र का प्रबन्ध रहता और इस प्रकार भिक्षा-वृत्ति को अन्त करने का प्रयास था। भूमिदान से भिक्षावृत्ति समाप्त प्राय हो गई और उसकी बुराई जाती रही।

शिक्षा सस्थाओ के दान का वर्णन मध्य देश तथा बगाल के लेखो मे अधिक मिलता है। जयसिंह के मान्धाता ताम्रपत्र मे अमरेश्वर पाठशाला को अग्रहार देने की चर्चा की गई है—

सर्वादाय समेतश्च श्री अमरेश्वर पट्टशाला
ब्राह्मणेभ्यो भोजनादि निमित्तम्

(ए० इ० ३ पृ० ४९)

नालदा ताम्रपत्रो मे शासक द्वारा भिक्षु सघ को ग्रामदान का वर्णन मिलता है जिसकी आय से स्वादिष्ट भोजन, आसन, औषधि आदि का प्रबन्ध किया गया था — घृत दधिभि व्यजनै भिक्षुभ्य चतुर्भ्यो नित्यतोम सत्रे विभक्त विमलभिक्षुसघाय दत्तम् (ए० इ० भा० १७ पृ० ३१०, भा० २० पृ० ४४) इस उद्धरण मे सत्र शब्द विशेष अर्थ मे प्रयुक्त है। उसका अर्थ भोजन बाँटने का स्थान (भिक्षा गृह) या छत्र (सदावर्त) माना गया है। मध्यकालीन लेखो मे सत्र शब्द भरा पड़ा है। गुप्त युग मे इसे धर्म-सत्र कहते थे (कुमार-गुप्त प्रथम का भिलसद लेख (ए० इ० १४ पृ० ६३६) इस स्थान पर साधु, भिक्षु या अनाथ व्यक्तियो को नि शुल्क भोजन दिया जाता था। अधिकतर सत्र (भिक्षा गृह) मदिर मे सम्बन्धित रहते थे और मदिर प्रबध समिति उसकी देखमाल करती थी। प्रतिहार लेख (ए० इ० १४ पृ० १७७) में सत्र के सचा-लन के निमित्त ग्रामदान का उल्लेख है। चहमान लेख मे इसे अन्नसत्र कहा गया है (ए० इ० १३ पृ० २९०) कलचुरी मत्री गगधर के दान पत्र मे इस भिक्षा गृह को सर्वमत्री (ए० इ० २१ पृ० १६५) का नाम दिया गया था जहा स्वादिष्ट भोजन वितरित किया जाता था (मिष्ठान पान सम्पन्ना सर्व सत्री व्यावादसौ)। ११ वी सदी के आसाम शासक जयपाल देव तथा वल्लभ देव ने शिवमदिर से सम्बद्ध एक 'भिक्षागृह तैयार कराया था जिसे भक्तशाला कहते थे। लेख मे भक्तशाला क्षुधार्थिना महादेवस्य मन्दिरो वाक्य उल्लिखित

है। (ए इ ५ पृ १८१) यह परम्परा आज भी प्रचलित है तथा वाराणसी में छत्र अनेक मंदिरों में स्थित है। छत्र सत्र शब्द का विकृत रूप ही मालूम पड़ता है। लेखों के विशद् विवेचन से पता चलता है कि समाज में भिक्षावृत्ति को रोकने की कामना थी परन्तु भिक्षा देने का भाव विद्यमान था। भिक्षा मांगने की प्रथा का अन्त आवश्यक था। शासक तथा धनीमानी व्यक्तियों ने इस बुराई को हटाने का सफल प्रयत्न किया और सत्र की स्थापना से व्यक्तिगत भिक्षा वृत्ति प्रायः समाप्त हो गयी।

अन्धविश्वास

सातवीं सदी से पूर्व के लेखों में अन्धविश्वास की चर्चा नहीं मिलती जिसके सहारे प्राचीन समय में भूत प्रेत या तंत्र-मंत्र के सम्बन्ध की जानकारी हो सके। अशोक के लेखों में स्वर्ग प्राप्ति के उपाय तथा परलोक में सुख मिलने की बात कही गई है। शासक भी ऐसा ही कार्य करता था कि जनता सुख यश पुण्य तथा निर्वाण (स्वर्ग प्राप्ति) पा सके।

तथा कछत हिदलोकिके च कं आलध होति परत्र
च अनंत पुंना पसवति तेना धंम दानेन।

(शिलालेख नं ११)

हिद च से अथे परत च अनंत पुनं प्रसवति तेन ध्रम मंगलेन

(शिलालेख नं ९)

यों तो अन्धविश्वास किसी न किसी रूप में समाज में प्रचलित रहा और वैदिक तथा संस्कृत साहित्य में सम्मोहन वशीकरण तथा मारण आदि का वर्णन पाया जाता है परन्तु प्रशस्तियों में यह विवरण नहीं के बराबर है। गुप्त लेखों में उल्लिखित 'वाताताय' की समता 'भूतवात प्रत्याय' से की जाती है। यह एक प्रकार का कर (टैक्स) था जो भूत व वात के हटाने के लिए लगाया जाता था। पूर्व मध्य काल तंत्र-मंत्र का युग था और बौद्धों के वज्रयान अथवा मन्त्रयान ने अन्धविश्वासों पर आस्था स्थिर की। तंत्र-मंत्र समाज मे घर कर गये। धारणी तथा मंत्रों का प्रयोग प्रशस्तियों के प्रारम्भ मे होने लगा। बीजमंत्र तथा भूत-प्रेत में अत्यधिक विश्वास उत्पन्न हो गया। ह्वेनसांग ने ज्योतिषी तांत्रिक भविष्य कथन करने वाले बौद्ध तथा जैन व्यक्तियों का विवरण दिया है। यदि समस्त अभिलेखों का विवेचन किया जाय तो पता चलता है कि—

(१) स्वर्ग व नरक
(२) राहु द्वारा सूर्य तथा चन्द्र को ग्रसना

(३) भूत-प्रेत
(४) ज्योतिष तथा भविष्य वक्ता

सम्बन्धित कार्यों मे जन साधारण का पूर्ण विश्वास हो गया था। दान के उद्देश्य (स्वर्ग की प्राप्ति) मे निम्नलिखित वाक्य मिलते हैं

(अ) समारर्णिव तरणार्थ स्वर्ग मार्ग अर्गलोद्घाटन हेतो (ए० इ० ३ पृ० २६६)
(व) स्वर्ग द्वार कपाट अर्गलोदघाटताय (वही भा० ५ पृ० ११४)
(स) प्राणास्तृणाग्र जलविन्दु समानराणाम् धर्मस्सखा परमरहो परलोक याने (वही भा० ११ पृ० ८)
(द) स्वर्ग लोक समागत (ए० इ० भा० १८ पृ० ९६)
(य) पष्टिवर्ष सहस्राणि स्वर्गे मोदति भूमिद आच्छेता चानुमन्ता च तान्येव नरके वसेत्। (ए० इ० ४ पृ० १३३)

सूर्य चन्द्र को राहु ग्रस लेता है (जिसे ग्रहण कहते हैं) इस अन्धविश्वास पर आधारित कुसमय पर दान का उल्लेख प्रशस्तियो मे किया गया है (राहु ग्रस्ते दिवाकर—ए० इ० ४ व ११ पृ० १५८, २१९) चन्देल तथा गहडवाल प्रशस्तियो मे भूत-प्रेत की चर्चा अधिक मिलती है। निम्न पक्ति दानपत्रो मे पाई जाती है—गगाया विधिवत् स्नात्वा मंत्र देव मनुज मुनि भूत पितृ गणा तर्पयित्वा (ए० इ० भा० ४) सम्भवत. पौराणिक विचारधारा के कारण जनसाधारण मे वलि देने की प्रथा चली। गोविन्दचन्द्र के मत्री लक्ष्मीधर ने राज धर्मकाण्ड मे —"पिशाचेभ्यो वलिदघात्सध्याकाले च नित्यश" का वर्णन किया है (गा० ओ० सि० १०० पृ० १७६)

इसके अतिरिक्त प्रशस्तियो मे एक नैमित्तिक (=ज्योतिषी) का नाम पदाधिकारियो की सूची मे मिलता है। गहडवाल नरेश गोविंद चन्द्रदेव के दरबार मे भविष्यवाणी करने वाला पुरुष था जो अशगुन का अर्थ वतलाया करता था। (ए० इ० ४ पृ० ९७, भा० ७ पृ० ९९, भा० १८ पृ० २२२) रामपाल के लेख से पता चलता है कि एक व्यक्ति ने वालकपन मे चिह्न देखकर भविष्यवाणी की थी कि वह बालक राजा होगा (ए० इ० १२ पृ० १३७) वगाल के लेखो मे घर से भूत हटाने के लिए पुरोहित जैसे व्यक्ति की नियुक्ति का उल्लेख है (वेलवा ताम्रपत्र, सुन्दरवन ताम्रपत्र)। इस तरह के अन्धविश्वास के कारण ही मध्ययुग मे सहस्रों पूजा निमित्त स्तूप (Votive

कल्पना पाई जाती है। नालंदा के लेख में तारा को ऐसी ही शक्तिशालिनी देवी कहा गया है जो आठों प्रकार के भय को दूर करती है (ए इ २१ पृ ९७) वज्रयान देव समूह की कल्पना तंत्र-मंत्र के आधार पर हुई जो पहले के दोनों यान में नहीं था। संक्षेप में यह व्यक्त करना उचित है कि ७ – १२ ई का काल अन्धविश्वास का प्रधान युग था जिसका प्रभाव आज तक हिन्दू समाज में दिखाई पड़ता है।

यद्यपि लेखों में मनोरंजन तथा खेल सम्बन्धी चर्चा की बहुलता नहीं है परन्तु जो कुछ उल्लेख मिलता है उससे लोगों के मनोविनोद के साधनों का परिज्ञान हो जाता है। अशोक आठवें धर्म लेख में विहार यात्रा (मृगया) की बात कही गई है जिसे मौर्य सम्राट् ने बन्द कर दिया—

मनोरंजन के साधन

अतिकातं अंतरं राजानो विहार-यातां अयासु। एत मगव्या अञानि च एतारिसानि अभीरमकानि अहुसू सो देवानं पियो पियदसि राजा दसवसाभिसितो संतो अयाय सम्बोधि तेनेसा धमं याता-आठवां लेख गिरनार पाठ। इससे प्रकट होता है कि मृगया शासकों के मनोरंजन का प्रधान साधन था। ईसवी सन् के चौथी सदी से गुप्त लेखों में कई प्रकार के मनोरंजन के साधन का उल्लेख आता है। प्रयाग के स्तम्भ लेख में समुद्रगुप्त के शरीर पर अनेक बाण के चिह्न थे। धनुर्धारी प्रकार के सिक्कों पर 'समरशत वितत विजयी जित रिपुरजितो दिवं जयति' लिखा है। इससे स्पष्ट है कि धनुष बाण परशु के अथ वीरता के प्रतीक थे। गुप्त नरेश चीता शेर, बाघ आदि जानवरों का आखेट करते दिखलाए गए हैं तथा मुद्रा लेख भी अंकित है। व्याघ्रपराक्रम (समुद्रगुप्त) सुविक्रम विक्रमः (द्वितीय चन्द्रगुप्त) महेन्द्रसिंह (कुमार गुप्त प्रथम) या सिंह महेन्द्र तथा भर्ता खड्ग त्राता (कुमार गुप्त प्रथम) आदि पदवियां गुप्त नरेशों के लिए जुटी हैं। उनसे आखेट का आभास मिलता है। पर्याप्त प्रमाण न मिलने पर भी इसे प्रधान मनोरंजन समझा जा सकता है।

समुद्रगुप्त के प्रयाग स्तम्भ लेख में राजा के संगीत प्रेम का वर्णन आता है और वह नारद से भी वीणा-वादन में दक्ष कहा गया है—

गान्धर्व ललितै व्रीडित त्रिदशपति गुरु तुम्बरु नारदाद्यै।

इसका समर्थन वीणा प्रकार के सिक्के से होता है जिस पर राजा का नाम-महाराजा श्री समुद्रगुप्त खुदा है। उसके पुत्र द्वितीय चन्द्रगुप्त को सिंहासन पर बैठ नाटक देखते हुए प्रदर्शित किया गया है तथा मुद्रालेख 'रूपाकृति' अंकित है।

समाज मे संगीत लोगो के मनोविनोद का प्रधान साधन था। चहमान लेखो मे वाद्य नृत्य तथा गान के समारोह का वर्णन आता है और उस समय रथयात्रा या देवयात्रा के जुलूस में संगीत मुख्य साधन था। इस युग के चित्रो मे भी विभिन्न प्रकार के वाद्य (मृदग, जलतरग, तबला, झाल, नगाडे बांसुरी) के साथ नृत्य का प्रदर्शन पाया जाता है। पूर्व मध्ययुग के लेखो मे जुआ तथा शतरज के नाम आते हैं। परमार राजा चामुण्डराय ने जुआघर पर 'कर' बैठाया था (ए० इ० १४ पृ० ३०८)। शतरग शब्द चतुरग (सेना) का त्रिगडा रूप है जिसमे पैदल, हाथी, रथ तथा घोडे की स्थिति आवश्यक समझी जाती है (चतुरग-चमू प्रचार-ए० इ० २ पृ० ३) यह भारतीय खेल था जिसे अरब वालो ने सीखा तथा पुन वहाँ से भारत मे अनुकरण किया गया।

ऊँचे परिवार की स्त्रियो के लिए सुग्गा पक्षी मनोविनोद का साधन था। पाल नरेश धर्मपाल की खालीमपुर प्रशस्ति मे भी ललनाए सुग्गे को सम्बोधित करती वर्णित की गई हैं।

(१) सौध्रे सोच्छ्वसित स्थित मकरुण लीलाशुको व्याहृतो (ए० इ० १ पृ० २०९)

(२) लीला वेश्मनि पजरोदर शुकैर्उद्गीतमात्मस्तवम् (ए० इ० ४ पृ० २४८)

उस युग के दानपत्रो मे मछली युक्त ग्रामदान का उल्लेख मिलता है जिसका तात्पर्य यह था कि उस भू भाग मे जो तालाब स्थित थे, उन से मछली निकालने का अधिकार दानग्राही को था। अतएव यह स्पष्ट है कि मछली मारने-से भी लोगो मे एक आनन्द का अनुभव होता होगा। इन सभी बातो से राजा तथा प्रजा के मनोविनोद के साधनो का परिज्ञान हो जाता है।

मनोविनोद के लिए सामाजिक उत्सव भी सुअवसर प्रदान करते हैं। अशोक के लेख मे समाज शब्द विशेष अर्थ मे व्यवहृत किया गया है। साधारण समाज (उत्सव, मनोविनोद पूर्ण) की निन्दा की गई है तथा विद्वानो के समाज को ही उत्तम माना गया है। [न च समाजो कर्त्तव्यो बहुक हि सामाजिक उत्सव दोम समाजम्हि पसति देवान प्रियो प्रियदसि राजा। अस्ति पितु एकचा समाजा साधुमता।

(पहला शिलालेख)

अशोक के विचार से पिछले शासक सहमत न थे अत उत्सव प्रारम्भ कर दिया। उसका उल्लेख खारवेल की हाथी गुम्फा प्रशस्ति मे पाया जाता है तथा भारहुत की वेदिका (प्रसेनजीत स्तम्भ) पर प्रदर्शित है। खारवेल ने राज्य

तिलक के तीसरे वर्ष में जनता के मनोविनोद के लिए उत्सव किया—

ततिये वसे गंधव वेद बुधो दप नत गीत वादित संदसनाहि उसव-समाज कारापनाहि च कीडापयति (ए इ २ पृ ७२ जे बि ओ रि सो १३ पृ १२)। उसी प्रकार वेदिका पर नृत्य करती अप्सराओं की आकृति खुदी है। चौथी सदी के गुप्त नरेश संगीत तथा नाटक के प्रेमी थे। कालिदास के नाटकों की रचनाएं उसी काल में हुई जिससे संगीत तथा नाटक के प्रदर्शन से सामाजिक समारोह का अनुमान भी लगाया जा सकता है। छठी सदी से धार्मिक तथा सामाजिक उत्सवों के वर्णन अभिलेखों में मिलते हैं। दीपोत्सव तथा वसन्तोत्सव का उल्लेख है (ए इ ११ पृ ५५ भा ८ पृ० १ १) उस विवरण से पता चलता है कि शासक धार्मिक उत्सव (जैसे रथ यात्रा देवयात्रा) के लिए व्यापारियों पर कर भी लगाता था। (ए इ १४ पृ २९८) सामाजिक उत्सव के विशाल भवन निर्माण का वर्णन समरसिंह देव के लेख में मिलता है (ए इ ११ पृ ५९)

अभिलेखों में पशु मेला का भी विवरण उपलब्ध है। पूर्वी पंजाब के एक लेख में पशु मेला में घोड़ों की बहुलता का उल्लेख है (ए इ १ पृ १८९) प्रतिहार राजा भोज की प्रशस्ति में उत्सव के सिलसिले में 'घोटक यात्रा' का नाम उल्लिखित है। जिसमें दूर-दूर से व्यापारी घोड़ा खरीदने आया करते थे—घोटक यात्रायां समायाता   घोड़ा विक्रय-का १-प्रदत्तं (ए इ १ पृ १८४) उसी वंश के दूसरे लेख में घोड़ा क्रय-विक्रय करने वाले व्यक्तियों के द्वारा 'कर' देने का वर्णन है (वही पृ २९, ३१) इससे अर्थ स्पष्ट हो जाता है कि पंजाब तथा राजपुताने में पशु मेला का आयोजन किया जाता था। इस तरह के कार्य समाज को प्रगतिशील बनाते हैं। उत्सव तथा मेले में एकत्रित होकर जनता विचार विनिमय करती तथा आवश्यक कार्यों की भी पूर्ति करती रही।

सामाजिक कार्यों के लिए तथा आवागमन निमित्त जनता रथ घोड़े हाथी ऊँट तथा बैलगाड़ी का अधिकतर प्रयोग करती थी। लेखों में बैलगाड़ी का ही अधिक उल्लेख मिलता है। क्योंकि साधारण व्यक्ति उसी का प्रयोग करता था। (ए इ ११ पृ ३५ ३९) सातवाहन लेख में शकट तथा घोड़ दान का वर्णन है (नानाघाट का लेख) प्रतिहार महेन्द्रपाल तथा पाल्मंनी लेखों में हाथी-घोड़ा की निगरानी के लिए एक पदाधिकारी का नाम मिलता है। (ए इ १ पृ १७ भा ७ पृ ० भा ४ भा १८ पृ १२५ भा १९ पृ ८)। इस प्रकार के स्थल-यान के अतिरिक्त नावों का भी प्रयोग आवा-

गमन निमित्त होता था जिसका विवरण कई लेखो मे आता है।

समाज की वास्तविक स्थिति का ज्ञान प्राप्त करने के निमित्त तत्कालीन मनुष्यो के चरित्र का अध्ययन करना आवश्यक है। भारतवासियो का चरित्र सदा से उज्ज्वल तथा पवित्र रहा है जिसका विस्तृत वर्णन विदेशियो (मेगस्थनीज, फहियान, ह्वेनसाग, इत्सिग) ने किया है। सत्य-भाषण तथा वीरता के लिए सर्व प्रसिद्ध रहे हैं। गुप्त काल मे कोई भी व्यक्ति अधार्मिक, व्यसनी, आर्त, दरिद्र तथा पीडित न था ऐसा वर्णन जूनागढ के लेख मे पाया जाता है-आर्तो दरिद्रो व्यसनी कदर्यो दण्डयो न वा यो भृश पीडित स्यात् (का० इ० इ० ३ पृ० ५८) इस तरह के वर्णन अधिक नही मिलते तो भी यत्र-तत्र उल्लेख आते हैं। भारतवासियो का आदर्श सासारिक वैभव न था परन्तु उसे वह तृण व बुलबुले के सदृश समझते थे (नालदा ताम्रपत्र ए० इ० १८) ब्राह्मण दानग्राही होने पर भी आदर्श के लिए धन का त्याग कर देता था। (ए० इ० १३ पृ० २९२) राजाओ के बहुपत्नी व्रत का विवरण लेखो मे आता है किन्तु वह अपनी रानियो से प्रेम करता तथा अन्य स्त्रियो से पृथक रहता 'था। ऐसा वर्णन शासक के आदर्श चरित का द्योतक है—

समाज में व्यक्ति का चरित्र

सत्यव्रत पर कलत्रो धर्म्मैकरतोप्पि सर्वदावश्य
निज वनिता परितुष्टोप्यभिलषित सुदज्जन प्रमद (ए० इ० १ पृ० १५६)

पाल नरेश धर्मपाल तथा वाकपाल राम-लक्ष्मण के सदृश आदर्श जीवन व्यतीत करते थे।

रामस्येव गृहीत सत्यतपसस्तस्यानुरुपो गुणै
सौमित्रेरुदपादि तुल्य महिमा वाकपाल नामानुज
(ए० इ० १५ पृ० २९३)

सर्वसाधारण जनता भी पवित्र जीवन व्यतीत करती थी तथा दान व्रत तीर्थ और यज्ञ मे विश्वास रखती थी। पूर्व मध्ययुग के सहस्रो दानपत्र जनता के धार्मिक भावना के द्योतक हैं। व्रत पालन करना तत्कालीन समाज मे एक आवश्यक कार्य हो गया था। देवोत्स्थान एकादसी, हरिशयिनी वामन या गोविन्द द्वादसी (ए० इ० १३ पृ० २११ या ४ कमौली ताम्रपत्र) रामनवमी (ए० इ० १४ पृ० १८८) तथा सावित्री पर्व (ए० इ० ११ पृ० ३९) आदि के नाम मध्यकालीन अभिलेखो मे प्रचुरता से उल्लिखित हैं। देवयात्रा तथा पर्व्वयात्रा का नाम भी चहमान लेखो मे आता है (ए० इ० ११ पृ० २८)। तीर्थ स्थानों में आकर शासक या जनता दान दिया करती थी ताकि वे पुण्य के भागी

हों। गहड़वाल राजा के कमौली ताम्रपत्रों में वाराणसी तीर्थ का नाम अनेक बार (ए इ भा ४ पृ १२२) तथा कलचुरी प्रशस्तियों में प्रयाग का नाम (वेणी=प्रयाग) ए इ पृ० १२२ ८ भा० ८ पृ १५४) अधिकतर आए हैं। चेदिवंशी लेखों में प्रयाग के साथ गया का नाम भी मिलता है (ए इ २५ पृ ३३७)। पाल अभिलेखों में केदार तथा गंगासागर तीर्थों का उल्लेख है। (बाजीमपुर लेख ए इ ४ पृ २४३)। अयोध्या तीर्थ स्वर्ग का द्वार कहा गया है—

सरयू घर्घराघमर्घण स्वग द्वार मान्नि तीर्थ

(गहड़वाल लेख ए इ १४ पृ १९३ इ १५ पृ ६)

इन समस्त उल्लेखों से प्रकट होता है कि समाज में धर्म की भावना काम कर रही थी। व्रत के प्रति अनुराग तथा तीर्थयात्रा में लोगों की आस्था उनके पवित्र जीवन को प्रमाणित करते हैं।

अध्याय ७

भारतीय प्रशस्तियों में धार्मिक चर्चा

भारत की प्रशस्तिया इतनी बडी निधि है कि उनसे सभी प्रकार के ज्ञान प्राप्त किए जा सकते हैं। यह सर्व विदित है कि प्राचीन समय मे शासक के जीवन तथा वंश का इतिहास अभिलेखो मे भली भाति वर्णित है। उनका वर्गीकरण यह बतलाता है कि अधिकतर लेख धार्मिक भावना से प्रेरित होकर लिखे जाते थे। इस दिशा मे सर्व प्रथम अशोक के लेखो की गणना उचित है। अशोक के शिलालेख तथा स्तम्भ लेखो के गम्भीर अध्ययन से सदाचार तथा धर्म सम्बन्धी बातो का परिज्ञान हो जाता है। मौर्य सम्राट् ने तो धार्मिक सिद्धान्तो के प्रतिपादन के लिए लेख खुदवाया था। उसके धार्मिक भावना के सम्बन्ध मे विभिन्न मत उपस्थित किए जाते हैं। कुछ विद्वान यह मानते हैं कि अशोक बौद्ध नही था, उसने जो कुछ कहा है वह वास्तव मे सभी धर्मों मे समान है। सदाचार की बातें सर्वत्र कही गई हैं। उपासक लोगो के लिए ही लेख मे सिद्धान्त का प्रतिपादन हुआ है। उदाहरण के लिए ग्यारहवें शिलालेख मे उसने अकित कराया था —देवान पिये पियदशी लाजा एव आह नथि हेदिषे दान अदिप धम दान। तत ऐपे दाष भटकपि षम्या पटियति माता पितिषु षुषुपा। मित षयुत नातिक्यान समना वभ नाना दाने पानान अनातभे—इय साघु शे तथा कलत हिद लोकिक्ये चक आलधे होति पलत च अनत पुना पशवति तेना धम दानेना। तात्पर्य यह है कि अशोक ने आदेश दिया कि सभी लोगो से उचित व्यवहार किया जाय। गुलाम से समुचित व्यवहार करे। माता-पिता की सेवा करे। साधु ब्राह्मण का दर्शन कर दान दे। प्राणियो की हिसा न करे। ऐसा करने से इस ससार मे सुख मिलेगा और अन्यत्र पुण्य होगा। ऐसा विचार अशोक ने कई लेखो मे दुहराया है जिसमे बुद्ध धर्म की ओर विशेष झुकाव का अनुमान नही किया जा सकता। ऐसी बातें तो प्राय सभी मतो मे प्रतिपादित की

बौद्ध धर्म

जाती है। डा० भण्डारकर ने लेखों के अन्य प्रमाणों के आधार पर यह सिद्ध किया है कि अशोक बौद्ध-धर्मानुयायी था। कलिङ्ग युद्ध (तेरहवां शिलालेख) के पश्चात् उसका विचार परिवर्तित हो गया और उसने धर्म द्वारा संसार-विजय का संकल्प किया। अहिंसा के सिद्धान्त पर अटल रह कर उसने बौद्धधर्म के प्रसार तथा प्रचार के लिए अनेक उपाय किए। स्वयं महाबोधि तथा रुम्मन-देई की धर्मयात्रा की। उपासकों को बौद्ध साहित्य के पाठ करने का (भाब्रू का लेख) अनुरोध किया तथा अनेक दूतों को धर्म प्रचार के लिए विभिन्न देशों में भेजा। पुत्र तथा पुत्री सिंहल द्वीप गए। स्तूप पूजा का आरम्भ अशोक ने ही किया और इसलिए कई हजार स्तूपों का निर्माण किया था। उसके धर्म-महामात्र अहिंसा का पाठ सुनाया करते। अशोक का सारनाथ का स्तम्भ लेख घोषित करता है कि वह संघ में एकता का पक्षपाती था और विभेद डालने वाले भिक्षु को संघ से निकाल देना चाहता था। मौर्य सम्राट् ने स्वयं विहार में प्रविष्ट कर (रूपनाथ का लेख—सातिलेके चु छवछरे य सुमि हकं संघ उपेते) प्रजा के सम्मुख आदर्श उपस्थित किया। इस प्रकार अशोक के धर्मलेख यह बतलाते हैं कि उसने बौद्धमत को राजधर्म बनाया।

यद्यपि मौर्य युग के पश्चात् बौद्धमत को राजाश्रय मिल न सका तथापि जनता में बौद्धधर्म के अनुयायी तथा उपासकों की संख्या कम न थी। भारत में स्तूप पूजा का प्रसार हो गया था इसलिए शुंग काल में स्तूप के चारों तरफ वेदिका व तोरण तयार किए गए और उन पर लेख भी खोदा गया। भारहुत वेदिका के लेख में यह वर्णन आता है कि—

सुगनं रजे रञो गागीपुतस विसदेवस
वाछि पुतेन धनभूतिन कारित तोरनां

शुंग काल में धनभूति ने तोरण बनवाया था। इसी तरह सांची के दक्षिणी तोरण पर सातवाहन नरेश शातकर्णी (ई पू दूसरी सदी) के समय का एक लेख मिलता है। सांची वेदिका के हिस्सों पर दान कर्ता के नाम खुदे हैं। इससे प्रकट होता है कि शुंग काल में भी बौद्धमत (हीनयान मत) का प्रसार था।

ईसवी सन् के आरम्भ से कुषाण राजा कनिष्क ने बौद्धमत को प्रोत्साहित किया और चौथी संगीति बुलाई थी। मथुरा के बौद्ध प्रतिमाओं के आधार शिला पर कनिष्क के शासन काल में लेख उत्कीर्ण कराए गए थे। कनिष्क के काशी तक राज्य विस्तार का परिज्ञान एक बुद्ध प्रतिमा के लेख से ही होता है। सारनाथ में एक विशाल बुद्ध मूर्ति मिली है जिसके लेख में महाक्षत्रप खर पल्लाना का नाम मिलता है जो कनिष्क का प्रान्तपति था। इसकी तिथि 'महार-

जस्य कणिष्कस्य स ३' लिखा है। कनिष्क के एक सिक्का पर बुद्ध की मूर्ति तथा वोडो मुद्रालेख उसके धार्मिक भावना पर प्रकाश डालते हैं। ईसवी सन् की दूसरी सदी मे नहपान के जामाता उषवदत्त ने वौद्ध सघ को गुप्त दान किया था (नासिक का लेख)। सातवाहन नरेश पुलमावी के समय मे (ई स १५८) भद्रावनीय शाखा (भिक्षु सघ) को गुप्त दान का वर्णन मिलता है (ददाति निकायस भद्रावनीयान भिखु सघस—नासिक लेख) इसी प्रकार महासघिक शाखा के दान देने का वर्णन कार्ले गुहा लेख मे है।

गुप्तकाल मे बौद्धमत के प्रसार का आभास सारनाथ की वौद्ध प्रतिमाओ से मिल सकता है। सारनाथ शैली मे अनगिनत बुद्ध की मूर्तिया वनने लगी। प्रथम कुमारगुप्त का एक लेख मनकुवार (इलाहावाद उ० प्र०) की बुद्ध प्रतिमा के आधार शिला पर खुदा है। वह लेख 'नमो बुद्धान' की प्रार्थना से आरम्भ होता है। उसमे निम्न प्रकार का वर्णन है—इम प्रतिमा प्रतिष्ठापिता भिक्षु बुद्धमित्रेण। कुमार गुप्त के राज्य मे (१२९+३१९)=४४८ ई० के समीप यह प्रतिमा प्रतिष्ठित की गई थी। द्वितीय कुमार गुप्त तथा बुद्धगुप्त के लेख भी उसी ढग से उत्कीर्ण हैं। जिनकी तिथि क्रमश गु स १५४ तथा १५७ मिलती है।

गुप्तकाल के पश्चात् सातवी सदी से बुद्धधर्म के तीसरे यान—वज्रयान का प्रसार उत्तरी भारत मे सर्वत्र पाया जाता है। विभिन्न राजाओ ने सहिष्णुता के कारण तथा पालवशी नरेशो ने राजधर्म के नाते उसे आश्रय दिया जिसका प्रमाण उत्कीर्ण लेखो से मिलता है। उत्तर प्रदेश, विहार तथा बगाल मे वज्रयान के अनुयायी अधिक थे। उन प्रदेशों के लेखो मे 'ओ नमो बुद्धाय' की प्रार्थना तथा "भगवन्त बुद्ध भट्टारकम्" के पक्ष मे दान का वर्णन किया गया है। सारनाथ से उस प्रकार के अनेक लेख मिले हैं। गहडवाल राजा गोविन्दचन्द्र की रानी कुमारदेवी ने बौद्ध मतानुयायी होने के कारण एक विहार को दान दिया जो प्रस्तर लेख सारनाथ से मिला है। वगाल के राजा महीपाल के लेख मे बुद्ध प्रतिमा दान का वर्णन है। विहार प्रान्त के मगध के भूभाग से या वगाल से जितनी वौद्ध प्रतिमाए मिली हैं उनके सिरे भाग पर निम्न लेख खुदा रहता है—

यो धम्मा हेतु प्रभवा, हेतु तेपा तथागतो ह्यनदत्
तेपा च यो निरोधो एव वादी महाश्रमण।

मगध (या पाल) शैली की सभी प्रतिमाओ पर यह पक्तिया उत्कीर्ण पायी जाती हैं।

पटना के समीप कुर्कीहार नामक स्थान से कास्य-प्रतिमाओ का ढेर मिला है जिन पर देवपाल के समय के लेख खुदे हैं। इतना ही नही पाल नरेशो की

प्रशस्तियां (खालीमपुर, नालन्दा मुंगेर, भागलपुर, बोधगया बानगढ़ आदि) बुद्ध की प्रार्थना से प्रारम्भ (नमो बुद्धाय) होती हैं जो राजाओं के धार्मिक भावना के द्योतक हैं। यों तो खालीमपुर ताम्रपत्र तथा भागलपुर ताम्रपत्रों में क्रमशः विष्णु और शिव मन्दिर के दान का विवरण मिलता है लेकिन उन लेखों में दान का वर्णन राजाओं के धार्मिक सहिष्णु होने की बात उपस्थित करती है। यह तो निर्विवाद है कि धर्मपाल देवपाल नारायणपाल सूरपाल आदि पाल नरेश बौद्ध मतानुयायी थे। परमसौगत की पदवी तथा बुद्ध प्रार्थना इसके सबल प्रमाण हैं।

ईसा पूर्व छठी सदी से ही महावीर ने जैन मत का प्रचार किया था जिसकी अभ्युन्नति कालान्तर में होती रही। अशोक लेखों में 'निर्ग्रंथ' शब्द का प्रयोग जैन धर्म के लिए किया गया है। उड़ीसा में जैनमत का जैन तथा आजीविक प्रचार उदयगिरि (भुवनेश्वर के पास) के गुहालेखों से मत ज्ञात होता है। हाथी गुम्फा लेख राजा खारवेल के जैनमत में विश्वास का वर्णन करता है। उसकी रानी द्वारा उत्कीर्ण मंचपुरी गुहा लेख में अरहत पसादाय कलिंगानं समनान लेनं कारितं" का वर्णन यह बतलाता है कि उदयगिरि के भाग में जैन साधु निवास करते थे जिन के लिए अग्रमहिषी ने गुहा दान किया था। ईसवी सन् के आरम्भ से मथुरा के समीप इस मत का अधिक प्रसार हुआ था। यही कारण है कि कंकाली टीले की खुदाई से अनेक तीर्थंकर प्रतिमाएं प्राप्त हुई हैं। उन पर दान कर्ता का नाम भी उल्लिखित है। वहां के आयाग पट्ट पर भी अभिलेख उत्कीर्ण है जिसमें वर्णन है कि अमोहिनी ने पूजा निमित्त इसे दान में दिया था—

अमोहिनिये सहा पुत्रेहि पालघोषेन पोठघोषेन

धनघोषेन आर्यवती (आयागपट्ट) प्रतिथापिता

यह लेख नमो अरहतो वर्धमानस' जैनमत से उसका सम्बन्ध द्योतित करता है [शोडास के समय लेख)। दूसरी सदी के जूनागढ़ शिलालेख में उस व्यक्ति का वर्णन है जो जरामरण से मुक्त होकर केवल ज्ञान (जैनमत में पूर्ण ज्ञान) प्राप्त कर चुका है। अतएव काठियावाड़ में जैनमत के प्रचार का अनुमान किया जा सकता है (जयदामन के पौत्र का जूनागढ़ लेख)।

ईसवी सन् के आरम्भ से जैन प्रतिमा के आधार-शिला पर (बौद्ध प्रतिमा की तरह) लेख उत्कीर्ण मिलते हैं। लखनऊ के संग्रहालय में ऐसी अनेक तीर्थंकर की मूर्तियां सुरक्षित हैं जिन के प्रस्तर पर कनिष्क के ७९ या ८४ वें वर्ष का लेख उत्कीर्ण है। गुप्तयुग में भी इस तरह की प्रतिमाओं का अभाव न था जिनके आधार शिला पर लेख उत्कीर्ण हो। ध्यानमुद्रा में बैठी महावीर की ऐसी

मूर्ति मथुरा से प्राप्त हुई है। गु० स० ११३ (ई० स० ४२३) के मथुरा वाले लेख मे हरिस्वामिनी द्वारा जैन प्रतिमा के दान का वर्णन मिलता है। स्कन्द गुप्त के शासन काल मे मद्र नामक व्यक्ति द्वारा आदिकर्तृन की प्रतिमा के साथ एक स्तम्भ का वर्णन कहौम (गोरखपुर उत्तर प्रदेश) के लेख मे है—

श्रेयोऽर्थं भूतभूत्यै पथि नियमवतामर्हतामदिकर्तृन्।

पहाडपुर के लेख (गु० स० १५९) मे जैन विहार मे तीर्थंकर की पूजा निमित्त भूमि दान का विवरण है, जिसकी आय गधधूपदीपनैवेद्य के लिए व्यय की जाती थी।

विहारे भगवता अर्हता गध धूप सुमन दीपाद्यर्थम्।

(पहाडपुर का ताम्रपत्रे)

पूर्व मध्ययुग मे राजपुताना के विस्तृत क्षेत्र मे भी जैन मत का पर्याप्त प्रचार था जिसका परिज्ञान अनेक प्रशस्तियो के अध्ययन से हो जाता है। चहमान लेख मे राजा को जैनधर्म परायण कहा गया है तथा तीर्थकर शाति नाथ की पूजा निमित्त आठ द्रम (सिक्के) के दान का वर्णन है। तैलप नामक राजा के पितामह द्वारा जैन मदिर के निर्माण का भी वर्णन मिलता है—

पितामहेन + तस्येद शमीयाट्या जिनालये
कारित शातिनाथस्य विम्ब जन मनोहरम्।

विझोली शिलालेख (ए० इ० २६ पृ० ८९) का आरम्भ 'ओ नमो वीतरागाय' से किया गया है जिसके पश्चात् पार्श्वनाथ की प्रार्थना मिलती है। जलोर के लेख मे पार्श्वनाथ के 'ध्वज उत्सव' के लिए दान का वर्णन है—

श्री पार्श्वनाथ देवे तोरणादीना प्रतिष्ठाकार्यो कृते।
ध्वजारोपण प्रतिष्ठाया कृताया (ए० इ० ११ पृ० ५५)

मारवाड के शासक राजदेव के अभिलेख मे महावीर-मदिर तथा विहार के निवासी जैन साधु के लिए दान देने का विवरण मिलता है।

(श्री महावीर चैत्ये साधु तपोधन निष्ठार्थे)

लेखो के आधार पर कहा जा सकता है कि राजपुताना मे महावीर, पार्श्वनाथ तथा शांतिनाथ की पूजा प्रचलित थी। परमार लेख मे ऋषभनाथ के पूजा का उल्लेख मिलता है—और मदिर को अतीव सुन्दर तथा पृथ्वी का भूषण बतलाया गया है।

श्री वृषभनाथ नाम्न प्रतिष्ठित भूषणेन विम्वमिद)
(तेनाकारि मनोहर जिन गृह भूमे रिदभूपणम्)

चन्देल राज्य के प्रधान खजुराहो नगर मे लेख तथा प्रतिमाओ के अध्ययन से

जैनमत के प्रचार का ज्ञान होता है। प्रतिमाओं के आधार शिला पर खुदा लेख यह प्रमाणित करता है कि राजाओं के अतिरिक्त साधारण जनता भी जैनमत में विश्वास रखती थी। (ए इ २० पृ ४६-८)

जहां तक आजीविक मत का प्रश्न है, मक्खली पुत्र गोसाल (बुद्ध के समकालीन) ने अपने मत का प्रचार अवश्य किया और उसके अनुयायी संसार त्याग भी कर चुके थे। अशोक तथा दशरथ के बराबर तथा नागार्जुनी पहाड़ों के गुहा लेखों से आजीविका संघ की स्थिति मालूम पड़ती है। उस संघ को गुहाएं दान में दी गई थी। (इमं निगोह कुभा दिना आजीविकेहि—बराबर गुहा लेख)। सम्भवतः ईसवी सन् के आरम्भ से आजीविक मत का उल्लेख प्रशस्तियों में नहीं मिलता। वराहमिहिर तथा बाण ने आजीविक का उल्लेख किया है। कालान्तर में इन्होंने सम्भवतः ब्राह्मण मत (वासुदेव पूजा) को स्वीकार कर लिया अतएव आजीविक मत का अस्तित्व न रह सका।

प्राचीन भारत में अशोक से पूर्व किसी शासक के लेख प्राप्त नहीं हुए हैं अतएव अभिलेखों का अध्ययन मौर्य काल से ही प्रारम्भ होता है। बुद्ध के समय में भी ब्राह्मण धर्म का प्रचार था जिसका वर्णन अशोक के धर्म लेखों में 'ब्राह्मण' शब्द से व्यक्त किया गया है।

मौर्य युग के पश्चात् भारतीय लेख यह बतलाते हैं कि अशोक के सिद्धान्त को जनता ने स्वागत नहीं किया। उसके मरते ही ब्राह्मण धर्म का जागरण हो गया और उत्तर तथा दक्षिण भारत में यज्ञादि होम लगे जिसे

भागवत धर्म

अशोक ने अपने धर्म लेखों में निन्दित बतलाया था (इध न किंचि जीवं आरभित्पा प्रजूहितव्यं) मौर्य शासन के पश्चात् शुंग राजा पुष्यमित्र ने ब्राह्मण धर्म का संदेश सुनाया और दो अश्वमेध द्वारा वैदिक यज्ञ को पुनः प्रसारित किया (द्वि अश्वमेध याजिन सेनापते पुष्यमित्र अयोध्या का लेख) दक्षिण के सातवाहन राजा शातकर्णी द्वारा कई यज्ञ करने का वर्णन नानाघाट के लेख में है जिसमें नायिका ने अपने पति के कार्यों का उल्लेख किया है। यज्ञ के अतिरिक्त ईसा पूर्व सदियों (दूसरी व पहली) में भागवत धर्म का विशेष प्रचार था और कई लेखों से इस बात की पुष्टि होती है। नानाघाट लेख (महाराष्ट्र) के आरम्भ में ही संकर्षण तथा वासुदेव की प्रार्थना की गई है। घोसुण्डी शिलालेख (चित्तौरगढ़) में राजा भागवत की पदवी से विभूषित होकर अश्वमेध का कर्ता कहा गया है तथा संकर्षण वासुदेव के पूजा निमित्त शिला प्रकार का उल्लेख है।

राज्ञा भागवतेन, अश्वमेधयाजिना
भगवभ्या सकर्षण वासुदेवाभ्या ।

इस तरह पाटलिपुत्र, राजपुताना तथा महाराष्ट्र के भूभाग मे अश्वमेध यज्ञ को पुन: आरम्भ तथा भगवत धर्म का प्रसार ब्राह्मण धर्म के जागृति का सूचक है। भारतीय नरेशो को छोड़कर विदेशी यूनानी राजदूत हेलियोडोरस भी भागवत धर्म का अनुयायी हो गया और उसने एक गरुणस्तम्भ पर लेख खुदवाया। भिलसा (मध्यप्रदेश) के समीप खम्बा बाबा के नाम से वह स्तम्भ आज भी प्रसिद्ध है। उसने भगवान विष्णु के मन्दिर के सम्मुख गरुड स्तम्भ स्थापित किया जिसमे विष्णु महान देवता (देव देवस वासुदेवस) कहे गए हैं तथा वह स्वय अपने को भागवत (विष्णु का पुजारी) कहता है। इससे भागवत मत के प्रभाव का अनुमान किया जा सकता है (मूल लेख पृष्ठ २४)।

विष्णु पूजा

ईसवी सन् की चौथी शताब्दी से गुप्त सम्राटो ने अपने विजय के उपलक्ष्य मे कई लेख उत्कीर्ण करवाये थे जिनसे ऐतिहासिक विवरण के अतिरिक्त धार्मिक विषय पर भी प्रकाश पड़ता है। गुप्त नरेश परम वैष्णव थे जिसका वृत्तान्त लेखो मे निहित है। विष्णु के वाहन गरुड का ध्वज उस वश का राजचिह्न था जिसका उल्लेख प्रयाग के स्तम्भ लेख मे मिलता है (गरुत्मदङ्क स्वविषय युक्ति शासन याचना) इसके अतिरिक्त गुप्त लेखो तथा मुद्रालेखो मे राजाओ के लिए 'परम भागवत' की पदवी खुदी है। द्वितीय चन्द्रगुप्त के रजतमुद्रा मे "परम भागवत महाराजाधिराज श्री चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य" लिखा है। प्रथम कुमार गुप्त तथा स्कन्द गुप्त के लेखो मे चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य तथा प्रथम कुमार गुप्त 'परम भागवत' की पदवी से विभूषित हैं (भिलसद, भितरी स्तम्भ लेख तथा भितरी राजमुद्रा का लेख) साहित्यिक प्रमाणो से पुष्टि की जाती है कि अवतारवाद की कल्पना गुप्तकाल मे पूर्ण हो गई थी। गुप्त लेखो का अध्ययन यह प्रमाणित करता है कि उस युग मे विष्णु के विभिन्न अवतारो की पूजा होती थी। एरण के स्थान पर वराह की भीमकाय प्रतिमा मिली है जिस पर उत्कीर्ण लेख मे वराह विष्णु की स्तुति सुन्दर शब्दो मे की गई है। इसी तरह दामोदरपुर ताम्रपत्र मे श्वेत वराह स्वामिन के लिए दान का वर्णन है। छठी सदी के तोरमाण के एरण लेख मे 'देवो वराह-मूर्ति' की प्रार्थना पाई जाती है।

छठी सदी से १२वी शताब्दी तक के लेखो के आधार पर वैष्णव मत के प्रसार का परिज्ञान होता है और पौराणिक धर्म में इसको प्रमुख स्थान मिल

गया था। जो अभिलेख वष्णव मंत्र "नमोनारायणाय" या "ओं नमो भगवते वासुदेवाय" अथवा 'वासुदेव भट्टारक' से प्रारम्भ होते हैं उन्हें वैष्णव मानने में कठिनाई नहीं है। वष्णवमत ने ही सहजयान (मंत्रयान) को प्रभावित किया जिसके फलस्वरूप बंगाल में 'वैष्णव-सहजिया' का प्रचार हुआ। मध्य युग के अनेक लेखों में विष्णु मंदिर तथा प्रतिमा पूजा के निमित्त दान का विवरण भरा पड़ा है। प्रतिहार तथा कलचुरी प्रशस्तियों में (जबलपुर तथा गोहुरवा) विष्णु की प्रार्थना निर्गुण तथा सगुण भाव से की गई है।

यस्मिनि विशन्ति भूतानि यत्सर्ग स्थिती मते
स व पयाद् धृषीकेशो निर्गुणस्सगुणश्चय
(भोज का जोधपुर की प्रशस्ति ए इ १८ पृ ९५)

निर्गुणं व्यापक नित्यं शिवं परमकारणम्
भावग्राह्यं परं ज्योतिस्तम सद्ब्रह्म नम
(सरवो ताम्रपत्र—ए इ २२ पृ १६४)

प्रशस्तियों में विष्णु की स्तुति विभिन्न नामों से की गई है। नारायण मुरारी हरि, माधव 'ओं नमो माधवाय' ओम् नमो विष्णवे" मंत्र लेखों के आरम्भ में उल्लिखित है। गहड़वाल नरेश के कमौली दान पत्रों में विष्णु के लिए आदि केशव' नाम प्रयुक्त है। आज भी वाराणसी के पूर्वी भाग वरुणा गंगा के संगम समीप आदि केशव मंदिर स्थित है। इस तरह विष्णु पूजा की लोकप्रियता ज्ञात होती है। उत्तरी भारत के लेखों में वष्णवमत का प्रचार अधिकतर मंदिर निर्माण के वर्णन से विदित होता है [प्रासादो वैष्णवस्तेन निर्मितो स्तस्य हृद्हरिम्) चन्देल राजा परमर्दि के बटेश्वर-लेख में विष्णु-मंदिर को कैलाश के सदृश ऊंचा बतलाया गया है। खजुराहो नामक स्थान से जो चन्देल लेख मिले हैं उन का वर्णन उपर्युक्त बातों की पुष्टि करता है। परमार राजा भोज देव के बेतमा ताम्रपत्र—(ए इ १८ पृ ३२१) में विष्णु मंदिर के सम्मुख 'गरुड़ ध्वज' स्थापित करने का उल्लेख है इसी के सदृश धर्मपाल के खालीमपुर लेख में (ए इ० भा ४) 'नर-नारायण' के मंदिर निर्माण तथा नारायण पाल की प्रशस्ति में 'गरुड़ ध्वज' की स्थापना सुन्दर शब्दों में की गई है।

ईसी पूर्व सदियों में ब्राह्मण धर्म सम्बन्धी मुद्रा-कला नहीं मिलते परन्तु शैवमत

शैव मत

से सम्बन्धित मुद्रा-कला वीमकदफिस के सिक्के पर अंकित मिला है। सम्भवतः वह कुषाण नरेश शैवमतानुयायी था इसलिए वह 'महीश्वर' की पदवी से विभूषित किया गया है—

महरजस राजाधिराजस सर्वलोग ईश्वरस महीश्वरस वीमकदफिसस। कनिष्क ने भी शिव (ओइशो) का नाम अकित करा कर शैवमत के प्रति अपना सम्मान प्रकट किया था। उसके उत्तराधिकारी हुविष्क तथा वासुदेव के सिक्को पर शिव की प्रतिमा तथा नाम खुदा है जिससे उत्तर पश्चिम भारत मे शैवमत का प्रचार प्रकट होता है।

कुषाणो के राजनीतिक परदे से हटते ही वाकाटक तथा भारशिव नरेशो का प्रभुत्व स्थापित हो गया। नागवशी राजा शिवलिङ्ग को अपने कन्धो पर वहन करते थे इसलिए उन्हे भारशिव कहा गया है। उसके सम्बन्ध मे वाकाटक प्रशस्ति मे निम्नलिखित वर्णन पाया जाता है—

शिवलिङ्गोद्वहन शिव- सुपरितुष्ट समुत्पादित
राजवश— भारशिवाना महाराज
श्री भव नाग (प्रवरसेन द्वितीय का चमक लेख)

गुप्त युग के अभिलेखो का अध्ययन भी शैवमत के प्रचार की पुष्टि करता है। द्वितीय चन्द्र गुप्त के उदयगिरि लेख मे शिव पूजा का उल्लेख मिलता है। राजा के मत्री वीरसेन ने वहा शैव-गुहा (शिव-मदिर) का निर्माण किया था—

भक्तया भगवत शम्भोर्गुहामेतमाकारयत् (उदयगिरि का लेख) उसी समय [गु स ९६] ध्रुवशर्मा ने भिलसद [एटा, उत्तर प्रदेश] मे स्वामी महासेन का मदिर तैयार किया था। प्रथम कुमार गुप्त का करमदण्डा लेख शिवलिंग के अधोभाग पर उत्कीर्ण है। दामोदरपुर ताम्रपत्र मे कोकमुख स्वामिन (बैनर्जी इसे पार्वती का द्योतक समझते हैं) के निमित्त अग्रहार का वर्णन है। गुणैधर ताम्रपत्र (बगाल) मे वैन्यगुप्त शिव भक्त (भगवन्महादेव पादानुध्यातो कहा गया है। कहने का तात्पर्य यह है कि गुप्तयुग के अनेक शिव प्रतिमाओ को छोडकर अभिलेखो का अध्ययन यह प्रमाणित करता है कि शैवमत का प्रचुर प्रचार था। इतना ही नहीं गुप्तो के सामत महाराज हस्तिन के कई लेख मध्यभारत (मध्य प्रदेश) से प्राप्त हुए है जिन पर 'नमो महादेवाय' मत्र से प्रशस्ति का आरम्भ किया गया है।

गुप्तकाल के पश्चात भी इस धर्म के प्रचार मे उन्नति ही होती गई। वर्धन नरेश हर्ष मधुवन ताम्रपत्र मे परमाहेश्वर की पदवी से विभूषित किया गया है। सम्भवत प्रारम्भिक जीवन मे वह शिव का पुजारी था। छठी सदी के शासक विष्णुवर्धन के मदसोर (मालवा) लेखो मे तथा इस हूण राजा मिहिर के ग्वालियर प्रशस्ति मे शिव की प्रार्थना रोचक शब्दो मे की गई है

(का इ भा १ पृ ७४ व १५२) मिहिरगुल के सिक्के पर "जयतुवृष" भी लेख अंकित है। यह विवरण हूण शासक मिहिरगुल द्वारा शिव पूजा में उसकी गाढ़ी भक्ति का परिचायक है।

सातवीं सदी से बंगाल में भी शैवमत का प्रचार था जो शशांक, पाल नरेश नारायण पाल और सेनवंशी प्रशस्तियों से प्रकट होता है। शिव प्रतिमा के लेख में महावृषभ पर्यंक बालचन्द्र ज्योतिजटा भगवत स्थित्युत्पत्ति प्रलय सृष्टि के संहार कारणस्य' का उल्लेख मिलता है। इस काल में शिवपूजा लोकप्रिय रही इसीलिए शिव के विभिन्न नाम अग्रहार ग्राम तथा मंदिर निर्माण की बात उल्लिखित हैं। शैवमत की उपशाखाएं भी इस युग में प्रचलित थीं। लेख के प्रारम्भ में ओ नमो शिवाय' का मंत्र स्पष्ट प्रकट करता है कि शासक का झुकाव शैवमत की ओर अवश्य था। कलचुरी लेखों में केदारेश्वर, सोमनाथ तथा रुद्र के नाम उल्लिखित हैं। (ए इ १ व भा ११ पृ २१८ १३) तो परमार प्रशस्ति में भवानीपति व्योमकेश महादेव या उमापति के नाम से शिव प्रार्थना मिलती है (ए इ भा ११ पृ १८१)। पशुपति सोमस्वामी लोकार्क तथा विन्ध्येश्वर (ए इ भा ६ ५ पृ १७४ ११६) के नाम विभिन्न लेखों से ज्ञात होते हैं। सेन तथा प्रतिहार लेखों में "अर्धनारीश्वर' शम्भू तथा नीलकण्ठ का उल्लेख पाया जाता है (ए इ भा १९ पृ १७५, भा १४ पृ १५९) सेनवंश के आराध्यदेव 'सदाशिव' कहे गए हैं जिनकी प्रतिमा लेखों के ऊपरी भाग पर खुदी है। शिव पूजा में आस्था रखने के कारण ही परमार, चेदि चन्देल प्रतिहार, गहड़वाल तथा सेन शासकगण 'परम माहेश्वर' की पदवी से विभूषित थे। यह पदवी स्वयं बतलाती है कि महेश्वर के नए नाम से भी शिव की पूजा होती रही।

राजकीय लेखों म शिव की प्रार्थना ललित शब्दों में की गई है। प्रशस्तियों से उद्धरण सुनिए—

(१) जयति जगत्रय मंडप मूलस्तम्भो महादेव

(परमार लेख ए इ २१ पृ ४४)

(२) वंदेमहि महादेवं देव देव जगद्गुरुम्।

(कलचुरि लेख ए इ २ पृ १८)

(३) पञ्चास्य स्तिमित भाल भासो

कर्णेन्दीरमना कुरूना

यन्मूर्द्धिन् नम्रेहित कल्प वल्या
भातीव भूत्यै स तवास्तु शभु ।
(उदयपुर प्रशस्ति–ए इ १ पृ २३३)

(४) कल्याणिताम् विकला भवता तनोतु
भाले कलानिधि शशि शेखरस्य
(भेराघार लेख, ए इ २ पृ १०)

वगाल के पाल तथा सेन नरेशो के लेखो मे शिव मन्दिर के निर्माण का उल्लेख कई स्थानो पर मिलता है। पाल राजा नारायणपाल ने वौद्ध मतानुयायी होकर भी शिव (शिव भट्टारक) के सैकडो मन्दिर तैयार कराया जिसका वर्णन भागलपुर की प्रशस्ति मे मिलता है—महाराजाधिराज श्री नारायणपाल देवेन स्वय कारित सहस्रायतनस्य। तत्र प्रतिष्ठापितस्य। भगवत शिव भट्टारकस्य (इ ए भा १५ पृ. ३०६) यदि इस सख्या को अत्युक्तिपूर्ण माने तो भी उसके शैवमत के आदर तथा उस धर्म के प्रति सहिष्णुता का भाव प्रदर्शित करता है। विग्रहपाल तीसरे ने भी शिव मन्दिर तैयार कराया। विजयसेन के देवपारा प्रशस्ति मे प्रद्युम्नेश्वर (शिव) के विशाल देवालय निर्माण का वर्णन है—(स प्रद्युम्नेश्वरस्य व्यधित वसुमती वासव सौवमुच्चै)। वगाल के वाहर उडीसा मे दसवी सदी में शिवमन्दिर निर्मित किए गए जिसमे लिङ्गराज सर्व प्रसिद्ध है। मध्य भारत मे चन्देल नरेशो की शक्ति और भक्ति के प्रमाण उनके मन्दिरो तथा लेखो से मिलते हैं। कन्दरिया महादेव का मन्दिर अत्यन्त सुन्दर ढग से वनाया गया है। खजुराहो की प्रशस्तियो मे शिवमन्दिर का वर्णन सुन्दर शब्दो मे है। परमर्दि द्वारा निर्मित शिव मन्दिर भी उल्लेखनीय है (भारत कौमुदी भा १ पृ ४३५)। परमार शासन मे नीलकण्ठ, महाकाल तथा मण्डलेश्वर शिव के देवालय वनाए गए थे (प्रासादामय माणेय शिव एव करोति य—ए इ. २१ पृ ४२, ४८) कलचुरी लेखो के परिशीलन से उसी तरह का ज्ञान होता है कि शासक शिव-भक्त होने के कारण शिव-मन्दिर का निर्माण करते रहे। रतनपुर के लेख मे उल्लेख आता है कि कुमराकोट नामक स्थान पर शिव मन्दिर तैयार कराया गया था—

सुधाशु धवलं तत्र धूर्ज्जटे धाम निर्म्मितम्
निर्मित मन्दिर रम्या कुमराकोट पत्तने।
(ए इ २६ पृ २६२)

प्रतिहार लेखो का वर्णन इसमे घटकर नही है। वाडक के ग्वालियर प्रशस्ति मे निम्न वर्णन पठनीय है—

(का. इ. भा. ३ पृ. ७४ न १५२) मिहिरगुल के सिक्के पर "जयतु वृष" को लेख अंकित है। यह विवरण हूण शासक मिहिरगुल द्वारा शिव पूजा में उसकी गाढ़ी भक्ति का परिचायक है।

सातवीं सदी से बंगाल में भी शैवमत का प्रचार था जो लघांक पाल नरेश नारायण पाल और सेनवंशी प्रशस्तियों से प्रकट होता है। शिव प्रतिमा के लेख में महावृषभ पर्याङ्क बालचन्द्र ज्योतिजटा भगवत स्थित्युत्पत्ति प्रलय सृष्टि के संहार कारणस्य" का उल्लेख मिलता है। इस काल में शिवपूजा लोकप्रिय रही इसीलिए शिव के विभिन्न नाम अग्रहार दान तथा मंदिर निर्माण की बातें उल्लिखित हैं। शैवमत की उपशाखाएं भी इस युग में प्रचलित थीं। लेख के प्रारम्भ में ओं नमो शिवाय' का मंत्र स्पष्ट प्रकट करता है कि शासक का झुकाव शैवमत की ओर अवश्य था। कलचुरी लेखों में केदारेश्वर, सोमनाथ तथा रुद्र के नाम उल्लिखित हैं। (ए इ १ व भा १६ पृ २१८ १३) तो परमार प्रशस्ति में भवानीपति व्योमकेश महादेव या उमापति के नाम से शिव प्रार्थना मिलती है (ए इ भा ११ पृ १८१)। पशुपति योगस्वामी ओंकार तथा विन्ध्येश्वर (ए इ भा १ ५ पृ १७४ ११६) के नाम विभिन्न लेखों से प्राप्त होते हैं। सेन तथा प्रतिहार लेखों में 'अर्द्धनारीश्वर" शम्भू तथा नीलकण्ठ का उल्लेख पाया जाता है (ए इ भा १९ पृ १७५, भा १४ पृ १५९) सेनवंश के आराध्यदेव 'सदाशिव' कहे गए हैं जिनकी प्रतिमा लेखों के ऊपरी भाग पर खुदी है। शिव पूजा में आस्था करने के कारण ही परमार, चेदि चन्देल प्रतिहार, गहड़वाल तथा सेन शासकगण 'परम माहेश्वर' की पदवी से विभूषित थे। यह पदवी स्वयं बतलाती है कि महेश्वर के नए नाम से भी शिव की पूजा होती रही।

राजकीय लेखों में शिव की प्रार्थना ललित शब्दों में की गई है। प्रशस्तियों से उद्धरण सुनिए—

(१) जयति जगत्त्रय मंडप मूलस्तम्भो महादेव

(परमार लेख ए इ २१ पृ ४४)

(२) भजेमहि महादेवं देव देव जगद्गुरुम्।

(कलचुरि लेख ए इ २ पृ १८)

(३) गङ्गापूर्ण शिरस भाल भाले

कलेन्दोरमला कृपामा

यन्मूर्ध्नि नम्रेहित कल्प वल्या

भातीव भूत्यै स तवास्तु शभु ।

(उदयपुर प्रशस्ति–ए इ १ पृ २३३)

(४) कल्याणिताम् विकला भवता तनोतु

भाले कलानिधि शशि शेखरस्य

(भेरावार लेख, ए इ २ पृ १०)

वगाल के पाल तथा सेन नरेशो के लेखो मे शिव मन्दिर के निर्माण का उल्लेख कई स्थानो पर मिलता है। पाल राजा नारायणपाल ने वौद्ध मतानुयायी होकर भी शिव (शिव भट्टारक) के सैकडो मन्दिर तैयार कराया जिसका वर्णन भागलपुर की प्रशस्ति मे मिलता है—महाराजाधिराज श्री नारायणपाल देवेन स्वय कारित सहस्रायतनस्य। तत्र प्रतिष्ठापितस्य। भगवत शिव भट्टारकस्य (इ ए भा १५ पृ ३०६) यदि इस सख्या को अत्युक्तिपूर्ण माने तो भी उसके शैवमत के आदर तथा उस धर्म के प्रति सहिष्णुता का भाव प्रदर्शित करता है। विग्रहपाल तीसरे ने भी शिव मन्दिर तैयार कराया। विजयसेन के देवपारा प्रशस्ति मे प्रद्युम्नेश्वर (शिव) के विशाल देवालय निर्माण का वर्णन है—(स प्रद्युम्नेश्वरस्य व्यधित वसुमती वासव सौवमुच्चै)। वगाल के वाहर उडीसा मे दसवी सदी मे शिवमन्दिर निर्मित किए गए जिसमे लिङ्गराज सर्व प्रसिद्ध है। मध्य भारत मे चन्देल नरेशो की शक्ति और भक्ति के प्रमाण उनके मन्दिरो तथा लेखो से मिलते हैं। कन्दरिया महादेव का मन्दिर अत्यन्त सुन्दर ढग से वनाया गया है। खजुराहो की प्रशस्तियो मे शिवमन्दिर का वर्णन सुन्दर शब्दो मे है। परमर्दि द्वारा निर्मित शिव मन्दिर भी उल्लेखनीय है (भारत कौमुदी भा. १ पृ ४३५)। परमार शासन मे नीलकण्ठ, महाकाल तथा मण्डलेश्वर शिव के देवालय वनाए गए थे (प्रासादामय माणेय शिव एव करोति य—ए इ २१ पृ ४२, ४८) कलचुरी लेखो के परिशीलन से उसी तरह का ज्ञान होता है कि शासक शिव-भक्त होने के कारण शिव-मन्दिर का निर्माण करते रहे। रतनपुर के लेख मे उल्लेख आता है कि कुमराकोट नामक स्थान पर शिव मन्दिर तैयार कराया गया था—

सुधाशु धवल तत्र धूर्जटे धाम निर्म्मितम्

निर्मित मन्दिर रम्या कुमराकोट पत्तने।

(ए इ २६ पृ २६२)

प्रतिहार लेखो का वर्णन इससे घटकर नही है। वाउक के ग्वालियर प्रशस्ति मे निम्न वर्णन पठनीय है—

पुष्करणी कारिता येन कृता तीर्थे च पत्तने
शिवस्तरो महादेव कारितस्तुंग मन्दिरः।
(ए इ १८ पृ ९९)

इस प्रकार के अभिलेखों का अध्ययन स्पष्ट रूप से प्रकट करता है कि मध्य-प्रदेश राजपूताना उत्तर प्रदेश बिहार, बंगाल तथा उड़ीसा में शैवमत लोक-प्रिय था इसलिए पूजा या मन्दिर निर्माण का विशद वर्णन मिलता है। लेखों का परिशीलन तथा प्रतिमाओं का परीक्षण यह बतलाता है कि भारतीय दर्शन के प्रकृति पुरुष या एक ब्रह्म की कल्पना को पूर्व मध्यकालीन प्रतिमाओं में स्थान मिल गया था। वैवाहिक प्रतिमा से प्रकृति पुरुष का बोध होता है तो अर्द्ध-नारीश्वर मूर्ति से 'एको ब्रह्म द्वितीयो नास्ति' का परिज्ञान हो जाता है। सेन लेख में अर्द्धनारीश्वर के सम्बन्ध में निम्न पंक्ति मिलती है—

संध्या ताण्डव समविधान विलसन् नान्दी निनादोर्म्मिभि
निर्म्मर्यादरसार्णवो दिशतु च श्रेयोर्द्धनारीश्वरः
(मदहटी का ताम्रपत्र ए इ १४ पृ १५९)

७ ई के पश्चात् शैवमत का इतिहास विशेष महत्व रखता है। भारत-वर्ष में सर्वत्र ही इस मत का प्रचार रहा। लेखों में शैवमत की प्रधान दो उप-शाखाओं—पाशुपत तथा कापालिक—के नाम मिलते हैं।

पाशुपत तथा कापालिक

पाशुपत शाखा के प्रतिष्ठापक लकुलीश (हाथ में दण्ड) की आकृति हुविष्क के सिक्कों पर मिलती है परन्तु चौथी सदी में मथुरा स्तम्भ लेख में पाशुपत साधु उदिताचार्य द्वारा दो शिवलिङ्ग की स्थापना का वर्णन आता है (द्वितीय चन्द्रगुप्त का मथुरा स्तम्भ)। गुजरात के एक लेख में लकुलीश के रूप में शिव का अवतार वर्णित है—

भट्टारक श्री लकुलीश मूर्त्या तप क्रिया कांड कृम प्रदाता
अवातरेद्विश्वमनुग्रहीतुं येन स्वयं वाक मृगांक मौलिः
(ए इ १ पृ २८१)

पाशुपत मत के प्रचार के लिए ही लकुलीश का जन्म हुआ था—अवतीर्णवतारः पाशुपत व्रत विशेष चर्यार्थं। राजपूताना के उदयपुर के समीपस्थ नाथ-मन्दिर की प्रशस्ति में लकुलीश की प्रार्थना की गई है (ओं नमो लकुलीशाय)। अन्य-तम लेखों में पाशुपत अथवा लकुलीश पाशुपत का उल्लेख है (राज्यपाल का मथुरा लेख ए ई ११ पृ १९)। सम्भवतः नाथ मन्दिर के भू-भाग में शैवमत लकुलीश सम्प्रदाय के नाम से प्रसिद्ध था। चाहमान नरेश विग्रहराज (११ वीं सदी) के अभिलेख में शैवसाधु प्रसाद का शिष्य पाशुपत शिव का परम पुजारी था।

आसीन्नैष्टिकरूपो यो दीप्त पाशुपत व्रत
तीव्र वेग तपो जात पुण्यापुण्यमलक्ष य ।
(हर्ष शिलालेख—ए इ २ पृ १२३ श्लोक ३५)

राजपुताना सग्रहालय के लेख मे पाशुपत मतानुयायी विश्वेस्वर प्रज्ञा नामक पुजारी सिद्धेश्वर मन्दिर मे रहता था—ऐसा वर्णन आया है। कलचुरी लेख इस वात के प्रमाण हैं कि राजा पाशुपत उपशाखा के मानने वाले थे (ए इ १९ पृ ७७) अल्हणदेवी के भेराघाट प्रशस्ति मे वर्णन मिलता है कि (११ वी सदी मे) शिव मन्दिर की स्थापना कर पाशुपत साधु के हाथ सारा प्रबन्ध सौंप दिया गया था—

लाटान्वय पाशुपतस्तपस्वी—
स्थानस्य रक्षा विधिमस्य तावद्यावन्निमभीते भवनानि शम्भु ।

तत्कालीन मठो मे भी पाशुपत साधु के निवास करने का विवरण पाया जाता है—

श्री भोजनगरे श्री सोमेश्वर देव मठ निवासी
परम पाशुपत आचार्य भट्टारक श्री भाव वालिमक ।

वगाल के राजा नारायणपाल के शिव मन्दिर के पाशुपत साधुओ के निमित्त स्थान तथा औषधि के लिए दान का निम्न वर्णन मिलता है—

पाशुपत आचार्य परिषदश्च—
शयनासनग्लान प्रत्यय भैषज परिष्काराद्यर्थ ।
(भागलपुर का लेख—इ ए १५ पृ ३०६)

इस समय मे प्रचलित शैवमत की दूसरी उपशाखा-कापालिक का नाम पुराणो से आया है और मध्ययुग के लेखो मे भी उल्लिखित है। इसके अनुयायी शरीर मे मृत व्यक्ति का भस्म (विभूति) लगाते, खोपडी मे भोजन करते तथा शराव का पात्र भी रखते थे। अघोरपन्थी साधु भी इनके सदृश थे। शैव धर्म पर तान्त्रिक मत का स्पष्ट प्रभाव दिखलाई पडता है। राजपुताने के लेख मे कापालिक साधुओ का उल्लेख है। उदयपुर की प्रशस्ति में कापालिक साधुओ के मठ निर्माण का विवरण पाया जाता है (आ० रि० राजपु० सग्रहालय १९२२-२३ पृ २)। हम्मीर के एक लेख मे कापालिक शाखा का उल्लेख मिलता है जिससे प्रकट होता है कि पाशुपत मत के पश्चात् उदयपुर के भाग में (१२ वी सदी) कापालिक (शैव-शाखा) का प्रचार हो गया था (ए इ १९ पृ ४७)।

वैदिक काल से ही सूर्य देवता की पूजा का प्रचलन भारत मे रहा परन्तु

सूर्य-पूजा

विद्वानों की धारणा है कि ईरान से सूर्य मत का प्रचार हुआ। ईसवी सन् के आरम्भ से सूर्य पूजा की प्रियता बढ़ने लगी इसलिए कनिष्क ने मित्र (सूर्य) की आकृति सिक्के पर खुदवाई तथा मीरो (मिहिर—सूर्य) लेख अंकित कराया। गुप्त युग में विष्णु तथा शिव के बाद सूर्योपासना का स्थान था। गुप्त लेखों में सूर्य पूजा का अनेक स्थलों पर उल्लेख मिलता है। प्रथम कुमार गुप्त के मंदसोर वाले लेख में भगवान भास्कर की स्तुति ललित तथा काव्यमय भाषा में की गई है।

हेतुर्यो जगत ठयाम्युदयमो पायात्सवो भास्कर
× × ×
मस्तेभ्यस्य ददाति योऽभिलषिते तस्मसवित्रे नमः।
× × ×
पायात्सव: शुचिरनामरश्मी विवस्वान्।

इस लेख के अध्ययन से यह भी ज्ञात होता है कि प्रथम कुमार गुप्त के प्रांतपति बन्धु वर्मा के समय में तन्तुवाय श्रेणी द्वारा सूर्य मन्दिर का संस्कार भी हुआ था — श्रेण्यादेशेन भक्त्या च कारितं भवनं रवे:

(मन्दसोर-मालवा की प्रशस्ति)

सम्राट् स्कन्द गुप्त के इन्दौर लेख में भगवान सूर्य की प्रार्थना सुन्दर शब्दों से आरम्भ की गई है।

पायाद्वः स जगत्पिधान पुट-भिद्रश्म्या करो भास्करः।

इसमें वर्णन है कि अन्तर्वेद में (गंगा-यमुना के द्वाब) दो क्षत्रियों ने सूर्य पूजा के निमित्त भास्कर का मन्दिर निर्माण कराया। वैशाली के मुहरों पर गुप्तलिपि में—'भगवतो आदित्यस्य' उत्कीर्ण है। गुप्त लेखों में उल्लिखित सूर्य पूजा के वर्णन को तत्कालीन मूर्तियां प्रमाणित करती हैं।

पूर्व मध्ययुग में उत्तरी भारत (राजपूताना मध्यप्रदेश उत्तर प्रदेश तथा बिहार व बंगाल) में इस सिद्धान्त (सूर्य पूजा) का प्रचार हो गया था। वहां के अभिलेख 'औं नमो सूर्याय या नमो सूर्याय" मन्त्र से प्रारम्भ होते हैं। थानेश्वर के शासक राज्यवर्द्धन प्रथम आदित्यवर्धन तथा महाराजा प्रभाकर वर्धन (हर्ष के पिता) सूर्य भक्त होने के कारण 'परम आदित्य भक्त' कहे गए हैं (मधुबन का लेख—ए इ १ पृ ७२)। विदेशी हूण राजा तोरमाण सूर्य का पुजारी था उसने सिक्कों पर चक्र के प्रतीक का समावेश किया तथा पुत्र को मिहिर का नाम दिया था। मिहिरकुल के ग्वालियर प्रशस्ति में भी सूर्य मन्दिर के निर्माण का वर्णन मिलता है। उदयसिंह देव की भीममल के लेख में भगवान सूर्य की प्रार्थना निम्न शब्दों में की गई है —

कुर्वतेऽर्जलि त्रिनेत्र स जयति धाम्ना निधि सूर्य ।

(ए. इ ११ पृ ५५)

दूसरे लेख मे पुष्प तथा नीम पत्तियो के साथ सूर्य पूजा का वर्णन है तथा चहमान प्रशस्ति मे (१२वी सदी) सूर्य (इन्द्रादित्य) पूजा के निमित्त अग्रहार दान का विवरण है (ए इ १२ पृ ५९) । प्रतिहार राजा महेन्द्रपाल द्वितीय के उज्जयिनी के दानपत्र मे भी उसी प्रकार का वर्णन (पूजा-प्रकार) है । गहड्वाल नरेश जयचन्द्र ने भगवान लोलार्क (सूर्य का नाम) के पूजा निमित्त कई ग्राम दान किया था (ए इ ४ पृ. १२९—देव श्री लोलार्क्काय) । परमार वश के वसन्तगढ के लेख मे विधवा रानी द्वारा सूर्य मन्दिर के सस्कार का वर्णन पाया जाता है—

(अ) कृत्वा निकेतन वटवासी भानो (ए इ ९ पृ १३)

(ब) गृह कारितमाशुभानो (वही १४ पृ १८१)

मुसलमान लेखको ने सूर्य पूजा का वर्णन किया है जिसका प्रधान केन्द्र मुल्तान (=मूलस्थान) था । अलबेरुनी ने इसका सुन्दर विवरण दिया है और भारत के कोने-कोने से जनता मुल्तान के सूर्य मन्दिर मे जाया करती थी । उनके दान से वह शहर वैभवपूर्ण हो गया था । पूर्वी भारत मे भी सूर्य पूजा का प्रसार था । उडीसा का कोणार्क मन्दिर इसे प्रमाणित करता है । सूर्य प्रतिमा के पृष्ठ भाग पर दो प्रकार के लेख उत्कीर्ण पाये जाते हैं—

(१) सूर्य समस्त रोगाना हर्त्ता विश्व प्रकाशक

(ज ए सो ब २६ पृ १४७)

(२) श्री तकमीदिनकारिन् भट्टारक

(ए इ. २७ पृ २५)

इन उद्धरणों से ज्ञात होता है कि सूर्य सब रोगो के नाशक (कुष्ट तथा अन्य चर्म रोग) माने जाते थे । अथर्ववेद मे (१, ४, ६) तकमन शब्द रोग के लिए प्रयुक्त है इसलिए सूर्य को तकमी (रोग नाशक) कहा गया है । बगाल के दसवी सदी के कथित प्रशस्तियो से प्रकट होता है सूर्य की आराधना रोगो से मुक्त होने के लिए किया जाता था ।

बिहार मे निवास करने वाले शाकद्वीपी (मग) ब्राह्मण अत्यन्त पुराने समय से ही सूर्य के पुजारी माने गए हैं और आज भी औषधि या तत्र का ज्ञान उनमे अधिक है । डा० भण्डारकर के मतानुसार भारत मे मग ब्राह्मणो ने सूर्य-पूजा का प्रचार किया था । गया जिले से प्राप्त एक लेख मे शाकद्वीपी मग नाम से उल्लिखित हैं—

शाकद्वीपस्स दुग्धाम्बुनिधि मकमितो मग मिश्रो मगाख्या (ए इ २ पृ ३३३)
उत्तरी भारत में पूर्वमध्यकाल से सूर्य पूजा अधिक लोकप्रिय हो गई जिसके कारण इस देवता के अनेक नाम—इन्द्रादित्य लोलार्क भास्कर चक्रस्वामी चण्डस्वामी तथा मार्तण्ड—अभिलेखों में मिलते हैं तथा इन नामों से प्रतिमाएं भी बनती थीं। यहां सूर्य प्रतिमाओं का वर्णन अप्रासंगिक होगा परन्तु संक्षेप मे यह कहा जा सकता है कि पंचायतन-पूजा में सूर्य का भी स्थान था तथा गुप्त युग के पश्चात् इस देवता की पूजा समाज में घर बना चुकी थी।

शक्ति-पूजा

भारत में मातृदेवी की पूजा प्रागैतिहासिक युग से प्रचलित है। मातृदेवी की मृण्मयी प्रतिमा पांच हजार वर्ष पहले भी बनती रही। सिन्ध से लेकर हड़प्पा युग की संस्कृति में मातृदेवी (Mother goddess) की मूर्तियां खुदाई से प्रकाश में आई हैं। इस मातृदेवी को शक्ति का रूप मानते हैं। शिव के साथ देवी को सम्बन्धित करना तांत्रिक मत का प्रभाव है। इसमें शक्ति और शक्तिमत को अभिन्न समझा जाता है। इसलिए प्रकृति पुरुष की भावना समाज में आई। बौद्धमत में 'प्रज्ञा तथा उपाय' शब्दों से उसकी अभिव्यक्ति की जाती है। तांत्रिक मत से प्रभावित होकर शक्ति की अधिक प्रतिमाएं बनने लगीं। भेड़ाघाट (जबलपुर, मध्यप्रदेश) के चौंसठ योगिनी का मन्दिर उसका जीता जागता उदाहरण है। उन तांत्रिक देवी प्रतिमाओं के आधार-शिला पर नाम भी उत्कीर्ण है जिसके अध्ययन से हमारी जानकारी बढ़ती है। पूर्व मध्यकालीन लेखों में भी दुर्गा पूजा का वर्णन है जो शक्ति का उग्ररूप मानी गई है। प्रतिहार लेख महिषमर्दिनी देवी की प्रार्थना से आरम्भ होती है। उस स्थान पर भट्टवासिनी देवी (दुर्गा का एक नाम) के मन्दिर को गोष्ठिपुत्रों के हाथों सौंपने का वर्णन है (ए इ १४ पृ १७७)। दूसरे लेखों में कात्यायनी सर्वमङ्गला या अम्बा के नाम से वर्णित है। उसकी प्रार्थना का एक उद्धरण दिया जा रहा है—

दुर्गे जयाख्ये प्रबला दुरीश्वरविध्वंसनी स्तोत्र परम्परानि
दुर्गास्तुभगेन सदैव भक्त्या इत्यादिभक्ति पुष्प तमामुपास्ते।
(ए इ भा १ पृ ३३४)

शक्ति का दुर्गा ही प्रसिद्ध नाम था यही कारण है कि भारतीय कला में महिषासुरमर्दिनी की प्रतिमा अधिक संख्या में बनी। बंगाल के एक अभिलेख मे नव दुर्गा का उल्लेख है जिसकी पूजा तथा मन्दिर के संस्कार के लिए अग्रहार दान में दिया गया था (नव दुर्गायतनाय च पूजा संस्कारार्थम्—ए इ १ पृ १५९) यहां नव दुर्गा का नाम नहीं मिलता पर साहित्य व तोलगुण्डी वाड

चारिणी, चन्द्रघटहा, कुष्माण्डी स्कन्वमाता, कात्यायिनी, कालरात्रि, महागौरी तथा सिद्धमाता (नव दुर्गा प्रकीर्तिता) के नाम मिलते है। वगाल में शक्ति की विभिन्न स्वरूप की अनगिनत प्रतिमाए प्रकाश मे आई हैं जिनमे उस प्रदेश में शक्ति-पूजा की प्रवानता का अनुमान लगाया जा सकता है।

पचायतन पूजा मे गणेश को अन्तिम स्थान (विष्णु, शिव, सूर्य, दुर्गा तथा गणेश) दिया गया है। यो तो हिन्दूधर्म मे गणेश की आराधना मर्व प्रथम की जाती है परन्तु लेखों तथा कलात्मक उदाहरणो से गणेश-पूजा का प्रचुर प्रचार नही मालूम पडता। कई शैव प्रशस्तियो मे गणेश, शिव-पार्वती के साथ प्रार्थना मे सम्मिलित हैं। वैष्णव अभिलेख भी "ओ गणपतये नम" से प्रारम्भ होते हैं। आरम्भ के श्लोको मे गणपति की प्रार्थना मिलती है परन्तु उम अभिलेख का मुख्य विषय विष्णु मन्दिर के दान से सम्वन्वित है (ए इ भा १ पृ २८८)। चन्देल प्रशस्ति मे गणेश को विनायक कहा गया है। (ए इ ९ पृ २७९)। विनायक नाम से जैन लोग भी गणेश की पूजा करते रहे जिसका उल्लेख राजकीय लेख मे प्रस्तुत किया गया है (ज इ हि भा १८ पृ १५८)।

गणेश

प्राचीन लेखों से धार्मिक वृत्तान्त की जानकारी तो होती है पर यदा-कदा दार्शनिक सिद्धान्तो से भी पा क अवगत हो जाते हैं। दानपत्रो मे अविकतर देवता के नाम (पूजा निमित्त), मन्दिर के अविकारी (पुरोहित) के नाम अथवा धार्मिक नस्था को भूमि या वन दान का विवरण है जिसकी आय लिखित मार्ग से व्यय की जाती थी (पूजा, सस्कार, भोजन, निवास, औपधि आदि) नासिक लेख मे वर्णन आता है कि सचित वन के सूद से ही भिक्षुओ को भोजन या वस्त्र दिया जाता था। कोप के मचित द्रव्य को कभी व्यय नही किया जा मकता था। पूर्व मध्ययुग के लेखो का (दानपत्रो को) चिरस्थायी करने के लिए अन्त मे श्रापयुक्त या मगलमय श्लोक लिखवाए जाते थे। उसका एक मात्र कारण यह था कि दानकर्ता के उत्तराविकारियो के मन मे भय उत्पन्न किया जाय ताकि वे दान सम्पत्ति को वापस न ले सके।

पाष्टि वर्प सहस्राणि स्वर्गे मोदति भूमिद
आक्षेप्ता चानुमन्ता च तान्येव नरके वमेत्।

प्राचीन भारत के अभिलेखो का परिशीलन एक विशेप प्रकार के मद्भावना से परिचय कराता है जो भारतीय इतिहास की अद्वितीय घटना है। मौर्य सम्राट् अशोक मे लेकर १२वी सदी के वगाल नरेश धार्मिक सहिष्णुता की भावना से प्रेरित थे और कभी भी कट्टरपथी नही कहे जा मकने हैं। अशोक ने अपने वारहवें शिलालेख मे अदेश दिया

धार्मिक सहिष्णुता

है कि धार्मिक क्षेत्र में सब को सीमित ढंग से बोलना (वाक्य संयम करना) चाहिए (वचो गुप्ति यथाश्रुति)। अपने धर्म की प्रशंसा तथा अन्य मतों की बुराई की उसने निन्दनीय कार्य बतलाया।

मत पषंड पुज व पर पषंड गरहण—

× × ×

मत पषंड छणति पर पषंडस च अपकरोति।

इतना ही नहीं अशोक ने तथा उसके पौत्र दशरथ ने आजीविक मत के साधुओं के लिए बराबर तथा नागार्जुनी पर्वत की गुफाओं (गया जिला) को दान में दिया था। अशोक के विचार तथा कार्य में सामंजस्य पाया जाता है। मौर्य युग के पश्चात् सातवाहन तथा शुंग नरेश ब्राह्मण धर्म के अनुयायी थे परन्तु उनके शासनकाल में अमरावती सांची तथा भारहुत आदि बौद्ध कलाकेन्द्र विकसित हुए। गौतमी पुत्र शातकर्णी 'एक ब्राह्मण' तथा 'क्षत्रिय मान मदन' (क्षत्रियों के मान को नष्ट करने वाला) कहा गया है उसी के शासन में भद्रायनीय तथा महासंघिक नामक बौद्ध शाखाओं को गुहा दान में दिया गया था। शासकों ने किसी प्रकार की रुकावट पैदा न की। ईसवी सन् के आरम्भ से उत्तर पश्चिम भारत में कनिष्क ने बौद्धमत को अपनाया था परन्तु उसने ईरानी (मिथ्र) यूनानी (आरदोक्षो) ब्राह्मण (शिव) तथा बौद्ध (बुद्ध) देवताओं के चित्र तथा नाम सिक्कों पर अंकित कराया जिससे उसकी सहिष्णुता का अनुमान किया जा सकता है। गुप्त सम्राटों में भी ऐसा गुण था जिसकी जानकारी उनके लेखों से हो जाती है। विष्णु के पुजारी (परम भागवत) होकर पंचदेव (विष्णु शिव सूर्य दुर्गा तथा गणपति) पूजा के समर्थक थे तथा अन्य सम्प्रदायों के प्रसार में योग देते रहे। मौलिक सहानुभूति का प्रदर्शन कर गुप्त सम्राटों ने शैव तथा जैनमतानुयायियों को प्रश्रय दिया। बौद्धकला को प्रोत्साहन देने के कारण सारनाथ का कलाकेन्द्र उनके राज्य में ही फूला और फला। द्वितीय चन्द्रगुप्त से लेकर बुधगुप्त तक के लेखों में विहार-दान का वर्णन मिलता है। हर्ष के पूर्वज सूर्य के उपासक थे वह भी आरम्भिक जीवन में शिव का भक्त था परन्तु बौद्धमत की ओर उसका झुकाव हो गया।

पाल नरेश 'परमसौगत' पदवी से विभूषित थे तथा ताम्रपत्रों के ऊपरी भाग पर 'धर्म चक्र' चिन्ह अंकित है। बौद्ध सम्राटों में धर्मपाल का नाम अग्रणी है। उसने विक्रमशीला महा विहार की संस्थापना की जो वज्रयान का प्रसिद्ध केन्द्र था। धर्मपाल के द्वारा नर नारायण तथा नारायणपाल के द्वारा शिव मन्दिर के निमित्त

दान का उल्लेख है। पाल शासन मे दान का वर्णन है (खालीमपुर का लेख तथा भागलपुर का दानपत्र)। गहड्वाल राजा गोविन्द चन्द्र की रानी कुमारदेवी बौद्धमत में विश्वास रखती थी, इसलिए सारनाथ मे उसने एक विहार बनवाया था। ब्राह्मण मतानुयायी राजा ने स्वय जेतवन विहार के लिए कई ग्राम दान मे दिया था। (ए इ ११पृ २०) इसी तरह चन्देल राजा परम सहिष्णु थे। खजुराहो का विष्णु, शैव तथा जैन मन्दिर उनके धार्मिक सहिष्णुता के जीते उदाहरण हैं। मध्य देश के लेखो मे बौद्ध शासको के अतिरिक्त ब्राह्मण धर्मानुयायी राजा भी सहिष्णु थे। परममाहेश्वर शैव शासक द्वारा नारायण-पूजा का वर्णन मिलता है। कलचुरी राजा के कसिया लेख में शैव तथा बौद्धमत सम्बन्धी बात एक ही स्थल पर कही गई हैं। "नमो बुद्धाय" तथा "ओ नमो रुद्राय" मन्त्रो से लेख प्रारम्भ होता है। कुछ पदो मे शिव और कुछ श्लोको मे बौद्ध तारादेवी की प्रार्थना मिलती है।

पायात्ति पर्व्वं प्रभवभयमिद शाश्वत शकरस्य
विभ्राणा भवता सुखानि तनुतां तारा त्रिलोकेश्वरी
(ए इ १८पृ १३०)

११ वीं सदी के मारवाड लेख में शिव की प्रार्थना के साथ जैन मन्दिर को दान देने का विवरण पाया जाता है। सक्षेप मे यह कहना सर्वथा उचित होगा कि भारतीय नरेशों में धार्मिक सहिष्णुता उच्च कोटि की थी और वैसा आदर्श अन्यत्र नही पाया जाता।

मौर्य युग के बाद भारतीय अभिलेखो मे यज्ञो का विवरण मिलता है। अशोक के धर्म लेखो मे बौद्ध धर्म के विनय का वर्णन है परन्तु तत्पश्चात् सम्पूर्ण भारत मे ब्राह्मण धर्म के पुनरुत्थान के साथ यज्ञ सम्पन्न हुए। ईसवी पूर्व सदियो मे अयोध्या लेख मे पुष्य-मित्र द्वारा दो अश्वमेध का उल्लेख है—

वैदिक यज्ञ

कोमलाधिपेन द्विरश्वमेध-याजिन सेनापते पुष्यमित्रस्य

उसी के समकालीन दक्षिण भारत के सातवाहन लेख मे अनेक यज्ञो के नाम आते हैं—अग्न्याधेय यज्ञ अनारम्भणीय यज्ञ राजसूय यज्ञ, अश्वमेध यज्ञ, गर्गतिरात्र यज्ञ, आप्तोर्याय यज्ञ, आङ्गिरसाति रात्र यज्ञ तथा त्रयोदश रात्र यज्ञ (नानाघाट लेख)। पश्चिम भारत के क्षत्रप शासक नहपान का जामाता ऋषभदत्त (दूसरी सदी) भारतीय सस्कृति का अनुयायी था। उसने तीर्थ यात्रा, दान आदि कार्यों को प्रोत्साहित किया परन्तु किसी वैदिक यज्ञ का नाम नही मिलता। तीसरी शताब्दी के शासक नागवशी राजाओ के सम्बन्ध मे डा. जायस-वाल का मत था कि काशी के दशाश्वमेधघाट का नामकरण दश अश्वमेध के

है कि धार्मिक क्षेत्र में सब को सीमित ढंग से बोलना (वाक्य संयम करना) चाहिए (इयो मुख्यं वचागुति)। अपने धर्म की प्रशंसा तथा अन्य मतों की बुराई की उसने निन्दनीय कार्य बतलाया।

मत पषड पुज न पर पषंड गरहन—

× × ×

मत पषड क्षणति पर पषंडस च अपकरोति।

इतना ही नहीं अशोक ने तथा उसके पौत्र दशरथ ने आजीविक मत के साधुओं के लिए बराबर तथा नागार्जुनी पर्वत की गुफाओं (गया जिला) को दान में दिया था। अशोक के विचार तथा कार्य में सामंजस्य पाया जाता है। मौर्य युग के पश्चात् सातवाहन तथा शुंग नरेश ब्राह्मण धर्म के अनुयायी थे परन्तु उनके शासनकाल में अमरावती सांची तथा भारहुत आदि बौद्ध कलाकेन्द्र विकसित हुए। गौतमी पुत्र शातकर्णी 'एक ब्राह्मण' तथा 'खत्रिय मान मदनस' (क्षत्रियों के मान को नष्ट करने वाला) कहा गया है उसी के शासन में भद्र-यनीय तथा महासंघिक नामक बौद्ध शाखाओं को गुहा दान में दिया गया था। शासकों ने किसी प्रकार की रुकावट पैदा न की। ईसवी सन् के प्रारम्भ से उत्तर पश्चिम भारत में कनिष्क ने बौद्धमत को अपनाया था परन्तु उसने ईरानी (मिह्र) यूनानी (आरदोक्षो) ब्राह्मण (शिव) तथा बौद्ध (बुद्ध) देवताओं के चित्र तथा नाम सिक्कों पर अंकित कराया जिससे उसकी सहिष्णुता का अनुमान किया जा सकता है। गुप्त सम्राटों में भी ऐसा गुण था जिसकी जानकारी उनके लेखों से हो जाती है। विष्णु के पुजारी (परम भागवत) होकर पंचदेव (विष्णु शिव सूर्य दुर्गा तथा गणेश) पूजा के समर्थक थे तथा अन्य सम्प्रदायों के प्रचार में योग देते रहे। मौखिक सहानुभूति का प्रदर्शन कर गुप्त सम्राटों ने जैन तथा जनमतानुयायियों को प्रश्रय दिया। बौद्धकला को प्रोत्साहन देने के कारण सारनाथ का कलाकेन्द्र उनके राज्य में ही फूला और फला। द्वितीय चन्द्रगुप्त से लेकर बुधगुप्त तक के लेखों में विहार-दान का वर्णन मिलता है। हर्ष के पूर्वज सूर्य के उपासक थे वह भी प्रारम्भिक जीवन में शिव का भक्त था परन्तु बौद्धमत की ओर उसका झुकाव हो गया।

पाल नरेश 'परमसौगत' पदवी से विभूषित थे तथा ताम्रपत्रों के ऊपरी भाग पर 'धर्म चक्र' चिन्ह अंकित है। बौद्ध सम्राटों में धर्मपाल का नाम सबसे ऊँचा है। इसने विक्रमशीला महा विहार की संस्थापना की जो वज्रयान का प्रसिद्ध केन्द्र था। धर्मपाल के द्वारा नर नारायण तथा नारायणपाल के द्वारा शिव मन्दिर के निमित्त

कार्य "धर्म यात्रा", "धर्म मगल", "धर्म शासन" (शिला लेख ८ तथा ९) धर्म के लिए ही पूर्ण किया तथा ससार के धर्म विजय की कल्पना करता था। उसके सम्मुख धर्म दान से बढ कर कोई कार्य न था (नथि हेडिषे दाने अदिष धम दाने शिला लेख ११)। इसी कारण जो कुछ अशोक ने खुदवाया वह सभी (अय धम लिपि) धर्म लिपि कहलाया (इय धम लिपि लिखापिता–स्तम्भ लेख प्रथम चौथा) सातवाहन लेख भी "धमयि नम" की प्रार्थना से प्रारम्भ हुआ है (नानाघाट)। धार्मिक विचार तथा भारतीय सस्कृति के प्रशसक होने के कारण नहपान के जामाता ऋषभदत्त ने प्रभास तीर्थ मे ब्राह्मण कन्या के विवाह के लिए धन दान मे दिया था (प्रभासे पुण्यतीर्थे ब्राह्मणेभ्य अष्टभार्या प्रदेन–ए इ ८ पृ ७८)।

ईसवी सन् की दूसरी सदी मे महाक्षत्रप रुद्रदामन ने अपनी धर्म कीर्ति को बढाने के लिए अपने कोष से पर्याप्त धन व्यय कर बाध बँधवाया था (गो ब्राह्मण हितार्थ धर्म कीर्ति वृद्धयर्थ–ए इ ८ पृ ४२)। रुद्रसिह प्रथम के गुण्डा लेख मे पुण्य के लिए जनहित कार्य का विवेचन है (ग्रामे रसोपद्र के वापी खनिता वन्धापितश्च सत्वं सत्वाना हित सुखार्थ मिति–ए इ भा १६ पृ २३५)। गुप्त युग मे सभी धर्म से प्रेरित होकर कार्य करते थे।

तस्मिन्नृपे शासति नैव कश्चि
द्धर्म्मादपेतो मनुज प्रजासु

(स्कन्द का जूनागढ़ लेख–का इ इ ३ पृ ५८)

छठी सदी के फरीदपुर ताम्रपत्र (बगाल) मे निम्नलिखित वर्णन है—

धर्म षड्भागलाभ तदे ता प्रवृत्तिमधिगम्य
न्यासाध्या स्वपुण्यकीर्ति सस्थापन कृताभिलाषस्य

यथा सकल्याभि तथा कृपाधृत्य साधनिक वतभोगेन द्वादश दीनारानग्रतो दत्ता (मुकुर्जी सिल्वर जुबिली वालुम भा ३ पृ ४७५)।

तात्पर्य यह है कि धर्म की भावना ही सभी पुण्यकार्यों के मूल मे निहित थी।

जो कुछ कार्य किया जाता था उसमे सासारिक वैभव की कामना न रहती परन्तु पुण्य लाभ के लिए दान दिए गए थे। अशोक ने स्तम्भ का निर्माण धर्म-

मदिर निर्माण

शासन के प्रसार के लिए किया। शुग कालीन स्तूप तथा वेदिका पर अकित लेख उसी भावना को पुष्ट करते हैं। वेस नगर स्तम्भ लेख मे हेलियोडोरस द्वारा स्तम्भ निर्माण भी उसी भावना का द्योतक है– देव देवस वासुदेवस गरुडध्वजे अय कारिते

(मूल पृष्ठ २४)

प्रारम्भ हुआ। नाग राजाओं (भारशिव) ने यहां यज्ञ किया था। दक्षिण भारत के राजा वीरपुरुषदत्त के लेख में अग्निष्टोम वाजपेय तथा अश्वमेध यज्ञों के नाम मिलते हैं (अगिहोतागिठोमिठोम = वाजपेयामसेध नागार्जुनी कोण्डा का लेख नं १–ए इ २ पृ ११ ११)।

यज्ञ का यही क्रम उत्तरी भारत में भी था। गुप्त युग में समुद्र गुप्त ने अश्वमेध (यज्ञ) किया था जिसका उल्लेख अभिलेख तथा मुद्रालेख में गया है। समुद्रगुप्त के लिए गुप्त लेखों में "चिरोत्सन्नाश्वमेधाहर्तुः" (अश्वमेध को पुनः जीवित करने वाला) तथा वाकाटक वंशी प्रभावती गुप्ता के पूना ताम्रपत्र में "अनेक अश्वमेध याजी" उल्लेख है (ए इ १५ पृ ४१)। यद्यपि अश्वमेध की चर्चा संदिग्ध है तथापि एक अश्वमेध की घटना तो मुद्रालेख से सिद्ध होती है। अश्वमेध प्रकार की स्वर्ण मुद्रा पर अग्रभाग में निम्न लेख अंकित है—"राजाधिराज पृथिवीमविजित्य दिवं जयत्याहृतवाजिमेध"। पृष्ठ भाग पर—अश्वमेध पराक्रमः लिखा है तथा पटटमहिषि (कात्यायन श्रौत सूत्र में कथित प्रकार से) यज्ञ के लिए उद्यत है (का श्रौ. सू २ -७)। पांचवीं सदी के वाकाटक राजा प्रवरसेन द्वितीय के लिए चम्मक ताम्रपत्र में "चतुरश्वमेधयाजिन" (चार अश्वमेध करने वाला) पदवी का उल्लेख है (का इ ३ पृ २३५)। इस प्रकार लेखों के अध्ययन से छठी सदी तक यज्ञ करने की बात ज्ञात हो जाती है। बसीम लेख में (मध्य प्रदेश) अग्निष्टोम वाजपेय तथा ज्योतिष्टोम यज्ञों के नाम मिलते हैं (इ हि क्वा १६ पृ १८२)। तात्पर्य यह है कि ब्राह्मणधर्म के अभ्युदय के साथ वैदिक यज्ञों का अनुष्ठान भी होने लगा जो क्रम सातवीं सदी तक प्रचलित रहा।

भारत में धर्म को सदा प्रधान स्थान दिया गया है और जनता समाज में धार्मिक भावना से प्रेरित होकर ही कार्य करती रही है।

धार्मिक कार्य

भोज प्रतिहार के लेख में इस तरह का विचार व्यक्त किया गया है—

प्राणास्तृणादप्यतिलघु समा यदापा
धर्मः सदा परमहो परलोकयाने
(ए इ ११ पृ १८२)

अशोक ने धर्म भावना के कारण ही लेखों को उत्कीर्ण कराया था जिसे पढ़ कर लोग उसके धार्मिक विचार से परिचित हो सकें। चौथ शिला लेख में "धर्म चरणम भरी चोयो अहो धर्म घोसो" का उल्लेख है तथा इसी भावना से साम्राज्य विस्तार की इच्छा को अशोक ने परित्याग कर दिया। उसने चार

ते नैतम्वारू चामीकर कलसलस द्वयोम धाम व्यवायि
भ्राजिष्णु प्रांशुवशध्वज पटला दोलिता भोज वृदम्
दैत्यारातेस्तुषार क्षितिवर शिखर स्पर्द्धिवर्विष्णु रागा
दृष्टे यात्रा सु यत्र त्रिदिववसतयो विस्मयन्त्ते समेता ।

कलचुरी लेखो मे ऐसे उदाहरण है जिनसे प्रकट होता है कि शासको ने विभिन्न स्थानो पर शिव मन्दिर का निर्माण किया था (ए इ २६ पृ २६२-९)।

(अ) सुधाशु धवल तत्र धूर्ज्जटे धाम निर्मितम्
(ब) प्रकाशितु तादृशमेव कारित विभोरिद धाम हरे सनातनम् ।

इलौरा के कैलाशनाथ गुहा मन्दिर का निर्माण राष्ट्रकूट राजा तृतीय कृष्ण-राज ने किया था तथा लेख से उसका स्पष्टीकरण हो जाता है। वगाल की प्रशस्तियो मे पाल तथा सेन शासको द्वारा मन्दिर निर्माण का वर्णन अनेक स्थलो पर मिलता है। धर्मपाल ने नर-नारायण का मन्दिर तैयार कर चार ग्राम दान मे दिया था (ए इ ४ पृ २५०)। नारायणपाल ने अत्युचित पूर्ण उल्लेख किया है कि सहस्र शिव मन्दिरो का निर्माण उसके हाथो किया गया—महाराजाधिराज श्री नारायणपाल देवेन स्वय कारित सहस्रायतनस्य (भागलपुर लेख—इ ए १५) सेन नरेश विजयसेन ने प्रद्युम्नेश्वर का विशाल शिव मन्दिर तैयार कराया ।

स प्रद्युम्नेश्वरस्य व्यधित वसुमती वासव सौध मुच्चै
(ए इ १ पृ ३१०)

१२ वी सदी तक वगाल मे वैष्णव मन्दिर के निर्माण का पता चलता है (ए इ १३ पृ २५)। इस तरह अभिलेखो का अध्ययन यह प्रमाणित करता है कि पुण्य तथा यश की भावना और धार्मिक विचार से प्रेरित होकर राजा तथा जनता मन्दिरो का निर्माण करती रही।

सस्कार

नवीन मन्दिर के अतिरिक्त पुराने मन्दिरो का जीर्णोद्धार और सस्कार भी उसी तरह पुण्य का काम समझा जाता था। अभिलेखो मे "खन्ड स्फुट सस्कार" शब्दो का प्रयोग उस कार्य के लिए मिलता है। यदि मन्दिरो का इतिहास देखा जाय तो पता चलता है कि गुप्त युग से मन्दिर कला का प्रारम्भ तथा विकास हुआ इसलिए उसी युग से देवालय के सस्कार का भी प्रश्न सम्मुख आता है। गुणै-घर तथा दामोदरपुर ताम्रपत्रों मे "खन्ड स्फुट प्रति सस्कार करणाय" (इ हि क्वा ६ पृ ५३) तथा श्वेत वराह स्वामिनो देवकुले खन्ड स्फुट प्रति सस्कर करणाय (ए इ १५ पृ १४२) का उल्लेख है। वैग्राम (५ वी सदी) तथा सोह ताम्रपत्रो में भी एक समान (खन्ड स्फुट सस्कारार्थं) वर्णन आता है

ईसवी पूर्व लेखों में चैत्य तथा गुहा निर्माण का विस्तृत विवरण नहीं मिलता परन्तु "लय कारितं वाक्य से निर्माण कार्य का अनुमान लगाया जा सकता है। उदाहरणार्थ—अरहत पसादाय कलिंगानं समनान लेनं कारित (कलिंगदेश के जन साधुओं के लिए गुहा बनाया—मंचपुरी गुहा लेख) बौद्ध लेखों में अनक उल्लेख आते हैं। गुप्त कालीन अभिलेखों में मन्दिर निर्माण तथा संस्कार का विवरण उपलब्ध है—

भणी भूयर्म्भवनमतुलं कारितं दीप्त रश्मे

(प्रथम कुमार गुप्त की मंदसोर लेख—मूल पृ ११)

खण्ड फुट्ट प्रति संस्कार करणाय (गुप्तकाल लेख—मूल पृ ७८)।

गुप्त युग में पाचरात्र संहिता में क्रिया तथा चर्या पर अधिक बल दिया गया जिस कारण धार्मिक काम दो विभिन्न मार्गों पर प्रवाहित हुए। दान के व्यय का तीसरा मार्ग सत्र था जहां निःशुल्क भोजन वितरित किया जाता था।

(१) पहला मन्दिर का निर्माण या संस्कार

(२) देव पूजा तथा तत्सम्बन्धी दान।

(३) सत्र (प्रशस्तियों में उल्लिखित)

इस काल के अभिलेखों में सभी कार्यों का उल्लेख सविस्तार मिलता है। महदवाल नरेश के कमौली प्रशस्ति में आदि केशव के मन्दिर निर्माण का वर्णन है (ए इ ४ न ८)। गुर्जर प्रतिहार राजा भोज न विष्णु का मन्दिर तयार किया था तथा उससे पूर्व वाउक ने सिद्धश्वर महादेव का मन्दिर बनवाया था।

राजा तेन स्वदेविना यदा पुण्याभि वृद्धये
मण्डपुर-पुरं नाम्ना च्चापि नरस्तीयं

(ए इ १८ पृ ११)

सिद्धश्वरो महादेव कारित स्तुग मन्दिर

(वही १८ पृ ९९)

परमार वंशी राजा चामुण्डराज के अभिलेख शिव मन्दिर के निर्माण का उल्लेख करते हैं (ए इ १४ पृ २९८)। चन्देल प्रशस्तियों में भी इसी प्रकार का वर्णन मिलता है (नीलकण्ठनिवास)।

प्रासादा सम्यसैन निर्मितोऽन्तर्महम्यहरिम्

(ए इ १ पृ १२१ व १२८)

इसी अनेक प्रकार खजुराहो की प्रशस्ति से ज्ञात है। एक उदाहरण देखिए (ए इ १ पृ १२९)

ते नैतन्चारू चामीकर कलसलस द्वयोम धाम व्यधायि
भ्राजिष्णु प्राशुवशध्वज पटला दोलिता भोज वृदम्
दैत्यारातेस्तुषार क्षितिधर शिखर स्पर्द्धिर्वविष्णु रागा
दृष्टे यात्रा सू यत्र त्रिदिववसतयो विस्मयन्त्ते समेता ।

कलचुरी लेखो मे ऐसे उदाहरण है जिनसे प्रकट होता है कि शासको ने विभिन्न स्थानो पर शिव मन्दिर का निर्माण किया था (ए इ २६ पृ. २६२-९)।

(अ) सुधाशु धवल तत्र धूर्ज्जटे धाम निर्मितम्
(ब) प्रकाशितु तादृशमेव कारित विभोरिद धाम हरे सनातनम्।

इलौरा के कैलाशनाथ गुहा मन्दिर का निर्माण राष्ट्रकूट राजा तृतीय कृष्ण-राज ने किया था तथा लेख से उसका स्पष्टीकरण हो जाता है। बगाल की प्रशस्तियो मे पाल तथा सेन शासको द्वारा मन्दिर निर्माग का वर्णन अनेक स्थलो पर मिलता है। धर्मपाल ने नर-नारायण का मन्दिर तैयार कर चार ग्राम दान में दिया था (ए इ ४ पृ २५०)। नारायणपाल ने अत्युचित पूर्ण उल्लेख किया है कि सहस्र शिव मन्दिरो का निर्माण उसके हाथों किया गया—महाराजाधिराज श्री नारायणपाल देवेन स्वय कारित सहस्रायतनस्य (भागलपुर लेख–इ ए १५) सेन नरेश विजयसेन ने प्रद्युम्नेश्वर का विशाल शिव मन्दिर तैयार कराया।

स प्रद्युम्नेश्वरस्य व्यधित वसुमती वासव सौध मुच्चै
(ए इ १ पृ ३१०)

१२ वी सदी तक बगाल मे वैष्णव मन्दिर के निर्माण का पता चलता है (ए इ १३ पृ २५)। इस तरह अभिलेखो का अध्ययन यह प्रमाणित करता है कि पुण्य तथा यश की भावना और धार्मिक विचार से प्रेरित होकर राजा तथा जनता मन्दिरो का निर्माण करती रही।

नवीन मन्दिर के अतिरिक्त पुराने मन्दिरो का जीर्णोद्धार और सस्कार भी उसी तरह पुण्य का काम समझा जाता था। अभिलेखो मे "खन्ड स्फुट सस्कार" शब्दो का प्रयोग उस कार्य के लिए मिलता है। यदि मन्दिरो का इतिहास देखा जाय तो पता चलता है कि गुप्त युग से मन्दिर कला का प्रारम्भ तथा विकास हुआ इसलिए उसी युग से देवालय के सस्कार का भी प्रश्न सम्मुख आता है। गुणं-घर तथा दामोदरपुर ताम्रपत्रो में "खन्ड स्फुट प्रति सस्कार करणाय" (इ हि क्वा ६ पृ ५३) तथा श्वेत वराह स्वामिनो देवकुले खन्ड स्फुट प्रति सस्कार करणाय (ए इ १५ पृ १४२) का उल्लेख है। वैग्राम (५ वी सदी) तथा खोह ताम्रपत्रो मे भी एक समान (खन्ड स्फुट मस्कारार्थ) वर्णन आता है

सस्कार

(ए इ २१ पृ ८१ तथा का इ इ ३ पृ ११४)।

७वीं सदी के पश्चात् प्रशस्तियों में संस्कार का अधिक वर्णन है जिससे जनता के धार्मिक कृत्य का अनुमान लगाया जा सकता है। राजपुताना के लेख ऐसे विवरण से भरे पड़े हैं। साधारणतया दान में इस बात का उल्लेख किया जाता था कि पूजा व्यय के अतिरिक्त मन्दिर के संस्कार में धन द्रव्य व्यय किया जाय। इसलिए मन्दिर प्रबन्ध समिति को यह कार्य सुपुर्द कर दिया जाता था। गुप्त युग के अधिकतर लेखों में ऐसा वर्णन है। छठी सदी के पश्चात् लेख भी ऐसा विवरण उपस्थित करते हैं—एतेषां स्थान राणां भाटकं मत्मुत्पद्यते तै तत्सर्वं गोष्ठिभिः कुङ्कुम धूप पुष्प दीपक अथवा भवता पत्र खण्ड स्फुटित समरचनादिषु धर्मोपयोग्यं कर्तव्यम् (ए इ १९ पृ ९२) ११ वीं तथा १२ वीं सदी के लेखों में मन्दिरों के नष्ट किए जाने के कारण अधिक विवरण मिले हैं। सम्भवतः इस्लाम के उत्थान तथा विस्तार के कारण राजपुताना में मन्दिरों की हानि हुई और शासकों ने उनका संस्कार किया। परमार वंश की रानी न मन्दिर संस्कार के लिए पर्याप्त धन दान किया। (ए इ ९ पृ ११)।

देव पूजन

नए मन्दिरों के निर्माण के साथ-साथ देव पूजा के लिए दान देना आवश्यक था अतएव अभिलेखों में पूजा के प्रकार तथा विभिन्न सामग्रियों के नाम मिलते हैं। अभिलेख के आरम्भ में मन्त्रों के उल्लेख से शिव विष्णु या बुद्ध की उपासना का ज्ञान होता है। 'ओं नमो भगवते वासुदेवाय' 'ओं नमो शिवाय' अथवा "नमो बुद्धाय' आदि मन्त्र मिलते हैं। लेखों में अनुलेपन, पुष्प धूप दीप तथा नैवेद्य आदि सामग्रियों की आवश्यकता पूजा के लिए बतलाई गई है। देवता को त्रिकाल स्नान (ए इ २५ पृ ९ भा ३ पृ २११) कराया जाता तथा जल भी दही दूध (पंचामृत) का प्रयोग इस कार्य के लिए होता था (दधि क्षीर घृत स्नपन-धूप दीप पुष्पार्चन—ए इ ११ पृ ११६) तत्पश्चात् चन्दन कर्पूर, कुंकुम पुष्प धूपदीप नैवेद्य की आवश्यकता होती थी। चाहमान लेखों में इसे अंगराग तथा अनुलेपन शब्दों से व्यक्त किया गया है (का इ इ भा ४ पृ १५ भा ३ पृ २५४ ए इ भा २१ पृ ११७ इ ए १४ पृ १९)।

देवस्यानुलेपन समार्जनाङ्ग राग धूप दीप नैवेद्यार्थे
(ए इ १ पृ १७३)

अंगभोग भगवा कर्पुर कुंकुम (ए इ ११ पृ ५७)

चाहमान लेख में नैवेद्य के सम्बन्ध में विस्तृत वर्णन उपलब्ध होता है। नैवेद्य घी आटा मूंग तथा चावल पका कर तैयार किया जाता था।

गोधूम शे २ पक्के घृत क ८ नैवेद्य मूंग मा १ चावा २ (ए इ ११ पृ. ५७) आटा २ मेई घी ८ कलम मूंग १ मनि चावल २ पायली माप के बराबर नैवेद्य के लिए प्रयोग मे आता था। पाल तथा कलचुरी लेखो में नैवेद्य के साथ वलिचरु का उल्लेख आता है जो सम्भवत अगराग तथा अनुलेप से तात्पर्य रखता था (ए इ १ पृ १७३, भा ११ पृ १९३)। अन्य लेखो के अध्ययन से पता चलता है कि पुष्प गध धूप दीप नैवेद्य का प्रयोग जैन तथा बौद्ध धर्मावलम्बी भी प्रयोग करने लगे थे। चाहमान लेख मे निम्न वर्णन आता है—
नेमिनाथ देवस्य धूप दीप नैवेद्य पूजा (ए इ ११ पृ ३५)। पहाड़पुर लेख मे 'विहारे भगवनामर्हता गन्ध धूप सुमनो दीपाद्यथम् (ए इ २० पृ ६१) का उल्लेख है तथा वैन्यगुप्त के लेख मे "भगवतो बुद्धस्य सतत त्रिकाल गन्ध पुष्प दीप धूपादि प्रवर्तनाय" (इ हि. क्वा ६ पृ ५३) के वर्णन से पता चलता है कि बुद्ध भगवान के पूजा मे ब्राह्मण देवता को सदृश अगराग का प्रयोग होन लगा था। इससे स्पष्ट हो जाता है कि ब्राह्मण रीति का प्रभाव जैन तथा बौद्ध-मतो पर हो गया था तथा देवपूजन की विधि मे समता आ गई थी।

उत्तर गुप्त युग के लेखो मे एक विशेष सस्था का उल्लेख मिलता है जिसे सत्र कहते थे। इस स्थान पर विद्यार्थियो, साधुओ तथा निर्धन व्यक्तियो को विना मूल्य भोजन वितरण किया जाता था। दान पत्रो मे सत्र का उल्लेख विभिन्न रूप मे पाया जाता है। धर्मसत्र, सत्र तथा अन्नसत्र। उससे यह प्रकट होता है कि मन्दिर तथा विहार से सम्बद्ध ही सत्र का प्रबन्ध था। प्रासादाग्रभिरूप गुणवर भवन धर्मसत्र यथावत् – (प्रथमकुमार गुप्त का भिलसद लेख) ११ वी सदी के लेखों मे सत्र निर्माण का स्पष्ट वर्णन है—

सत्र की स्थापना

भक्तशाला क्षुधार्याना महादेवस्य सनिधौ – वल्लभदेव की प्रशस्ति (ए० इ० भा० ५ पृ० १८१, ए० इ० भा० १३ पृ० २८५)
९ वी सदी से १२ वी सदी तक के अभिलेखो मे सत्र, वलि, चरु शब्दो के साथ प्रयुक्त है जिसका तात्पर्य यह है कि दान की सम्पत्ति पूजा, अर्चा तथा भोजन वितरण के लिए व्यय की जाती थी (वलिचरु नैवेद्य सत्रोपकरण हेतो पृथग्दत्त – ए० इ० भा० ११ पृ० १९३) उसी स्थान पर वर्णन है कि सत्र के व्यय निमित्त दान का एक भाग निश्चित कर दिया गया था (एसा भागास्त्रय सत्रे खण्ड स्फुटित सस्कृतौ—कलचुरि प्रशस्ति)। विपुल श्री मित्र के नालदा लेख मे सत्र के लिए दान का वर्णन है —

(सत्रेषु पर्व्वणि समर्प्ययतिस्म—ए० इ० २१ पृ० ९९)

कलचुरि प्रशस्ति में सत्र में स्वादिष्ट भोजन वितरण की चर्चा की गई है (मिष्ठान्न पान सम्पन्ना सर्व सत्री—वही पृ १६५)। प्रतिहार लेख (ए इ १४ पृ १७७) तथा चाहमान प्रशस्ति में भी वैसा ही वर्णन है (सतत मुक्ति वृत्ति कल्पयितव्यान्न सत्रम्—ए इ ११ पृ २६) मध्ययुग में सत्र की स्थापना से भिक्षा वृत्ति को समाप्त करने का प्रयत्न किया गया था। आज भी वाराणसी में छत्र (सत्र का विकृत रूप) में सैकड़ों व्यक्तियों को भोजन बाँटा जाता है।

धार्मिक कार्य का वर्णन समाप्त करने से पूर्व मन्दिरों की प्रबंध समिति के बारे में दो शब्द कहना आवश्यक है। समिति के लिए लेखों में गोष्ठी तथा सदस्य के लिए 'गोष्ठिक' शब्द प्रयुक्त है (ए इ भा १ पृ २९२ भा १९ पृ ५७)

गोष्ठी या प्रबंध-समिति

गोष्ठिक समुदाय समन्वितेन
गौष्ठिक सारा कार्या (ए इ ११ पृ ५४)

चाहमान लेखों में सारा प्रबन्ध गोष्ठिक द्वारा करने का वर्णन आता है—

ऐते च भागा यथोद्दिष्ट स्थित्या गोष्ठिक कल्पयितव्या (ए इ १ पृ १८८)

उनके सदस्यता के सम्बन्ध में विशेष कहा नहीं जा सकता पर मथुरा लेख में उल्लिखित नामों से पता चलता है कि स्यात् ११ व्यक्तियों की समिति होती थी (ए इ ११ पृ २९२)। मेवार के लेख में गोष्ठी के दूग सदस्य का नाम आता है (इ ए ५८ पृ १६१)। इससे पता चलता है कि समाज में प्रतिष्ठित व्यक्तियों को गोष्ठी का सदस्य (गोष्ठिक) बनाया जाता था। आर्य संस्कृति के पालक लोगों को उसमे सम्मिलित किया जाता था। कालान्तर में मन्दिर का प्रबन्ध पुजारी के हाथों आ गया। वह मन्दिर के समस्त सम्पत्ति (भूमि तथा धन) का मालिक बन बैठा। मध्ययुग से वही मठाधीश कहलाया जो वर्तमान समय तक धार्मिक सम्पत्ति का स्वामी है। मठाधीश ही अकेले सारा प्रबन्ध करता था। प्रतिहार के राजा महेन्द्रपाल के लेख में एक सन्यासी के हाथों दुर्गा तथा सूर्य मन्दिरों के प्रबन्ध का विवरण पाया जाता है (ए इ १४ पृ १७७)। उसी तरह पाशुपत साधु भी प्रबन्धक हो गया था। परमार भोज के बिलिवदा ताम्रपत्र में भी ऐसी ही चर्चा मिलती है (भो का प्रा पूना पृ ११)। तात्पर्य यह है कि मन्दिर निर्माण के बाद देवपूजन का कार्य तथा दान प्रबन्ध-समिति या किसी व्यक्ति (पुजारी या प्रधान साधु) द्वारा सम्पन्न होने लगा।

अभिलेखों का वर्गीकरण करते समय यह कहा जा चुका है कि अधिक

संख्या दानपत्रो की है। यों तो दान की महिमा पुराणो मे वर्णित है परन्तु स्मृतियो मे इसका विशेप वर्णन है। वृहस्पति ने निम्न रूप मे लिखा है —

दान का उद्देश्य तथा प्रकार

यत्किंचित कुरुते पाप पुरुपो वृत्तिकर्षित
अपि गोचर्म मात्रेण भूमि दानेन शुध्यति।
स नर सर्वदा भूप यो ददाति वसुन्धराम्
भूमिदानस्य पुण्येन फल स्वर्ग परदर।

इस प्रकार विभिन्न धार्मिक कार्यों मे भूमिदान को अधिक महत्व दिया गया। राजा से प्रजा तक सभी ने पुन्य लाभ तथा स्वर्ग कामना से प्रेरित होकर भूमिदान को श्रेष्ठ समझा। अत्रि का कथन था "शूलपाणिस्तु भगवानभि-नन्दन्ति भूमिदम् (स हि० ३३७) पृथिवी दान करने वाले को भगवान भी अभिनन्दन करते हैं। इन सभी कारणो से दान की ओर सदा से जनता का ध्यान रहा है। अशोक ने धर्म शासन मे इस पर जोर दिया है।

ब्राह्मण स्रमणाना साधुदान (शि० ले० ११)
प्रव्रजितनि ग्रहथनिच पूजेति दनेन (शि० ले० १२)
वहुकयाने दयादाने (स्त० ले० २)

बौद्ध युग मे विहार दान की ओर शासक का विशेष ध्यान था तथा ग्राम-दान भिक्षुओ के भोजन आदि कार्यों के लिए दिया जाता था। अतएव 'गामे दतानि का उल्लेख नासिक लेख मे किया गया है। इसी प्रकार ब्राह्मण भोजन के निमित्त भी दान दिए जाते थे।

ब्राह्मणेभ्य पोडश ग्रामदेन अनुवर्ष ब्राह्मण शतसाहस्री भोजाययित्वा
(नासिक लेख ए० इ० ८ पृ० ७८)

सातवाहन लेख मे यज्ञ की दक्षिणा मे ग्रामदान देने का वर्णन है।

पूर्व मध्ययुग के लेखों मे ग्रामदान को तुलापुरुष दान की दक्षिणा स्वरूप माना गया है। गहणवाल तया सेन अभिलेखो मे अधिकतर इस प्रकार की दक्षिणा का विवरण मिलता है (महादान दक्षिणा –ए० इ० १४ पृ० १५८)। गोविन्द चन्द्रदेव (गहडवाल नरेश) ने ३२ ग्राम दक्षिणा के रूप मे दिया था (कनक तुलापुरुष दान होम कर्मण दक्षिणा–ए० इ० १४ पृ० १९७) सेन राजा वत्सालसेन तथा लक्ष्मणसेन ने महादान की दक्षिणा मे अग्रहार दिया था (ए० इ० १२ पृ० १०, भा० १५ पृ० २८४)। गुप्त लेखो मे देवकार्य के लिए दान का विवरण प्रशस्तियो मे मिलता है। स्कन्द गुप्त के विहार स्तम्भ लेख मे ग्राम दान का उल्ले है (अक्षय नीवि ग्राम क्षेत्र–का० इ० इ० ३ पृ० ४९)। दामो-

बरपुर के ताम्रपत्रों में भूमि विक्रय कर मन्दिर के लिए दान करना का वर्णन है। (ए इ मा १५) दक्षिण भारत के लेख इसी प्रकार का विवरण उपस्थित करते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि दान का उद्देश्य स्वर्ग की प्राप्ति थी जिसे प्रायः सभी लेखों के अन्त में अंकित कराया जाता था।

भूमिं यः प्रतिगृह्णाति यस्तुभूमिं प्रयच्छति
उभौ तौ पुण्यकर्माणौ नियतौ स्वर्ग गामिनौ।

भूमिदान करने की घोषणा शासक करता था और समस्त पदाधिकारियों को इसकी सूचना देता था। इसी कारण प्रशस्तियों में कर्मचारियों की लम्बी सूची मिलती है (ए इ मा ४ १४ १८)। दान देने वाली भूमि की सीमा निश्चित कर दी जाती तथा दानग्राही को सारा कानूनी अधिकार भी मिल जाता था। परमार, गहड़वाल तथा पाल संबंधी लेखों में इस प्रकार का वर्णन है (ए इ १८ पृ १२ मा १४ पृ मा १५ पृ २९९)। "सहिरण्य भाग भोगकर सोपरिकर सर्वाय समेत सनिधि निक्षेप" का उल्लेख यह स्पष्ट कर देता है कि राजा के सदृश 'कर' ग्रहण करना तथा दान भोगना का अधिकारी दानग्राही ही था (ए इ ९ पृ ११२ भा ७ पृ १६)। उड़ीसा के एक लेख में इसका अपवाद प्रकट होता है उस लेख में 'कर शासन' का उल्लेख किया गया है जिसका तात्पर्य था कि दानग्राही को भूमिकर (लगान) देना पड़ता था। वहाँ दस पल तौल में चांदी 'कर' के रूप में ली जाती थी (ए इ २९ पृ १६७)।

स्मृति ग्रन्थों में जिस रूप में दान का विधान उल्लिखित है, वैसा ही प्रशस्तियों में वर्णित है। स्थान के सम्बन्ध में तीर्थ ही सर्वोत्तम समझा जाता था और इसी कारण देवपाल के मुंगेर ताम्रपत्र में तीर्थपुदेस काल पात्र सम्पर्क किया (ए इ १८ पृ ३०५) का उल्लेख है। गहड़वाल लेख में काशी प्रयाग अयोध्या आदि तीर्थों के नाम मिलते हैं। श्रीमद् वाराणस्यां गंगायां स्नात्वा (ए इ ४ भा ८ पृ १५४) तथा स्वर्गद्वार नाम्नि तीर्थे स्नात्वा (ए इ १४ पृ १९१) का उल्लेख यह बतलाता है कि तीर्थों में स्नानकर देवपूजा समाप्त कर दान दिया जाता था।

काल के सम्बन्ध में मध्यकालीन अभिलेखों का उल्लेख विशेष महत्व रखता है। यों तो कुछ सामाजिक संस्कार नामकरण (इ ए १८ पृ ११) या श्राद्ध (इ ए १९ पृ १५१ भा ४ पृ १३ मा २ पृ ११) के नाम आते हैं जिस अवसर पर शासक दान देता था परन्तु अधिकतर पुण्य तिथियों

पर ही दान देना यश तथा पुण्य लाभ का मार्ग समझा जाता था। सूर्य ग्रहण (राहु ग्रस्ते दिवाकर--ए० इ० ४ पृ० १५८, भा० २१ पृ० २१९) का उल्लेख गहड्वाल, परमार तथा कलचुरी (सूर्योपरागे–ए० इ० ९ पृ० १६९) प्रशस्तियो मे तथा चन्द्रग्रहग (सोमग्रहग या सोमग्रहग पर्वणि) का नाम चन्देल लेखो मे आता है (इ० ए० १६ पृ० २०१) दूसरा अवसर सक्रान्ति का था जिसे लेखो मे अयन (उत्तरायन, दक्षिणायन) शब्द से व्यक्त किया गया है (ए० इ० ७ पृ० १५८, इ० ए० १८ पृ० ११)। कलचुरी प्रशस्तियो मे चन्द्रग्रहण के अवसर पर दान का विशेप वर्णन मिलता है (का० इ० इ० ४ पृ० २३८)। सक्रान्तियो मे कर्क, मकर, कन्या, मीन, वैष्णव सक्रान्ति के नाम अधिक मिलते हैं (इ० ए० १८ पृ० ३३, ए० इ० ४ पृ० १३१, भा० १४ पृ० १८६, भा० २९ पृ० ७)। छोटे पर्वों पर भी दान देने का उल्लेख है। उस प्रसग मे अक्षय तृतीया, माघी पूर्णिमा (ए० इ० ४ पृ० १०७, भा० ८ पृ० १५२) श्रावण पूर्णिमा (ए० इ० ४ पृ० ११०), कार्तिक पूर्णिमा (ए० इ० २६ पृ० ७२), रामनवमी (ए० इ० १४ पृ० १८८) तथा जन्माष्टमी (ए० इ० ४ पृ० ११८) के नाम भी उल्लेखनीय हैं। देवोत्थान अथवा प्रबोधिनी एकादशी (कार्तिक शुल्क ११) का नाम भी लेख मे उपलब्ध है (देवोण्ठनी एकादश्या –इ० ए० ४३ पृ० १९३ तथा 'एकादसि देव उपस्थापनी पर्व्वणि–ए० इ० १३ पृ० २११)। राजपुताने के लेखो मे अधिक श्रावण (आर्यमास) भी उल्लिखित है (इ० ए० १८ पृ० २१२, आ० रि० ग्वालियर १९३०-३१ पृ० ११)। इन तिथियो को पुण्य-काल समझ कर दान दिए जाते थे।

दान के पात्र के सम्बन्ध मे भी दो शब्द कहना आवश्यक प्रतीत होता है। ताम्रपत्रो का अध्ययन यह प्रकट करता है कि अत्यन्त प्राचीन समय से ही किसी सस्था को दान देने का अधिक महत्व था। मौर्य युग तथा उसके बाद भी सघ को बिहार या गुहा का दान दिया जाता था। सातवाहन लेख तथा गुप्त युग के अभिलेख सस्था के दान का उल्लेख करते हैं। ६०० ई० के बाद दान के दो पात्र दिखलाई पडते हैं (१) विद्वान तथा (२) सस्थाए। पहला विद्वान व्यक्ति जो ऊची शिक्षा पा रहा हो अथवा शिक्षा समाप्त कर अध्यापन कार्य करता हो। इस प्रसग मे अधिकतर ब्राह्मणो के नाम वैदिक शाखा के साथ या वेदाग के अध्यापक के रूप मे मिलता है। कलहा ताम्रपत्र (गोरखपुर उत्तर प्रदेश) मे ऐसे ही ब्राह्मण दानग्राही के नाम आते हैं जो छान्दोग्य वाजसनेय, माध्यन्दिन शाखा के विद्वान थे। मध्यप्रदेश के कलचुरी प्रशस्तियो मे आश्वलायन, शाखायन, कठ शाखा के अध्ययन करने वाले ब्राह्मणो का उल्लेख है

बरपुर के ताम्रपत्रों में भूमि विक्रय कर मन्दिर के लिए दान करने का वर्णन है। (ए इ भा १५) दक्षिण भारत के लेख इसी प्रकार का विवरण उपस्थित करते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि दान का उद्देश्य स्वर्ग की प्राप्ति थी जिसे प्राय सभी लेखों के अन्त में अंकित कराया जाता था।

भूमि य प्रतिगृह्णाति यस्तभूमि प्रयच्छति
उभौ तौ पुण्यकर्माणौ नियतौ स्वर्ग गामिनौ।

भूमिदान करने की घोषणा शासक करता था और समस्त पदाधिकारियों को इसकी सूचना देता था। इसी कारण प्रशस्तियों में कर्मचारियों की लम्बी सूची मिलती है (ए इ भा ४ १४ १८)। दान देने वाली भूमि की सीमा निश्चित कर दी जाती तथा दानग्राही को सारा कानूनी अधिकार भी मिल जाता था। परमार, गहड़वाल तथा पाल वंशी लेखों में इस प्रकार का वर्णन है (ए इ १८पृ १२ भा१४पृ भा १५पृ २९९)।

'सहिरण्य भाग भोगकर सोपरिकर सर्वादाय समेत सनिधि निक्षेप' का उल्लेख यह स्पष्ट कर देता है कि राजा के सदृश कर ग्रहण करने तथा दान जीवन का अधिकारी दानग्राही ही था (ए इ ९ पृ ११२ भा ७ पृ १ ६)। उड़ीसा के एक लेख में इसका अपवाद प्रकट होता है उस लेख में 'कर शासन' का उल्लेख किया गया है जिसका तात्पर्य था कि दानग्राही को भूमिकर (लगान) देना पड़ता था। वहाँ दस पल तौल में चांदी 'कर' के रूप में ली जाती थी (ए इ २९ पृ १६७)।

स्मृति ग्रन्थों में जिस रूप में दान का विधान उल्लिखित है, वैसा ही प्रशस्तियों में वर्णित है। स्थान के सम्बन्ध में तीर्थ ही सर्वोत्तम समझा जाता था और इसी कारण देवपाल के मुंगेर ताम्रपत्र में तीर्थपु देश काल पात्र सम्पत्ति किया (ए इ १८ पृ ३ ५) का उल्लेख है। गहड़वाल लेख में काशी प्रयाग अयोध्या आदि तीर्थों के नाम मिलते हैं। गौतम वाराणस्या गंगाया स्नात्वा (ए इ ४ भा ८पृ १५४) तथा स्वर्गद्वार नाम्नि तीर्थे स्नात्वा (ए इ १४ पृ १९१) का उल्लेख यह बतलाता है कि तीर्थों में स्नानकर देवपूजा समाप्त कर दान दिया जाता था।

काल के सम्बन्ध में मध्यकालीन अभिलेखों का उल्लेख विशेष महत्त्व रखता है। यों तो कुछ सामाजिक संस्कार नामकरण (इ ए १८ पृ ११) या श्राद्ध (इ ए १९ पृ ३५१ भा ४पृ १ १ भा २पृ ११) के नाम आदि हैं जिस अवसर पर शासक दान देता था परन्तु अधिकतर पुण्य तिथियों

- नालदा हमर्तीव सव नगरी शुभाभ्र गौर स्फुर
च्चैत्याशु प्रकरोस्मदागमकला विख्यात विद्वज्जना ।
(ए० इ० २० पृ० ४३)

इसकी ख्याति समुद्रपार पूर्वी द्वीप समूह मे पहुच चुकी थी तथा जावा के राजा वालपुत्रदेव ने नालदा मे विहार वनवाया (नाना सद्‌गुण भिक्षु सघ वसति तस्या विहार कृत) और पाल नरेश देवपाल ने श्रीनगर मुक्ति मे स्थित पान ग्राम दान मे दिया था (ए० इ० १७ पृ० ३२२)। नालदा शिलालेख मे वर्णन मिलता है कि दान की आय मे भिक्षुओ के भोजन, वस्त्र, आसन तथा औषधि का भी प्रवन्ध किया गया था (ए० इ० २० पृ० ६४)। इस तरह सस्था को दान देकर शिक्षा की वृद्धि की जाती थी। इसी के सदृश दक्षिण भारत के चोलवशी लेख मे वर्णन है कि जावा के शासक विजयोत्तुग वर्मन ने नाग-पट्टन मे एक विहार वनवाया जिसके प्रवन्ध-निमित्त चोल नरेश राजराजा राजकेसरी वर्मन (९८५–१०१३ ई०) ने ग्राम दान दिया था।

पाचवी सदी के पश्चात् लेखो के अत मे कई श्लोक उल्लिखित मिलते है जिन्हें "धर्मश्लोका" कहते है। गुप्त युग से पूर्व अभिलेखो मे अतिम स्थान पर किसी प्रकार के पद्य (श्लोक) का सदा अभाव दिखलाई पडता है। इनके लिखने का उद्देश्य यह था कि दान करने वालो की प्रशसा हो। उन्हें पुण्य तथा स्वर्ग लाभ की बाते सुनाई जायँ। दान-भूमि को किसी भी शासक का उत्तराधिकारी वापस न ले सके, अत भय उत्पादक श्लोक भी लिखे जाते थे। साराश यह है कि अतिम पद्यो मे पुण्य तथा श्राप की भावनापूर्ण श्लोक अकित हैं। लेखो मे जो श्लोक हैं उनके सम्बन्ध मे निम्न प्रकार का उल्लेख मिलता है—

धर्म श्लोक

(१) भूमिदान सम्वद्धा श्लोका भवन्ति (ए० इ० १५ पृ० १४२)
(२) भवन्ति चात्र धर्मशास्त्राश्लोकानि अथवा
(३) भूमिदानापहरण प्रतिपाल गुण दोष व्यञ्जका आर्ष श्लोका (ए० इ० २२ पृ० १५९)

पाचवी सदी के गुप्त लेखो मे तो इन श्लोको की सख्या तीन ही है परन्तु समयान्तर मे सोलह की सख्या अभिलेखो मे पाई गई है (कलचुरी राजा यश कर्णदेव का ताम्रपत्र–ए० इ० १२ पृ० २०५ तथा चाहमान प्रशस्ति (ए० इ० भा० ११ पृ० ३१२)।

इन श्लोको मे कोई मौलिकता नही है परन्तु ये पद्य स्मृति ग्रथो मे लिए गए हैं। अधिकतर लेखो मे व्यास का लिखा "व्यासेन उक्तम्" "उक्ते च

(ए इ भा ७ पृ ८७ भा ९ पृ ११६) मालवा के लेख में आश्वलायन तथा कौथुम शाखाओं वाले ब्राह्मणों का वर्णन मिलता है। राजा भोज के बीलगपुर ताम्रपत्र तथा गहड़वाल नरेश गोविन्द चन्द्र की प्रशस्ति में उन सभी शाखा के पढ़ने वाले विद्वान ब्राह्मणों के नाम मिलते हैं जिन्हें शासक ने भूमिदान किया था (ए इ ५ पृ ११२ भा० ८ पृ १५४)। जयचन्द्र के लेख में यजुर्वेद शाखिने ब्राह्मण का विवरण है (ए इ० ४ पृ १२१)। इसी प्रकार बंगाल के पाल राजा देवपाल के लेख में ऋग्वेद शाखिने उल्लिखित है और वह दानग्राही ब्राह्मण आश्वलायन शाखा का विद्यार्थी कहा गया है (इ ए २१ पृ २५५)। विजयपाल के दानग्राही अर्केश वर्णन समवेदिन कहा गया है (ए इ १५ पृ २९५)। सेन शासकों के समय में चारों वेदों के विभिन्न शाखाओं के अध्ययन करने वाले ब्राह्मण को दान देने की परिपाटी थी। बैरकपुर लेख तथा नईहटी ताम्रपत्र में ऋग्वेद की आश्वलायन शाखा साम की कौथुम शाखा यजुर्वेद की काण्व शाखा तथा पिप्पलाद शाखा (अथर्ववेद) के नाम उल्लिखित हैं। इन शाखाध्यायिने ब्राह्मणों को दान दिए गए थे। (ए इ १५ पृ २८४ भा १४ पृ १५६ भा २२ पृ ६३ हि क्वा १ पृ ८९ ज ए सो बं १९ पृ ६१ तथा १९ ९ पृ ४६७) इस तरह पता चलता है कि बल्लालसेन तथा लक्ष्मणसेन ने विद्वान ब्राह्मणों को ही दान दिया था। ऐसा वर्णन भारतवर्ष के प्रत्येक प्रदेश की प्रशस्तियों में मिलता है। शाखाध्यायिने मिलकर दान देने वाले ने इस बात पर जोर दिया है कि ऊँची श्रेणी के विद्वान ही दान के वास्तविक पात्र थे (ए इ ११ पृ १९२)। इसका तात्पर्य यह नहीं था कि वेदाध्ययन करने वाले ही दान के पात्र थे परन्तु वेदांग (ए इ २ पृ ११६) या षड्दर्शन (ए इ ११ पृ १११) के पढ़ने वाले भी दानग्राही होते थे। पाल वंशी लेख में तो रानी को महाभारत सुनाने वाले विद्वान को दान देने की चर्चा है (ज ए सो ब १९ पृ १७)।

विद्वान व्यक्तियों के अतिरिक्त मध्य युग में बड़ी संस्थाओं को भी दान देने की प्रथा थी। पाल नरेशों ने विक्रमशीला तथा नालंदा महाविहारों को सब प्रकार की सहायता की थी। गहड़वाल राजा गोविन्दचन्द्र की रानी कुमारदेवी का लेख (ए इ ९ पृ ३२१) तथा देवपाल का ताम्रपत्र (ए इ १७ पृ ११) इसके प्रमाण हैं कि बौद्ध संस्थाओं को आर्थिक सहायता दी गई। नालंदा महाविहार की तो अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति थी। यशोवर्मदेव के शिलालेख में वहाँ के विद्वानों की प्रशंसा निम्न पंक्तियों में मिलती है—

३१ पृ० १२३)। इस तरह विशेष कारणवश अग्रहार को दानग्राही परिवार से पृथक किया जा सकता था अन्यथा दान की भूमि अक्षयनीवि नीति से अचल समझी जाती थी। दानग्राही ही उसका स्वामी हो जाता था।

उडीसा के एक लेख मे "कर-शासन" शब्द का विशेष ढग से प्रयोग किया गया है। इस दान पत्र मे अग्रहार भूमि पर भी 'कर' लगाया गया था और दानग्राही को प्रति वर्ष चादी दस पल 'कर' के रूप मे देना पडता था (ए० इ० २९ पृ० १६७)। इसका अर्थ यह नही हो सकता कि दान की भूमि पर राजा का अधिकार था किन्तु अन्य दान पत्रो की तरह भूमि का स्वामित्व ब्राह्मण को देने पर भी शासक 'वार्षिक कर' वसूल किया करता था। ऐसे कुछ ही उदाहरण सम्मुख आए हैं जहा अग्रहार को बधक रखने तथा दान भूमि पर 'कर' लगाने का वर्णन मिलता है।

पूर्व मध्ययुग की प्रशस्तियो मे भूमिदान के अतिरिक्त महादान का भी वर्णन आता है जिसका नाम (सोलह नाम) पुराणो मे मिलता है। मत्स्य (अध्याय २७४-२८९) अग्नि (अध्याय २१०) तथा लिंग (अध्याय २८) पुराणो मे निम्नलिखित सोलह नाम आते हैं-तुलापुरुष, हिरण्यगर्भ, ब्रह्माण्ड, कल्पवृक्ष, गोसहस्र, कामधेनु हिरण्याश्व, हिरण्याश्वरथ, हेमहस्तिरथ, पचलाङ्गल, धरादान, विश्वचक्र, कल्पलता, सप्तसागर, रत्नधेनु तथा महाभूतघट। परन्तु मध्ययुगी लेखो मे केवल चार महादान के नाम मिलते हैं—तुलापुरुष, गोसहस्र, हिरण्याश्व हिरण्याश्वरथ। दूसरा नाम गुप्त सम्राट् समुद्रगुप्त के प्रयाग स्तम्भ लेख मे मिलता —गो शतसहस्र प्रदायिन। नागार्जुनी लेख मे वीर पुरुषदत्त द्वारा इस महादान (हिरणकोटि गो सत सहस्र) को सम्पन्न करने का वर्णन मिलता है (ए० इ० २० पृ० १६ न० २)। छठी सदी मे परिव्राजक राजा सक्षोभ ने भी गोसहस्र नामक महादान सम्पन्न किया था (का० इ० इ० ३ पृ० ११४)। गहडवाल लेख भी यही बतलाते हैं। गहडवाल तथा सेन अभिलेखो मे इन चारो महादान के सम्बन्ध मे वर्णन है। तुलापुरुष मे दानकर्त्ता को सोना या कीमती प्रस्तरो से तोला जाता और सारा धन ब्राह्मणो मे विभक्त कर दिया जाता था। गोविन्दचन्द्र के लेख मे—हेमात्म तुल्यमनिश ददता द्विजेभ्यो मिलता है (ए० इ० ४ पृ० ११८, भा० १३ पृ० २१८, भा० २ पृ० ३६२, इ० ए० १८ पृ० ११)। किन्तु अन्य प्रशस्तियो मे तुलापुरुष महादान या कनक तुलापुरुष (इ० ए० १८ पृ० १३२, ए० इ० १५ पृ० २७८) का उल्लेख आता है। कलचुरी लेखो मे भी तुलापुरुष उसी अर्थ (महादान) मे प्रयुक्त

षोडश महादान

हस्तोदकेन स्वस्ति वाचन पूर्वम् सकल्पित
भूमे सम्बन्धे शासनी कृता प्रदता

(ए इ ४ पृ १५८)

राजपुताने के लेखो मे कुशलता के अतिरिक्त जल के साथ तिल अक्षत रखने उल्लेख है (तिलाक्षत कुशबु प्रणयिन दक्षिण कर कृत्वा—ए इ २१ पृ ३१०)। साधारणतया तिल का प्रयोग पितृ तर्पण के लिए किया जाता है (तिलोदकेन सतर्प्य—इ ए १६)। परन्तु चाहमान प्रशस्ति मे तिलाक्षत के उल्लेख से यह मानना पडता है कि सम्भवत ग्रहण के समय (दान का काल) तिल तथा अक्षत दोनो का प्रयोग किया जाता हो। प्रशस्तियो मे 'कुशलता पूत' शब्दो का तात्पर्य स्मृति ग्रथो के आधार पर समझ मे आता है। शखलिखित (१३।१३) मे तिल तथा कुश को पूजा का आवश्यक अग माना है। तिल से पितृ प्रसन्न होते हैं। कुश मे त्रिदेव (ब्रह्मा, विष्णु, महेश) का निवास माना गया है (गरुण पुराण प्रेतखण्ड २।२१)। इसीलिए जप होम, तर्पण तथा दान मे कुश की अगूठी (पवित्र) बनाकर पहनते हैं (कुश पवित्र पाणि जन कुर्यात्—शख-स्मृति १२।४)। देवता पूजन का कार्य दानकर्ता के भावना पर निर्भर था। वह वैष्णव होकर वासुदेव का या शैव होने पर शिव का अथवा सूर्य (भास्कर-पूजा) का पूजन करता था। इस प्रकार प्रशस्तियो मे जो विधि विधान है वह धर्मशास्त्र के आधार पर उल्लिखित है। स्थान-स्थान पर तो स्मृतियो से विस्तृत विवरण प्रशस्तियो मे ही पाया जाता है।

हिन्दु समाज मे इस बात की विशेषता है कि जनता श्रुति तथा स्मृति के आधार पर या उसके विधान अनुसार सदा धार्मिक उत्सव किया करती है। गृह कार्यों मे पच महायज्ञ का नाम आता है।

धार्मिक उत्सव व्रत तथा तीर्थ

(१) देव यज्ञ (२) पितृ यज्ञ (श्राद्ध) (३) भूत यज्ञ (वलि) (४) ब्रह्म यज्ञ (स्वाध्याय) (५) मनुष्य यज्ञ (अतिथि सत्कार)। गृहस्थ को इनसे पुण्य लाभ होता है।

छठी सदी के एक लेख से प्रकट होता है पूर्वी भारत मे पचमहायज्ञ नित्य सम्पन्न किया जाता था (ए इ २३ पृ १५९)। गुर्जर लेख मे अन्य रूप मे इसका वर्णन आता है—वलिचरु वैश्व देवग्नि होत्रतिथि पच (विम्हा) यज्ञादि—(ए इ २३ पृ १५२)

व्रत के सम्बन्ध मे प्रशस्तियो मे अनेक स्थान पर उल्लेख है और उस पुण्य पर्व के अवसर दान दिए जाते थे। व्रत मे स्त्री-पुरुष पवित्र जीवन तथा सात्विक विचार से समाज मे देव पूजन करते थे। अधिकतर लेखो मे देवोत्थान

किया गया है (ए इ २ पृ ४--महादानस्तत्तुलापुरुषादिभिः) । अतएव लेखों के आधार पर कहा जा सकता है कि महादान की परिपाटी उत्तर प्रदेश मध्यप्रदेश आसाम तथा बंगाल में प्रचलित थी । सब प्रशस्तियों में राजा का सोने से तौलन का वर्णन मिलता है । विलासदेवी ने तुलापुरुष नामक महादान किया (ए इ १४ पृ १५७) और कमलमल ने उस 'कनकतुलापुरुष महादान के नाम से सम्बोधित किया है (ए इ १५ पृ २८) । इस महादान का भी विशेष महत्व था और इसे भी तीर्थ तथा पर्व के समय (संक्रान्ति आदि) ब्राह्मणों को दिया जाता था ।

हेमाश्व तथा हेमाश्वरथ का नाम सेन प्रशस्तियों में आता है । वहां वर्णन है कि बल्लालसेन ने सोने का घोड़ा बनाकर ग्रहण के समय ब्राह्मण को दान किया था (सूर्योपराग प्रदत्त हेमाश्व महादान--ए इ १४ पृ १६१) तथा लक्ष्मणसेन ने सोने के घोड़े वाला रथ दान किया था (ए इ भा १२ पृ १) । तुलापुरुष के अतिरिक्त सोने का घोड़ा दान करने का क्या उद्देश था यह कहना कठिन है । अभिलेखों में केवल दान का विवरण पाया जाता है । उस दान के वास्तविक उद्देश्य की चर्चा लेखों में नहीं मिलती ।

दान विधि

दानपत्रों मे दान करने की शास्त्रीय विधि का विस्तृत विवरण है। दान का उद्देश्य तो स्वर्ग प्राप्ति की कामना थी ही उसके विधान में शास्त्रकारों ने निश्चित क्रम बतलाया है जिसे दान कर्त्ता को मानना पड़ता था । लेखों मे स्मृतियों से भी अधिक विशद वर्णन मिलता है । गहड़वाल लेखों में गंगा में स्नान कर तर्पण करने का वर्णन है । तत्पश्चात् भगवान की आराधना कर दान कर्त्ता हाथ में जल कुश लेकर स्वस्ति वाचन करता था । निम्नलिखित उद्धरण इस प्रश्न को स्पष्ट कर देते हैं ।

(१) विधिवत् स्नात्वा देव मनुज मुनि भूत पितृ
गणान्तर्पयित्वा वासुदेवस्य पूजा विधाय
कुशलता पूत करतलोदक पूर्वम् (इ ए १५ पृ ८)

(२) पुण्य तीर्थोदकेन विधिवत् स्नात्वा देव मनुज
पितृन् संतर्प्य भास्कर पूजा पुर सर —
भवानी पतिमभ्यर्च्य हुतभुज हुत्वा राहुग्रस्ते
दिवाकरे नाना गोत्रेभ्यो नाना प्रवरेभ्यो नाना
नामेभ्यो ब्राह्मणेभ्य कुशलता पूतेन

हस्तोदकेन स्वस्ति वाचन पूर्वम् सकल्पित
भूमे सम्बन्धे शासनी कृता प्रदता

(ए इ ४ पृ १५८)

राजपुताने के लेखो मे कुशलता के अतिरिक्त जल के साथ तिल अक्षत रखने उल्लेख है (तिलाक्षत कुशवु प्रणयिन दक्षिण कर कृत्वा—ए इ २१ पृ ३१०)। साधारणतया तिल का प्रयोग पितृ तर्पण के लिए किया जाता है (तिलोदकेन सतर्प्य—इ ए १६)। परन्तु चाहमान प्रशस्ति मे तिलाक्षत के उल्लेख से यह मानना पड़ता है कि सम्भवत ग्रहण के समय (दान का काल) तिल तथा अक्षत दोनो का प्रयोग किया जाता हो। प्रशस्तियो मे 'कुशलता पूत' शब्दो का तात्पर्य स्मृति ग्रथो के आधार पर समझ मे आता है। शखलिखित (१३।१३) मे तिल तथा कुश को पूजा का आवश्यक अग माना है। तिल से पितृ प्रसन्न होते है। कुश मे त्रिदेव (ब्रह्मा, विष्णु, महेश) का निवास माना गया है (गरुण पुराण प्रेतखण्ड २।२१)। इसीलिए जप होम, तर्पण तथा दान मे कुश की अगूठी (पवित्र) बनाकर पहनते हैं (कुश पवित्र पाणि जप कुर्यात्—शख-स्मृति १२।४)। देवता-पूजन का कार्य दानकर्ता के भावना पर निर्भर था। वह वैष्णव होकर वासुदेव का या शैव होने पर शिव का अथवा सूर्य (भास्कर-पूजा) का पूजन करता था। इस प्रकार प्रशस्तियो मे जो विधि विधान है वह धर्मशास्त्र के आधार पर उल्लिखित है। स्थान-स्थान पर तो स्मृतियो से विस्तृत विवरण प्रशस्तियो मे ही पाया जाता है।

हिन्दु समाज मे इस बात की विशेषता है कि जनता श्रुति तथा स्मृति के आधार पर या उसके विधान अनुसार सदा धार्मिक उत्सव किया करती है। गृह कार्यो मे पच महायज्ञ का नाम आता है।

धार्मिक उत्सव व्रत तथा तीर्थ

(१) देव यज्ञ (२) पितृ यज्ञ (श्राद्ध) (३) भूत यज्ञ (बलि) (४) ब्रह्म यज्ञ (स्वाध्याय) (५) मनुष्य यज्ञ (अतिथि सत्कार)। गृहस्थ को इनसे पुण्य लाभ होता है। छठी सदी के एक लेख से प्रकट होता है पूर्वी भारत मे पचमहायज्ञ नित्य सम्पन्न किया जाता था (ए इ २३ पृ १५९)। गुर्जर लेख मे अन्य रूप मे इसका वर्णन आता है—बलिचरु वैश्व देवग्नि होत्रतिथि पच (विम्हा) यज्ञादि—(ए इ २३ पृ १५२)

व्रत के सम्बन्ध मे प्रशस्तियो मे अनेक स्थान पर उल्लेख है और उस पुण्य पर्व के अवसर दान दिए जाते थे। व्रत मे स्त्री-पुरुष पवित्र जीवन तथा सात्विक विचार से समाज मे देव पूजन करते थे। अधिकतर लेखो मे देवोत्थान

एकादशी (कार्तिक शुक्ल ११) तथा हरिशयिनी (आषाढ़ शुक्ल ११) के नाम मिलते हैं (ए इ ११ पृ २११ भा ४—कमौली लेख)। रामनवमी (ए इ १४ पृ १८८) तथा शिवरात्री (ए इ भा ११ पृ ३९) का भी उल्लेख आता है जिस समय सर्वसाधारण उपवास रखते थे तथा भगवान राम तथा शिव का पूजन करते थे। चाहमान नरेश न शिवरात्री के उपलक्ष्य में आज्ञा जारी किया था कि कोई व्यक्ति जीवहत्या नहीं कर सकता था (वही)। रथयात्रा का उत्सव भी प्रधान स्थान रखता था। इस उत्सव के व्यय निमित्त शासक 'कर' लगाता था जिसका विवरण लेखों में है। चाहमान लेख में लोगों को आदेश दिया गया था कि देवयात्रा या रथयात्रा के समय उत्सव मनाने के लिए उत्तम वस्त्राभूषण पहन कर लोग आवें तथा संगीत में भाग लें। मम्वदिने मत्रदेवे यात्रा भवति तत्रापर समस्तदेवानां सत्क प्रमादा कुले शाकम्भे सुवस्त्र वाद्य नृत्य गानादि विधिना यात्रा कर्तव्या (ए इ ११ पृ २८) मेवार के लेख में इस 'पर्व यात्रा' कहा गया है तथा चार ग्राम व्यय के लिए दिए गए थे (ए इ २ पृ १२४)। देवताओं की यात्रा का अन्य धर्मों पर भी प्रभाव पड़ा और जैनियों ने शान्तिनाथ (तीर्थंकर) की यात्रा आरम्भ की।

श्री शांतिनाथ देवयात्रा निमित्तं — यथावार्त

(ए इ ११ पृ ५)

तीर्थ यात्रा का महत्व भारतीय समाज में बहुत प्राचीन काल से माना जाता है। अशोक न उसे लेखों में 'धर्मयात्रा' कहा है। उसने बोध गया (सम्बोधि) तथा लुम्बिनी (बुद्ध का जन्मस्थान) की यात्रा की थी (शिलालेख ८, रूम्मनदेई स्तम्भलेख) उस यात्रा के कारण अशोक ने भूमिकर आठवां भाग (छठ से घटाकर) कर दिया था। तीर्थ स्थानों पर दान का महत्व समझ कर ही ऋषभदत्त न काशी नासिक प्रभास (काठियावाड़) तथा पुष्कर (अजमेर के समीप) तीर्थों में नाना प्रकार का दान दिया था। काशी में सुवर्णदान प्रभास तीर्थ में ब्राह्मण कन्या के विवाह निमित्त धन दान (प्रभास पुण्य तीर्थे ब्राह्मण्य अष्टभार्या प्रदेन) नासिक (गोवर्धन) में आरामगृह का दान किया था (ए ८ पृ ७८)।

मध्ययुग के दानपत्रों में विभिन्न तीर्थों का भी उल्लेख मिलता है जहां शासक जाकर दान दिया करते थे। कलचुरी लेख में प्रभास गोकर्ण तथा गया तीर्थों के नाम मिलते हैं (ए इ २५ पृ ११७)। मध्यदेश में गंगा या सरयू तीर पर तीर्थ स्थित थे अतएव गंगा के किनारे निवास कर शासक मोक्ष प्राप्ति की कामना करते थे। चेदि राजा गांगयदेव के प्रयाग तीर्थ पर गंगा जल का

उल्लेख मिलता है (ए इ २पृ २, पृ ४)। अपसद के लेख मे भी आदित्य-सेन के पूर्वज द्वारा प्रयाग मे प्राण त्यागने का विवरण पाया जाता है (का इ इ ३ न ४२)। गहड़वाल राजाओ ने काशी तीर्थ मे अधिक दान दिया था। गोविन्दचन्द्र के ताम्रपत्र आदि केशव मन्दिर के समीप कमौली मे (काशी के समीप) मिले हैं जिससे प्रकट होता है कि राजा काशी तीर्थ मे आकर दान देता रहा (श्रीमद् वाराणस्या गगाया स्नात्वा—ए इ भा ८पृ १५४)। जयचन्द्र का ध्यान काशी तीर्थ की ओर इतना अधिक था कि मुसलमान लेखको ने उसे काशी का राजा कहा है (इलियट-भारत का इतिहास भा २ पृ २२३, २५०)। उसके पूर्वज चन्द्रदेव को काशी कुशिक, कन्नौज, अयोध्या तथा इन्द्रप्रस्थ तीर्थो का रक्षक कहा गया है (ए इ २६ पृ ७२)।

तीर्थानि काशी कुशिकोत्तर कोसल
इन्द्रप्रस्या यकानि परिपाल यन्ताधिगम्य
(ए इ ११ पृ २३)

अयोध्या नामक तीर्थ, काशी तथा प्रयाग की श्रेणी मे माना गया है और उसे स्वर्ग का द्वार कहा गया है (ए इ १४ पृ १९३, इ ए १५ पृ ६)। राजपुताने मे पुष्कर तीर्थ अधिक प्रसिद्ध था जिसका वर्णन ऋषभदत्त ने नासिक लेख में भी किया है (प्रभासे पुन्य तीर्थे—ए इ ८ पृ ७८)। मध्ययुग मे सिंह राज ने पुष्कर तीर्थ मे चार ग्राम दान मे दिया और अन्य प्रशस्तियो मे भी इसका नाम उल्लिखित है (ग्राम चतुर —श्री पुष्कर तीर्थे स्नात्वा—ए इ २ पृ १२९, भा ९ पृ ३०४, इ ए भा १८ पृ ११)। सब से विचित्र घटना पाल वंश के राजा धर्मपाल के समय की उल्लिखित है। वह परम सौगत था और बौद्ध धर्मावलम्बी होकर भी उसने हिन्दू तीर्थों की यात्रा की। बगाल जो वज्रयान तथा तत्रयान का केन्द्र था वहा पर तीर्थ यात्रा की भावना विचित्र घटना कही जा सकती है। खालीमपुर नालदा तथा मु गेर ताम्रपत्रो मे निम्न पक्तियो मे तीर्थ का विवरण मिलता है—

केदारे विधि नोप युक्त पयसा गगासमेताम्बुधौ
गोकर्णादिषु चाप्यनुष्ठितवता तीर्थेपू धर्म्म्या क्रिया

इससे पता चलता है कि धर्मपाल केदार, गगासागर तथा गोकर्ण तीर्थों मे यात्रा करने गया था। केदार यानी हिमालय मे स्थित केदार नाथ, गगासागर (गगा का समुद्र से सगम) तथा गोकर्ण (कनारा, बम्बई के समीप) तीर्थों मे धर्मपाल विजय कामना से नही गया किन्तु धर्मयात्रा के लिए पहुँचा (ए० इ० ४ पृ० २४३ भा० १७ पृ० ३१, भा० १८ पृ० ३०५) अन्य लेखो मे कुरुक्षेत्र (देहली के

समीप) प्रभास गया तथा कालाकालेश्वर आदि तीर्थों के नाम मिलते हैं जहाँ राजा तथा जनता तीर्थ यात्रा कर दान दिया करती थी (ए इ २५ पृ ११७) इनमें गया तीर्थ की प्रसिद्धि थी तथा पुराण और स्मृतियों में इसका महत्व वर्णित है [अग्नि ५५ शंख १४।२७ लिखित १२।११) पश्चिमी पंजाब में मुल्तान का नाम मुसलमानों ने तीर्थों में गिनाया है जहाँ के सुप्रसिद्ध सूर्य मंदिर के दर्शनार्थ भारत के कोने से लोग आया करते थे (इलियट इतिहास भा १ पृ ८१) । लेखों में इसका नाम नहीं मिलता क्योंकि मुल्तान मुसलमानी राज्य के अन्तर्गत था और दान करना वहाँ असम्भव था । अतएव दानपत्रों में इसका नाम न मिलना स्वाभाविक ही है । सूर्य मंदिर के कारण हिन्दू वहाँ जाया करते थे और उनके भेंट से मुल्तान को लाखों रुपयों की आमदनी हुआ करती थी ।

इस प्रकार यह पता चलता है कि तीर्थ यात्रा का महत्व अशोक से लेकर जयचन्द्र तक (यानी ईसा पूर्व तीसरी सदी से ईसवी सन् की बारहवीं सदी तक) राजाओं को ज्ञात था । शासक वहाँ दान दे कर पुण्य का भागी बनते तथा स्वर्ग प्राप्ति की कामना करते थे ।

अध्याय ८

प्रशस्तियों से साहित्य का ज्ञान

प्राचीन काल मे अभिलेख खुदवाने के विभिन्न उद्देश्य तथा अवसर थे किन्तु लेखो द्वारा किसी प्रकार की साहित्यिक चर्चा का ध्येय नही था। प्रशस्तिया प्राकृत या सस्कृत भाषा मे खोदी जाती रही परन्तु उसका लेखक विद्वान पदाधिकारी होगा जो समुचित रीति से उस शासन को तैयार करता था। उन अभिलेखों के अध्ययन द्वारा साहित्य के अग पर गौण रूप से प्रकाश पडता है। यो सस्कृत लिखने की कला ईस्वी पूर्व सदियो मे अवश्य वर्तमान थी लेकिन रुद्रदामन के जूनागढ़ लेख (१५० ई०) से पूर्व सस्कृत भाषा का कोई भी अभिलेख नही मिला है। इसलिए उसे सस्कृत साहित्य का पहला नमूना मानते हैं। जूनागढ़ का प्रशस्तिकार एक विद्वान लेखक प्रकट होता है तथा उसने गद्य पद्य की जो विशेषता लिखी है वह दण्डिन के काव्यादर्श (अध्याय १) मे उल्लिखित है। लेख मे राजा के लिए स्फुट-लघु मधुर-चित्र-कान्त शब्द समयोदारालकृत गद्य पद्य (काव्यविधान प्रवीणेन) का विशेषण प्रयुक्त किया गया है (ए० इ० ८ पृ० ४२) काव्यादर्श मे भी ठीक इसी से मिलती वैदर्भी शैली की विशेषता लिखी है— श्लेष प्रसाद माधुर्य्य सुकुमारता, अर्थव्यक्तिरुदारत्वमोज कान्ति समाधय (काव्यादर्श अध्याय १) सस्कृत के अलकार ग्रथो मे काव्य की जो परिभाषा लिखी है उसी तरह की बातें रुद्रदामन के लेख मे पायी जाती हैं। इसमे समास की बहुलता दिखलाई पडती है। सम्पूर्ण लेख के पढने से यह ज्ञात होता है कि लेखक काव्यमय शैली लिखना जानता था। सस्कृत साहित्य का पहला अश होने पर भी यह अनुमान लगाया जा सकता है कि साधारण जनता भी सस्कृत से परिचित थी। अन्यथा राजकीय लेख अलकारिक भाषा मे नही लिखा जाता। आश्चर्य तो यह है कि रुद्रदामन का आड्डुलेख तथा मुद्रा-लेख प्राकृत मे मिलते हैं। यही नहीं दक्षिण तथा पश्चिम भारत के समस्त लेख प्राकृत भापा मे लिखे

गए थे। तात्पर्य यह है कि ई॰ पू॰ १५ से पूर्व संस्कृत गद्य अभिलेख नहीं मिले हैं। तीसरी सदी से समस्त भारत में संस्कृत भाषा में लेख उत्कीर्ण होने लग जिनके अध्ययन से अनेक साहित्यिक बातों का पता चलता है। गुप्त सम्राट् समुद्र गुप्त की प्रयाग (स्तम्भ लेख) प्रशस्ति गद्य पद्य मय भाषा में लिखी गई है। साहित्यदर्पण के अनुसार 'गद्यपद्यमयं काव्य' को चम्पू कहते हैं। प्रयाग स्तम्भ लेख चम्पू का प्रथम उदाहरण उपस्थित करता है। दण्डिन न काव्य गुण के विषय में अपना विचार प्रकट करते हुए लिखा है—ओज समास भूयस्त्वं एतद् गद्यस्य जीवनम्। ओज में समास की बहुलता पाई जाती है। यही रूप प्रयाग स्तम्भ लेख का है।

इसके लेखक ने इतना अधिक समास का प्रयोग किया है कि उसकी साहित्य शास्त्र की जानकारी स्पष्ट हो जाती है। इस लेख की प्रधान विशेषता

अभिलेख में कवित्व

यह है कि ऐसे विद्वान प्रशस्तिकार यानी हरिषेण का नाम अन्यत्र नहीं मिलता। ऐसे चम्पू शैली के लेखक हरिषेण की कोई अन्य कृति का पता नहीं है। सबसे आश्चर्य तो यह है कि हरिषेण ऐसे साहित्यिक परम्परा का व्यक्ति होकर भी सान्धिविग्रहिक कुमारामात्य तथा महादण्डनायक के पद को सुशोभित कर चुका था। गुप्त वंश के लेख तो किसी न किसी छंद में लिखे गए थे परन्तु प्रथम कुमार गुप्त का मंदसोर का लेख तथा स्कन्द गुप्त का जूनागढ़ वाला लेख अनेक छंदों में लिखे गए हैं। उपगीति वसन्ततिलका आर्या शार्दूलविक्रीडित द्रुत विलम्बित हरिणी वंशस्थ इन्द्रवज्रा मालिनी मन्दाक्रान्ता अनुष्टुभ आदि छंदों से युक्त पद्य उल्लिखित हैं। मंदसोर की प्रशस्ति का लेखक वत्सभट्टि भी अन्य साधनों से अज्ञात ही है। अतएव यह कहा जा सकता है कि अभिलेख ऐसे विद्वान प्रशस्तिकार के नाम बतलाते हैं जिनका नाम दूसरे ग्रंथों में नहीं पाया जाता। तात्पर्य यह है कि प्रशस्तियों से संस्कृत साहित्य का इतिहास जानने में सहायता मिलती है। हरिषेण की एक मात्र रचना प्रयाग स्तम्भ लेख है।

प्रशस्ति के आरम्भ में स्रग्धरा तथा शार्दूलविक्रीडित जैसे लम्बे लम्बे आठ छंद हैं जिनमें समुद्रगुप्त की कीर्ति का रमणीय वर्णन मिलता है। उसके अनन्तर एक बृहद् गद्यांश में हरिषेण ने दिग्विजय का विवरण दिया है। पद्य तथा गद्य शैली में हरिषेण उच्च कोटि के कवि कालिदास आदि के समान माना जा सकता है। स्थान स्थान पर दोनों ग्रन्थों में साम्य मिलता है। दिग्विजय के वर्णन में कालिदास तथा हरिषेण में बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव है। दूसरे विद्वान वीरसेन का नाम चन्द्रगुप्त द्वितीय की उदयगिरि वाली प्रशस्ति में मिलता है।

वह उसके दरबार का एक रत्न था और व्याकरण, न्याय तथा राजनीति का ज्ञाता था। वह एक कवि होने के नाते उस प्रशस्ति का लेखक था और उसने अपने को राजा का कुल क्रमागत सचिव लिखा है। गुप्त कालीन जिन कवियो की कीर्ति केवल प्रस्तरो मे सुरक्षित है उनमे सबसे योग्य विद्वान तथा कवि वत्सभट्टि है। प्रथम कुमारगुप्त के शासन काल मे लिखी गई मदसोर की प्रशस्ति इस कवि की अद्वितीय रचना है। इसमे दशपुर मे सूर्य मदिर बनवाने का वर्णन मिलता है। सस्कृत काव्य के इतिहास से इस प्रशस्ति का विशेष स्थान है। भाषा ललित होते हुए अर्थ गौरव से युक्त है। अलकार इस प्रशस्ति मे भरे पड़े हैं। वत्सभट्टि कालिदास के काव्यो का विशेष अनुरागी प्रतीत होता है। उसने कई स्थानो पर पर कालिदास का अनुकरण किया है। भाषा के अतिरिक्त भाव मे कालिदास का छाप दिखलाई पडता है। इस कवि द्वारा वर्णित दशपुर का वर्णन कालिदास द्वारा वर्णित अलकापुरी के प्रासादो से सर्वथा मिलता-जुलता है—

चलत्पताकान्य वला सनाथान्यत्यार्थ
शुक्लान्यधिकोन्नतानि
तडिल्लता चित्रसिताभ्रकूट
तुल्योपमानानि गृहाणि यत्र
कैलास-तुङ्ग-शिखर-प्रतिमानि चान्या-
न्याभान्ति दीर्घबलभीनि सवेदिकानि
गान्धर्व शब्द मुखराणि निविष्ट चित्र
कर्माणि लोल-कदली वन शोभितानि

मदसोर प्रशस्ति—(वत्सभट्टि)

विद्युत्वन्त ललितवनिता सेन्द्रचाप सचित्रा
सगीताय प्रहतमुरजा स्निग्धगम्भीरघोषम्
अन्तस्तोय मणिमयभुवस्तुङ्गमभ्र लिहाग्रा
प्रासादास्त्व तुलयितुमल यत्र तैस्तैर्विशेषै ।

उत्तरमेघ १—(कालिदास)

और देखिए। मदसोर की प्रशस्ति (पद्य ३१) मे किया गया ऋतु वर्णन कालिदास के ऋतु सहार (५।३) वर्णन के समान है।

न चन्दन चन्द्रमरीचिशीतल
न हर्म्यपृष्ठ शर दिन्दुनिर्मलम्
न वायव सान्द्र तुषार शीतला
जनस्य चित रमयन्ति साम्प्रतम्

(कालिदास)

गए थ। तात्पर्य यह है कि ई स १५ से पूर्व संस्कृत मय अभिलेख नहीं मिले हैं। तीसरी सदी से समस्त भारत में संस्कृत भाषा में लेख उत्कीर्ण होने लगे जिनके अध्ययन से अनेक साहित्यिक बातों का पता चलता है। गुप्त सम्राट् समुद्र गुप्त की प्रयाग (स्तम्भ लेख) प्रशस्ति गद्य पद्य मय भाषा में लिखी गई है। साहित्यदर्पण के अनुसार 'गद्यपद्यमयं काव्यं' को चम्पू कहते हैं। प्रयाग स्तम्भ लेख चम्पू का प्रथम उदाहरण उपस्थित करता है। दण्डिन ने काव्य गुण के विषय में अपना विचार प्रकट करते हुए लिखा है—ओज समास भूयस्त्वं एतद् गद्यस्य लक्षणम्। ओज में समास की बहुलता पाई जाती है। यही रूप प्रयाग स्तम्भ लेख का है।

इसके लेखक ने इतना अधिक समास का प्रयोग किया है कि उसकी साहित्य शास्त्र की जानकारी स्पष्ट हो जाती है। इस लेख की प्रधान विशेषता यह है कि ऐसे विद्वान प्रशस्तिकार भावी हरिषेण का नाम अभिलेख में अन्यत्र नहीं मिलता। ऐसे चम्पू शैली के लेखक हरिषेण की कवित्व कोई अन्य कृति का पता नहीं है। सबसे आश्चर्य तो यह है कि हरिषेण ऐसे साहित्यिक परम्परा का व्यक्ति होकर भी सान्धिविग्रहिक कुमारामात्य तथा महादण्डनायक के पद को सुशोभित कर चुका था। गुप्त वंश के लेख तो किसी न किसी छंद में लिखे गए थे परन्तु प्रथम कुमार गुप्त का मंदसौर का लेख तथा स्कन्द गुप्त का जूनागढ़ वाला लेख अनेक छंदों में लिखे गए हैं। उपगीति वसन्ततिलका आर्या शार्दूलविक्रीडित द्रुत विलम्बित हरिणी वंशस्थ इन्द्रवज्रा मालिनी मन्दाक्रान्ता अनुष्टुभ आदि छंदों से युक्त पद्य उल्लिखित हैं। मंदसौर की प्रशस्ति का लेखक वत्सभट्टि भी अन्य साधनों से अज्ञात ही है। अतएव यह कहा जा सकता है कि अभिलेख ऐसे विद्वान प्रशस्तिकार के नाम बतलाते हैं जिनका नाम दूसरे ग्रंथों में नहीं पाया जाता। तात्पर्य यह है कि प्रशस्तियों से संस्कृत साहित्य का इतिहास जानने में सहायता मिलती है। हरिषेण की एक मात्र रचना प्रयाग स्तम्भ लेख है।

प्रशस्ति के आरम्भ में स्रग्धरा तथा शार्दूलविक्रीडित जैसे लम्बे लम्बे आठ छंद हैं जिनमें समुद्रगुप्त की कीर्ति का रमणीय वर्णन मिलता है। उसके अनन्तर एक वृहत् गद्यांश में हरिषेण ने दिग्विजय का विवरण दिया है। पद्य तथा गद्य शैली में हरिषेण उच्च कोटि के कवि कालिदास आदि के समान माना जा सकता है। स्थान स्थान पर दोनों ग्रन्थों में साम्य मिलता है। दिग्विजय के वर्णन में कालिदास तथा हरिषेण में बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव है। दूसरे विद्वान वीरसेन का नाम चन्द्रगुप्त द्वितीय की उदयगिरि वाली प्रशस्ति में मिलता है।

जयत्यजित" उपगीति छद मे है।

इसी प्रकार चालुक्य नरेश द्वितीय पुलकेशी का अयहोल लेख सुन्दर काव्य में लिखा गया है। रवीकीर्ति के वर्णन की शैली काव्यमय है। इसलिए अयहोल प्रशस्ति के ३७वे पद्य मे कालिदास तथा भारवी से उसकी तुलना की गई है। तात्पर्य यह है उपमा तथा अर्थ गौरव मे रवीकीर्ति श्रेष्ठता प्राप्त कर चुका था। यही कारण है वह प्रधान कवियो मे स्थान प्राप्त कर मका है। प्रशस्तिकार अलकार शास्त्र से पूर्ण विज्ञ था। कई स्थानो पर उमके भाव रघुवश तथा किरातार्जुनीय से मिलते हैं प्रशस्तिकार ने रघु के दिग्विजय की तरह पुलकेशी की विजय यात्रा का वर्णन किया है। अयहोल प्रशस्ति के निम्न पद्य कालिदास के समान भाव व्यक्त करते हैं—

प्रशस्ति का पद्य ५ (रघुवश ७।४८), पद्य १० (किरात ५।९)
प्रशस्ति का पद्य १७ (रघुवश ३।२६) तथा पद्य ३० (रघु ४।४५)

इन सभी साहित्यिक पद्यो के अतिरिक्त कुछ नाटक प्रस्तर पर खोदे गए थे जिनसे सम्पूर्ण नाटक का रूप खडा किया गया है। अजमेर के शिलाखण्ड पर सोमदेव रचित "ललित विग्रह नाटक" मिला है जिसमे चाहमान नरेश विग्रह राज की कीर्ति वर्णित है। धारा के समीप (उज्जैन का भू भाग) प्रस्तर पर हरकेलि नाटक उत्कीर्ण पाया गया है जिसका लेखक विग्रह राज था। पारिजात मजरी की भी वही कथा है। इसके अतिरिक्त धारा के एक शिलालेख मे विष्णु के कूर्मावतार का वर्णन किया गया है जो प्राकृत भाषा की काव्य रचना है। इस तरह प्रशस्तियो का अध्ययन प्राकृत तथा मस्कृत साहित्य के इतिहास पर प्रकाश डालता है तथा लेखो से कई उलझनें स्पष्ट हो सकी हैं। ई० स० १५० से पूर्व का कोई सस्कृत साहित्य का अश नही मिलता पर उससे पूर्व भी सस्कृत का प्रचार था, यह स्पष्ट हो जाता है। जूनागढ लेख की शैली एक दिन की कृति नही है वरन् साहित्य सम्बन्धी कार्य सैकडो वर्ष पहले से होता रहा।

पूर्व मध्य युग (७००-१२०० ई०) की अवधि मे सस्कृत साहित्य का भण्डार भरा गया। जितनी सख्या मे नाना विषयो पर ग्रथ लिखे गए, उतनी ही सख्या मे अभिलेख भी सस्कृत मे उत्कीर्ण किए गए। काव्य शैली, अलकार की प्रचुरता (ग्वालियर प्रशस्ति ए० इ० भा० १ पृ० १५६) छदो की बहुलता और श्लेष का अधिकता (ए० इ भा० २९ पृ० १७९) प्रशस्तियो मे पाया जाता है।

अभिलेखो मे साहित्य की समीक्षा करते समय चन्देल नरेश के खजुराहो

रामा सनाथ रचन दर भास्करांशु
वह्नि प्रताप सुभग जललीन मीने
चन्द्रांशुहर्म्यतल चन्दन तालवृन्त
हारोपभोग रहित हिम दग्ध पद्मे
(वत्सभट्टि)

इससे प्रकट होता है कि वत्सभट्टि की कविता सरस और रसीली है। यह वैदर्भी रीति में लिखे गए काव्य का एक उत्कृष्ट नमूना है। सुन्दर अलंकारों का समावेश स्थान-स्थान पर किया गया है। कविता में गुण के कारण वत्सभट्टि महाकवियों की श्रेणी में रखे जा सकते हैं। गुप्त सम्राट चन्द्रगुप्त के समय में साब नाम के भी राजकवि हुए हैं जिनका नाम लेखों में मिलता है।

इस युग के कवियों में वासुल का भी नाम उल्लेखनीय है। इन्होंने मालवा के नरेश यशोधर्मन की मन्दसोर की प्रशस्ति लिखकर अपनी काव्य निपुणता का परिचय दिया है। इसमें राजा के गुणावली का वर्णन किया गया है। ईशान वर्मा की हरहा की प्रशस्ति के लेखक रविशान्ति का नाम भी गर्व के साथ लिया जा सकता है जो मौखरि नरेश के आश्रित कवि थे। इस कवि की कविताएँ समास अधिकता है तथा भाव से भरी हुई है। इसके काव्यमय लेख से मौखरि इतिहास पर प्रकाश पड़ता है। ईशान की कीर्ति तथा युद्ध गाथा के लेखक का नाम तथा रवि शान्ति की रचना अन्यत्र नहीं मिलती। इस प्रकार प्रशस्ति के अन्त में कवियों के नाम आते हैं जिनमें प्रधान (प्रथम श्रेणी के) कवियों का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। यदि प्रशस्तियों का अध्ययन न होता तो इनकी कीर्ति का पता लगना असम्भव था। इस प्रकार हजारों लेख मध्यकाल में लिखे गए। सर्वत्र लेखक के नाम का पता नहीं लगता। मध्ययुग के गोविन्दपुर के (गया बिहार) लेख में वेद पारंगत ब्राह्मण का उल्लेख है जिसकी कविता सदुक्ति कर्णामृत में सुभाषित के स्थान पर उद्धृत की गयी है। उस श्रीधर दास नामक कवि का नाम अन्यत्र कहीं नहीं मिलता। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि संस्कृत साहित्य का वास्तविक इतिहास इन लेखों की सहायता बिना तैयार होना सम्भव नहीं।

प्रशस्तियों के अतिरिक्त गुप्त शासकों का साहित्यिक प्रेम उनके मुद्रा-लेख से भी झलकता है। अधिकतर मुद्राओं पर लेख संस्कृत उपगीति छन्द में लिखे हैं उदाहरणार्थ समुद्र का मुद्रा लेख 'समर शत वितत विजयो जित रिपु रजितो दिवं जयति' तथा प्रथम कुमारगुप्त का लेख "पृथिवीतलाम्बर शशी कुमार गुप्तो

वैदिक काल से ही काशी की प्रधानता थी। बौद्ध युग मे भी वही स्थिति बनी रही। बुद्ध ने प्रथम धर्मोपदेश (धर्मचक्र परिवर्तन) के लिए मृगदाव को ही चुना था। जातक कथाओ मे काशी के राजा ब्रह्मदत्त का नाम सैकडो बार आया है। इससे सिद्ध होता है कि काशी की प्रधानता (धर्म तथा शिक्षा क्षेत्र मे) सदियो तक बनी रही। ब्राह्मण तथा बौद्ध युग मे यह नगरी एक समान रूप से आकर्षक थी।

अशोक के समय मे ही सारनाथ की प्रधानता रही और मौर्य युग के पश्चात् वह एक प्रसिद्ध बौद्ध शिक्षा केन्द्र हो गया। यहा पर पढाई का कार्य बारहवी सदी तक होता रहा और इसी कारण से गाहडवाल राजा गोविन्द्रचन्द्र की पत्नी कुमार देवी ने एक विहार को दान दिया था जिसका विवरण उसके सारनाथ वाले लेख मे पाया गया है। हजारो की सख्या मे यहा विद्यार्थी शिक्षा पाते थे। खुदाई मे अनेक विहारो की स्थिति पर प्रकाश पडता है। सारनाथ मे कला की भी शिक्षा दी जाती रही जिसके कारण वहा पर एक शैली (स्कूल) की स्थापना हुई थी। सारनाथ शैली की बुद्ध प्रतिमा बौद्ध कला मे अद्वितीय समझी जाती है। यहा साहित्य तथा कला की शिक्षा की प्रगति का अनुमान लगाया जा सकता है। आज भी काशी क्षेत्र (वाराणसी) सस्कृत विद्या का महान् केन्द्र है।

पाटलिपुत्र के समीप नालदा का विहार एक अन्तर्राष्ट्रीय सस्था का रूप धारण कर चुका था जिसकी प्रसिद्धि पाँचवी सदी के पश्चात् प्रकट हुई। यो तो

नालदा महा-विहार

बुद्ध के समय से ही इसकी प्रधानता थी परन्तु पाचवी सदी से नालदा विद्या का केन्द्र हो गया। गुप्त राजाओ तथा पालवशी नरेशो ने इस महाविहार की उन्नति मे हाथ बटाया तथा आर्थिक सहायता देकर प्रोत्साहित किया। प्राचीन समय से ११वी सदी तक विहार-निर्माण का कार्य अविच्छिन्न रूप से होता रहा। नालदा की खुदाई से वहा विशाल विश्वविद्यालय का पता चला है जिसमे करीब ३०० छोटे कमरे हैं तथा सात विशाल व्याख्यान मदिर भी। पूर्व मध्ययुग के एक लेख से नालदा के विशाल भवन की स्थिति प्रमाणित होती है जहा विहार के शिखर गगन-चुम्बी थे। वर्णन सुनिए।

यस्यामम्बुधरावलेहि शिखर श्रेणी विहारावली
मालेवोर्ध्व विराजिनी विरचिता धात्रा मनोज्ञाभुव
(ए इ २० तृ ४३)
नालदा हसतीव सर्वनगरी शुभ्राभ्रगौरस्फुट
च्चर्यत्याशु प्रकरोस्सदागमकला विख्यात विद्वज्जना।

लेख का उद्धरण प्रशस्तिकारों के काव्यमय शैली तथा साहित्यिक गुण की ओर ध्यान आकर्षित करता है— (ए इ भा १ पृ १५९)

> शार्दूलं हरतामिनो रिपुजना लक्ष्मी मनो मोषित
> रूप पंचशरापमानपयसो गाम्भीर्यमंभोनिध
> चित्तं येन विचार चाद भनसामाचारमात्मवता
> सर्वत्रम जनापवाद रहितं चौर्यं प्रकाशीकृत

अभिलेखों के अध्ययन से यह पता चलता है कि शिक्षण संस्थाओं का जन्म कुछ बाद में हुआ। सुदीर्घकाल में अध्यापक व्यक्तिगत रूप से शिक्षा देते थे।

शिक्षा-केन्द्र

प्राचीन गुरुकुल तथा काशी एवं तक्षशिला के गुरुगृह शिक्षा में योगदान देते रहे। ईसवी सन दूसरी सदी के नासिक लेखों में भिक्षुओं के चीवर तथा भोजन निमित्त अग्रहार का वर्णन है। बौद्ध ग्रंथ महावग्ग से प्रकट होता है कि गुहा में शिक्षा का कार्य सम्पन्न किया जाता था जिसकी सहायता शासक किया करता था। प्रायः शिक्षा केन्द्र समस्त भारत मे फैले हुए थे। तक्षशिला काशी पाटलिपुत्र कन्नौज मिथिला तथा धारा का नाम शिक्षा केन्द्रों में लिया जा सकता है। बौद्ध विहार तथा हिन्दू मंदिरों से शिक्षण संस्थाओं का जन्म हुआ अतएव जनता मठ तथा मंदिरों को दान देने लगी। मध्यकाल में मठ ही प्रधान केन्द्र बन गए। तक्षशिला के विषय में जातकों के अतिरिक्त अन्य साधनों से कम प्रकाश पड़ा है। वहाँ के लेख यह बतलाते है कि जनता खरोष्ठी लिपि तथा प्राकृत भाषा जानती थी। यह स्थान यूनानी शासकों के समय में टकसाल था। गांधार कला की उन्नति से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि तक्षण कला की शिक्षा वहाँ अवश्य दी जाती होगी। कहने का तात्पर्य यह है कि वहाँ सुव्यवस्थित तथा संगठित शिक्षा-केन्द्रों में (विश्वविद्यालय न होने पर भी) सब कलाओं की शिक्षा दी जाती थी। तक्षशिला की खुदाई से ऐसा भवन मिल न सका जिसे विद्यालय या छात्रावास कहा जा सके।

तक्षशिला से बढ़कर काशी विद्या का केन्द्र था। बुद्ध के यहाँ धर्म प्रचार आरम्भ करने से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि ई० पूर्व सदियों में काशी विद्या का महत्वपूर्ण केन्द्र होगा। काशी की प्रसिद्धि कई सदियों तक ज्यों की त्यों बनी रही। दसवीं सदी के गाहड़वाल ताम्रपत्र कमौली नामक स्थान से प्राप्त हुए है जिसमें विद्वान् ब्राह्मणों को दान देने का विवरण मिलता है। (ए० ई० भा० ४) सम्भवतः राजा की ओर से अध्यापक तथा विद्यार्थियों को पठन-पाठन के लिए सहायता मिलती रही।

मैत्रको के पिछले उत्तराधिकारी भी वलभी विश्वविद्यालय को प्रर्याप्त आर्थिक सहायता करते रहे।

दक्षिण भारत के राष्ट्रकूट राजा के मत्री नारायण ने सलोतगी (वीजापुर, वम्बई प्रदेश) मे एक देवालय का निर्माण कराया था जो १२वी सदी मे वैदिक शिक्षा का प्रसिद्ध केन्द्र था। उस स्थान पर विद्यार्थियो के रहने के लिए अनेक भवन वने थे। वहा की प्रशस्ति मे वर्णन आता है कि दीपक, भोजन तथा आवास के लिए ५०० निर्वतन भूमिदान मे दी गई थी (ए इ ४ पृ० ६०)

तेनेय कारिता शाला श्री विशाला मनोरमा
अत्र विद्यार्थिन सति नाना जनपदोम्दवा
शाला विद्यार्थी सघाय दत्तवान्भमिमुत्तमाम्।

अन्य लेखो से भी पता चलता है कि दक्षिण मे कई विद्यापीठ राजकीय सहायता पर चलते थे और देवालय शिक्षा के केन्द्र हो गए थे। १२वी सदी मे दक्षिण अरकाट जिले मे एन्नायिरम् विद्यापीठ (साउथ इ ए रि १९१८ पृ० १४५) तथा चिङ्गलपुट (मद्रास के करीव) मे व्यकटेश पेरुमल देवालय (ए इ २१ पृ० २२०) महत्वपूर्ण सस्था थी। विद्यार्थियो को खाद्य सामग्री नि शुल्क वितरण की जाती थी। चिकित्सा का भी प्रवध था। ११वी सदी के लेख मे वीजापुर के विद्यार्थियो का वर्णन है कि आचार्य योगेश्वर पडित के शिष्यो को शिक्षा तथा भोजन के लिए १२०० एकड भूमि दान मे दी गई थी। (इ ए १० पृ० १२९) अभिलेखो के आधार पर कई उदाहरण उपस्थित किए जा सकते हैं (ए इ ४ पृ० ३५५ साउय इ ए रि १९१२ पृ० २०१ १९-१७ पृ० १२२) अग्रहार दान (ए इ भा ५ पृ० २२, भा० १३ पृ० ३१७) शिक्षा की उन्नति मे सहायक थे तथा आर्थिक चिन्ता से विद्यालय मुक्त रहता था। जिस गाव के पडित के पास ज्ञान-पिपासु लोग आते थे उसे भी दान दिया जाता था (ए इ भा १६ पृ० १४)। अतएव प्राचीन अभिलेखो का अध्ययन शिक्षा-केन्दो, छात्रावास, औपधि, भोजन, पुस्तक आदि विपयो पर प्रकाश डालते हैं। उनके परिशीलन से प्रकट होता है कि विना राजकीय सहायता के शिक्षा की उन्नति सम्भव न थी।

प्राचीन अभिलेखो मे अध्ययन तथा अध्यापन का सीधा वर्णन उपलब्ध नही है केवल प्रमग वश साहित्य का उल्लेख मिलता है। अथवा दान के पात्र सम्वन्धी वार्ता मे दानग्राही की विद्वता का वर्णन किया गया है। उसी अभिलेख मे यह कहा गया है कि अमुक व्यक्ति कई विपयो का पण्डित था। या यो कहिए कि उस के वश का विवरण देते समय व्राह्मण के वैदिक शाखा का

अध्ययन के विभिन्न विषय

इससे स्पष्ट हो जाता है कि ७ ०–१२ ई तक नालंदा प्रसिद्ध विद्या-केन्द्र था तथा प्रसिद्ध बौद्ध विद्वान यहां निवास करते थे।

भिक्षु एवं विद्यार्थियों के आवास के लिए ही ऊंचे विहार बनाए गये थे। जहां उनके भोजन स्नान तथा औषधि का प्रबंध था—भिक्षु संघस्य बलि चरुसत्र चीवर पिण्डपात शयना भनपनादि (ए इ २ पृ ४४) इन सभी कार्यों के लिए दाताओं से दान मिलता था तथा दो सौ ग्राम इस महाविहार को दान में मिल चुके थे। इसकी अभिवृद्धि आठवीं सदी के पाल नरेश देवपाल के ताम्रपत्र से ज्ञात है। देवपाल ने जावा के राजा बालपुत्रदेव के आग्रह पर पांच गांव दान में दिया था। ताम्रपत्र में वर्णन आता है कि जावा के राजा ने नालन्दा में दो विहार तयार किये तथा उसने अपने दूत द्वारा देवपाल से भिक्षुओं के निमित्त दान देने की प्रार्थना की। देवपाल ने उस विहार में निवास करने वाले भिक्षु विद्यार्थी के भोजन आवास औषधि निमित्त दान दिया तथा धर्म ग्रन्थ लिखने के व्यय का आयोजन भी था (ए. इ भा १७ पृ० ३२२)

नालंदा गुण वृन्द लब्ध महसा भक्त्या च शौद्धोदने

× × ×

नाना सद् गुणभिक्षुसंघ वसतिस्तस्यां विहारः कृत

सुवर्णद्वीपाधिप महाराज बालपुत्रदेवेन दूतक

मुखेन मया विज्ञापिता। यथा मया नालंदायां विहारः कारितः।

इससे इस महाविहार की अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति का पता चलता है। यही कारण है कि चीन के यात्री ह्वेनसांग तथा इत्सिंग वर्षों रहकर नालन्दा महाविहार में शिक्षा प्राप्त करते रहे। यहीं से पंडित नेपाल तिब्बत तथा चीन में बौद्ध धर्म फैलाने के लिए निमंत्रित किए गए थे।

काठियावाड़ में वलभी भी प्रसिद्ध विद्या केन्द्र था जहां से अधिक मात्रा में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार होता था। वलभी के स्नातक ऊंचे पद पर नियुक्त किए जाते थे। गंगावारी में ब्राह्मण अपने पुत्रों को विद्याभ्यास के लिए यहां भेजते रहे।

अन्तर्वेदामभूत्पूर्वं वसुदत्त इति द्विज

× × ×

सुनु प्रवयते विद्या प्राप्तो वलभीपुरम्।

वलभी के धर्मात्मा श्रेष्ठी इस विश्वविद्यालय को आर्थिक सहायता दिया करते थे। धर्म के अगाध गोता साधारण व्यय के अतिरिक्त पुस्तकों के लिए भी दान देते थे जो लेख से विदित होता है

(सद्धर्मस्य पुस्तकोपचयार्थम्—ए इ ए ७ पृ ६७)

पूर्व मध्ययुग के अभिलेखो का विवेचन यह बतलाता है कि वेद, वेदाग के अतिरिक्त दर्शन, उपवेद तथा इतिहास का भी पठन-पाठन होता रहा। दानग्राही के गुणो का वर्णन करते समय उन विषयो के नाम आते हैं। ज्योतिष तथा धर्मशास्त्र का भी उल्लेख मिलता है जिसके अध्ययन के पश्चात् वह व्यक्ति राजकीय विभाग मे पदाधिकारी हो जाता था। इसलिए वेदाग (शिक्षा, निरुक्त, छद, व्याकरण, कल्प, (धर्मशास्त्र) तथा ज्योतिष) का अध्यापन प्रधान हो गया। उस युग के लेखो मे चारो वेद, उनकी विभिन्न शाखाओ, वेदाग तथा षड्दर्शन के नाम मिलते हैं। चाहमान (राजपुताना) के लेखो मे यजुर्वेद के अनुसार यज्ञ करने की चर्चा की गई है (ए० इ० ९ पृ० ३०६) और बगाल के सेन नरेश के लेख भी यही बाते उल्लिखित करते है (ज० आफ० हि० रि० सो० भा० २पृ० १४०) इसका अर्थ यह है कि समस्त उत्तरी भारत मे वैदिक यज्ञ तथा वेदो का अध्ययन होता था। दक्षिण भारत के लेखो मे भी वैदिक शाखाओ के नाम से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि दक्षिण मे वैदिक अध्ययन की परिपाटी समान रूप से वर्तमान थी। प्रतिहार, चन्देल, परमार तथा बगाल के राजाओ के अभिलेखो मे एक तरह के शाखा के नाम आते है। कलहा ताम्रपत्र (गोरखपुर, उत्तर प्रदेश) मे छादोग्य, वाजसनेय तथा माध्यन्दिन शाखाध्यायी ब्राह्मणो के नाम उल्लिखित हैं (ए० इ० भा०२ पृ० ८७) मध्यप्रदेश के चेदि वश के लेखो मे आश्वलायन शाखायन, कठ कौथुमी तथा राणायनीय शाखाओ के नाम मिलते हैं (ए० इ० ९ पृ० ११६) मालवा के लेख मे माध्यन्दिन, आश्वलायन तथा कौथुमी के नाम प्राप्त हुए हैं (ए० इ० ९ पृ० ११६) कन्नौज के राजा भोज का ताम्रपत्र तथा गाहडवाल नरेश गोविन्द चन्द्र के दानपत्र मे आश्वलायन तथा वाजसनेय शाखाध्यायी ब्राह्मणो का वर्णन आया है। ए० इ० ५ पृ० २१२ तथा भा० ८ पृ० १५४) पाल तथा सेन दानपत्रो मे यही नाम मिलते हैं (इ ए० २१ पृ० २५५ ए० इ० १५ पृ० २९५) विजयसेन का बैरकपुर ताम्रपत्र (ए० इ० १५ पृ० २८४) बल्लालसेन का नईहटी लेख (ए० इ० १४ पृ० १५६) तथा लक्ष्मणसेन के अनेक दानपत्रों मे (ए० इ० १२ पृ० ६ इ० हि० का० ३ पृ० ८९ ज० ए० सो० ब० १९०० भा० ६९ पृ० ६१) मे उन्ही शाखाओ के नाम उल्लिखित हैं जिनके विषय मे ऊपर लिखा जा चुका है। लक्ष्मणसेन के अभिलेखो मे यजुर्वेद, सामवेद, ऋगवेद की शाखाओ के अतिरिक्त अथर्व की पिप्पलाद शाखा का नाम भी मिलता है जो अन्य प्रदेशो की प्रशस्तियो मे नही मिलता। यदि समस्त शाखाओं को क्रम बद्ध किया जाय तो लेखो के शाखा नाम निम्न प्रकार के वर्गीकरण मे रक्खे जा सकते हैं।

नाम लिया गया है। इन सभी प्रकार के उल्लेखों से हमें अध्ययन सम्बन्धी विषयों का परिज्ञान हो जाता है। अशोक से पूर्व का कोई लेख नहीं मिला है इसलिए ई० पूर्व के ३०० वर्ष से पहले की बातें ज्ञात नहीं हैं। उसने बैराट (भाब्रू जयपुर) के शिलालेख में इस बात का आदेश दिया था कि निम्नलिखित ग्रंथों को भिक्षुओं को सुनना तथा पढ़ना चाहिए—

इमानि भंते धम्मपलियायानि विनय समुकसे अलिय-वसानि अनागत भयानि मुनिगाथा मोनेयसूते उपतिस पसिने ए चा लाघुलोवादे मुसावादं अधिगिच्य भगवता बुधेन भासिते (भाब्रू लेख) मुनिगाथा मौनेय सूत्र उपतिष्यप्रश्न राहुलवाद मृषावादम्" को बारबार सुनना चाहिए तथा अध्ययन करना चाहिए। इसके अतिरिक्त (विनय समुकर्ष) आर्यवंश (अंगुत्तर निकाय में वार्तालाप अलियवसानि) और भिक्षु की भविष्य चर्चा (अनागतभयानि) को भी सुनना चाहिए जिससे संघ चिर स्थायी हो सके।

मौर्ययुग के पश्चात् अभिलेखों में कई सदियों तक शिक्षा सम्बन्धी किसी विषय का उल्लेख नहीं पाया जाता। मठों के विकसित सम्पन्न होने से यह सिद्ध होता है कि वैदिक शिक्षा का प्रचलन समाज में था। उपनयन संस्कार के पश्चात् विद्यार्थी गुरुगृह में विद्याभ्यास करता रहा। पूर्वमध्ययुग (७ १२ ई०) में उपनयन की अवस्था में समानता न रही। प्राचीन गुरुकुल की परिपाटी छिन्न भिन्न हो गई और विद्यार्थी गण मंदिर या मठ अथवा विहार में शिक्षा पाने लगे। इस काल के उत्कीर्ण अभिलेख तथा दानपत्र शिक्षा के सभी बातों पर प्रकाश डालते हैं। दान व्यक्तिगत न रहकर संस्थाओं से सम्बन्धित कर दिए गए। जिन संस्थाओं को दान दिया जाता था वहां विद्या का केन्द्र अवश्य कार्य कर रहा था। यह अनुमान सर्वथा उचित है। खेद है कि अभिलेखों में प्रारम्भिक शिक्षा के सम्बन्ध में किसी तरह का उल्लेख नहीं मिलता। केवल ऊंची शिक्षा का मूल्यांकन किया जा सकता है। ऊंची श्रेणी की संस्थाओं तथा किसी विषय में पारंगत पंडित को ही दान देने की परिपाटी थी। अतएव पूर्वमध्ययुग में एक विषय के गम्भीर अध्ययन की बातें सोची जा सकती हैं। बौद्ध मठों में नए आगंतुक भिक्षु को कोमल अवस्था के कारण कुछ साधारण ज्ञान दे कर धर्मरत्न का अध्ययन कराया जाता था। परन्तु ब्राह्मणों के सम्बन्ध में ऐसी बातें ज्ञात नहीं हैं। इस निर्णय पर पहुंचने का कारण यह है कि विद्यार्थी वैदिक शाखा के ज्ञाता कहे गए हैं यानी किसी सम्पूर्ण वेद का पठन पाठन भी सम्भव न था। गम्भीर अध्ययन के कारण विद्यार्थी केवल एक शाखा में ही पांडित्य प्राप्त कर सकता था।

नथा ज्योतिप का अध्ययन तथा अध्यापन वेदाग विपयो मे सबमे प्रमुख था। व्याकरण सभी शास्त्रो को बोधगम्य करता है इसलिए उसका पढना नितात आवश्यक था। ज्योतिप के पण्डित को नैमित्तिक की सज्ञा दी गई थी। गहडवाल प्रशस्तियों में नैमित्तिक पदाधिकारियो की सूची मे मिलता है (ए इ ४ पृ० १२२, भा ७ पृ० ९९ तथा भा १८ पृ० २२२) उडीसा के भुवनेश्वर लेख मे ब्राह्मण को सिद्धात, तत्र, फलसहिता तथा व्याख्या का ज्ञाता बतलाया गया है (ए इ भा० ६ पृ० २०६) तथा बगाल की प्रशस्ति मे दामोदर शर्मन पाच सिद्धान्त का पडित कहा गया है। ज्योतिप मे पुलिश (पौलिश), रोमक, वशिष्ठ, सूर्य (सौर) तथा पितामह (पैतामह) को ज्योतिप का पाच सिद्धान्त मानते हैं। इस तरह ज्योतिप को सामाजिक विपय मान कर पढते और राजदरबार मे ज्योतिपी प्रतिष्ठा पाता था। अन्य चार-कल्प निरुक्त, शिक्षा तथा छद का नाम लेखो मे नही मिलता। परन्तु इसमे यह अनुमान नही किया जा सकता कि वेदाग मे व्याकरण तथा ज्योतिप दो ही विपयो की शिक्षा दी जाती होगी और अन्य चार पढे न जाते होगे। छद तथा शिक्षा के अभाव मे वेद मत्रो का उच्चारण कठिन होता है तथा निरुक्त बिना मत्रो का अर्थ समझना सम्भव नही है। यह काल वैदिक यज्ञ तथा अध्यापन का युग था इसलिए वेदाग के सभी अगो पर विद्यार्थियो का ध्यान रहता होगा। पूर्व मध्ययुग मे अनेक स्मृतियो की रचना हुई थी। इसलिए धर्मशास्त्र (कल्प) के ज्ञान को पूर्व पीठिका मानना असगत न होगा। यह कहना उचित होगा कि वेदाग का अध्ययन भी ब्राह्मणो के लिए प्रमुख हो गया था।

अध्ययन के अन्य विपयों मे पड्दर्शन को भी प्रधान माना गया है और लेखो मे प्रत्येक दर्शन का पृथक-पृथक नाम उल्लिखित है। पड्दर्शन से न्याय, मीमासा, साख्य, योग, वैशेपिक तथा वेदान्त का बोध होता है (ए० इ० ११ पृ० ३११) रीवा के लेख मे काशी के ब्राह्मण को वेदान्त मीमासा तथा योगदर्शन का पडित कहा गया है (ए० इ० १९ पृ० २९५) लेकिन वही प्रतिहार वंशी बालगढ की प्रशस्ति मे मीमासा तथा तर्कविद्या (न्याय) मे पारगत माना गया है (ए० इ० १४ पृ० ३२५) पाल लेखो मे इसी तरह का वर्णन मिलता है कि दानग्राही ब्राह्मण मीमासा व तर्क विद्या (न्याय शास्त्र) का ज्ञाता था (ए० इ० १५ पृ० २९५ भा० १४ पृ० ३२५ इ० ए० १४ पृ० १६८ भा २१ पृ० १६८ भा २१ पृ० ९७—मीमासा व्याकरण तर्कविद्याविदे) मूगेर लेख मे वेदान्त का उल्लेख है (इ० ए० १५ पृ० ३०७)। इससे प्रकट होता है कि षड्दर्शन मे न्याय, मीमासा तथा वेदान्त का अध्ययन अध्यापन

(१) ऋग्वेद की शाखाएं आश्वलायन शाङ्खायन
(२) शुक्ल यजुर्वेद माध्यन्दिन काण्व तथा वाजसनेय
(३) कृष्ण यजुर्वेद-मैत्रायिणी कठ तथा तैत्तिरीय
(४) सामवेद—कौथुमी व राणायनीय
(५) अथर्व—पिप्पलाद

शाखाओं के नाम तथा वर्गीकरण से पता चलता है कि ऋग्, साम तथा यजुर्वेद का अध्ययन उत्तरी भारत के अधिक भागों में होता था परन्तु पिप्पलाद का अध्ययन केवल पूर्वी भारत में सीमित था। दक्षिण भारत के लेख भी यही बतलाते हैं कि अथर्व के सिवाय अन्य तीनों वेदों का अध्ययन व अध्यापन पूर्व मध्ययुग से हो रहा था। इसकी पुष्टि निम्नलिखित उद्धरण से होती है—

बह्व भिक्ष्मोर्कस्य विष्णु चंद्रस्तथा पर
तथा महिरदेवस्य चात्वारो बह्वृचात्मा (ऋग्वेद)
एवं कपर्दोपाध्यायो भास्करो मधुसूदन
देवशर्मस्य चत्वारो यजुर्वेदस्य पारगा (यजुर्वेदस्य)
तथा भास्कर देवस्य सिरोपाध्याय एव च
मलोपयहन्सो मौद-चत्वारः सामपारगा (साम)
(ए इ ११ पृ १९२)

समस्त अभिलेखों का परीक्षण यह बतलाता है कि अधिकतर ब्राह्मण तीन ही वेद (ऋक यजु व साम) पढ़ते या पढ़ाते थे जिससे द्विवेदी या त्रिवेदी की पदवि से पुकारे जाते थे। (ए इ १९ पृ १ भा १ पृ १११)

मध्ययुग में वेदांग का नाम भी लेखों में उल्लिखित है जिन विषयों को पढ़ कर व्यक्ति पदाधिकारी का आसन सुशोभित करता था। बंगाल के लेख में वेद वेदांग पारग ब्राह्मणों के नाम आते हैं (इ ए १९ पृ २ ५) तथा बरकपुर दानपत्र में षडङ्गाध्यायिने ब्राह्मण को अग्रहार देने का वर्णन मिलता है (ए इ १९ पृ २८४) गोविन्दपुर के ताम्र पत्र में निम्न श्लोक द्वारा वेदांग के विषयों के अध्ययन की चर्चा की गई है—

सत्कल्पश्रवणा श्रुति प्रणयिन शिक्षाभिरूपाञ्चिता
सम्यग्गीतिपर्यस्तियो मितश्च विधया छन्दों विधो साधव
ख्याता व्याकरण क्रमेण निपुणामटुभ्यवि पौकना
देवाङ्ग प्रतिमा पदव भूवनेते बिभ्रति भ्रातरः
(ए इ २ पृ ३३३)

अभिलेखों का अध्ययन इस बात को स्पष्टतया प्रकट करता है कि व्याकरण

तथा ज्योतिष का अध्ययन तथा अध्यापन वेदाग विषयो मे सबसे प्रमुख था। व्याकरण सभी शास्त्रो को बोधगम्य करता है इसलिए उसका पढना नितात आवश्यक था। ज्योतिप के पण्डित को नैमित्तिक की सज्ञा दी गई थी। गहडवाल प्रशस्तियो में नैमित्तिक पदाधिकारियो की सूची मे मिलता है (ए इ ४ पृ० १२२, भा. ७ पृ० ९९ तथा भा १८ पृ० २२२) उडीसा के भुवनेश्वर लेख मे ब्राह्मण को सिद्धात, तत्र, फलसहिता तथा व्याख्या का ज्ञाता बतलाया गया है (ए इ भा० ६ पृ० २०६) तथा बगाल की प्रशस्ति मे दामोदर शर्मन पाच सिद्धान्त का पडित कहा गया है। ज्योतिप मे पुलिश (पौलिश), रोमक, वशिष्ठ, सूर्य (सौर) तथा पितामह (पैतामह) को ज्योतिप का पाच सिद्धान्त मानते हैं। इस तरह ज्योतिष को सासारिक विषय मान कर पढते और राजदरबार मे ज्योतिषी प्रतिष्ठा पाता था। अन्य चार-कल्प निरुक्त, शिक्षा तथा छद का नाम लेखो मे नही मिलता। परन्तु इससे यह अनुमान नही किया जा सकता कि वेदाग मे व्याकरण तथा ज्योतिष दो ही विपयो की शिक्षा दी जाती होगी और अन्य चार पढ़े न जाते होगे। छद तथा शिक्षा के अभाव मे वेद मन्त्रो का उच्चारण कठिन होता है तथा निरुक्त बिना मन्त्रो का अर्थ समझना सम्भव नही है। यह काल वैदिक यज्ञ तथा अध्यापन का युग था इसलिए वेदाग के सभी अगो पर विद्यार्थियो का ध्यान रहता होगा। पूर्व मध्ययुग मे अनेक स्मृतियो की रचना हुई थी। इसलिए धर्मशास्त्र (कल्प) के ज्ञान को पूर्व पीठिका मानना असगत न होगा। यह कहना उचित होगा कि वेदाग का अध्ययन भी ब्राह्मणो के लिए प्रमुख हो गया था।

अध्ययन के अन्य विषयो मे षड्दर्शन को भी प्रधान माना गया है और लेखो मे प्रत्येक दर्शन का पृथक-पृथक नाम उल्लिखित है। षड्दर्शन से न्याय, मीमासा, साख्य, योग, वैशेषिक तथा वेदान्त का बोध होता है (ए० इ० ११ पृ० ३११) रीवा के लेख मे काशी के ब्राह्मण को वेदान्त मीमासा तथा योगदर्शन का पडित कहा गया है (ए० इ० १९ पृ० २९५) लेकिन वही प्रतिहार वंशी बानगढ की प्रशस्ति मे मीमासा तथा तर्कविद्या (न्याय) मे पारगत माना गया है (ए० इ० १४ पृ० ३२५) पाल लेखो मे इसी तरह का वर्णन मिलता है कि दानग्राही ब्राह्मण मीमासा व तर्क विद्या (न्याय शास्त्र) का ज्ञाता था (ए० इ० १५ पृ० २९५ भा० १४ पृ० ३२५ इ० ए० १४ पृ० १६८ भा २१ पृ० १६८ भा २१ पृ० ९७—मीमासा व्याकरण तर्कविद्याविदे) मुगेर लेख मे वेदान्त का उल्लेख है (इ० ए० १५ पृ० ३०७)। इससे प्रकट होता है कि षड्दर्शन मे न्याय, मीमासा तथा वेदान्त का अध्ययन अध्यापन

अधिक प्रचलित था। साहित्य के इतिहास से इसकी पुष्टि होती है। यह विदित है कि मिथिला के वाचस्पति मिश्र ने न्याय ग्रंथ की रचना की। मीमांसा में भी कुमारिल भट्ट (ई) सर्व प्रसिद्ध है। कुमारिल तथा उनके शिष्यों ने अनेक टीकाएं तथा निबंध तैयार किया। वेदान्त विद्वानों में शंकर और गौड़पाद के नाम उल्लेखनीय हैं।

प्रशस्तियों में उपवेद—गान्धर्ववेद आयुर्वेद धनुर्वेद—का सीधा वर्णन नहीं है पर यत्र-तत्र उल्लेखों से तात्पर्य निकाला जा सकता है कि इन विषयों की भी शिक्षा दी जाती थी। जहाँ तक संगीत की शिक्षा का प्रश्न है मौर्य सम्राट अशोक ने इसे निरुत्साहित किया। प्रथम शिला लेख में ही वह 'न च समाजो कतव्यो बहुकं हि दोसं समाजम्हि" का आदेश देता है कि संगीत तथा आमन्त्रण समाज एकत्रित न करना चाहिए। सामान्य जनता तो इसके विपरीत थी अतएव उसके मरते ही संगीतमय समाज का आयोजन होने लगा। भारहुत की वेदिका पर नृत्य का दृश्य है और उस स्थान पर लेख खुदा है जिसमें विभिन्न अप्सराओं के नाम मिलते हैं। गुप्त लेख में समुद्रगुप्त गान्धर्व विद्या में निपुण कहा गया है जिसने तुम्बरु तथा नारद को संगीत में लज्जित कर दिया था (गान्धर्व ललितैर्व्रीडित-त्रिदशपति-तुम्बरु नारदाद्यैः—प्रयागस्तम्भ लेख) प्रथम कुमारगुप्त के मंदसोर वर्णन है कि रेशम के श्रेणी के सदस्य संगीत में भी दक्ष थे। सामवेद की शिक्षा भी जनता के संगीत प्रेम की बात स्पष्ट करती है। मंदिरों की दीवारों पर वाद्य तथा नृत्य के अनेक प्रदर्शन मिलते हैं और मंदिरों के एक कक्ष को नट मण्डप (नृत्य मण्डप) कहते थे जो प्रशस्तियों के उल्लेख को पुष्ट करता है।

आयुर्वेद की शिक्षा पर भी अधिक ध्यान दिया जाता था। अशोक न दूसरे शिला लेख में दो प्रकार की चिकित्सा का उल्लेख है—मनुष्य चिकित्सा व पशु चिकित्सा। मनुष्यों के साथ पशु चिकित्सा पर राजा का ध्यान यह ध्यान करता है कि आयुर्वेद की शिक्षा ऊँची श्रेणी की थी। उसमें यह भी लिखा है कि जिस स्थान पर जो दवाएं न थी वह भेजी गई तथा जड़ी बूटी के पौधे भी लगाए गए थे (मूलानि फलानि यत यत नास्ति सर्वत हारापितानि रोपापितानि) मध्ययुग के महत्वाल लेखों में भिषग् (चिकित्सक) का उल्लेख मिलता है। (नमीची ताम्रपत्र—ए इ मा ४) चन्देल राजा परमर्दि के लेख में वद्य का नाम पदाधिकारियों की सूची में उल्लिखित है (ए इ भा ४ पृ १०) पालवमी लेख मे भषज्य (दवा) धर्म का उल्लेख भिक्षुओं के दान (दवा का व्यय) सम्बन्ध में किया गया है (इ ए १५ पृ) देवपाल के

नालंदा ताम्रपत्र मे भी भिक्षुओ के लिए भोजन, वस्त्र (चीवर) तथा औषधि (भेषजादि) के प्रबन्ध निमित्त दान का वर्णन है (ए० इ० १७ पृ० ३२२ भा० २० पृ० ४४) अतएव इन सभी विवरणो के आधार पर आयुर्वेद के पठन-पाठन का अनुमान लगाया जा सकता है।

धनुर्वेद की शिक्षा सम्भवत राजकुमारो मे ही सीमित थी। सेना मे इन शास्त्रो का प्रयोग पूर्ण ढग से हुआ करता था। जनसाधारण मे भी इसके प्रति अभिरुचि थी। गुप्त युग मे सम्भवत इस विद्या का अभ्यास किया जाता था। प्रयाग प्रशस्ति मे "परशु—शर—शन्कु-शक्ति—प्रसागितोमर" आदि शस्त्रो के नाम उल्लिखित हैं। इसी ने धनुर्धराकित स्वर्ण मुद्राएँ प्रचलित की जो शासक का धनुर्विद्या से प्रेम प्रकट करता हैं। प्रथम कुमार गुप्त के मदसोर लेख मे वर्णन मिलता है कि श्रेणी के सदस्य धनुर्वेद के भी ज्ञाता थे—श्रवण सुभगधनुर्वेद्य दृढ परिनिष्ठिता, सुचरित शतासङ्गा केचिद्विचित्र कथाविद (मदसोर की प्रशस्ति का० इ० इ० ३ पृ० ८१) गुप्तसम्राट् भी कुशलधनुर्धारी थे, यह उनके सिक्को के देखने से स्पष्ट हो जाता है। समुद्रगुप्त से बुधगुप्त तक धनुर्धारी प्रकार के सिक्के अत्यन्त लोकप्रिय थे, इससे यह झलकता है कि धनुर्वेद की शिक्षा मे लोगो का प्रेम था। सूर्य की प्रतिमा मे दो स्त्रिया (उषा प्रत्यूषा) धनुष चलाती प्रदर्शित की गई हैं। देवताओ का आयुध समझ कर दुर्गा की प्रतिमा के हाथो मे धनुषबाण प्रदर्शित किया गया है। खेद है कि प्रशस्तियो मे इस उपदेश के सम्बन्ध मे अधिक चर्चा नही मिलती।

सस्कृत साहित्य की शिक्षा के सम्बन्ध में विशेष कहने की आवश्यकता नही है। ईसवी सन् की दूसरी सदी से प्राय अधिक लेख जनता के लिए सस्कृत में ही लिखे गए। इतना ही नही गुप्तकाल मे तो मुद्रालेख भी छदबद्ध सस्कृत मे अकित कराए गए। अतएव यह कहना उचित होगा कि सस्कृत भाषा की शिक्षा सभी वर्गो को दी जाती थी। सर्वसाधारण इसके द्वारा सारा कार्य करते रहे किन्तु दु ख तो यह है कि इस साहित्य के सम्बन्ध मे लेख शान्त है। सस्कृत साहित्य के प्रकाण्ड विद्वान, कवि तथा लेखको ने ग्रथ लिख कर साहित्य की अभिवृद्धि की तथा जनता के ज्ञान को बढाया।

अभिलेखो के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि चार प्रकार की हस्तकला का ज्ञान लोगो को दिया जाता था। वास्तुकला (Architecture) तक्षण कला (Sculpture) ढालना (Casting) तथा खोदना (Engraving)। प्राचीन समय के असख्य मदिर स्तूप तथा वेदिका की स्थिति से यह स्वय सिद्ध है कि भवन निर्माण का ज्ञान कारीगरो को था। राजपुताना के एक

हस्तकला की शिक्षा

लेख में ऐसे कारीगरों—चक्रधिप तथा उसके पुत्र—के नाम मिलते हैं जो कुशल सूत्रधार थे। हर्ष शिला लेख (१ वीं सदी) में निम्न प्रकार का वर्णन आता है—

श्रीरमप्रसुत ख्याता सूत्रधारीय चक्रधिप
विश्वकर्मेव सर्वज्ञो वास्तु विद्या
येन निर्मितमिदं मनोहरं शंकरस्य भवनं समस्तपम्
(ए इ २ पृ १२१)

उत्तरी भारत में मंदिर तथा प्रतिमाओं का निर्माण पर्याप्त संख्या में हुआ। गुप्तयुग से पूर्व के भवन निर्माण का उल्लेख तो नहीं पाया जाता परन्तु सांची वेदिका पर अंकित लेख दानकर्ताओं का नाम उपस्थित करते हैं। तोरण पर खुदे भवन दुर्ग आदि का प्रदर्शन इस कार्य का अनुमान कराता है कि समाज में लोगों को भी भवन या दुर्ग निर्माण से रुचि थी। वणिक के नगर शिलालेख में वास्तुविद्या में निपुण व्यक्तियों के नाम मिलते हैं—श्री विश्वमान सूत्रधार वहन द्वोत्पन्न सुर्वधर्म। मैना धर्मभिः सूत्रधारस्य कुशले रूपकर्म निपुण वास्तुविद्या पारग (भारत कौमुदी भा १ पृ २७१)

इसके अतिरिक्त प्रतिमा निर्माण की कला में भी अनेक व्यक्ति दक्ष थे। हिन्दू जैन तथा बौद्ध देवी देवताओं की अनगिनत मूर्तियां प्राचीन समय में तैयार की गई थी। पूर्वमध्ययुगी बौद्ध प्रतिमाओं पर राजाओं की शासन तिथि अथवा निम्नपद खुदा मिलता है—

ये धर्म्मा हेतु प्रभवा हेतुं तेषां तथागतो ह्यवदत्
तेषां च यो निरोध एवं वादी महाश्रमण।

खेद है कि कलाकारों के नाम कहीं नहीं मिलते। केवल तिब्बत इतिहासकार तारनाथ ने नालन्दा के प्रसिद्ध कलाकार धीमान का नामोल्लेख किया है जो अपने पुत्र बिटपाल के साथ धातु प्रतिमा के ढालने में लगा रहता था। प्रस्तर प्रतिमाओं की वास्तविक अनुकरण धातु मूर्तियों में दृष्टिगोचर होता है (ए इ १४ पृ १९९) अतएव यह कहना उचित होगा कि प्रतिमा निर्माण की कला ऊंची श्रेणी तक पहुंच गई थी।

गुप्तयुग के पश्चात अधिकतर लेख ताम्रपट्टिकाओं पर उत्कीर्ण किए गए थे जिसका मुख्य कारण यह था कि दानग्राही उस शासन को सुरक्षित रखता था। वह ताम्रपत्र उसके बचाव के लिए परमावश्यक राजकीय आज्ञापत्र था। उसी के अनुसार दानग्राही के उत्तराधिकारी अग्रहार भूमि का उपभोग करते थे। उस लेख को पट्टिका पर उत्कीर्ण करने की कला सब को ज्ञात न थी। थोड़े से कला-

कार उसे खोद सकते थे। बगाल के एक लेख मे मगध का कलाकार सोमेश्वर निम्न प्रकार से वर्णित किया गया है।

शिल्पविन मागध कामी तन्मना वर्ण्णभक्तिभि
सोमेश्वरो लिखदिमाम् प्रशस्ति स्वामिव प्रियाभ् ।

(सिलिमपुर लेख ए० इ० १३ पृ० ४२)

अन्य प्रशस्तियो मे भी कलाकार का नाम (लेखो के) अत मे मिलता है। महीपाल के लेख मे—इम शासन उत्कीर्ण श्री महीधर शिल्पिना-वाक्य मिलता है (ए० इ० १४ पृ० ३२३) कई लेखो के उद्धरणों से यह प्रकट होता है कि सुन्दर अक्षर लिखने के लिए विशिष्ट शिल्पी बुलाए जाते थे। सर्व साधारण के वश की वात न थी कि लेख सुन्दर रीति से उत्कीर्ण किए जाय । यही कारण है कि कुशल कलाविद् (शिल्पी) का नाम गर्व के साथ लिया जाता था। निम्नलिखित उद्धरणो से यह कथन स्पष्ट हो जाता है। पाह्लण शिल्पी का वणन इस प्रकार है।

रजपालस्य पुत्रेण पाह्लवेण च शिल्पिना
उत्कीर्णा वर्णघटना वैदग्वी विश्व कर्मणा

(ए० इ० २० पृ० १३१)

नागवर्म नामक शिल्पी के विषय मे भी कहा गया है कि वह खोदने की कला में निपुण था।

यशोवर्मसुतेनेय साधुना नागवर्मणा
रम्या प्रशस्तिरूत्कीर्णा कला कौशलशालिना।

(धनिक की नगर प्रशस्ति-भारत कौमुदी भा० १ पृ० २७६)

इसी तरह कई उदाहरण उपस्थित किए जा सकते हैं—

लिपिज्ञान विधिज्ञेन प्राज्ञेन गुण शालिना
सिहनेय समुत्कीर्णा सद्वर्णारूप शालिना

(ए० इ० १ पृ० १४७)

उत्कीर्णा सोमनाथेन टङ्क विज्ञान शालिना
उत्कीर्णा प्रचुरसा प्रशस्तिरियमक्षरै रुचिरै ।

(ए० इ० २६ पृ० २६३ भा १० पृ० ४४, भा० १ पृ० ८१)

इन सभी उद्धरणो का भाव यह है कि ७ वी सदी के वाद लेख उत्कीर्ण करने की कला सिखलाई जाती थी। विशिष्ट व्यक्ति ही कुशल शिल्पी होकर ताम्र-पटिटकाओ पर प्रशस्ति खोदा करता था।

अभिलेखों की विभिन्न भाषाएं

प्राचीन लेखों की लिपियों के सम्बन्ध में ऊपर कुछ कहा जा चुका है। लिखने की कला के साथ साथ भाषा के सम्बन्ध में भी विचार करना आवश्यक प्रतीत होता है। भाषा वह है जो हम बोलते हैं। पुराने समय पालि में प्रचलित भाषा का ही लेखों में स्थान दिया गया होगा। परन्तु साहित्य का सहारा न लेकर अभिलेखों की भाषा विचारणीय प्रश्न है। साधारणतया लोगों को प्रशस्तियों की भाषा सम्बन्धी ज्ञान अपूर्ण सा है। पालि का नाम सभी लोग जानते हैं और इसी को बुद्ध धर्म-ग्रंथ तथा अशोक के धर्मलेखों की भाषा मानते हैं। आज २५ वर्ष पहले मगध में जो भाषा बोली जाती थी उसका नाम 'मागधी' था। बुद्ध से सर्व साधारण की भाषा होने के कारण इसी मागधी का प्रयोग किया जिसे अशोक ने धर्म लेखों में प्रयुक्त किया था। चुल्लवग्ग (५, ३३ १) में ऐसा कथन आता है कि भगवान ने लोगों को अपनी भाषा में बुद्ध वचन सीखने की आज्ञा दी—अनुजानामि भिक्खवे सकाय निरुत्तिया बुद्ध वचनं परियापुणितुं। कच्चायन व्याकरण में इसका निम्न प्रकार उल्लेख है—सा मागधी मूलभाषा सम्बुद्धा चापि भासरे (भगवान के बोलने की मूलभाषा को मागधी नाम दिया गया था) सामंत पसादिका के समासम्म बुद्धेन वुत्तपकारो मागध को वोहारो" तथा विसुद्ध मग्ग के 'मागधिकाय सब्ब सत्तानं मूलभासाय उद्धरणों से यह स्पष्ट प्रकट होता है कि बुद्ध ने मागधी में ही अपना प्रवचन आरम्भ किया था। अशोक ने उसी मागधी का प्रयोग धर्म लेखों में किया। इसलिए राजा शब्द के स्थान पर लाजा प्रयुक्त मिलता है जैसे एग्यारहवें प्रधान शिलालेख और सातवें स्तम्भ लेख में 'देवानं पिये पियदसी लाजा हेवं आहा' उल्लिखित है। इसका अर्थ यह नहीं कि राजा शब्द का प्रयोग सदा के लिए स्थगित कर दिया गया था। मागधी का प्रयोग प्रायः सर्वत्र (अशोक के साम्राज्य में) होता रहा केवल मगध तथा मथुरा के मध्य भाषा को अर्द्ध मागधी कहा गया है जिसमें र अथवा ल का प्रयोग नहीं मिलता। पश्चिमी भारत में र तथा स का ज्ञान लोगों को था।

अशोक के पश्चात् मागधी भाषा का नाम प्रचलित न रहा परन्तु पालि नाम से यह भाषा प्रसिद्ध हुई। पालिग्रंथों का इतिहास यह बतलाता है कि अशोक के समय में भी पालि का ज्ञान था। बराट का लेख (भाब्रू धर्म लेख) बतलाता है कि विनय तथा सुत्त पिटकों का वर्गीकरण हो गया था। परन्तु मौर्ययुग के पश्चात् पालि का कुछ दूसरा रूप मिला है। कला के आधार पर यह ज्ञात है कि शुंगकाल में

जातक का प्रदर्शन भारहुत तथा साची की वेदिका तथा तोरण पर क्रमश हो चुका था। भारहुत के जातक प्रदर्शनो का नाम भी पालि मे व्यक्त किया गया है। (Levelling of the sculptures) उन सक्षिप्त पालि लेखो मे सुत्तिक (सूत्त का व्याख्याता) पचने कायिक (पाच निकायो का ज्ञाता) तथा पेटकिन (पिटक को जानने वाला) शब्दो का प्रयोग मिलता है। अतएव यह कहना उचित होगा कि ईसा पूर्व तीसरी सदी के बौद्ध सगीति मे सभी ग्रथो का अतिम रूप तैयार न हो सका। अशोक के पश्चात ही पालि साहित्य का सृजन सम्भव मालूम पडता है। पालि मे र का सर्वत्र प्रयोग है तथा मागधी की भी झलक है। पालि शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम (५ सदी मे) बुद्ध घोष के ग्रथ मे मिलता है जहा इसे दो अर्थो मे प्रयुक्त किया गया है (१) बुद्ध वचन या (२) त्रिपटक (बौद्ध साहित्य) बुद्धघोष की जीवनी मे उल्लेख आता है कि उनके गुरु ने बुद्ध की कथाओ को सिहली से मागधी मे रूपान्तर करने की आज्ञा दी। जिस भाषा मे सिहली कथाओ का रूपान्तर हुआ वही पालि मानी जाती है—

कता सिहल भासाय सीहलेसु पवत्तति
त तत्थ गन्त्वा सुत्वात्व मागधाना पवसति
(महावस परि० ३७)

यानी मागधी का ही नाम पालि था। सस्कृत भाषा मे पालि का अर्थ पक्ति भी है लेकिन दक्षिण मे इससे यह भाव प्रकट होता है "उन ग्रथो की पक्तिया" जिसमे बुद्ध के मूल वचन सग्रहीत हैं।

डा० वेलसर पालि को पाटलि का अशुद्ध रूप मानते है जिसे (पाटलि को) पाटलिपुत्र की भाषा कहते थे (इ० हि० क्वा० भा० ४ पृ० ७७३) पालि का अर्थ यह भी मानते हैं कि वह गद्य विना विराम के शीघ्रता से लिखा जाय। जैसा चुल्लवग्ग का उद्धरण दिया गया है। 'परियाय' शब्द कई वार त्रिपटक मे प्रयुक्त है। अगुत्तर निकाय मे परियाय शब्द बार बार आता है (धम्म परिया-योति इम धम्म परियाय, अय भक्ते धम्मपरियायोति)। अशोक के भाब्रू लेख मे "इमानि भते धम पालियायानि———भगवता बुधेन भासिते एतानि भतेधम पलियायानि" ऐसा उल्लेख आता है। इससे तात्पर्य यह निकलता है कि पलियाय अथवा परियाय शब्दो मे बुद्ध के उपदेश का भाव निहित है। दीघ निकाय मे भी परियाय का अर्थ बुद्धवचन समझा गया है "भगवता अनेक परियायेन धम्मो पकासितो" यदि शब्दो के रूपान्तर का क्रम देखा जाय तो पता चलता है कि परियाय, पलियाय मे वदल गया जो कालान्तर मे पलीयाया अथवा पालीयाय

बन गया। पालि शब्द अंतिम पालिभाष का संक्षिप्त रूप है। भाषा शास्त्रियों ने भी परियाय पंक्ति पाल पल्ली पालि आदि शब्दों को एक ही श्रेणी में रखा है। ऐसा जान पड़ता है कि बुद्ध के परि निर्वाण के बाद पाली (पालि) शब्द का प्रयोग उस भाषा विशेष के लिए किया गया जिसमें उन्होंने उपदेश दिया था। पालि को मागधी का उपनाम मान सकते हैं जिसे अशोक के धम्मलेख में पाते हैं। अतएव मगध ही पालि का जन्म स्थान था। मागधी में कुछ स्थानीय सम्मिश्रण होकर पालि भाषा का प्रचार हुआ। अन्त में पालि शब्द के विषय में तीन विभिन्न मतों का उल्लेख करना आवश्यक जान पड़ता है। अतः कहा गया है यह शब्द निम्न रूप में—

पङ्क्ति— पन्ति—पत्ति-पठि-पल्लि-पालि विकसित हुआ। संस्कृत में इसका अर्थ पंक्ति से है जिसे बौद्ध ग्रंथ अभिधानप्प दीपिका में भी इसी अर्थ (पंक्ति) में प्रयुक्त किया गया है (पालि-पंक्ति बचनं पन्ति पालि) दूसरा मत यह है कि पालि शब्द पल्लि से बना जिसका (पल्लि) का अर्थ है ग्राम। यानी ग्राम में बोली जाने वाली भाषा को पालि नाम दिया गया और यह नगर की भाषा संस्कृत से भिन्न थी। तीसरा मत मेक्समूलर का था और वह पालि का सम्बन्ध पाटलि-पुत्र की भाषा से मानते हैं। परन्तु यह मत मान्य नहीं है क्योंकि मगध की भाषा पालि नहीं थी (जैसा ऊपर कहा गया है मागधी थी)। इन समस्त विचारों को सामने रखते हुए भी पालि शब्द की व्युत्पत्ति तथा विकास विवाद-ग्रस्त प्रश्न है।

पालि का स्थान

पालि के जन्म-स्थान के विवेचन में न जाकर यह कहा जा सकता है कि अधिकतर विद्वान मागधी को ही इसका आधार मानते हैं। भगवान बुद्ध ने अपने धर्म प्रचार के लिए किसी विशेष भाषा का निर्देश नहीं किया। उनका उपदेश बोलचाल की भाषा (पालि—मागधी) में ही सीमित रहा। पालि में ४१ वर्ण हैं जिसमें तालव्य श या मूर्धन्य ष नहीं पाया जाता। ऐ औ विसर्ग रेफ का पालि में स्थान नहीं है। पालि बोलचाल की भाषा होने से संस्कृत से सरल थी। उस समय की बोली को प्राकृत का भी नाम दिया जाता है। कुछ विद्वान प्राकृत शब्द को प्रकृत (आधार) से बना मानते हैं। अतः प्राकृत भाषा तो संस्कृत की उत्तराधिकारिणी हो जाती है। संस्कृत (old-Indo-Aryan language) के बाद ही प्राकृत का प्रचलन हुआ जो स्थान तथा काल की विभिन्न अवस्थाओं में परिवर्तित होती रही। यद्यपि यह पालिमूह [दक्षिण बौद्ध धर्मग्रंथ अशोक के धर्मलेख तथा अन्य मुद्रा लेख] से कुछ भिन्न

है परन्तु साधारण परिभाषा मे इसे जनसाधारण की बोली ही मानते है जो व्याकरण के नियमो से सीमित नही है। महायान बौद्ध सस्कृत ग्रथो मे प्राकृत का प्रयोग मिलता है। इन्डो-आर्यन समूह मे प्राकृत का स्थान मध्य मे रक्खा जाता है (Middle Indo-Aryan) जो ईसा पूर्व ६०० से ईसवी सन् ११०० तक प्रचलित रही। सस्कृत के साथ-साथ इसका प्रयोग गुप्तयुग मे भी होता रहा। शिष्ट लोगो की भाषा सस्कृत रही और उसकी प्रधानता गुप्त युग मे थी। तथापि जन साधारण प्राकृत बोलते थे। अशोक के समय मे प्राकृत ने सस्कृत को कुछ सीमा तक दबा दिया था जिसका प्रमाण अशोक के धर्म लेख हैं।

अशोक के पश्चात् दक्षिण भारत के शासक सातवाहन वशी के लेखो तथा मुद्रा लेखो मे प्राकृत का ही प्रयोग मिलता है। नासिक, कन्हेरी तथा कार्ले की प्रशस्तिया प्राकृत मे है। उनमे र तथा स के प्रयोग के साथ

पाकृत

अ के स्थान मे ओ का प्रयोग मिलता है। कार्लेलेख मे "रञो वासिठीपुतस सामिसिरि" (राज्ञ वासिष्ठीपुत्रस्य स्वामिश्री के लिए) प्राकृत मे लिखा है। ग्राम के लिए गामो उल्लिखित है। नासिक लेख मे प्राकृत मे "सातवाहन कुलयम पतियापन करस" (यानी सातवाहन कुलयश प्रतिष्ठापन करस्य) पदवी गोतमीपुत्र शातकर्णी के लिए प्रयुक्त है। इतना ही नही सातवाहन नरेशो के सभी प्रकार के सिक्को मे तथा सभी स्थानो मे प्रचलित सिक्को के मुद्रा-लेख प्राकृत मे ही मिलता है। उदाहरणार्थ—

रञो गोतमी पुतस सिरि यञ सातकनिसि (प्राकृत मे) मिलता है। जिसका सस्कृत रूप होगा—राज्ञ गोतमीपुत्रस्य श्री यज्ञ शातकर्णी। आध्रदेश, मध्य प्रदेश, मैसूर, पूर्वी घाट तथा सोपारा के भू भाग मे सभी मुद्रालेख प्राकृत मे हैं। इतना ही नही, हाल नामक राजा ने प्राकृत मे गाथासप्तसती नामक ग्रथ की रचना की। आश्चर्य तो यह है कि सातवाहन नरेश वैदिक धर्म के मानने वाले थे। शातकर्णी के सम्बन्ध मे उसकी रानी नायनिका ने लिखा है कि राजा ने अनेक वैदिक यज्ञ किया था। नासिक लेख मे एक ब्राह्मण (सर्वोत्कृष्ट ब्राह्मण) की पदवी गोतमीपुत्र शातकर्णी के लिए उल्लिखित है। शासन कार्य के लिए प्राकृत भाषा का ही प्रयोग किया। उच्च वर्ग की (शिष्ट लोगो की) भाषा होने पर भी सस्कृत का नाम भी नही मिलता। यह तो स्पष्ट है कि उस समय (दूसरी सदी मे) रामायण तथा महाभारत का अध्ययन होता था (जो ग्रथ सस्कृत मे थे) तभी तो प्रशस्तिकार ने गोतमीपुत्र शातकर्णी की शक्ति की समता मे देवता तथा मुनियो—केशव, राम, भीम, अर्जुन से की है और सगर, ययाति, जनमेजय के समान तेजस्वी कहा है। विद्वानो का मत है कि पहली

सवी ई स से एक तरह का मिश्रित संस्कृत का प्रचार हो रहा था जिस का स्वरूप महावस्तु तथा ललित विस्तर में पाया जाता है। पाणिनि तथा पतंजलि द्वारा प्रयुक्त संस्कृत ईसवी पूर्व सदियों में प्रचलित था। परन्तु लेखों में संस्कृत प्राकृत से प्रभावित था जो पुष्यमित्र के उत्तराधिकारी धन देव के अयोध्या लेख से स्पष्ट प्रकट है। यह कहा गया है कि जनता में ईसवी सन् के बाद संस्कृत का अधिक प्रचार होने लगा। महाक्षत्रप रुद्रदामन का एक शिलालेख (१५ ई) जूनागढ़ से उपलब्ध हुआ है जो शुद्ध संस्कृत में उत्कीर्ण है। उसमें "स्फुट लघु मधुर चित्रकान्त शब्द समयोदार अलंकृत गद्यपद्य का उल्लेख मिलता है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि पश्चिम भारत के शक नरेश संस्कृत से अनभिज्ञ न थे। परन्तु कारणवश उन्हें प्राकृत का प्रयोग करना पड़ा था। जूनागढ़ के अतिरिक्त नहपान कालीन सभी लेख (नासिक, जुन्नार, कार्ले आदि) तथा क्षत्रप मुद्रालेख प्राकृत भाषा में है। नासिक लेख में राजो क्षहरातस क्षत्रपस नहपानस लिखा है तो कार्ले में रञो क्षहरातस क्षत्रपस नहपानस खुदा है। जुन्नार में "राञो महाक्षत्रपस सामि नहपानस" उल्लिखित है। मुद्रालेख इस प्रकार है—

"राञो क्षहरातस नहपानस या रामोक्षहरातस नहपानस

पश्चिमी भारत के क्षत्रप सिक्कों पर निम्न प्रकार के प्राकृत शब्द सर्वत्र पाए जाते हैं—

प्राकृत	संस्कृत रूप
राञो	राज्ञ
सिरी	श्री
सामि	स्वामी
पुत्रस	पुत्रस्य
क्षत्रपस	क्षत्रपस्य
रुद्रसिंहस	रुद्रसिंहस्य

कालान्तर में क्षत्रप मुद्रालेख संस्कृत से प्रभावित होने लगे। सिंहसेनस्य (संस्कृत षष्ठी) महाक्षत्रपस (प्राकृतरूप) के साथ प्रयुक्त पाया जाता है। पुत्रस के बदले पुत्रस का हो है। सत्यदाम के स्थान पर सत्यदाम्न लिखा गया। इस तरह जनता में प्रचलित मुद्राओं पर सातवाहन तथा क्षत्रप नरेशों ने प्राकृत का ही प्रयोग किया था। केवल कुछ संस्कृत प्रभावित शब्द क्षत्रप मुद्रालेख में पाए जाते हैं।

उत्तर-पश्चिम भारत में अशोक के दोनों लेख-शाहबाजगढ़ी तथा मानसेरा प्राकृत भाषा में लिखे गए थे। उसके पश्चात् भारतीय यूनानी राजाओं ने

विदेशी होकर भी इसी भाषा को अपनाया। मिलिन्द का बिजौर का लेख तथा सभी शासको के खरोष्ठी मे मुद्रालेख प्राकृत मे हैं। "मिनेद्रस महरजस कटि अस दिवस" (बिजौर लेख) तथा "महरजस त्रतरस हेरमयस" (मुद्रालेख) उदाहरण के लिए प्रस्तुत किये जा सकते हैं। उनके उत्तराधिकारी पह्लव नरेशो के भी मुद्रा लेख प्राकृत मे ही अकित हैं जैसे—रजदिरजस महतस मोअस, महरजस रजरजस, महतस अयिलिपस। पहला लेख राजा मोग तथा दूसरा अयिलिप के मुद्रा पर खुदा है। गुदफरस के तख्ति वहाई लेख मे भी ऐसी ही भाषा पाई जाती है—महरयस गुदुव्हरस—वेशखस मसस—(महाराजा गुदफर—वैशाख मास—का० इ० इ० भा० २ पृ० ६२)

कुषाण राजा वीम कदफिस तथा कनिष्क समूह के शासको के अभिलेख या मुद्रालेख प्राकृत मे ही खोदे गए थे। वीमकदफिस के स्वर्ण मुद्रा मे निम्न तरह से मुद्रालेख अकित है—

"महरजस रजरजस सवलोग ईश्वरस महीश्वरस"

कनिष्क तथा उसके उत्तराधिकारी पेशावर मे राज्य करते रहे जहा पर (उत्तर पश्चिमी प्रात, पश्चिमी पाकिस्तान) अशोक के समय से ही खरोष्ठी का प्रसार था। उस लिपि मे जितने लेख हैं वह प्राय प्राकृत मे ही हैं। जैसा कहा गया है कि पहली सदी से ही सस्कृत का प्रयोग होने लगा था, इसलिए कनिष्क के प्राकृत लेख सस्कृत से प्रभावित हुए। कनिष्क के पजाब से उपलब्ध लेखो मे "अषडस मसस——कनिष्कस" प्राकृत भाषा मे हैं तो दूसरे मे "महरजस्य रजतिरजस्य देवपुत्रस्य कनिष्कस्य" मिश्रित सस्कृत+प्राकृत है। पूर्वीभाग (यानी उत्तर प्रदेश) मे कुषाण लेख सस्कृतमय मिले हैं। हुविष्क का मथुरा लेख (ए०इ० भा० २१) लखनऊ सग्रहालय के जैन प्रतिमा लेख (ए० इ० भा० १० पृ० ११२) तथा वासुदेव का मथुरा प्रतिमा अभिलेख सस्कृत मिश्रित प्राकृत मे हैं। इस तरह पता चलता है कि सस्कृत का प्रभाव बढ रहा था। बुद्ध धर्म मे भी महायान मत वालो ने सस्कृत को अपनाया। बौद्ध सस्कृत साहित्य के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि पालि का प्रचलन पुराना था हीनयान और महायान बौद्धो ने पालि मे साहित्य का सृजन किया। अशोक के भाब्रू लेख की चर्चा की गई है जिसके आधार पर धार्मिक तथा साहित्य कार्यों मे पालि का प्रयोग सिद्ध होता है। ईसा पूर्व तीसरी सदी लेकर ईसवी सन् की कई शताब्दियो तक पालि का प्रयोग सस्कृत के साथ मिलता है। ईसवी सन् की तीसरी सदी से सर्वत्र राजकीय अभिलेख सस्कृत मे उत्कीर्ण होने लगे जो क्रम गुप्तयुग से पूर्णरूपेण कार्यान्वित किया गया।

यह तो कहा जा चुका है कि रुद्रदामन के जूनागढ़ वाले शिलालेख में (ई स १५) प्रथम वर्ग के संस्कृत का प्रयोग मिलता है। चौथी सदी में गुप्त सम्राट समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति चम्पू भाषा में हरिषेण द्वारा लिखी गई जिसमें उसके दिग्विजय का वर्णन है।

संस्कृत

गुप्तवंशी अभिलेख मुद्रालेख तथा उत्तर-गुप्तयुग के समस्त अभिलेख व प्रशस्तियां संस्कृत भाषा में ही लिखी हैं। दक्षिण में वाकाटक, पल्लव राष्ट्रकूट तथा चोलवंशी लेख संस्कृत में खोदे गए थे। अतएव संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि तीसरी सदी से बारहवीं सदी तक भारतवर्ष में ताम्रपत्र या प्रशस्तियां संस्कृत में ही लिखी गई। आश्चर्य तो यह है कि गुप्तकाल में अभिलेखों के अतिरिक्त मुद्रा-लेख भी संस्कृत में लिखे गए और वह भी छंदोबद्ध मिले हैं। उदाहरण के लिए समुद्रगुप्त की दण्डधारी तथा प्रथम कुमार गुप्त के अश्वारोही मुद्रा पर उपगीति छंद में क्रमश 'समर-शत-वितत विजयी जितरिपुरजितो दिवं जयति" और 'गुप्तकुलामल चन्द्रो महेन्द्र कुमाजितो जयति' —अंकित हैं। द्वितीय चन्द्रगुप्त का सिंहनिहता प्रकार के सिक्के पर वंशस्थविल छंद में निम्न लेख मिलता है—

'नरेन्द्रचन्द्र प्रथितरथो रणे जयत्यजेयो भुवि सिंह विक्रम'

प्रथम कुमारगुप्त के खड्ग निहन्ता (गैंडा मारन वाला) प्रकार सिक्के पर श्लेषात्मक शब्द का प्रयोग है तथा मुद्रा लेख छंदोबद्ध भी है। खड्ग शब्द गैंडा तथा तलवार के लिए प्रयुक्त है। इसी प्रकार चांदी के सिक्कों पर छंदयुक्त लेख— 'विजितावनिरवनिपति कुमार गुप्तो दिवं जयति' उत्कीर्ण है।

इसी प्रकार के छंदोबद्ध लेख मध्यदेश मध्यभारत तथा मध्यप्रदेश में दो सौ वर्षों तक लिखे गए। तोरमाण मौखरि, हर्षवर्धन तथा कलचूरी रजत मुद्राओं पर वैसा ही लेख पाया जाता है। तात्पर्य यह है कि सर्वसाधारण जनता संस्कृत से विज्ञ थी। अतएव मुद्रा लेख पद्यमय तथा छंदमय अंकित किए गए। इसका यह अर्थ नहीं कि प्राकृत का प्रयोग लेख या साहित्य में समाप्त हो गया था। प्राकृत (वैयाकरणों ने जिसका विवरण दिया है) संस्कृत नाटकों में प्रयुक्त है। मध्य इन्डो आर्यन (Middle Indo Aryan) के वर्णनात्मक साहित्य में प्राकृत को स्थान मिल चुका था और उसमें पांच बोलियां सम्मिलित थीं—महाराष्ट्री शौरसेनी मागधी पैशाची तथा अपभ्रंश। भरत नाट्यशास्त्र तथा रुद्रट के काव्यालंकार में प्राकृत का प्रयोग है। उस युग के बृहत्तर भारत की खोतानी (खरोष्ठी लिपि में) भारतीय प्राकृत का उदाहरण उपस्थित करती है। इसी के साथ हिन्दू, बौद्ध तथा जैनियों द्वारा संस्कृत का प्रयोग पुराने इन्डो आर्यन (Old Indo Aryan) भाषा परिवार की याद दिलाता

है जो वैयाकरणों द्वारा पीढियो से सुरक्षित रक्खा गयी थी और वाद मे लोक-प्रिय साधारण साहित्य मे प्रयुक्त हुई । भारतीय सस्कृति का रक्षण इन्ही भापाओ के (सस्कृत तथा प्राकृत) द्वारा हुआ है ।

भारतीय अंकों का विकास

मनुष्य की बुद्धि के सबसे महत्वपूर्ण (दो कार्यों की) कल्पना हमारे सम्मुख आती है। जिसमे ब्राह्मी लिपि तथा वर्तमान शैली के अक का नाम लिया जा सकता है। भारतीय लिपि का विकास लोगो को आश्चर्य में डाल देता है। भारतवर्ष की लिपि हजारो वर्षों से अपना स्थान वना चुकी थी, वैसी उत्तम, स्थिति किसी अन्य लिपि को प्राप्त नही थी। ब्राह्मी के ध्वनि तथा अक्षरो मे साम्य है यानी पूर्णरूपेण वैज्ञानिक ढग पर विकसित हुई। इसी तरह अक के भी मूल्य आके जा सकते हैं। आरम्भ मे ससार की अक विद्या अवैज्ञानिक थी। कही अक्षर भिन्न अक के लिए काम मे लाए जाते तो कही १-९ तक के पृथक-पृथक चिह्न थे। भारत मे भी अको का प्राचीन क्रम यही था। इस जटिल अक-क्रम से गणित विद्या मे विशेष उन्नति नही हो सकती थी, अत यहा के विद्वानो ने वर्तमान अक-क्रम को निकाला जिसमे १ से ९ तक के नव अक एव खाली स्थान सूचक शून्य—इस दस चिह्नो से अक विद्या को पूर्ण बनाया। भारतवर्ष के इस अक-क्रम को ससार भर ने सीखा और वर्तमान समय मे गणित तथा तत्सम्वन्धी अन्य शास्त्रो की उन्नति हुई।

शिला लेख, दानपत्रो तथा सिक्को के देखने से पता चलता है कि लिपियो की तरह प्राचीन तथा अर्वाचीन अको मे भी अन्तर है। आकृति के अतिरिक्त अक लिखने मे भी भेद है। प्राचीन ढग मे शून्य के लिए कोई स्थान न था। दहाई, सैकडे, हजार के लिए पृथक चिह्न थे। किन्तु नवीन शैली पूर्ण है जिसमे शून्य का व्यवहार तथा स्थान का मूल्य ज्ञात है।

प्राचीन अक

प्राचीन काल मे अक १ से ९ तथा १०, २०, ३०, ४०, ५०, ६०, ७०, ८०, ९० तक के नव दहाइयो के लिए नव और १०० के अलग-अलग चिह्न थे। एक हजार का भी पृथक चिह्न था। लाख करोड के लिए अभिलेखो मे कोई चिह्न नही मिलता। ११ से ९९ तक लिखने का क्रम ऐसा था कि पहले दहाई के अंक-चिह्न वाद मे इकाई का अक लिख दिये जाते थे। जैसे २५ के लिए २० का चिह्न और ५ का। ९३ के लिए ९० के चिह्न के साथ ३ रखखा जाता। २०० से लिए १०० के चिह्न मे ऊपर मध्य या नीचे सीधी रेखा जोड दी जाती थी। ९९५ के लिए ९००, ९० तथा ५ के चिह्न काम मे लाए जाते

थे। १ २ ३ के लिए क्रमशः १ २ या ३ आड़ी लकीर का प्रयोग होता था जो बाद बदलकर वर्तमान १ २ ३ बन गया। ४ से १० तक के लिए चिह्न अक्षरों से मिलते जुलते हैं। यानी अक्षर लिखकर अंक व्यक्त किए जाते थे। उदाहरण के लिए ५ पु से ६ ह से ७ र की मात्रा से तथा ८ ट से मिलता है। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि सब अंक अक्षरों से ही बतलाए जाते थे। आरम्भ में अंकों का भी जन्म मौर्य काल से पाया जाता है।

भगवान लाल इन्द्र जी का मत था कि अंक अक्षर या अक्षरसमूह के सूचक हैं। पश्चिमी विद्वानों में बूलर तथा बर्नेल भी यह सिद्धान्त मानते थे। बेले का मत था कि भारत के अंक मिस्र या फिनिशिया से लिए गए (जैसा ब्राह्मी के सम्बन्ध में कहा गया है) पर गौ. ही. ओझा का मत था कि भारतीय अंकों की कल्पना ब्राह्मणों ने की। विदेशी चिह्न-अंक तो कठिन थे। १ से ९ तक नव खड़ी लकीर तथा ११ के लिए १० के चिह्न की बाईं ओर १ पड़ी लकीरें खींचते थे। पीछे से मिस्र वालों ने भारतीय अंक जैसा नवीन क्रम तयार किया।

ऊपर जैसा कहा गया है नवीन शैली में १ से ९ तक के लिए नव अंक तथा खाली स्थान का सूचक शून्य है। इसी से अंक विद्या का समस्त व्यवहार चलता है। इसमें प्रत्येक अंक संख्या के ही इकाई सूचक नहीं हैं परन्तु इकाई, दहाई सैकड़ा तथा हजार आदि स्थानों पर आ सकते हैं। यानी स्थान के मूल्य की नवीन कल्पना प्राचीन काल में उपस्थित की गई। इस तरह दाहिनी ओर से बाईं ओर अंक हटने से प्रत्येक अंक का स्थानीय मूल्य दस गुना हो जाता है। इसी को दशगुणोत्तर संख्या कहते हैं और वर्तमान काल में संसार भर का अंक क्रम यही है।

भारत में शब्द तथा अंक में तिथि का उल्लेख प्रशस्तियों में किया गया है। अशोक के रूपनाथ शिला लेख में २ +५ +६ लिखा है। मिलिन्द कालीन (ई. पू. ११५) शिनकोट लेख में ब्राह्मी में १४ के लिए १ +४ उपयुक्त नहीं है किन्तु ४+४+४+१+१ लिखा है। मथुरा अथवा पश्चिमी भारत के शक क्षत्रप लेखों में पुरानी शैली के अंक-क्रम से तिथियां लिखी हैं। ७१ के लिए ७ +१ (सोडास का लेख) २६ के लिए २ +४+१+१ (गुदफर का तख्त-बाही शिलालेख) ११४ के लिए १ +२ +१ +४ (कलवान ताम्रपत्र) १८ के लिए १ +४+४ (कनिष्क का मानिकियाला लेख) ४१ के लिए ४ +१ (चूनार का लेख) ८२ के लिए ८ +२ (चन्द्रगुप्त का उदयगिरि का गुफा लेख) १११ के लिए १ +१ +१ (प्रथम कुमार गुप्त का

घनैदह् ताम्रपत्र) तथा २२४ के लिए २००+२०+४ (दामोदरपुर का ताम्रपत्र) का तिथिक्रम यह् बतलाता है कि मौर्य युग से लेकर ई० स० छठी सदी तक प्राचीन शैली के अक प्रयुक्त होते थे जिनमे अक-स्थान-मूल्य का अभाव था ।

अक व्यक्त करने की प्राचीन भारतीय शैली

अक लिखने का इतिहास यह वतलाता है कि भारतीय अक को तीन भागो मे विभक्त कर सकते हैं । (१) खरोष्ठी अक (२) ब्राह्मी (३) शब्द तथा अक्षर । खरोष्ठी अक ईसवी पूर्व ४०० से तीसरी सदी तक कई अभिलेखो मे मिलते हैं जिनको भारतीय यूनानियो ने गान्धार प्रदेश मे उत्कीर्ण कराया था । ब्राह्मी अक अशोक से पहले के नही मिले हैं । सातवाहन राजा के नाना घाट लेख मे अधिक अक खुदे हैं। जिसमे १ से ९ तक के अक अकित हैं । शक वशी लेखो तथा मुद्राओ पर अधिक मात्रा मे अक खोदे गये थे। नासिक के गुहा लेख मे पर्याप्त परिष्कृत अक मिलते हैं। उन लेखो मे ९ से अधिक अक नही मिलते । शून्य के अभाव मे उन अको का स्थान मूल्य निश्चित नही किया जा सकता । प्रत्येक सँख्या को पृथक-पृथक अक लिखकर व्यक्त किया जाता था । तीसरी शैली शब्द तथा अक्षर द्वारा अक व्यक्त करने की थी । यह हिन्दुओ की पूर्ण वैज्ञानिक व्यवस्था थी । ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मस्फुट—सिद्धान्त मे अक के लिए शब्द का प्रयोग किया है। उदाहरण के लिए शक ८६७ लिखने के लिए गिरि (=७) रस (=६) तथा वसु (=८) शब्दो द्वारा उस सख्या को व्यक्त किया गया है । उन शब्दो को दाहिने से वाए पढा जाता था। उस स्थिति मे शब्द द्वारा पूर्णरीति से अक लिखने की परिपाटी काम कर रही थी। सर्वप्रथम कात्यायन श्रौतसूत्र में इसका प्रयोग हुआ परन्तु इस परिपाटी का जन्मदाता अज्ञात है। वराहमिहिर ने भी वृहत्सहिता (अध्याय ८) मे शब्दो द्वारा अक व्यक्त किया है (सख्या-७, अश्विन—२, वेद ४=४२७ शक काल) दिल्ली सग्रहालय के एक लेख से उपरियुक्त विषय को पुष्टि होती है। इसमे १३८४ विक्रम के लिए निम्न पद्य मिलता है (ए० इ० भा १ पृ० ९४)

> वेदवस्वग्नि चन्द्रार्क सख्येब्दे विक्रमार्क्कत
> पचम्या फाल्गुन सिते लिखित भौमवासरे

(वेद—४, वसु—८, अग्नि—३ तथा चन्द्र—१ को दाहिने से वांए पढने पर स० १३८४ हो जाता है ।)

वैदिक साहित्य को छोड कर ज्योतिप तथा गणित सम्वन्वी ग्रयो में सख्या

सूचक सांकेतिक शब्द मिलते हैं जो मनुष्य के अंग ग्रह, नक्षत्र आदि के संख्या पर से कल्पित किए गए थे। निम्न प्रकार के संकेत मिलते हैं—

०—आकाश (क्योंकि आकाश खाली होता है)
१—चन्द्र धरा आदि (जिनकी संख्या एक है)
२—नेत्र पक्ष बाहु आदि (जो दो ही मिलते हैं)
३—राम गुण लोक आदि (तीन समझे गए हैं)
४—वेद दिशा आश्रम (इनकी संख्या चार है)
५—पाण्डव रत्न आदि (जो गिनती में पांच हैं)
६—रस दर्शन (षट् रस या षड्दर्शन ६ हैं)
७—ऋषि वार (सप्तर्षि सात दिन)
८—मंगल दिग्गज (अष्टमांगलिक या आठ दिशाओं के हाथी)
९—ग्रह, निधि (नवग्रह या नवनिधि से ९ का बोध होता है)
१०—दिशा अवतार। (दस दिशा या दस अवतार)
११—रुद्र (रुद्र एग्यारह माने जाते हैं)
१२—मास राशि (बारह महीना या बारह राशि)
१५—तिथि (पक्ष में पंद्रह तिथियां होती हैं)
२४—गायत्री
३२—दंत (मनुष्य के बत्तीस दांत होते हैं)
इस तरह शब्दों से अंक बतलाने की परिपाटी पुरानी है।

आर्यभट्ट ने अक्षर द्वारा अंक लिखने की परिपाटी निकाली। फ्लीट का मत था कि उन्होंने यूनान से अनुकरण किया (ज रा ए सो १९११ पृ ७९५) परन्तु निम्नलिखित बातों से प्रकट होता है कि आर्यभट्ट ने किसी आर्य से पृथक जाति की नकल नहीं की। आर्यभट्ट ने व्यंजन से ही अंक को व्यक्त किया क्योंकि उनका मत था कि स्वर स्थायी नहीं रहते तथा व्यंजन में छिप जाते हैं। १ से ९ तक संख्या को अंक पत्की तथा इसके शून्य को शून्य बिन्दु (या शून्य) कहते थे। शून्य के सम्बन्ध में कहना कठिन है कि किस विद्वान ने इसे जन्म दिया या शून्य बिन्दु की कल्पना उसे सूझी। इसमें संदेह नहीं है कि अंक का स्थान-मूल्य भारतीय है और दशगुणोत्तर अंक क्रम को (दशमलव शैली) भारत से ही योरप तथा अरबवालों ने सीखा। इसीलिए अरबी में इसे हिन्दसे कहते हैं।

साहित्यिक तथा अभिलेखों के अध्ययन से यह प्रमाणित होता है कि ५ ई० से शून्य का प्रयोग भारत में होने लगा था जिससे अंकों के स्थान-मूल्य निश्चित

हो सका। आर्य भट्टीय के गणित पाठ मे वर्तमान अक प्रणाली का आरम्भ दिखलाई पडता है। वख्शाली (अक गणित) पोथी मे नवीन शैली के अक मिले हैं (यानी चौथी सदी मे इसका व्यवहार था) वराहमिहिर ने (छठी सदी) वृहत्सहिता मे अक पर लिखते समय शून्य का प्रयोग किया है। वाण ने वासवदत्ता के सम्वन्ध मे आकाश के तारे को शून्य के सदृश वतलाया है। ब्रह्मगुप्त ने (सातवी सदी) शून्य पर विचार किया है। ७वी सदी मे शकराचार्य के व्रह्मसूत्र की टीका मे इकाई तथा दहाई का उल्लेख मिलता है। गणितसार सग्रह (८३० ई०) मे लेखक ने शून्य पर अपना विचार व्यक्त किया है। श्री हर्ष ने नैपध चरित मे शून्य विन्दु कहकर शून्य का विवरण दिया है तथा दमयन्ती के कान की उपमा नव अक मे दी है (७-६९)। इस तरह साहित्य ग्रन्थो से पता चलता है कि पाचवी सदी के वाद शून्य की कल्पना गणित मे आ गई थी जिसके सहारे स्थान-मूल्य को निश्चित करने मे सरलता हो गई। सुधार द्विवेदी ने यह मत व्यक्त किया है कि शाके ४२० तक हिन्दुओ मे १ से ९ तक ही अक दिखलाने का प्रचार था (गणित का इतिहास पृ० ३८)।

दशमलव प्रणाली जहा तक अभिलेखो का सम्वध है नवीन शैली के अक कलचुरी सम्वत् ३४६ (=५९४ ई०) के गुर्जर लेख मे व्यवहृत दिखलाई पडते हैं। यही सव से प्राचीन लेख है जहा अंक स्थान-मूल्य की कल्पना वैज्ञानिक ढग पर मिलती है। इस तरह के अनेक लेख प्रकाश मे आए हैं जिनमे दसवी सदी तक नवीन शैली के अंक (स्थान मूल्य सहित) उल्लिखित हैं (इ० हि० क्वा० भा० ३ पृ० ११८) इससे पता चलता है कि छठी सदी से पहले भारतीय जनता स्थान मूल्य द्योतक अक क्रम से परिचित न थी। ग्वालियर के लेख (सम्वत् ९३३) मे शून्य स्पष्ट रूप से लिखा है। उस मे पचास वर्तमान अंक की तरह पाच पर शून्य लिख कर अंकित है। इन सभी प्रमाणो से विदित होता है कि दशगुणोत्तर अक क्रम भारतीय है तथा शून्य और अंक स्थान मूल्य के सिद्धान्त को पश्चिम वालो ने भारत से सीखा। यदि वर्तमान अंको के आकार पर विचार किया जाय तो पता चलता है कि नानाघाट तथा नासिक लेखो मे अंकित अंको से वर्तमान अक विकसित हुए हैं। इसका तात्पर्य यह है कि वर्तमान नागरी अंक व्राह्मी लेखो मे उल्लिखित ब्राह्मी अंको से विकसित हुए। नानाघाट (पूना के समीप) का लेख ई० पू० दूसरी सदी का है तथा नासिक गुहा लेख दूसरी सदी का। विकास का क्रम निम्न प्रकार से है। यानी

नागरी अंक १—अशोक के १ से (खडी लकीर से।)

नागरी अंक २—नानाघाट के २ (दो—पड़ी लकीर से)
३—नानाघाट के ३ (तीन पड़ी लकीर से ≡)
४—नासिक गुहा ४ से
५—म अक्षर से
६—अशोक के ६ से
७—नानाघाट के ७ से।
८—नासिक गुहा के ८ से।
९—नानाघाट
या
नासिक गुहा के ९ से
शून्य —वृत्त से या
नानाघाट के दस के चिह्न से (दस का चिह्न नागरी अंक —की तरह होता है)

ये सब चालुक्य परमार, कलचुरी लेखों से प्राप्त अंकों से मिलते-जुलते हैं। इस तरह यह ज्ञात होता है कि अंक लिखने की जो भी परिपाटी थी दसवीं सदी से उनका स्वरूप निश्चित हो गया और सभी सर्वथा नागरी अंक हो गए।

अध्याय ९

अभिलेखों में आर्थिक-विवरण

प्राचीन भारत मे न केवल आध्यात्मिक उन्नति पराकाष्ठा को पहुच चुकी थी किन्तु भौतिक क्षेत्र मे भी पर्याप्त प्रगति दृष्टि मे आती है। उस समय के अभिलेखों मे सामाजिक विषयो पर चर्चा करते समय आर्थिक वर्णन भी प्रशस्तिकार उपस्थित करता था। जनता द्वारा दान देने की प्रणाली से प्राचीन समय के वैभव तथा सुखी जीवन का अनुमान लगाया जा सकता है। धन तथा भूमि दान से लोगो की सतोशप्रद आर्थिक-स्थिति का परिज्ञान होता है। गुप्तकालीन एक लेख मे वर्णन आता है कि साम्राज्य मे कोई भी अति दरिद्र तथा दुखी न था—

आतो दरिद्रो व्यसनी कदर्यो दण्ड् न वा यो भृश पीडित स्यात्

(स्कन्द का जूनागढ लेख-का० इ० इ० ३ पृ० ५८)

दानपत्रो के विवरण से जनता की प्रचुर सम्पत्ति का ज्ञान हो जाता है। यद्यपि मौर्ययुग से लेखो मे किसी न किसी आर्थिक विषय का उल्लेख पाया जाता है परन्तु मध्ययुग से (७०० ई०) भूमिदान के सम्बन्ध मे कथित वार्ता से जनता की आर्थिक स्थिति स्पष्टतया ज्ञात हो जाती है।

भारतवर्ष सदा से कृषि प्रधान देश रहा है और जनता के जीविकोपार्जन का प्रधान साधन कृषि ही था। सभी प्रकार के अन्न तथा फल यहाँ पैदा होते थे जिनका नाम प्रशस्तियो मे मिलता है। यद्यपि अशोक ने फलो का नाम नही लिखा है परन्तु दूसरे शिलालेख मे निम्न उल्लेख से पता चलता है कि फलो के वृक्ष स्थान-स्थान पर लगाए गए थे—

मूलानि च फलानि च यत यत नास्ति सर्वत्र हारापितानि च

(दूसरा शिलालेख)

मौर्ययुग के पश्चात् प्रशस्तियो मे धर्म या विजय सम्बन्धी वर्णन मिलता है। मध्य

युग के आरम्भ से दान सम्बन्धी आज्ञा पत्रों में भोजन सामग्रियों का नाम भी यत्र-तत्र पाया जाता है। मालंदा के ताम्रपत्र में 'सम्यग् बहुभूत दधिमिः व्यञ्जनं सुकलमसम्' (ए इ २ पृ ४४) का वर्णन नाना प्रकार के व्यञ्जन युक्त भोजन का परिज्ञान कराता है। पालवंशी आमागाछी दानपत्र के वर्णन से प्रकट होता है कि नीची भूमि का दान उत्तम समझा जाता था ताकि उसमें खेती हो सके और वर्षा के जल से पृथ्वी उर्वरा हो जाय। (ए इ० १५ पृ २९७)। गहड़वाल लेखों में गमा आम्र महुआ (मधूक) आदि वृक्षों का वर्णन पाया जाता है (ए इ १६ पृ ११) इससे ज्ञात होता है कि अन्न तथा फल की पदावार में लोग लगे रहते थे। खेती का समुचित प्रबंध था। तात्पर्य यह है कि दानकर्ता कृषि योग्य भूमि को ही दान देता था ताकि दानग्राही खेती से अन्न उत्पन्न कर सके।

भूमि की सिंचाई की ओर राजा का भी ध्यान रहता था और लेखों में सिंचाई निमित्त झील नहर तालाब तथा बांध के निर्माण का वर्णन मिलता है।

मौर्ययुग से ही शासक सिंचाई का प्रबन्ध करता रहा। चन्द्र सिंचाई का प्रबंध गुप्त मौर्य ने काठियावाड़ में गिरनार पर्वत के नीचे एक विशाल झील बनवाया जिसकी उपयोगिता इतनी अधिक थी कि पिछले सम्राटों ने (४ वर्ष बाद) मरम्मत कर उस पर बांध बंधवाया। मेगास्थनीज ने भी सिंचाई के विषय में उल्लेख किया है। अर्थशास्त्र में तो मौर्यकालीन सिंचाई का विस्तृत वृतांत पाया जाता है (२।२१) ई सन् १५ के महाक्षत्रप रुद्रदामन के गिरनार लेख में उसी झील का सविस्तृत वर्णन मिलता है। [देखिए मूल लेख पृष्ठ संख्या ४४]

मौर्यस्य राज्ञः चन्द्रगुप्तस्य राष्ट्रियेण वश्येन
पुष्य गुप्तेन कारित अशोकस्य मौर्यस्य यवनराजन
तुषास्फेनाधिष्ठाय प्रणालीभिरलंकृत इत्य ।

लेख के आरम्भ में ही सुदर्शन नामक तालाब का वर्णन है जिसके चारों तरफ बांध बंधे थे। परन्तु समीप के पहाड़ से निकली नदियों से ऐसे वेग से पानी आया कि यह बांध टूट गया (सलिल विक्षिप्त जर्जरीकृतावदीर्ण क्षिप्ताश्म वृक्ष गुल्म लता प्रतानं आ नदी तलादित्युद्घाटितमासीत) इसलिए रुद्रदामन ने उस बांध की मरम्मत करवाई और तिगुना मजबूत बांध का निर्माण हुआ। यद्यपि इस कार्य में उसके मंत्रीगण विरोध करते रहे परन्तु अपने निजी धन से इस कार्य को उसने सम्पन्न किया (ए इ ८ पृ ४२—स्वस्मात्कोशा महता धनौघेन अनित महता च कालेन त्रिगुण-दृढतर-विस्तारायाम

सेतु विधाय) इस भाग मे उस तालाव से अत्यधिक सिंचाई होती रही, यही कारण है कि पाचवी सदी मे गुप्त शासक स्कन्द गुप्त ने भी उस सुदर्शन झील की मरम्मत कराई। जूनागढ के लेख मे निम्न प्रकार से वर्णन मिलता है—

अथ क्रमेणाम्बुद काल आगत
निदाघ-काल प्रविदार्य तोयदै
ववर्ष तोय बहु सतत चिर
सुदर्शन येन विभेद चात्वरात्
अपीहलोके सकले सुदर्शन
पुमा हि-दुर्दर्शनता गत क्षणात्
अ-जाति-दुष्टम्प्रथित तटाक
सुदर्शन शाश्वत-कल्प कालम्

(जूनागढ लेख का० इ० इ० ३ पृ० ५८)

तात्पर्य यह है कि जिस समय सुदर्शन झील को नदियो की वाढ ने नष्ट किया, उस समय के शासकों ने उस वाध की मरम्मत करवाई ताकि वह सदा सुदर्शन (देखने मे सुन्दर) वना रहे। उसकी उपयोगिता ही एक मात्र कारण थी। दक्षिण के सातवाहन नरेश पुलवावी के राज्यकाल मे सिंचाई के लिए तालाव वनाने का उल्लेख किया गया है। (ए० इ० भा० १४ पृ० १५५)

पूर्वी भारत मे जल के कारण नहर की कम आवश्यकता थी तथापि खारवेल ने हाथी गुम्फा लेख मे स्पष्ट रूप से लिखा है कि राज्याभिषेक के पाचवे वर्ष मे राजधानी तक नहर तैयार किया ताकि जनता लाभान्वित हो सके।

अघोटित तनसुलिभि वाय पणडि नगर पवेसयति

(ज० वि० ओ० रि० सो० भा० १३ व० १४ पृ० २२१ व १५०)

गुप्तयुग तक राजाओं का ध्यान नहर निर्माण की ओर था परन्तु ७ वी सदी से लेखो मे तालाव निर्माण का अधिक वर्णन पाया जाता है। मगध नरेश आदित्य सेन की स्त्री कोण देवी ने एक तालाव का निर्माण किया था जो सम्भवत सिंचाई के लिए तैयार किया गया था [तस्यैव प्रिय भार्यया नरपते श्री कोण देव्या सर-अपसद का लेख का इ० इ० भा० ३) पूर्वमध्ययुग की प्रशस्तियो तथा दानपत्रो मे जल के साथ अग्रहार भूमि का वर्णन आता है। इससे यह प्रकट होता है कि गहडवाल तथा चन्देल शासको ने तालाव तथा नहर के साथ भूमि दान में दी थी। दानग्राही का भी कार्य उससे सरल हो जाता तथा समय से खेतो की सिंचाई हो जाती थी। राजपुताने के एक चाहमान लेख मे प्रत्येक

अरहट की सिंचाई के लिए एक हाटक (हाथ अन्न का एक माप) अन्न (मन) कर के रूप में दिया जाता था (अरहट प्रति प्रदत्तं ग्रां १ ए इ० मा ११ पृ ११)। इस तरह के सिंचाई-कार्य का वर्णन लेखों में अधिकतर मिलता है (ए इ ११ पृ ४९ व ५१) बलभी लेख में विवरण मिलता है कि ध्रुवसेन प्रथम ने तीस पादावर्त माप के खेत की सिंचाई निमित्त एक बंधा तयार कराया था। सम्भवतः एक वापी से ही उस भाग की सिंचाई पूरी हो जाती। गुर्जरप्रतिहार राजा महेन्द्रपाल ने नदी के किनारे भूमि का दान दिया था और सिंचाई के लिए रहट का प्रबंध किया जिससे दानग्राही उस अग्रहार भूमि को सिंचाई से उर्वरा कर सके। (ए इ १४ पृ १८१) सम्भवतः सिंचाई के लिए शासक द्वारा कर लगाया गया था इसीलिए परमार राजा चामुण्डराय की प्रशस्ति में एक रहट पर एक हाटक (कर) का वर्णन है (ए इ १४ पृ ११) उत्तर प्रदेश के देवल प्रशस्ति में नहर निर्माण का सुन्दर वर्णन पाया जाता है। शासक ने नदी से राजधानी तक नहर तयार किया ताकि बाग बगीचे की सिंचाई सरल होजाय। (स्वपुरी सन्निधौ रम्या पुण्या कठनदी कृता —ए इ मा १ पृ १९) महेन्द्रपाल द्वितीय के प्रतापगढ़ अभिलेख में उल्लेख आता है कि एक मोट से सींचने योग्य भूमि को दान दिया गया था (द्विगुल्याक क्षेत्रं शासनेन प्रदत्तं—ए इ १४ पृ १८७) उसी प्रसंग में दस मानि (ग्यारह मन) बीज द्वारा बोने वाले खेत के दान का विवरण है। वर्तमान आंकड़े के अनुसार एक मन बीज एक बीघा के बोने में पर्याप्त समझा जाता है। अतएव दस बीघा जमीन की सिंचाई एक मोट से की जाती थी।

इस प्रकार नहर, तालाब कुंआ अरहट तथा मोट की सहायता से पुराने समय में खेतों की सिंचाई होती थी।

भारतीय अभिलेखों में गुप्त युग से ही खेतों के माप का वर्णन स्थान-स्थान पर मिलता है। भूमि को दान देने समय दानकर्ता के लिए खेत की सीमा तथा उसके माप का स्पष्ट उल्लेख करना नितान्त आवश्यक था।

क्षेत्र का माप

जिस भूभाग को दानग्राही स्वीकार करता उसी अनुपात से 'कर' ग्रहण करता था तथा आवश्यकता पड़ने पर उसे बंधक भी रखता। यही कारण है कि खेत को माप कर ही दान में दिया जाता था। गुप्त युग से बारहवीं सदी तक के दान पत्रों (ताम्रपत्रों) में माप का दो रूपों में उल्लेख मिलता है। पहली श्रेणी में खेत की लम्बाई चौड़ाई नापने के साधन का नाम उल्लिखित है जो भिन्नी से विभिन्न नाम से उत्कीर्ण है। जैसे

हल, पादावर्त, निवर्तन, नल या नालक। द्वितीय श्रेणी मे पैमाइश के उन साधन के नाम है जो बीज बोने के माप से वर्णित किए गए है। जसे पाटक, द्रोण, माणि, कुल्यवाप आदि। इमी माप का उपयोग कर भूमि दान मे दी जाती थी।

हल शब्द से स्पष्ट प्रकट होता है कि एक हल से जितनी भूमि जोत मे रक्खी जाय उस माप का नाम हल था। उत्तरी या दक्षिणी भारत मे अधिकतर लेखो मे हल का नाम मिलता है (हलस्य भू—ए इ १ पृ १६७, भा ३ पृ १२८)। राजपुताने के एक लेख मे भी ऐसा ही उल्लेख आता है (ए इ ११ पृ ४७)—पच हलानि वहिष्कृत्य शेष भूमि शासनी कृत्य प्रदत्ता (ए इ २० पृ १२९) के वाक्य से स्पष्ट हो जाता है पांच हल से जोतने योग्य भूमि को छोडकर खेत का शेष भाग दान मे दिया जाय। कागरा के कुछ लेखो मे भी।

हल

(१) इहत्येन नवग्राम दत्ता चात्र हलार्ध भू (ए इ भा १ पृ १०६)
(२) भूमिश्च हल चतुष्टय योग्या दत्ता नवग्रामात् (ए इ १ पृ ११५)
(३) हल वाहनीया दत्ता भूमि (ए इ १ पृ १०१)

अत उद्धरणो से यह निश्चित हो जाता है कि एक हल से जोत वाली भूमि का अर्थ था जिसकी लम्बाई चौडाई के सम्बन्ध मे कुछ कहना सम्भव नही।

दूसरे माप को पादावर्त कहते थे जिसका वर्णन वलभी दानपत्रो मे मिलता है। बारह पादावर्त की भूमि एक कुआ से सीचने योग्य समझी जाती थी (ए इ ११ पृ ११२ व ११४)। एक पादावर्त भूमि एक वर्ग पाद (=९ इन्च) के बराबर मानी गयी है और तीन सौ पादावर्त आठ खन्ड के समान माप मे समझा जाता था (क्षेत्र खन्डान्यष्टौ यत्र पादावर्त शतत्रय—ए इ भा ३ पृ ३२१)।

पादावर्त तथा हस्त

चन्देल तथा गहडवाल लेखो मे हस्त (=हाथ) का नाम क्षेत्र माप के लिए प्रयुक्त किया गया है। ग्वालियर लेख मे "परमेश्वरीय हस्त" का उल्लेख है। सभवत किसी व्यक्ति विशेष के हाथ की लम्बाई प्रामाणिक समझी गई जिस कारण उसका नाम हस्त के साथ जोड दिया गया हो। तात्पर्य यह था कि १८ इन्च से कम का हस्त नही हो सकता था। इसके आधे भाग को पाद कहते थे। जिसके कारण एक वर्ग पाद 'पादावर्त' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। प्रतिहार लेख में भी हस्त माप का प्रयोग मिलता है (सियादोनी लेख—ए० इ० भा० १)। गहडवाल नरेश गोविन्दचन्द्र के पाली दान पत्र मे चार सौ हस्त भूमि को एक नालुक (=नालक=नल) कहा गया है (ए० इ० भा० ४ पृ०

२४९)। सम्भवतः नल (=११८ हस्त) एक डंडा होगा जिसकी लम्बाई से भूमि नापी जाती थी (ए इं १४ पृ १५८)। परन्तु नालुक शब्द का कुछ भिन्न तात्पर्य होगा जो चार सौ हाथ लम्बी भूमि के लिए प्रयुक्त किया गया है।

निवर्तन

प्रतिहार तथा राष्ट्रकूट प्रशस्तियों में निवर्तन शब्द क्षेत्र-माप के लिए प्रयुक्त है (ए इं ४ पृ ९)। बसिखेरा लेख में भी निवर्तन भूमि के दान का उल्लेख है (भू निवर्तन शतकं—ए इं ११ पृ १८२)। परन्तु निश्चित रूप से कुछ कहना कठिन है कि इस से किस क्षेत्रफल का परिज्ञान होता था।

तथा पाटक

क्षेत्रफल के माप से सर्वथा भिन्न शर्तों के मापन का वर्णन बीज-माप से भी किया गया है। गुप्त प्रशस्तियों में 'कुल्यवाप' शब्द का अधिक प्रयोग मिलता है। दानपत्र क्रय तथा विक्रय के प्रसंग में यही शब्द माप कुल्यवाप-द्रोणवाप के लिए प्रयुक्त है। दामोदरपुर, बग्राम फरीदपुर तथा पहाड़पुर के लेखों में यह शब्द क्षेत्रमाप के लिए उल्लिखित है (ए इं १५ भा २१ पृ ८१ भा २ पृ ११ मुकर्जी गुप्तकी ग्रंथ भा १)। निम्नलिखित उद्धरण प्रस्तुत है—

(अ) क्षेत्रस्य कुल्यवापमेकस्य—दामोदरपुर
(ब) त्रिदीनारिक्य कुल्यवाप विक्रय मर्यादा—पहाड़पुर
(स) खिलक्षेत्र-कुल्यवाप मर्य—बग्राम ताम्रपत्र
(द) कुल्यवापेन क्षमापि विक्रीयमाणकानि—फरीदपुर

स्पष्ट है कि पांचवी सदी से ही कुल्यवाप क्षेत्र माप के लिए उत्तरी भारत में प्रयोग होता रहा। इस शब्द के दो खण्ड हैं, कुल्य+वाप। कुल्य की समता एक टोकरी से की जाय तो इसका अर्थ होगा कि एक टोकरी बीज के बोने योग्य भूमि (कुल्य=टोकरी वाप=बोना) पांचवीं सदी के लेखों में द्रोण शब्द का भी प्रयोग उसी माप के लिए मिलता है जो कुल्य वाप से छोटा माप है। आठ द्रोण एक कुल्य बीज के बराबर था इसलिए द्रोण मात्र बीज बोने योग्य भूमि को द्रोणवाप कहा गया है। वैजनाथ की प्रशस्ति में द्रोण के नाम से कोई भूमि को दान देने का वर्णन आता है (धान्य द्रोण द्वयं खिले —ए इं भा १ पृ १०)। 'यथाना द्रोणं एकादश' (ए इं भा १ पृ १५) भी वाक्य द्रोण को बीज (अन्न) का माप बतलाता है इसीलिए द्रोण चार सेर का माप समझा गया (एरन लेख —इं हि क्वा भा ४ पृ ५१)। गुर्जर ताम्रपत्र (एकादश सिक्त पाटक —इं हि क्वा ९ पृ ५१) तथा सेन वंशी राजा वल्लालसेन के नैहाटी लेख में द्रोण के साथ पाटक शब्द भी माप के लिए

उल्लिखित है। वैन्यगुप्त के लेख मे भी निम्न विवरण है—

यत्रैक क्षेत्र खण्डे नव द्रोण वाप अधिक
सप्त पाटक परिमाणे सीमा लिङ्गानि
(गुणैघर का ताम्रपत्र लेख—ए० इ० १४ पृ० १५८)

इससे प्रकट होता है कि पाटक द्रोण से वडा क्षेत्र स्वीकृत था। समस्त प्रशस्तियो का परीक्षण यह बतलाता है कि—

८ द्रोण = १ कुल्यवाय
५ कुल्यवाप = १ पाटक

यह माप प्रामाणिक समझा गया है। अनुमानत एक कुल्यवाप सोलह मन अन्न का माप था जिसके द्वारा चौदह बीघा खेत बोया जाता था। पार्जिटर ने बिना किसी प्रमाण के एक कुल्यवाप भूमि को एक एकड माना है (इ० ए० ३९ पृ० १९५)। नईहटी ताम्रपत्र मे आढक माप का भी उल्लेख मिलता है जो द्रोण से भी छोटा था और चार आढवाप एक द्रोणवाप भूमि के क्षेत्रफल के बराबर था। (चतुराढको भवेद्द्रोण—पहाडपुर ताम्रपत्र—इ० ए० २० पृ० ६१) **आढ़, द्रोण, कुल्य तथा पाटक** बीज के माप हुए जिनसे जितनी भूमि बोई जा सके उसे क्षेत्रमाप के अर्थ मे व्यक्त किया गया है। बगाल मे एक आढवाप डेढ एकड भूमि समझी जाती थी। प्रतिहार लेख मे एक भूमि के दान का वर्णन है जो दस माणि बीज से बोई जाती थी। इससे यह समझा जा सकता है कि माणि (= मन) को भी क्षेत्रमाप के लिए प्रयुक्त करते थे। एक माणि (= मन) बीज से एक बीधा खेत बोते हैं। इसलिए प्रशस्ति के निम्न उद्धरण—कोसवाहे द्वितुल्लाक क्षेत्र मणिवाप १० शासनेन प्रदत्त (ए० इ० १४ पृ० १८७) से यह तात्पर्य निकलता है कि दस मन बीज बोने योग्य भूमि (जिसे एक मोट से सीचते रहे) दान मे दी गई थी। सभवत उसका क्षेत्रफल दस बीघा रहा हो। इस प्रकार अभिलेखो के अध्ययन से पैमाइश करने के माप हमे प्राप्त हो जाते हैं। क्षेत्रमाप के उल्लेख से वर्तमान बीघा के रूप मे क्षेत्रफल व्यक्त करना कठिन है क्योकि बीघा का प्रयोग प्राचीन लेखो मे नही मिलता।

व्यापार की चर्चा

प्राचीन अभिलेखो मे शासक द्वारा प्रदत्त अग्रहार भूमि से सम्बन्वित कर (टैक्स) का वर्णन मिलता है। उसी प्रसग मे व्यापारिक सस्थाओ को आज्ञा दी गई थी कि सभी मदिरो मे प्रतिमा की पूजा निमित्त निश्चित 'कर' दिया करें। इस प्रकार लेखो मे गौण रूप से व्यापार की चर्चा मिलती है। यहाँ यह कहना अप्रासगिक न होगा कि तपुस्स तथा भल्लिक नामक व्यापारी बुद्ध के पास बोध गया मे

विद्यमान थे और राजमार्ग से व्यापार में व्यस्त थे। कुछ विशिष्ट व्यापारी राजकीय शासन में सहायता किया करता था यानी शासन-परिषद् का वह सदस्य था। तीसरे प्रकार की हमारी जानकारी प्रशस्तियों में वर्णित प्रमुख स्थान के विवरण से होती है जो प्राचीन समय में व्यापारिक केन्द्र रहे होंगे। एक देश का प्रमुख स्थानों पर अधिकार इस बात का द्योतक था कि विजेता उस भू-भाग के व्यापार को भी अपने हाथों में लेना चाहता था। अशोक के समय में राजकीय आज्ञा द्वारा मुख्य स्थानों पर ही लेख खोदे गए थे ताकि उस स्थान से आने जाने वाला व्यक्ति राजाज्ञा से परिचित हो जाय। अशोक ने इस बात की स्पष्ट चर्चा की है। उसके दूसरे शिलालेख में उल्लेख है कि मार्ग में कुएँ खुदवाए गए तथा यात्री गण के आराम के लिए वृक्ष लगवाए गए थे। इस तरह मौर्य युग में राजमार्ग सुगम बनाए गए और अशोक के शासन काल में उड़ीसा से तक्षशिला तक जाने का सुन्दर मार्ग रहा होगा। सम्राट अशोक के प्रांतपति उज्जैन सुवर्णगिरि तथा तक्षशिला में शासन करते थे। सारनाथ तथा कौशाम्बी नगर प्रयाग मार्ग पर स्थित रहे और सांची का महत्त्व कम न था। चार मार्गों का संगम (चातुमहापथे-परिनिर्वाण सूत्र) होने के कारण वहाँ अशोक ने स्तूप बनवाया तथा स्तम्भ लेख खुदवाया। अशोक ने स्वयं बहुत बड़ी सेना के साथ कलिंग पर आक्रमण किया जिसमें लाखों व्यक्ति मारे गए तथा डेढ़ लाख कैद किए गए थे [कलिंग विजित दियड्ढमते प्रण शत सहस्र ततो अपवूढे] इस प्रकार यह अनुमान सही ज्ञात होता है कि अशोक के समय में बड़े राजमार्ग थे जिन पर व्यापार होता था।

शासकों के आक्रमण तथा विजित प्रदेशों से भी व्यापारिक केन्द्रों का पता लगता है। कनिष्क के सारनाथ प्रतिमा लेख (ए इ भा ८ पृ १०१) में वाराणसी का नाम उल्लिखित है जो प्राचीन भारत का प्रसिद्ध नगर रहा है। उसके महत्त्व को समझ कर ही जातकों में काशी के राजा ब्रह्मदत्त का नाम कई बार उल्लिखित है। द्वितीय शताब्दी के नासिक लेख में क्षत्रप नरेश नहपान के जामाता ने भरुकच्छ (भड़ौंच) दशपुर (मंदसौर मालवा) गोवर्धन (नासिक) तथा सोपारग (सोपारा) का नाम गर्व के साथ उल्लिखित किया है। ये चारों स्थान महत्त्वपूर्ण व्यापारिक केन्द्र थे और भड़ौंच तथा सोपारा व्यापार के निर्यात के लिए प्रसिद्ध बन्दरगाह थे। [ए इ भा ८]। महाक्षत्रप रुद्रदामन के जूनागढ़ लेख में अनेक प्रसिद्ध स्थानों के नाम आते हैं जहाँ से सातवाहन वंश का अधिकार हटाकर स्वयं शासन करने लगा। उसमें मालवा आकर (उत्तरी काठियावाड़) अपरान्त (उत्तरी कोंकण) सुराष्ट्र (दक्षिणी काठि-

यावाड) राजपूताना, सिन्धु आदि स्थानो का नाम उल्लेखनीय है जो व्यापार के कारण समृद्ध भू-भाग थे। इस तरह लेखो का अध्ययन व्यापारिक केन्द्रों की जानकारी देता है।

क्षत्रप अभिलेखो के सदृश माढरिपुत (सातवाहन-सामत) के चौदहवे वर्ष के लेख मे सिहलद्वीप के बौद्ध भिक्षुओ द्वारा चैत्य के दान का वर्णन है जिन भिक्षुओ ने काश्मीर, गाधार, चीन, तोसली (मैसूर) अपरान्त, वग आदि प्रदेशो मे बौद्धधर्म का प्रसार किया था। इन भू-भाग की केवल भौगोलिक जानकारी ही नही होती किन्तु समृद्ध नगर या प्रात होने की बात सिद्ध होती है। सातवाहन सिक्को (पुलमावी तथा यज्ञश्री) पर नाव का मस्तूल चोल मण्डल मे पूर्वी द्वीप समूहो मे भारतीय व्यापार की ओर सकेत करता है।

गुप्त युग के स्वर्ण काल मे व्यापार तो चरम सीमा को पहुच गया था जिसका आभास लेखो के द्वारा मिलता है। कुमारगुप्त प्रथम के मदसोर लेख मे लाट से आने वाली तथा दशपुर मे स्थायीरूप मे स्थित शिल्प श्रेणी (सघ) यानी रेशम के व्यापारियो का वर्णन मिलता है जिसने वहा सूर्यमदिर का निर्माण किया था [का० इ० इ० ३ पृ० ८१] इसी राजा के दामोदरपुर ताम्रपत्र मे नगर श्रेष्ठि (व्यापारिक सस्था का मुखिया सेठ) तथा सार्थवाह का उल्लेख है (ए० इ० १५ पृ० १३०)। यात्रा करने वाले पान्थो का समूह 'सार्थ' कहलाता था, और बाहरी मडियो से व्यापार करने वाले (व्यापारियो का) नेता 'सार्थवाह' कहलाता था (पान्थान् वहति सार्थवाह —अमर ३।९।७८) बौद्ध ग्रन्थो मे भी कौशाम्बी के सार्थवाह का उल्लेख आता है।

फरीदपुर ताम्रपत्र मे व्यापार के सचालन कर्त्ता गोपाल स्वामी (व्यापार-कारण्डय) का नाम मिलता है (इ० ए० ३९ पृ० २००) उसी स्थान के दूसरे लेख मे व्यापार के सचालक वत्सपालस्वामी का नाम आया है। उसी दानपत्र मे व्यापार मे व्यस्त लोगो की चर्चा की गई है (प्रधान व्यापारिण—इ ए० ३९ पृ० २०४) अत इस विवेचन से यह निष्कर्ष निकलता है कि अभिलेखो मे गौड रूप से व्यापार तथा सघ, सचालक तथा व्यापारिक सघ के नेता का वर्णन किया गया है।

अर्थशास्त्र के पण्डितो से यह बात छिपी नही है कि प्राचीन काल मे भारतीय व्यापार उन्नति के शिखर पर था। व्यापार सम्बन्धी समस्त कार्य का सचालन एक सस्था द्वारा होता था जिसे अभिलेखो मे "श्रेणी" कहा गया है। यह सस्था प्रजातन्त्र शैली पर कार्य करती थी। देश की आर्थिक नीति श्रेणी के हाथो मे थी। वर्तमान काल के

श्रेणी

"भारतीय चेम्बर आफ कामर्स" से उसकी तुलना कर सकते है। दोनों में भेद यही है कि श्रेणी संस्था एक शिल्प के समूह से सम्बन्धित थी।

एकेन शिल्पेन ये जीवन्ते तेषां समूह श्रेणी (कौटिल्य)

प्राचीन साहित्य में (गौतम धर्मसूत्र अष्टाध्यायी अर्थशास्त्र) में श्रेणी के विषय मे जिस तरह की चर्चा की गई है, स्मृति ग्रन्थों में भी श्रेणी का कार्य उसी ढंग से वर्णित है।

सातवाहन तथा क्षत्रप संबंधी अभिलेखों में तत्कालीन संगठित शिल्प श्रेणी का वर्णन मिलता है। उस से पता चलता है कि शिल्पियों तथा वणिकों के निकाय शक्ति-सम्पन्न तथा समृद्ध थे। गुप्तकाल में भी उद्योगों की उन्नति का श्रेय तत्कालीन श्रेणियों तथा निगमों को था। ये निकाय सुव्यवस्थित रूप से व्यापार का परिचालन करते थे तथा वाकाटक एवं गुप्त युग में इन संगठनों की बहुत बड़ी संख्या थी। इन के द्वारा व्यापार में राज्य को बड़ी आय होती थी। क्योंकि ये श्रेणियां या निकाय देश विदेश में व्यापार संचालन करते थे। इन के पास जहाज या नावें भी रहती थी। भारत के इस देशी जहाजरानी से व्यापारिक क्षेत्र में अधिक सुविधा थी। वस्तुओं के आयात निर्यात में राष्ट्र का धन समुचित रूप से व्यवहृत किया जाता था। गुप्तकालीन शिलालेखों ताम्रपत्रों, मुद्राओं तथा सिक्कों का अध्ययन तत्कालीन श्रेणियों तथा निगमो पर प्रकाश डालता है। प्रथम कुमारगुप्त के मंदसोर लेख म रेशम के व्यापारीयष की श्रेणी का उल्लेख है जिसके द्वारा सूर्य मंदिर के निर्माण तथा कालान्तर में संस्कार का उल्लेख मिलता है। (का इ इ ३ पृ ८१)

शिल्पावाप्तैर्धन समुदयै पट्टवायैरुदारं
श्रेणीभूतै भवनमतुलं कारितं दीप्त रश्मे

मंदसोर लेख के वर्णन से पता चलता है कि यह श्रेणी लाट (गुजरात) देश से दशपुर (मन्दसोर, मालवा) में आकर कार्य करने लगी और इसके सदस्य नाना प्रकार के गुणों के लिए प्रसिद्ध थे।

स्फुरत्-तिलक भूत मुक्तरासदाए–
रचिक ममिनिमाति श्रेणीरैवं प्रकारे। (वही)

गुप्त सम्राट् स्कन्दगुप्त के इंदौर ताम्रपत्र में तैलिक श्रेणी का विवरण मिलता है (इन्द्रपुर निवासिन्यास्तैलिक श्रेण्या) जिसने सूर्य-मंदिर के दीपदान निमित्त दो पल तैल का दान किया था (देयं तमस्य तुल्येन पलद्वयं तु)। वैशाली मुहरों के लेख मे निगम का नाम अंकित है। पूर्व मध्ययुग के अभिलेखों में विभिन्न श्रेणियों का उल्लेख मिलता है जिससे व्यापारिक संस्थाओं द्वारा देश की आर्थिक सहायता का परिज्ञान होता है। मंदिरों के दान-प्रसंग में श्रेणियों के नाम

मिलते है जो पूजा के निमित्त कर (टैक्स) दिया करती थी। तैलिक तथा मालिक श्रेणी क्रमश तेल तथा पुष्प 'कर' के रूप मे देती रही (ए० इ० १ पृ० १६० भा० १९ पृ० ५७) (समस्त तैलिक श्रेण्या प्रति कोल्हू दातव्ये)। किसी विशेष प्रदेश मे कार्य करने वाली श्रेणी का मुख्य "सेष्ठी के नाम से विख्यात था (वर्तमान सेठ) तथा विदेशो से व्यापार करने वाले समूह (वनजारा-श्रेणी) का अगुआ 'सार्थवाह' कहलाता था (अग्रेषु समस्त वणजारेषु देसी मिलित्वा—ए० इ० ११ पृ० ४३) सक्षेप मे यह कहना उचित होगा कि प्राचीन भारत मे धन का समुचित बटवारे के लि प्रजातन्त्र ढग से श्रेणिया व्यापार मे लगी रहती थी जिससे समाज का कल्याण होता रहा।

प्राचीन समय मे श्रेणी तथा निगम बक का कार्य करती और इनके साथ रुपया जमा करना सब से अधिक सुविधाजनक समझा जाता था। पश्चिम भारत के क्षत्रप नहपान के जामाता ऋषभदत्त ने धार्मिक

श्रेणी का बैंक-कार्य

काय के लिए ततुवाय श्रेणी के पास तीन हजार कार्षापण जमा किया था। (नासिक लेख) उसमे दो हजार एक कार्षापण प्रति सैकडा वार्षिक व्याज की दर पर जमा था और एक हजार कार्षापण का व्याज दर तीन चौथाई पण था।

श्रीणि ३००० सधस ऐते च काहापाण प्रयुक्ता गोवधन वाथवासु श्रेणिसु। २००० वृद्धि पडिक शत अपर कोलीक निकाये १००० वधि पायून पडिक शत। ऐते च कहापण अपडिदातवा वधिभोजा। एतो चिवरिक सहस्रानि वे २००० पडिके शते (ए० इ० भा० ८)। मथुरा के द्वितीय शती के एक लेख मे वर्णन मिलता है कि किसी धार्मिक व्यक्ति ने पुण्यशाला के लिए ५५० पुराणो की दो धन राशिया दो निकायो मे (अस्थाई मूलधन के रूप मे) जमा कर दिया था। इस धन के व्याज से गोवर्धन (नासिक) के भिक्षुओ के चीवर तथा भोजन का प्रबध किया जाता था। उसी तरह मथुरा वाले धनराशि के व्याज से दीन-दुखियो के भोजन अतिरिक्त प्रत्येक मास एक सौ ब्राह्मणो को भोजन कराया जाता था।

इससे पता चलता है कि शिल्पियो तथा वणिको के निकाय वैभवपूर्ण तथा शक्ति सम्पन्न होते थे। जनता के विश्वासपात्र थे। इसीलिए उनके बैंको मे धन राशि जमा करने का विवरण पाया जाता है। उनकी स्थायी आर्थिक नीति के कारण ही जनता बैंक का उपयोग किया करती थी। जनता को कभी भी भय नही होता था कि श्रेणी-बैंक का दिवाला हो जायगा और जमा किया धन मर जायगा। गुप्तकालीन एक लेख मे श्रेणियो के स्थानान्तरित होने का विवरण पाया जाता है। मदसोर के लेख मे वह श्रेणी लाट (गुजरात) से उठकर दशपुर

(मालवा) चली आई थी। इन्दौर (उत्तर प्रदेश) के ताम्रपत्र में स्कन्दगुप्त के शासनकालीन तेलियों के श्रेणी का उल्लेख आया है जिनके पास देवविष्णु नामक ब्राह्मण ने सूर्य मन्दिर के हेतु कुछ दान दिया था और वह स्थायी धन की (fixed-deposit) तरह इनके बैंक में जमा कर दिया था।

विश्वास होने तथा अच्छे काम करने के कारण श्रेष्ठी सार्थवाह आदि उच्च अधिकारियों के सदृश शासन में सहयोग किया करते। उनके कार्यालय की मुहरें होती थीं। नालन्दा कौशाम्बी तथा वैशाली से मिट्टी की मुहरें बहुत संख्या में मिली हैं जिसमें निकाय तथा श्रेणी की मुहरें प्रचुर संख्या में हैं। (आ स इ रि० १९ ३ ४ तथा १९११ १४)

भारतीय इतिहास से विदित होता है कि प्राचीन काल से यहाँ के निवासी आर्य संस्कृति का संदेश लेकर स्थल तथा जलमार्ग द्वारा विदेश जाते थे।

जल यात्रा को सुगम बनाने के लिए नौकाओं का निर्माण व्यावसायिक रूप हुआ और स्थल मार्ग को सुव्यवस्थित किया गया। मौर्य

तथा मुद्राएँ सम्राटों ने व्यापार की बड़ी उन्नति की और अच्छी सड़कों

का निर्माण किया। अशोक ने सम्भवतः पाटलिपुत्र से पुरुषपुर (पेशावर) तक राजमार्ग तैयार करवाया जिस मार्ग के किनारे राजगृह काशी प्रयाग कौशाम्बी साकेत कन्नौज मथुरा आदि समृद्ध नगर बसे हैं। पाटलिपुत्र से कौशाम्बी तथा उज्जैन होते पश्चिमी बन्दरगाह सुपारा तक मार्ग बना था। इसी स्थान से अशोक का लेख भी मिला है। शक सातवाहन युग में भी उत्तर तथा दक्षिण भारत में वैसे ही व्यापार चलता रहा। इस समय के लेखों से शिल्प तथा व्यापार पर प्रकाश पड़ता है। व्यापार की अभिवृद्धि के लिए कुषाण राजाओं ने स्वर्ण मुद्रा का प्रचलन किया। वीमकदफिस द्वितीय ने सर्वप्रथम सोने का सिक्का चलाया और कनिष्क के शासन काल में अधिक सिक्के तैयार हुए जो व्यापार के विनिमय का प्रमुख साधन था। सिक्कों की वृद्धि से व्यापार की उन्नति का परिज्ञान होता है। दक्षिण भारत में पांडेचेरी के समीप अरिकमेडू की खुदाई से रोमन सिक्के अधिक संख्या में मिले हैं जिससे भारत तथा रोम के व्यापारिक सम्बन्ध पर प्रकाश पड़ता है। (ऐंशेन्ट इंडिया संख्या २ पृ १७) जीवन उपयोगी सभी प्रकार की सामग्रियाँ विदेशों को भारत से भेजी जाती थीं।

गुप्त शासन के आरम्भ से पूर्वी जगत् में भारत का व्यापारिक सम्बन्ध अधिक घनिष्ट तथा व्यापक हो गया था। प्रयाग के स्तम्भ लेख में समुद्र गुप्त के दिग्विजय का वर्णन मिलता है उसने पूर्वी बन्दरगाह ताम्रलिप्ती (तामलुक) पर भी अधिकार कर लिया था। प्राचीन भारत के गुप्त वाकाटक, कदम्ब तथा

पल्लव शासको ने वाणिज्य उन्नति मे वडा योग दान दिया था। नालदा, कौशाम्बी तथा वैशाली मे गुप्त कालीन मुहरें अधिक सख्या मे मिली हैं जिन पर अनेक श्रेणिया निगम तथा निकाय के कार्यालय के नाम उल्लिखित है जिससे पता चलता है कि कौशाम्बी, नालदा तथा वैशाली मुख्य व्यवसायिक केन्द्र थे (श्रेणी सार्थवाह कुलकि तथा निगम की मुहरें--आ० स० रि० १९०३ ४ तथा १९१३-१४) वैशाली तथा भीटा से प्राप्त मुद्रा लेखो के अतिरिक्त दामोदर पुर (उत्तरी वगाल) के ताम्रपत्रो मे नगर श्रेष्ठि सार्थवाह तथा प्रथम कुलिक का उल्लेख है जो शासन मे भी सहायता करते रहे। इससे यह पता चलता है कि सारे उत्तरी भारत मे व्यापारिक सघ फैले हुए थे। समृद्धशालिनी नगरी मे मालवा का दशपुर भी गिना जाता था जिसका सुन्दर वर्णन वत्सभट्टि ने किया है।

प्रासाद माला-भिरलकृतानि धरा विदार्यैव समुत्थितानि
विमान माला सदृशानि यत्र, गृहाणिपूर्णेन्दुकरामलानि

(कुमारगुप्त प्रथम का मदसोर शिलालेख)

गुप्तयुग मे देश के शिल्प तथा वाणिज्य की उन्नति के हेतु वडी सख्या मे सिक्के ढलवाए गए थे। साधारण वस्तुओ के खरीद के लिए चांदी तथा तावे के सिक्के तैयार हुए और ऊँचे क्रय-विक्रय तथा विदेशी व्यापार के लिए सोने के सिक्के चालू किए गए थे। कुमारगुप्त प्रथम ने इस कार्य के निमित्त चौदह प्रकार की स्वर्ण मुद्रा प्रचलित की जो व्यापार के चरम सीमा का द्योतक है।

गुप्त युग के पश्चात् भारतीय व्यापार कई केन्द्रो मे सगठित होता रहा। हर्षवर्द्धन, पुलकेशी द्वितीय तथा उडीसा के गगावशी नरेशो ने वाणिज्य को प्रोत्साहित किया। इन राजाओ के सिक्को के सम्बन्ध मे विशेष जानकारी नही है और पूर्व सदियो की तरह मुद्रा निर्माण का कार्य दिखलाई नही पडता। यद्यपि गुर्जर नरेशो, दक्षिण के चालुक्य तथा चोल शासको ने वाणिज्य मे पोत का प्रयोग किया था परन्तु अभिलेखो मे इसकी चर्चा नही के बराबर है। साहित्य ग्रथो से विविध व्यवसाय तथा विदेशो से व्यापारिक सम्बन्ध का अनुमान लगाया जाता है। विदेशी यात्रियो ने भी विशेष रूप से इसकी चर्चा की है। उनमे चीनी तथा अरब यात्रियो ने पर्याप्त विवरण प्रस्तुत किया है। कथा साहित्य मे भी भारतीय वणिको के द्वीपान्तर गमन का उपाख्यान सुरक्षित है। कहने का तात्पर्य यह है कि प्रशस्तियो से अधिक वर्णन साहित्य मे मिलता है।

पहले कहा जा चुका है कि पूर्व मध्य युग (७००-१२०० ई०) के अभिलेख

राजाओं तथा धनी व्यक्तियों द्वारा दान का वर्णन करते हैं इसलिए उनमें वाणिज्य बातों के लिए स्थान नहीं है। तो भी कई स्थानों पर शासक द्वारा दान सम्बन्धी भूमि 'कर' तथा 'सामयिक कर' का उल्लेख किया गया है और इस तरह आय-व्यय का लेखा सम्मुख आता है। अभिलेखों में इस बात का स्पष्ट वर्णन है कि भूमिकर दानग्राही ग्रहण करेगा तथा विभिन्न कर (टक्स) मंदिर के पूजा निमित्त व्यय किया जायेगा। इसी प्रसंग में बाजार से चुंगी तथा मेला में क्रय-विक्रय से सम्बन्धित 'कर' वसूली का वर्णन है इस प्रकार गौण रूप से आर्थिक बातों की चर्चा मिलती है। वस्तुओं के क्रय-विक्रय के प्रसंग में माप तौल के अभ्यास का उल्लेख भी लेखों में मिलता है। 'प्रस्थापन' मानम (ए इ ४ पृ २४८) से उसी अभ्यास का बोध होता है जो माप को निश्चित करता तथा परीक्षण किया करता था।

विभिन्न प्रशस्तियों में वर्णित दान के प्रकरण में तीन प्रकार की चुंगी (कर) का उल्लेख है। सर्वप्रथम उस कर का वर्णन है जो बाजार में बिकने वाले सामान पर लगाया गया था। पाल लेखों में हाटक नाम के पदाधिकारी का उल्लेख है जो इस कार्य को सम्पन्न करता था (खालीमपुर दान पत्र—ए इ भा का ४) दूसरे स्थान पर कारखानों पर लगाए 'कर' का नाम मिलता है

'कर' सम्बन्धी विवरण

और तीसरे प्रकार का 'कर' मेला में क्रय-विक्रय से सम्बन्धित था। इन करों को दान-ग्राही ग्रहण करता या दानकर्ता मंदिर को समर्पित करता था। उसी आय से पूजा राग-भोग का प्रबंध होता था। बाजार के लिए 'हाट' तथा चुंगीघर के लिए 'मण्डपिका' शब्द लेखों में मिलते हैं। 'कर' निश्चित करने का कोई विशेष नियम नहीं था परन्तु वस्तुओं के प्रकार तथा मात्रा के अनुसार कर में विभिन्नता पाई जाती है। बेचने तथा खरीदने वाले दोनों व्यक्तियों पर कर लगाया गया था। इस सम्बन्ध में विभिन्न सिक्कों का नामोल्लेख किया गया है जिसका विवरण अगले पृष्ठों में मिलेगा।

राजपूताना के अनेक लेखों में ऐसा विवरण है। भवनदेव के लेख में अनाज के एक बोरे की बिक्री पर तीन विंशोपक (रुपया के बीसवें भाग) कर लगता था (ए इ १ पृ २६४)। एक विंशोपक प्रति बोझ पर एक द्रम (चांदी की मुद्रा) चीनी के एक बोरे पर एक कार्षिक चीनी के एक बोझ पर एक रुपया कपास के थान की गांठ पर 'कर' के रूप में वसूल किए जाते थे (ए इ १ पृ ११४)।

उस समय सामान ढोने के लिए ऊँट घोड़ा बैल तथा बैलगाड़ी का प्रयोग

किया जाता था। इन पशुओ तथा गाडी पर सामग्री की मात्रा एक सी नही रहती, इस कारण कर भी न्यून या अधिक लिया जाता था। यदि एक गाडी पर कुछ पैला (नाप के लिए प्रयुक्त) सामान लदा रहता तो दो रुपया चुगी ली जाती थी। मार्गे गच्छतानामागताना वृषभाना शकेपु (मार्ग से होकर बाजार मे आने वाली बैलगाडी) का उल्लेख चहमान लेख मे अधिक आता है जिस पर मसाला लदा रहता था (ए० इ० भा० ११ पृ० ३७)। सम्भवत किराना सामग्री पर अधिक कर देना पडता था क्योकि साधारण सामग्री (जो मात्रा मे बीस पैला होती) और बैलो पर लदी रहती थी उस पर दो रुपया ही टैक्स लगता था। यदि दस ऊँट तथा बीस बैलो के समूह (कारवा) पर लदा सामान (अन्न ?) बाजार मे आता था तो एक पैला कर के रूप मे लिया जाता था (ए० इ० ११ पृ० ४३)। भरतपुर के समीप प्राप्त लेख मे वर्णन है कि घोडे पर लदी सामग्री पर एक द्रम चुगी लगती थी। (ए० इ० २२ पृ० १२७)।

बाजार मे सामान सग्रह करने के लिए भवन (आढत) भी वर्तमान थे जहाँ व्यापारी गण सामग्री सुरक्षित रख देते। उससे निकालने तथा रखने के कारण व्यापारी को कर देना पडता था। नायक देवी के लेख मे गोदाम मे सुरक्षित सामान पर 'कर' दान का विवरण है। प्रति मन दो ैला नाज 'कर' के रूप मे लिया जाता जो मदिर को अर्पित कर दिया गया था [ए० इ० ११ पृ० ६? व ६७-मण्डपिकाया वस्तु मण प्रति पाइला २] चाहमान कालीन गोदाम मे रखने तथा बेचने के कारण छ द्रम 'कर' लिया जाता था [ए० इ० भा० १ पृ० ११४—मण्डपिकोत्पत्तिवनाद्दत्ता पट् प्रत्यह द्रम्मा] मध्ययुग मे बाजार से सम्बन्धित मकान तैयार करके दान करने की प्रथा प्रचलित थी। उन दूकानो का किराया मदिर मे अर्पित किया जाता था और उस आय से रागभोग का प्रबन्ध होता था [ए० इ० भा० १ पृ० १६७] स्यात् उस तरह की दूकान (विथि) से दो विशोपक प्रतिमास किराया मिलता था। बाजार मे पत्तो की बोझ पर पचास पक्तिया तथा माली से पचास माला ग्रहण कर मदिर मे भेंट किया जाता था (इह पुष्पैर्माला पचाशत् ५० माला प्रतिदिन दातव्ये— ए० इ० १ पृ० १६०) परमार नरेश चामुण्डराय के एक लेख (ए० इ० १४ पृ० ३०९) मे वर्णन है कि हाट मे बिकने वाले नारियल के प्रति भार से एक फल, सहस्र सुपारी पर एक सुपारी तथा कपडे की प्रति गाठ पर डेढ रुपया 'कर' के रूप मे देना पडता था। कोई भी व्यापारी इस कर के देने मे आगा-पीछा नही सोच सकता था।

कहा गया है कि राजपूताने के बाजार मे करनाट, मध्यप्रदेश (गगा यमुना

घाटी) लाट (गुजरात) तथा तक्क (व्यास तथा सिन्ध नदियों का मध्यभाग) से आग वाले वणिक विष्णु मंदिर के निमित्त कर देना अस्वीकार नहीं कर सकते थे। (इ ए भा ५८ पृ १६१२)

व्यावसायिक कर सम्भवतः यह बाजार मेला के रूप में संगठित था क्योंकि सुदूर स्थानों से व्यापारी वहाँ एकत्रित होते थे। उस लेख में वर्णन आता है कि हाथी के विक्रय पर एक द्रम घोड़े के विक्रय पर दो द्रम या एक द्रम (ए इ ११ पृ ४४) तथा गाय या भैंस के बिक्री पर द्रम का चालीसवाँ भाग 'कर' लिया जाता था (इ ए भा ५८ पृ १६१) मेला सम्बन्धित क्रय-विक्रय के प्रसंग में ऐसा ही उल्लेख कई प्रशस्तियों में पाया जाता है। पृथुदक मेले में दो द्रम पशुओं के बेचने वाला तथा एक द्रम खरीदने वाले व्यक्ति को देना पड़ता था (ए इ भा १ पृ १८५-७)।

व्यवसाय द्वारा अर्जित सम्पत्ति पर भी कर लगाया जाता और द्रव्य या सामान 'कर' के रूप में ग्रहण किया जाता था। मिलों में तलिक भट्टी अथवा तेल के कारखानों (घाणक) से देवता के दीपार्थ (कर के रूप में) तैल वसूल किया जाता था। प्रायः प्रत्येक घाणक से दो पल तैल मिलता था (पलिका द्वयं घाणकं प्रति समवि दत्तं-ए इ भा ११ पृ ४५) दूसरे लेख में प्रति दिन एक पल तैल अर्पित करने का विवरण मिलता है। (समस्त तलिकानां घाणकं घाणकं प्रतिदिनं वर्मार्थे हेतो तत्पलिका प्रदत्ता—ए इ १ पृ १७७) कभी तलिक भट्टी से एक पल प्रति मास तैल का एक कर लिया जाता था (तलिक भट्ठा प्रति कोल्हू मासि मासि तैल पलिका दातव्ये—ए इ १ पृ १६)। साधारण व्यक्ति कभी तैल या घी पात्र में रखकर बेचता था तो उसे प्रति तैल कुप (चमड़े का पात्र) दो विंसोपक कर (ए इ २ पृ २४) और घी के विक्रेता को भी प्रति घड़ा (मिट्टी का पात्र) एक पल टैक्स देना पड़ता था (ए इ १४ पृ १९)

शराब के कारखाने वाले भी नकद पैसा देवता के राग भोग के लिए देते रहे। राजपूताना के लेख में प्रति सुराभाण्ड पर आधा द्रम कर का वर्णन है (सुराभाण्ड प्रति मासान्मासं विशह गुड़ीय दातव्यं प्रमार्थं धूप दीप नैवेद्यार्थं—ए इ १ पृ १७४) परमार लेख में वर्णन है कि प्रति कारखाने को चार रुपया देना पड़ता था (इ ए भा ५८ पृ १९) इस प्रसंग में अन्यत्र कहा गया है कि प्रत्येक माह प्रति सुराभाण्ड पर आधा मुद्रा (विग्रहपाल-द्रम) कर देना पड़ता था (ए इ १ पृ १६७)। मदिरा के व्यापारी से कर ग्रहण कर धार्मिक कार्य में व्यय करना अनुचित नहीं समझा जाता और देवपूजा में उस आय से कार्य सम्पन्न होता था।

पूर्व मध्य युग के शासक किसी धार्मिक कृत्य के लिए अस्थायी 'कर' भी लगाया करते थे। चहमान नरेश शिवरात्री के अवसर पर आठ मुद्रा प्रति व्यक्ति (ए० इ० ११ पृ० ३१—प्रति वर्षक द्रम्माष्टक प्रमाणेन) तथा देवयात्रा (रथ यात्रा) के सुअवसर पर चार द्रम का 'कर' आरोपित करते रहे। देव यात्रा निमित्त द्रा ४—ए० इ० भा० ११ पृ० ३५)। इसी वश के एक लेख मे तैलिक श्रेणी द्वारा रथ यात्रा के समय विशोपक देने का वर्णन मिलता है। परमार शासक चैत्रमास के वसतोत्सव पर प्रत्येक व्यापारी से एक द्रम कर के रूप मे वसूल करते थे (ए० इ० भा० १४ पृ० ३०९) तथा जनसाधारण से प्रति गृह एक द्रम (मुद्रा) 'कर' लिया जाता था।

अस्थाई कर

तत्कालीन कर की सूची मे एक प्रकार के विचित्र 'कर' का उल्लेख है जो विशिष्ट भोज (दावत) के समय उस व्यक्ति से ग्रहण किया जाता था। भोज (रनवनि) के आयोजक को एक रुपया देना पडता था। इससे अधिक आश्चर्य जुआ पर लगाए कर से प्रकट होता है जिसमे सम्पूर्ण खेल मे एक पेटक (पेच = दाव-एक वार जितना धन साहस 'कर' लगाया जाय) 'कर' स्वरूप जुआरी को देना पडता था (इ० ए० ५८ पृ० १६१) किसी लेख मे जुआ-गृह पर दो रुपया कर लगाने का उल्लेख मिलता है [ए० इ० भा० १ पृ० १४४] इससे अनुमान किया जा सकता है समाज मे घृणित कर्म से जो कर मिलता उसे व्यक्तिगत कार्य में व्यय न कर शासक धार्मिक कृत्य मे लगा दिया करता था।

यद्यपि साहित्य ग्रथो मे सिक्को के विभिन्न नामो का उल्लेख मिलता है परन्तु अभिलेखों मे कार्षापण (प्राकृत काहापन) का नाम सबसे पुराना है। सातवाहन तथा क्षत्रप के नासिक लेखो मे काहायना या काहापन नाम मे उम प्राचीन सिक्के का उल्लेख मिलता है जो पुराण या धरण नाम से पुकारे जाते थे। अधिकतर चादी के सिक्के इस नाम से विख्यात थे और स्वर्ण मुद्रा की तरह १६ मासे तोल मे होते थे। सोने के लिए पाच रत्ती का मासा (तौल) तथा चादी के लिए दो रत्ती का माशा निर्धारित किया गया था। भारत मे यूनानी शासन के समय चादी के सिक्के ड्रम कहे जाते थे और यह नाम इतना प्रचलित हो गया कि भारतीय लेखो में द्रम शब्द से (जो ड्रम का विकृत रूप है) सैकडो वार उल्लेख किया गया है। अधिक प्रचार होने के कारण ही गुर्जर प्रतिहार, परमार, सेन आदि वश की प्रशस्तियो मे इसका नाम आता है। भारतीय

सिक्कों के विभिन्न नाम

यूनानी पल्लव तथा शक राजाओं ने उसके आधे तौल के बराबर अर्द्ध द्रम सिक्का निकाला था जिसे गुप्त सम्राट्, हूण राजा हर्षवर्द्धन मौखरि आदि ने चांदी के सिक्कों में अनुकरण किया। द्रम नाम सबसे अधिक प्रचलित रहा और ईसा पूर्व तीसरी सदी से ११ वीं सदी तक इस शब्द का प्रयोग मिलता है। भास्कराचार्य ने (१२ वीं सदी) भी लीलावती में इसी नाम का प्रयोग किया है।

नानाघाट तथा नासिक लेखों के वर्णन से पता चलता है कि काहापण (कार्षापण) अधिक संख्या में तयार किये जाते थे। सम्भवतः समाज में स्वर्ण मुद्रा की आवश्यकता न थी। नहपान के लेख से पता चलता है कि सोने चांदी के सिक्कों में १४ १ का अनुपात था। उसमें सत्तर हजार काहापण मूल्य में दो हजार सुवर्ण के बराबर कहे गए हैं (ए इ भा ८)।

यद्यपि कुषाण नरेशों ने सोने का सिक्का सर्व प्रथम प्रचलित किया परन्तु कुषाण लेखों में उस सम्बन्ध में कोई उल्लेख नहीं मिलता। पिछले कुषाणों के अनुकरण पर गुप्त सम्राटों ने सोने की मुद्रा तैयार कराई जिसका नाम सांची के लेख तथा दामोदरपुर ताम्रपत्रों में 'दीनार' शब्द से अंकित है। यह नाम भी रोमन सिक्का दिनरियस (Denarius) का विकृत रूप है। गुप्त नरेश रोमन माप तौल (१२ ग्रेन) का प्रयोग भी करने लगे थे। प्रथम कुमार गुप्त के शासन में अंकित वैग्राम ताम्रपत्र से तत्कालीन सोने चांदी के सिक्कों का अनुपात निश्चित किया जा सकता है। उसमें वर्णन मिलता है कि तीन कुल्या वाप भूमि का मूल्य ६ दीनार था तथा एक चौथाई कुल्यावाप जमीन (अर्थात्) आठ रूपक (चांदी का सिक्का) में बिकती होती थी (ए इ भा २१ पृ ८१—पहाड़पुर ताम्रपत्र व रूपकाना)। इस आधार पर एक दीनार १६ रूपक के मूल्य में बराबर था। उसका अनुपात १६ १ के होता है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि १२ वीं सदी तक दीनार रूपक तथा द्रम शब्दों का प्रयोग उत्तरी भारत में सिक्के के लिए होता था (स्मृतियों के अध्ययन से पता चलता है कि दीनार शब्द को छोड़कर चांदी के सिक्के कार्षापण कहे जाते थे)। दक्षिण भारत में कार्षापण का प्रयोग चांदी के सिक्कों के लिए होता रहा। परन्तु तीसरी सदी के बाद चांदी का सिक्का कठिन हो गया। गौतमी पुत्र शातकर्णी ने चांदी का सिक्का तैयार किया जो समान अर्द्ध द्रम का अनुकरण था। स्यात् महाराष्ट्र में क्षत्रपों को पराजित कर विजय-घोषणा के लिए यह कार्य आवश्यक होगा। तत्पश्चात् चोल पाण्ड्य या केरल राज्यों में चांदी के सिक्के नहीं मिलते।

पूर्व मध्ययुग (७००–१२०० ई०) की प्रशस्तियो तथा साहित्य ग्रथो मे द्रम का अधिक प्रयोग है। सियादोनी तथा ग्वालियर के अभिलेखो मे द्रम शब्द शासक के नाम से जुडा है। विनायक पालीय द्रम, आदि वराह द्रम शब्दो से उस शासक के सिक्के का परिचय मिलता है जिसने (विनायकपाल तथा प्रतिहार भोज) उनका प्रचलन किया था। सियादोनी लेख मे कर ग्रहण करने के प्रसग मे विशोयक शब्द भी सिक्के के लिए उल्लिखित है। वह रूपक (सिक्का) का वीसवा भाग था जो सभवत ताम्बे का सिक्का होगा।

सक्षेप मे यह कहा जा सकता है कि प्राचीन नाम कार्षापण के अतिरिक्त अभिलेखो मे अधिकतर विदेशी सिक्को के नामो का विकृत रूप पाया जाता है। रूपक शब्द का प्रयोग चेदि तथा राजपूताने के लेखो मे मिलता है (इ० ए० ५८ पृ० १६१-२) जो कालान्तर मे रुपया हो गया और आज भी उसी नाम से प्रचलित है।

अध्याय १०

तिथिया और सम्वत्

प्राचीन लेखों के अध्ययन से यह पता चलता है कि प्रशस्तिकार अभिलेख खुदवाते समय इस बात का ध्यान रखते थे कि उनमें तिथि का उल्लेख अवश्य हो। भारत का तिथि क्रम इतिहास पाषाण में उत्कीर्ण लेखों से अधिक सहायता मिलती है। तिथियां दो प्रकार से उल्लिखित मिलती हैं। पहला राज्य-वर्ष (Regnal year) का उल्लेख तथा दूसरे स्थान पर उन तिथियों को रखा जाता है जिसे विद्वानों न किसी सम्वत् से सम्बद्ध किया है। अशोक के वर्ष लेखों में अभिषेक के ८ वें वर्ष (अठ वर्ष अभिसितस देवन प्रियस प्रियद्रसिन तेरहवां शिलालेख) १२वें वर्ष (चौथा शिलालेख छठा स्त के तथा बराबर गुहालेख) ११वें वर्ष (पांचवा शि के) १४वें वर्ष (निगाली सागर लेख) १०वें वर्ष (देवानंपियेन पियदसिन लाजिन वीसति वसाभिसितेन—— हिद भगवं जाते ति लुंमिनि गामे-रुम्मिनदेई स्त के) २१वें वर्ष (चौथा व पांचवा शि के) तथा २७वें वर्ष (सत विसति वसाभिसितेन मे इयं धंमलिपि लिखापापिता ति एवं देवा नं पिये आह—सातवा स्त लेख) का उल्लेख है। बेसनगर गरुड़ स्तम्भ लेख शुंगराजा भागभद्र के चौदहवें वर्ष में स्थापित किया गया (कोसी पुतस भागभद्रस त्रातारस वसेन चतुदसेन राजेन) हाथी गुम्फा लेख में खारवेल के प्रथम से तेरहवें वर्ष तक की घटनाओं का वर्णन किया गया है (उसमें वर्ष तथिये पुनवसे——पथमे च वसे——तेरसमे च वसे आदि।)

मौर्यों के उत्तराधिकारी सातवाहन लेखों में भी गौतमी पुत्र सातकर्णी का १८वें एवं २४वे वर्ष का उल्लेख है (नासिक गुहालेख) पुलुमावि के ७वें १९वें २२वें तथा २४वें वर्ष के लेख हैं (नासिक तथा कार्ले का गुहा लेख) तथा यज्ञ श्री सातकर्णी के नासिक गुहा लेख ७वें वर्ष (सिरियञ सातकणिस संवछरे सातमे ७) में उत्कीर्ण किया गया था (यह क्रम मध्य युग तक चलता रहा।

हण राजा मिहिर गुल के ग्वालियर लेख मे पद्रह वर्ष तक शासन का परिज्ञान होता है (अभिवर्द्धमान राज्ये पञ्चदशाब्दे—का० इ० इ० भा० ३ पृ० १६२)

इसी प्रकार मध्ययुग के पालवशी अभिलेखो मे शासको के राज्य वर्ष का उल्लेख मिलता है। खालीमपुर ताम्रपत्र मे पता चलता है कि धर्मपाल ने ३२ वर्ष तक राज्य किया तथा भागलपुर ताम्रपत्र मे नारायण पाल के ५४ वे वर्ष का उल्लेख है किन्तु इन तिथियो को किसी सम्वत् मे सम्बद्ध नही है।

प्राचीन भारत मे दूसरे प्रकार के अभिलेखो मे शासको की तिथि किसी न किसी सम्वत से अवश्य सम्बद्ध है। कुषाण नरेशो की तिथिया ३ से ८० तक अकित है और प्रत्येक लेख स० (सम्वत्) अथवा सवत्सरे से आरम्भ होता है यानी तिथि का सम्वत् मे सम्बन्ध अवश्य है। यद्यपि उसका नाम स्पष्ट रूप से नही मिलता किन्तु यह विषय अज्ञात नही है कि उन सब लेखो की तिथिया शक सम्वत् (७८ ई०) से सम्बन्धित है । कुषाण के सामत पश्चिमी भारत तथा मथुरा के क्षत्रप शासक भी इसी सम्वत् मे अपने लेखो की तिथिया अकित कराते रहे। उदाहरण के लिए-नहपान के नासिक तथा जूनार गुहालेख क्रमश ४२ तथा ४६ वे वर्ष (४६+७८=१२४ ई०) मे उत्कीर्ण किए गए। रुद्र-दामन के गिरनार लेख मे ७२ वर्ष का उल्लेख है यानी १५० ई० (७२+७८) मे वह लेख खोदा गया था। गुप्त सम्राटो के अभिलेख भी इसी (तिथियो से सम्वन्धित) हैं। द्वितीय चन्द्रगुप्त का साँची लेख ९३ वर्ष मे, प्रथम कुमार गुप्त का करमदण्डा शिवलिङ्ग प्रशस्ति ११७ वर्ष मे, स्कन्दगुप्त का जूनागढ लेख १३६ वर्ष मे, इन्दौर ताम्रपत्र १४६ वर्ष मे, वैन्यगुप्त का गुणैवर ताम्रपत्र १८८ वर्ष मे तथा भानुगुप्त का एरण स्तम्भ लेख १९१ वर्ष मे खोदे गए थे। इन तिथियो को राज्य वर्ष कदापि माना नही जा सकता, अतएव इनको गुप्त सम्वत् से सम्वन्धित करते हैं। हर्ष वर्धन के ताम्रपत्र की तिथिया हर्ष-सम्वत् से जुडी हैं। यहा तक कि नेपाल के लेख भी हर्ष सम्वत् से ही सम्वन्धित हैं।

कई प्रशस्तियो मे तिथि न मिलने पर तीसरे मार्ग के सहारे काल ज्ञात होता है यानी प्राचीन भारत के शासको की तिथिया समकालीनता पर भी स्थिर हो जाती हैं। अशोक के तेरहवें शिलालेख मे अनेक समकालीन विदेशी शासको के नाम उल्लिखित है। उनकी ज्ञात तिथियो के सहारे शासक के तिथियो का वास्तविक समय निर्धारित हो जाता है। यूनानी राजा आतियोकास द्वितीय ई०पू० २६१-४६ तक पश्चिमी एशिया मे राज्य करता रहा। द्वितीय टालेमी उत्तरी अफ्रीका मे ई० पू० २८२-४७ तक शासन करता रहा। ये दोनो अशोक के समकालीन थे। इस तिथि २८२ मे से १२ वर्ष (अभिषेक के ८ वे वर्ष मे तेरहवा

लेख खोदा गया तथा अशोक अभिषेक से चार वर्ष पूर्व सिंहासनारूढ़ हुआ था) मान लेने से ई पू २७ वर्ष अशोक के शासक होने की तिथि निश्चित हो जाती है। सातवाहन राजा गौतमीपुत्र शातकर्णी भी क्षत्रप नहपान का समकालीन शासक था। नासिक लेख (पु १९वें वर्ष) तथा जोगलथम्बी के सिक्कों के ढेर की परीक्षा यह बतलाती है कि शातकर्णी ने नहपान को पराजित किया था। नहपान की तिथि ४६ शक सम्वत् (ई स ७८) से सम्बन्धित मानी जाती है इसलिए नहपान की तिथि ई स १२४ स्थिर होती है और इस तिथि के समीप गौतमीपुत्र शातकर्णी भी राज्य करता होगा। इसके पुत्र पुलुमावी को महाक्षत्रप रुद्रदामन ने ई० स १५ में हराया था जो जूनागढ़ के लेख (तिथि ७२ यानी ७२+७८ = १५ ई) से स्पष्ट प्रकट होता है। इस प्रकार पिता (गौतमी पुत्र शातकर्णी) की तिथि १२४ से ११ ई तथा पुत्र पुलुमावी ई स १५ मानी जा सकती है। नासिक के १९ वर्ष वाले लेख से ज्ञात होता कि पुलुमावी ११ ई के समीप गद्दी पर बैठा और १९ वर्ष में यानी १४९ ई (११ +१९) में वह पराजित किया गया। मिहिरकुल के सम्बन्ध में इसी प्रकार से राज्यकाल का पता चलता है। गुप्त शासक भानुगुप्त का एरण स्तम्भ लेख १९१ (गु स) वर्ष में यानी ५१ ई (१९१+११०) में लिखा गया था जिसमें गोपराज की मृत्यु का वर्णन है। सेनापति गोपराज हूण युद्ध में मारा गया था और उसी के बाद तोरमाण का राज्य मध्य भारत में स्थापित हुआ। उसने पन्द्रह वर्ष तक शासन किया जिसके पश्चात् मिहिरकुल पंद्रह वर्ष शासक रहा। ग्वालियर के १५ वें वर्ष की तिथि (अभिवर्द्धमान राज्य पंचदशाब्दे नृप-नृपस्य) ५१ ई के समीप (५१ +१५+१५) स्थिर हो सकती है। राज्य वर्ष में तिथि उद्धरण की परिपाटी पाल लेखों में भी वर्तमान थी। जिसे अन्य तिथि के सहारे काल निर्णय करने में उपयोगी मानते हैं। इसे चौथी रीति कह सकते हैं। निम्नलिखित राज्यवर्ष से गणना देखिये।

धर्मपाल	३२ वर्ष
देवपाल	३९
विग्रहपाल प्रथम+	
शूरपाल	३
नारायणपाल	५४
राज्यपाल	२४
गोपाल द्वितीय	१७
विग्रहपाल द्वितीय	२६
महीपाल प्रथम	४८ ,,
योग	२४६ वर्ष

दमवे राजा महीपाल प्रथम का एक लेख सारनाथ से उपलब्ध हुआ है जिसकी तिथि वि० स० १०८६ उल्लिखित है। अत २४३ वर्ष पीछे जाने पर धर्मपाल की तिथि (१०२६-२४३) ७८३ ई० के समीप निश्चित हो जाती है। इस प्रकार समकालीनता तथा ज्ञात तिथि से या सम्वत् से सम्वन्व जोड कर राजाओ के शासनकाल का परिज्ञान होता है।

यो तो भारतवर्ष मे ईसा पूर्व ५७ वर्ष मे सम्वत् चलाया गया (विस्तृत वर्णन आगे देखिए।) परन्तु इसमे तिथि का उल्लेख अधिक दिनो तक नही पाया जाता। ईसवी सन् के ७८ वर्ष मे कनिष्क ने एक सम्वत् चलाया जिसमे लेखो की तिथिया पाई जाती हैं। कुपाण वशी राजाओ (कनिष्क हुविष्क तथा वासुदेव)के लेखों मे जो अक (तिथि) मिलते है उनका सम्वन्ध शक सम्वत् से है। सारनाथ की बुद्ध प्रतिमा लेख मे ३ वर्ष खुदा है तो कनिष्क के उत्तराधिकारी वासुदेव के मथुरा-प्रतिमा लेख में ८० वर्ष पाया जाता है जिसकी तिथि क्रमश ई० स० ८१ (७८+३) तथा ई० स० १५८ (७८+८०) ज्ञात हो जाती है। पश्चिमी भारत के क्षत्रप राजाओ के सिक्को पर तिथि शक सम्वत् मे मिलती है। उन्ही सिक्को के अध्ययन से क्षत्रप इतिहास ज्ञात होता है। रुद्रसेन प्रथम के सिक्के पर १२१, पृथिवीषेण के १२२-१४४ तथा दामसेन के सिक्को पर १४५-१५८ तिथि का उल्लेख है जिन सब को शक सम्वत् से सम्वन्वित मानते हैं। गुप्त लेखो मे भी वर्षांक उल्लिखित है जिनका सम्वन्ध गुप्त सम्वत् से था। उनके प्रशस्ति को छोड कर सिक्को पर भी इसी सम्वत् मे तिथिया अकित हैं। सौराष्ट्र के वलभी लेखो मे इसी गुप्त सम्वत् का प्रयोग है जिससे भ्रमवश वलभी सम्वत् का नाम दिया गया था (गुप्त सम्वत् का विवरण आगे दिया जायगा) पिछले गुप्त राजाओ के लेखो में जिस तिथि वर्ष का उल्लेख है उसका सम्वन्ध गुप्त सम्वत् से नही है। सम्भवत सातवी सदी के आरम्भ से उत्तरी भारत मे हर्ष सम्वत् (ई० स० ६०६) का प्रयोग होने लगा था। वासखेडा का ताम्रपत्र, गुप्त राजा आदित्यसेन का शाहपुरलेख (६६ वर्ष) तथा विष्णुगुप्त का मगराव लेख (वर्ष ११७) आदि हर्ष सम्वत् से सम्वन्धित हैं और उसी गणना पर उनकी तिथि निश्चित हो जाती है। नेपाल के अनेक लेखो मे तिथि हर्ष सम्वत् मे ही उल्लिखित है। मध्यप्रदेश तथा मध्यभारत के सैकडो लेख कलचूरी सम्वत् से सम्वन्वित हैं (का० इ० इ० भा० ४ खण्ड २) इस प्रकार लेखो की तिथिया निश्चित करने के लिए अथवा तिथियुक्त घटनाओ के वर्णन निमित्त प्रशस्तिकार ने अधिकतर किसी सम्वत् से सम्वन्वित अको का उल्लेख किया है। तुलना मे

पहली प्रणाली (राज्य वर्ष) में समकालीनता स्थिर करना आवश्यक था पर किसी सम्वत् से सम्बन्धित तिथि द्वारा भी सरलतापूर्वक शासक का राज्यकाल निश्चित हो जाता है । पहली श्रेणी में 'वसन चतुरथेन राजन प्रवमानस' आदि या प्रवद्धमान विजय राज्य' वाक्य उल्लिखित मिलते हैं।

प्राचीन भारत में तिथि तथा वार की गणना में विभिन्नता दिखलाई पड़ती है। अभिलेखों का अध्ययन इस विषय के समझने में अधिक सहायता करता है। सबसे प्राचीन लेखों में ऋतु को ३ विभागों में बांट कर पक्ष मास तथा वार द्वारा समय का उल्लेख किया जाता था। ईसा पूर्व सदियों में समस्त भारत में यही रीति काम में लाई गई थी। ब्राह्मी लेखों में (अक्षर संख्या ९८७ १ १ १ २१ १ २४ ११ ११ ५ ११२०-२९ ११४७ ११८९ आदि) ऋतु, पक्ष तथा वार का उल्लेख है। सातवाहन के नासिक तथा कार्ले अभिलेखों में ग्रीष्म वर्षा या जाड़े की ऋतु के अतिरिक्त पक्ष तथा वार (दिन) की संख्या मिलती है। इसके विपरीत भारतीय-यूनानी लेख (शिनकोट लेख-ए इ १४ पृ ७) में वशाख मास के २५वें दिन का उल्लेख है। ईसवी सन् के पश्चात् शक कुषाण तथा क्षत्रप लेखों में मास का नाम तथा तिथि संख्या निश्चित रूप से मिलती है। परन्तु ऋतु तथा पक्ष का सर्वथा अभाव नहीं है। (ए इ भा १म ४ ज यू पी हि सो भा ११ पृ ९९ ०९) उत्तरी पश्चिमी भू भाग में खरोष्ठी लेखो में दूसरी सदी के पश्चात् मास नाम तिथि संख्या तथा वार का प्रयोग मिलता है। (का इ इ भा २ पृ ९२ ९९ पृ ७ ७७ १२७ १४९) उन दिनों वर्ष को तीन प्रधान विभाग म—वर्षा शीत तथा उष्ण—विभक्त किया गया था। उदाहरण के लिए—वाम पखे (वर्षा) हेमंतान पखे (जाड़ा) या गिम्हान (गिम्ह) पखे (ग्रीष्म)। प्रत्येक ऋतु के चार मास तथा प्रत्येक मास में दो पक्ष की गणना द्वारा आठ पक्ष को ऋतु के नाम के साथ उल्लेख किया जाता था। सम्भवत मास नाम से कोई गणना न होती थी यानी चैत्र से फाल्गुन तक के बारह मासा का नाम अज्ञात था। निश्चित समय बतलाने के लिए पक्ष तथा तिथि से काम लिया जाता था। यदि ज्येष्ठ कृष्ण पक्ष १ के अवसर पर किसी बात का उल्लेख करना होता तो गिम्ह पखे ५ दिवसे १० से काम चल जाता था। ग्रीष्म चैत्र से प्रारम्भ होता इसलिए चैत्र वैशाख के चार पक्ष तथा ज्येष्ठ प्रथम पक्ष मिलाकर पांच पक्ष हो गए। इसलिए उसमें ज्येष्ठ कृष्ण १ की तिथि समझी जाती थी। गिम्हाण पखे द्वितीय दिवसे ११ से चैत्र शुक्ल ११ का ज्ञान होता था। इसी प्रकार वर्षा या हेमंत से सम्बन्धित पक्ष

व वार कहने मे ठीक समय का ज्ञान हो जाता था।

वास पखे २ दिवसे ३ = श्रावण शुदि ३
हेमत पखे ३ दिवसे १ = पौष कृष्ण १
हेमत पखे २ दिव १ = मार्ग शीर्ष शुक्ल १

इस रूप मे सातवाहन नरेशो ने वर्ष, पक्ष के द्वारा (नासिक लेख) तिथि का ज्ञान कराया तथा गोतमी पुत्र शातकर्णी के पश्चात् लेखो मे तिथियाँ मिलने लगी। शक क्षत्रप युग मे पहली सदी से ही भारतीय मास का उल्लेख प्रशस्तियो मे है। आश्चर्य तो यह है कि क्षत्रप के महाराज कुषाण नरेश ऋतुओ के पक्ष गणना से ही समय का निरूपण करते रहे। हुविष्क के मथुरा प्रतिमा लेख मे गृ १ दि० ८ (ग्रीष्म पक्ष १ = चैत्र कृष्ण ८) हेमत मास १ (मार्गशीर्ष कृष्ण पक्ष) का उल्लेख पाया जाता है। परन्तु साथ ही विशिष्ठ मास अकित करने का कार्य भी प्रारम्भ हो गया था। कनिष्क के मानिकियाला शिलालेख (१८ वे वर्ष) मे आपाढ, अपडस मसस, जेदा लेख मे कार्तिक, आरा की प्रशस्ति (४१ वें वर्ष) मे तथा ज्येष्ठ (जेठस मसस) का नाम मिलता है। पह्लव गुदफरस के लेखो मे भी वेशखम मसस तथा श्रवणस मसस के नाम आते हैं। नहपान के नासिक लेख मे वेसाख मासे, कातिक शुधे पनरस (शुदि १५), रुद्रदामन के आर्डो (५२ वर्ष) मे फगुण वहुलस द्वितीय वारे २ (फाल्गुण कृष्ण-पक्ष २) मार्ग शीर्ष वहुल प्रतिपदि (जूनागढ शिलालेख) तथा रुद्रसिंह के गडा लेख मे 'वैशाख शुद्धे पचम घण्यतिथौ रोहिणी नक्षत्र मूहूर्ते' आदि वाक्यो का प्रयोग मिलता है। इससे स्पष्ट प्रकट होता है कि ई० स० १२५ (नहपान की तिथि) से ई० स० १८१ तक (रुद्रसिंह की तिथि) भारतीय कालगणना मे आमूल परिवर्तन हो गया था। आश्चर्य यह है कि कौशाम्बी के मघ नरेश के लेख मे वर्षा पक्ष ३ दिवस ५ उल्लेख मिलता है। स्यात् तीसरी सदी के बाद उत्तरी भारत मे समुचित मास, पक्ष, एव वार की गणना आरम्भ हुई हो। दक्षिण मे ऋतु पक्ष से ही गणना होती थी। चौथी सदी के इच्छाकु नरेश विरुपाक्षदत्त के नागार्जुनी कोण्डा लेख मे प्राचीन ढग के ऋतु तथा पक्ष का प्रयोग मिलता है (स ६ वा प ६ दि १० यानी सम्वत् ६ वर्षा पक्ष ६ दिवसे १०)। पल्लव राजा शिवस्कन्ध वर्मन के अभिलेख मे इसी प्रकार ऋतु पक्ष के सहारे गणना की गई है। विदर्भ के वाकाटक लेख भी इसी श्रेणी मे रक्खे जाते हैं। कालान्तर मे उत्तरी भारत के शासक भारतीय मास का नाम, पक्ष नाम, तिथिनाम, नक्षत्र-नाम का प्रयोग करने लग गए। यहा यह कहना आवश्यक प्रतीत होता है कि उत्तर पश्चिम के लेखो मे यूनानी मास के भी नाम सम्मिलित कर लिए गए

थे। कनिष्क के करंम लेख (वर्ष २१) में अषाढ़ मास तथा पटिक के तक्षशिला ताम्रपत्र में पनमस के नाम उल्लिखित हैं।

गुप्त युग में भी मास पक्ष और तिथि का नामोल्लेख मिलता है। शुक्लपक्ष पञ्चम्यां (मथुरा का स्तम्भ लेख) आषाढ़ मास शुक्लैकादश्याम् (उदयगिरि का लेख) सहस्य मास (पौष) शुक्लस्य प्रशस्त हिरण्यगर्भे (मंदसोर का लेख) फाल्गुण मासे (इन्दौर का ताम्रपत्र) वैशाख मास सप्तम्यां शुक्ले स्वामके (बुधगुप्त का सारनाथ बुद्ध प्रतिमा लेख) आदि रूप में मास का उल्लेख किया गया है।

गुप्त सम्राटों के समकालीन परिव्राजक शासक संक्षोभ के खोह ताम्रपत्र में—सम्वत्सरे चैत्र मास शुक्ल पक्ष त्रयोदश्यां का उल्लेख है। नेपाल के चांगु नारायण के स्तम्भ लेख में 'ज्येष्ठ मास शुक्ल पक्षे प्रतिपदि' वाक्य का उल्लेख यह बतलाता है कि चौथी सदी से प्राय: नियमित रूप से मास पक्ष व तिथि का नाम उल्लिखित होने लगा। उत्तर-गुप्त युग में भी सम्वत् से सम्बन्धित लेखों में मास पक्ष व वार का उल्लेख है—कार्तिक वदी १ (शाहबाद प्रशस्ति) माघ वदी ५ (बरसेम का वलभी लेख) तथा माघ शीर्ष शुक्ल पंचमी (अपराजित की उदयपुर लेख) आदि। पूर्व मध्ययुग के प्रतिहार अभिलेखों में उचित रीति से—मास पक्ष तथा तिथि उल्लिखित है। गहड़वाल लेख (माघ सुदी ५ कमौली दानपत्र) तथा परमार अभिलेख (आषाढ़ वदि २—जयसिंह की उदयपुर प्रशस्ति) माघ तथा वार की चर्चा करते हैं। पाल तथा सेन लेखों में इस प्रकार का मास तथा वार का उल्लेख नहीं है। स्यात् उनमें विशिष्ट सम्वत् का प्रयोग न होने से विभिन्न रीति अपनायी गई जो गुप्त कालीन लेखों में प्रयुक्त थी।

यह कहा जा चुका है कि ईसवी सन् के पश्चात् अधिकतर लेखों में उल्लिखित वर्षांक किसी न किसी सम्वत् से (गणना) से सम्बन्धित हैं। अत्यन्त प्राचीन युग में किसी प्रकार की गणना आरम्भ हुई या नहीं इस सम्बन्ध में यथार्थ कहना कठिन है। परन्तु जैन ग्रंथों में महावीर-निर्वाण सम्वत् के नाम से एक गणना का विवरण पाया जाता है। श्वेताम्बर लेखक सूरी ने अपनी पुस्तक 'विचार श्रेणी' में लिखा है कि महावीर तथा विक्रम सम्वत् में ४७० वर्ष का अन्तर है। यानी महावीर सम्वत् ४७० +५७=ई पू ५२७ वें वर्ष में प्रारम्भ किया गया होगा। नेमिचन्द्राचार्य ने भी इस गणना के सम्बन्ध में लिखा है महावीर निर्वाण के ६०५ वर्ष बाद शक लोगों की गणना आरंभ की गई। अतएव महावीर निर्वाण

सम्वत्

सम्वत् ६०५-७८ ई० = ई० पू० ५२७ मे स्थिर हो जाता है। दिगम्बर जैन लोगो की परम्परा पर विश्वास नही किया जा सकता क्योकि उन्होने महावीर निर्वाण तथा शक सवत् मे ४६१, ७९५ या ७९३ वर्ष का अन्तर बतलाया है।

हाथी गुम्फा के लेख मे एक वाक्य 'पनतरिय सठ वस सते राज मुरिय काले' उल्लिखित है जिसका विद्वानो ने विभिन्न अर्थ किया है। स्तेन कोनो ने उसे 'मौर्यकाल (सम्वत्) के १६५ वे वर्ष' के अर्थ मे अनूदित किया। उसका मत था कि चन्द्रगुप्त मौर्य ने एक सम्वत् चलाया था जो खारवेल के समय कलिङ्ग मे प्रचलित था। मूल पाठ को भी कुछ विद्वान् विवादास्पद मानते। 'पान तरीय सत सहसेहि, मुखिय कल वोच्छिन' को शुद्ध पाठ मानते हैं जिसका अर्थ है कि कई सहस्र मुद्रा व्यय कर के स्तम्भ प्रतिष्ठापित किया और प्रजा को मुख्य कला—गीत नृत्य-आदि से प्रसन्न किया। इस सवत् के मानने मे एक दूसरी कठिनाई है कि इस गणना (१६५ मौर्य काल) से खारवेल की तिथि ३२१—१६५ = ई० पू० १५६ हो जाती है (जब ई० पू० ३२१ मौर्य काल माना जाय) जहा खारवेल ई० पू० पहली सदी मे शासन करता रहा। तीसरे कठिनाई यह है मौर्य सवत् के सम्बन्ध में साहित्यिक अथवा लेखो का प्रमाण उपलब्ध नही है।

ईसा पूर्व सदी मे प्राचीन भारत में एक सवत् की स्थापना हुई जिसके सस्थापक के विषय मे गहरा विवाद है। साहित्यिक तथा प्रशस्तियो के आधार पर यह कहा जाता है कि ई० पू० ५७ वर्ष मे एक गणना प्रारम्भ हुई जिसके तीन पृथक पृथक नाम मिलते हैं। (१) कृत सवत् (२) मालव सवत् तथा (३) विक्रम सवत् या सवत्सर। समस्त प्रमाणो के अध्ययन से यह पता चलता है कि तीनो गणना का आरम्भ ई० पू० ५७ वर्ष से हुआ। ऐसी परिस्थिति मे यह विचारणीय विषय है कि तीनो नाम एक ही गणना (सवत् या काल) के लिए प्रयुक्त मिलते हैं अथवा तीनो एक गणना के विभिन्न नाम हैं। इसे जानने के पश्चात् यह प्रश्न उपस्थित हो जाता है कि एक गणना की तीन सज्ञा क्यो कर दी गई ?

विक्रमी सम्वत्

साधारणतया इसका समाधान यो किया जाता है कि मालवा गण के गणमुख्य विक्रमादित्य ई० पू० मे शासन करते थे जिन्होने आततायी शक लोगो को परास्त किया और देश मे सुख शान्ति का राज्य हो गया। इसे दूसरे शब्दो मे कृतयुग कहने लगे (वैभव पूर्ण समय)। ई० पू० ५७ वर्ष मे मालवा गण ने विजय के उपलक्ष मे एक सम्वत् चलाया गया तो कृत युग की परिस्थिति

हो नाम के कारण कृत (सम्वत् से) नाम से पुकारा गया। कालान्तर में शक राजाओं में गिरपु गुराष्ट तथा अवन्ति के भू भाग पर अधिकार कर लिया। अवन्ति के उत्तर पूरब में निवास कर मालव गण अपनी शक्ति तथा प्रतिष्ठा को पुनर्जीवित करने में दत्तचित्त थे। अभिलेखों से पता चलता है कि कालान्तर में इस गणना के साथ मालव नाम जोड़ दिया गया और इस कारण यह सम्वत् दूसरे नाम—मालवा सम्वत् से विख्यात हुआ तो भी कहीं मालव शब्द कृत से जुड़ा है।

राजपूताना तथा मध्यभारत के लेखों में निम्न प्रकार के उदाहरण इस कथन को प्रमाणित करते हैं—

कृतेष्वयो वर्षशतेष्वष्टाविंश। (नंदसा यूपलेख)
कृते हि २ +८०+४
कृते हि २ +१ +५ फाल्गुन शुक्लस्य ५ (बड़वा यूप लेख)
कृते हि ३ +१ +५ (बर्नाला प्रशस्ति)
कृतेषु चतुर्षु वर्षशतेष्वष्टा विंशषु
श्री मालव गणाम्नात प्रशस्ते कृत संज्ञिते
(मंदसोर लेख नरवर्मन वर्ष ४६१)
इन सब उदाहरणों से स्पष्ट हो जाता है कि मालव गण के नाम की गणना पहले कृत नाम से प्रसिद्ध थी। इस आधार पर यह भी ज्ञात होता है कि छठी सदी से पूर्व के लेखों में कृत संज्ञा से ही विक्रम सम्वत प्रसिद्ध था।

छठी सदी के कई लेखों में मालव सम्वत् का उल्लेख पाया जाता है। कुमार गुप्त प्रथम के मंदसोर लेख में मालव गणना (सम्वत्) में तिथि ४९३ मिलती है—

मालवानां गणस्थित्या याते शत चतुष्टये
त्रिनवत्यधिकेऽब्दानामित्री सेव्यघनस्वन।

मालवा के राजा यशोधर्मन के मंदसोर वाली प्रशस्ति में उसी सम्वत् का उल्लेख निम्न शब्दों में पाया जाता है—

पञ्चसुशतेषु शरदां यातेष्वेकान्नवति सहितेषु
मालवगण स्थिति वशात्काल—ज्ञानाय लिखितेषु

(मालवगण के स्थापना के बाद ५८९ बसंत काल के लिए लिखा गया)
एक तीसरे लेख में

सवत शत यातै सपञ्च—
नवत्यर्थके सप्तभिर्मालवेशा"

(मालव गण्य के ७९५ वें वर्ष मे) का उल्लेख मिलता है। दसवी सदी तक के ग्यारसपुर (मालवा) के लेख मे-'मालव कालाच्छरदांपट्" मालव शब्द ही व्यवहृत होता रहा।

नवी शताब्दी के बाद के लेखो मे "विक्रम नृप कालातीत सम्वत्सर" "श्री विक्रमादित्योत्पादित सम्वत्सर" या "श्री विक्रमादित्य काले," "विक्रमाख्यस्य वैशाखस्य," "विक्रमकाले गते तु शुचिमासे" या "विक्रम सवत्सर" के वाक्य मिलते हैं। इसलिए यह प्रकट होता है कि उसी काल (सम्वत्) का तीसरा नाम विक्रम सम्वत् पडा। तात्पर्य यह है कि तीनो नाम एक सम्वत् के लिए प्रयुक्त होते रहे।

ऊपर यह कहा जा चुका है कि वैभवपूर्ण काल के (कृतयुग) कारण गणना का कृत नाम पडा हो जो आगे चलकर मालव के नाम मे सम्बन्धित कर दिया गया। ईसवी चौथी सदी मे गुप्त सम्राट चन्द्रगुप्त द्वितीय (जिसकी पदवी विक्रमादित्य की थी) ने मालवा तथा काठियावाड के शक क्षत्रप शासको को परास्त किया और वह भाग गुप्त साम्राज्य मे मिला लिया। पहले शक लोगो को परास्त कर ही यह गणना (सम्वत्) प्रारम्भ हुआ था। फिर उन्ही शको को गुप्त सम्राट् विक्रमादित्य ने पराजित किया। सम्भवत इस विजय के स्मारक मे प्राचीन सम्वत का नाम बदल कर विक्रम-सम्वत् कर दिया गया। शकारि चन्द्रगुप्त के विजय का उल्लेख भिलसा के समीप उदयगिरि की गुहा लेख मे पाया जाता है (कृत्स्न पृथ्वी जयार्त्थेन राज्ञैवेह सहागत) कि राजा के साथ सेनापति वीरसेन भी मालवा मे आया था। यही नही शक विजय के कारण ही चन्द्रगुप्त द्वितीय ने सर्वप्रथम चादी का सिक्का (अर्द्धद्रम) चलाया जो सर्वथा क्षत्रप सिक्को का अनुकरण था। अतएव इसमे सदेह नही कि शको का अतिम पराजय चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के हाथो हुआ था। इस कारण सम्वत् के साथ विक्रम का नाम जोडना स्वाभाविक था। मालव सम्वत् विक्रम सम्वत् के नाम से पुकारा जाने लगा जिसका उल्लेख प्रशस्तियो मे पाया जाता है। मालव आर्जुनायन तथा यौधेयगण राज्यो को चन्द्रगुप्त के पिता समुद्रगुप्त ने ही नष्ट कर दिया था (प्रयाग का स्तम्भ लेख) विक्रमादित्य द्वारा शको के पराजय होने पर भी मालवा की जनता मालव सम्वत् का प्रयोग करती रही। यही कारण है कि कुमारगुप्त को भी मदसोर वाले लेख मे मालवा सम्वत् का प्रयोग करना पडा जब कि उसके अन्य सभी लेख गुप्त सम्वत् मे तिथियुक्त हैं। यशोवर्मन का मदसोर लेख (मा० स० ५८९=ई० स० ६४६) की तिथि मालव सम्वत मे दी गई है। लेखो मे ८वी सदी के पश्चात् विक्रम सम्वत् के प्रयोग का

एक कारण यह होगा कि उस सदी के बाद जनता में गणराज्य की कल्पना सदा के लिए अनुपस्थित हो गई। राज्यतंत्र का बोलबाला हो जाने से लोगों ने भारतीय संस्कृति के रक्षक सम्राट् विक्रमादित्य को आदर्श मान कर विक्रम पदवी को प्राचीन सम्वत् के साथ जोड़ दिया। मालवा के चौथी सदी में ही विजित हो जाने पर भी विक्रम का नाम सम्वत् के साथ ९वीं सदी के बाद ही पाया जाता है।

संस्थापक

विक्रम सम्वत् के आदि संस्थापक का प्रश्न आज भी विवादास्पद है। मार्शल का कथन था कि शक राजा अयस ने ई. पू. ५७ में यह गणना आरम्भ की। गोपाल स्वामी एयर चष्टन को इसका संस्थापक मानते हैं। डा. जायसवाल का मत था कि आंध्र नरेश गौतमी पुत्र शातकर्णी ने शकों को पराजित कर इसे आरम्भ किया था। डा. अल्तेकर आदि नाम कृत को व्यक्तिगत नाम मानते हैं। कृत नामधारी राजा अथवा सेनापति के द्वारा इस सम्वत् की स्थापना की गई होगी इसीलिए उस गणना का नाम कृत[1] सम्वत् रखा गया। इन सब विभिन्न मतों का कारण यह है कि ई. पू. ५७ वर्ष में मालवा में किसी विक्रम नामक राजा की स्थिति सिद्ध न हो सकी है। विक्रम नाम से किसी ऐतिहासिक पुरुष के सम्बन्ध में स्पष्ट ज्ञान नहीं है जिसने किसी विजय के याद में काल—गणना आरम्भ किया हो। इतने विवेचन के पश्चात भी विक्रम सम्वत् के विषय पर अभी तक पर्याप्त प्रकाश नहीं पड़ सका है।

आरम्भ काल

विक्रम सम्वत् किस समय आरम्भ किया गया इस विषय में अभिलेखों तथा साहित्यिक उल्लेखों द्वारा प्रकाश पड़ता है। मेरुतुंगाचार्य की पाटावली में महावीर निर्वाण के ४७० वर्ष बाद विक्रम सम्वत् का आरम्भ बतलाया गया है (निर्वाण ई. पू. ५२७ ४७० यानी ई. पू. ५७ वर्ष) कालिकाचार्य कथानक (तेरहवीं सदी) में ई. ५५७ वर्ष में विक्रम द्वारा शक पराजय की बात उल्लिखित है। विक्रम काल के १३५ वर्ष में शक सम्वत् आरम्भ हुआ यानी १३५-७८ ई. =ई. पू. ५७ में विक्रम सम्वत् आरम्भ। गुप्त सम्राट् कुमारगुप्त के मंदसौर लेख में

1 जनता जो कृत नाम से ज्ञापित हुआ मालव शब्द से भी प्रचलित हुआ वही अद्यावधि विक्रम सम्वत् है। कृत शब्द कार्तिक वाची हो सकता है जो नाम (वर्षारम्भ) नक्षत्र कृत्तिका से सम्बन्धित है। आरम्भ से कृत्तिका गणना का माध्यम होने के कारण सम्वत् कृत नाम से प्रसिद्ध हुआ।

४८३ मालव सम्वत् की तिथि दी गई है। उसके करमदण्डा लेख की तिथि ११७ गु० स० है यानी वह ११७+३२०=ई० स० ४३७ मे शासन करता था। अतएव ई० स० ४३६ तथा मालव सम्वत् ४९३ एक ही वर्ष होगा (ई० स० ४३६=मालव सम्वत् ४९३) इसके अनुसार मालव सम्वत् ४९३–४३७=५७ ई० पूर्व मे आरम्भ माना जा सकता है। दोनो आधार पर विक्रम सम्वत् का आरम्भ ई० पू० ५७ मे सिद्ध होता है। उत्तरी भारत मे यह सम्वत् चैत्र शुक्ल से तथा दक्षिण भारत मे कार्तिक शुक्ल १ से प्रारम्भ मानते हैं। वगाल को छोडकर समस्त भारत मे आज भी विक्रम काल (सम्वत्सर) प्रयुक्त होता है। वगाल के सम्वत् को फसली कहते हैं जो हिजरी का ही एक सुसस्कृत रूप है।

यह कहा गया है कुषाण वशी लेखों, पश्चिमी भारत के क्षत्रप प्रशस्तियो तथा सिक्को पर एक ही सम्वत् का प्रयोग मिलता है। उसी के सहारे आध्र लेखो की तिथिया (राज्य वर्षांक मे) क्षत्रप समकालीनता के आधार पर निश्चित है। यह भारतीय गणना नही थी। क्योकि शक लोगो द्वारा मालवगण को परास्त कर मालव-सम्वत् का प्रयोग असगत था, इस कारण यह मानना उचित होगा कि शक नरेशो ने पृथक सम्वत् की स्थापना की।

शक सम्वत्

उस शक सम्वत् की स्थापना कब और किसके हाथो हुई ? जैन ग्रथ प्रभावक चरित में कालिकाचार्य कथा का उल्लेख है कि शक लोगो ने अपना सम्वत् चलाया था। शक लोगो ने विक्रम के उत्तराधिकारी को विक्रमादित्य के १३५ वर्ष मे मार डाला उसी काल से शक गणना का आरम्भ मानते हैं। विक्रमादित्य द्वारा सस्थापित काल ई० पू० ५७ मे १३५ जोडने से शक-काल ई० स० ७८ मे स्थापित सिद्ध हो जाता है (ई० पू० ५७–१३५= ई० स० ७८)। कुछ विद्वानो का मत है कि रुद्रदामन (ई० स० १५०) के पितामह चष्टन शक वश का प्रथम महाक्षत्रप हुआ और सम्भवत उसी ने इस गणना का आरम्भ किया। शक सम्वत् मे सम्बन्धित लेखो मे निम्न प्रकार का उल्लेख पाया जाता है —

(१) शक नृपति राज्याभिषेक सवत्सर (इ ए भा ९ पृ० ५८)
(२) शक नृपति सवत्सर (वही भा ६ पृ० ७३)
(३) शक नृप सवत्सर (वही १२ पृ० १६)
(४) शक सम्वत् (ए इ भा १ पृ० १६)
(५) शक या शाके (वही पृ० ३४३)
(६) शक नृप काल (ए इ भा ३ पृ० १०९)

कहने का तात्पर्य यह है कि पाँचवीं सदी से बारहवीं सदी तक के लेख शक-काल (सम्वत्) का उल्लेख करते हैं। पश्चिमी भारत में क्षहरात शक नहपान के लेख में शक काल प्रयुक्त मिलता है। क्षत्रपों के सिक्कों पर भी तिथि इसी सम्वत् से सम्बन्धित है। उसका आरम्भ जीवदामन के सिक्कों से होता है। १ १ २ ११९ आदि अंक मिलते हैं। रुद्रदामन के जूनागढ़ लेख में ७२ की तिथि मिलती है जो ई स १५० माना जाता है (७२+७८)। यह तो सही है कि शक आरम्भ में सामंत रहे और सम्भवतः अपने सम्राट (कुषाण) के काल का प्रयोग करते रहे। अधिक समय (चौथी सदी) तक लोगों ने उस सम्वत् का प्रयोग किया। अतः यह गणना नृप काल के नाम से प्रसिद्ध हो गयी। यह माना जा सकता है कि कुषाण राजा कनिष्क द्वारा ई स ७८ में गद्दी पर बैठने के कारण उस गणना का आरम्भ हुआ हो जो आज तक शक-काल के नाम से प्रसिद्ध है। इस सम्वत् के संस्थापक के विषय में बड़ा ही मतभेद है। फ्लीट तथा कैनेडी कनिष्क को इसका संस्थापक नहीं मानते। उनके कथनानुसार उसने विक्रम सम्वत् की स्थापना की थी। फरगुसन ओल्डनबर्ग बनर्जी तथा राय चौधरी का मत है कि कनिष्क ने ही सन् ७८ में शक सम्वत् को आरम्भ किया था। कुषाण वंश के लेखों में १ ९९ वें वर्ष की तिथि अंकित है जो इसी सम्वत् में दी गई है। कौशाम्बी नरेश की प्रशस्तियों (ए इ भा २४ पृ १४६) में ५१ तथा ११९ की तिथि मिलती है तथा कलवान लेख (ए इ भा ३१ पृ २२९) की तिथि १ ८ है जो इसी शक सम्वत् सन् ७८ से सम्बन्धित है। पूर्वी मालवा का अभिलेख नाखिष्क के २८वें वर्ष में उत्कीर्ण हुआ जिसकी तिथि शक सम्वत् में मानने से ही निश्चित काल ज्ञात होता है। डा मजूमदार का कथन (शक-सम्वत् ई स २८४ में आरम्भ हुआ था) मानने से चौथी सदी तक मालवा में कुषाण शासन की स्थिति प्रकट होती है जो द्वितीय चन्द्रगुप्त के साँची तथा उदयगिरि अभिलेखों के समक्ष असत्य हो जाता है। मध्य एशिया के रूसी पुरातत्त्व सम्बन्धी पत्रों की तिथियाँ (२ ७ तथा २११) भी कनिष्क सम्वत् सन् ७८ से जुड़ी हैं। अतः यह सिद्ध होता है कि कनिष्क ने ई स ७८ में शक-सम्वत् की स्थापना की। अन्य विचार तथ्यहीन हैं। शक युग के इतिहास पर अधिक प्रकाश पड़ने पर हम इसी निर्णय पर पहुँच सकते हैं। स्थापना के पाँच सौ वर्षों के बाद ही लेखों में शक नृप काल या सकाल का उल्लेख मिलता है जो यह सिद्ध करता है कि शक द्वारा काल स्थापना की परम्परा लोगों को ज्ञात थी। चालुक्य नरेश द्वितीय पुलकेशी के ऐहोल लेख से भी इस प्रकार की रचना मिलती है।

पञ्चाशत्सु कलौ काले षट्सु पञ्चशतासु च
समासु समतीतासु शका नामपि भूभुजाम्
(ए० इ० भा० ६ पृ० १)

दक्षिण भारत मे इसे शालिवाहन-शक कहते हैं। चौदहवी सदी के लेखो मे शालिवाहन शक-काल का उल्लेख है सम्भवत दक्षिण मे शक सवत्सर वर्ष का द्योतक था। दक्षिण की राजनीतिक परम्परा मे शालिवाहन नरेश प्रसिद्ध माने गए हैं अतएव उस सवत्मर के साथ शालिवाहन नाम जोड देना उचित ही था। सारे भारत मे इस शक-काल की गणना का समान प्रयोग होता रहा है। यही कारण है कि हमारी सरकार ने शक-सम्वत् को राष्ट्रीय-सम्वत् मान लिया है।

गुप्त-सम्वत्

भारतीय ऐतिहासिक गवेषणा मे विद्वानो को अमुक राजा वा राजवश के काल निर्णय मे अत्यन्त कठिनाइयो का सामना करना पडा था और कव कहा आदि प्रश्न ऐतिहासिक परिशीलन मे प्राय पूछे जाते हैं। पूर्वकाल मे भारत के भिन्न-भिन्न प्रातो मे अनेक सम्वत् प्रचलित हुए थे, जिन्हें विभिन्न समयो पर पृथक-पृथक राजाओ ने स्थापित किया था। इन सम्वतो के आधार पर भारत का तिथि-क्रम युक्त शृखला-वद्ध इतिहास लिखने मे वडी सहायता मिली है। ईसा की चौथी शताव्दी से छठी तक गुप्त इतिहास की घटनाए काल क्रमानुसार निवद्ध करने मे विद्वानो को कठिनाइयाँ उठानी पडी। परन्तु गुप्त लेखो मे 'गुप्त काल' और गुप्त वश की राज्य-परम्परा का स्पष्ट उल्लेख मिलता है जिससे काल निर्णय मे सरलता हो जाती है। अतएव गुप्त काल की प्रारम्भिक तिथि (गुप्त सवत्) को निर्धारित करना समुचित प्रतीत होता है। यह सवत् (गुप्त-सवत) किस राजा ने चलाया, इस विषय मे लिखित प्रमाण अव तक नही मिला है।

प्राय समस्त गुप्त लेखो मे एक प्रकार की तिथि का उल्लेख मिलता है जिस से उस सम्राट की शासन अवधि स्थिर की जाती है। सव तिथियो के अनुशीलन से यह प्रकट होता है कि तिथि का क्रम शनै शनै एक शासक से उसके उत्तराधिकारी के लेख मे वढता जाता है। गुप्त सम्राट द्वितीय चन्द्रगुप्त के लेखो मे ८२ या ९३ आदि तिथि उल्लिखित हैं[1] तो उसके पुत्र प्रथम कुमार गुप्त की प्रशस्तियो मे ९६, ९८, ११७, १२९ आदि तिथियाँ मिलती हैं[2]। इन

१ श्री चन्द्रगुप्तस्य विजय राज्य सम्वतसरे (का० इ० इ० भा० ३ नं० ५ ७)
२ 'श्री कुमारगुप्तस्य अभिगर्धमान विजयराज्ये सवत्मरे पएणवते'
वही नं० ८, १०, ११

अंकों से यह अर्थ नहीं निकाला जा सकता कि द्वितीय चन्द्रगुप्त ने ९१ वर्ष तक शासन किया तथा प्रथम कुमारगुप्त १२९ वर्ष तक राज्य करता रहा। यदि इन अंकों पर विचार किया जाय तो स्पष्ट हो जाता है कि गुप्त सम्राट किसी अमुक समय से काल गणना करते थे। ये अंक यही सूचित करते हैं कि गुप्त नरेश ९१वें वर्ष तथा १२९वें वर्ष में शासन करते थे। अतएव उस समय को निश्चित करना परमावश्यक प्रतीत होता है।

कतिपय लेखों तथा ग्यारहवीं शताब्दी के मुसलमान इतिहासज्ञ अलबेरूनी के वर्णन से स्पष्ट पता चलता है कि गुप्तों के नाम से किसी समय की गणना होती थी जिसे 'गुप्त-काल' या 'गुप्त-संवत्' कहते हैं। इस से ज्ञात होता है कि लेखों की समस्त तिथियाँ इसी गुप्त संवत् में दी गई हैं। गुप्त सम्राट स्कन्दगुप्त के जूनागढ़ लेख में स्पष्ट रीति से उल्लेख है कि इस प्रशस्ति की तिथि 'गुप्त-काल' (गुप्त-संवत्) में दी गई है।

गुप्त-संवत् का नामोल्लेख

संवत्सराणामधिके शते तु त्रिंशद्भिरन्यैरपि षड्भिरेव।
रात्रौ दिने प्रौष्ठपदस्य षष्ठे गुप्तप्रकाले गणनां विधाय[1] ॥

गुप्त नरेश द्वितीय कुमारगुप्त तथा बुधगुप्त के सारनाथ वाले लेख में भी गुप्त-संवत् का नामोल्लेख मिलता है।

'वर्षे शते गुप्तानां सचतुः पंचाशदुत्तरे भूमिं।
शासति कुमारगुप्ते मासे ज्येष्ठे द्वितीयायाम्
गुप्तानां समतिक्रान्ते सप्तपञ्चाशदुत्तरे।
शते समानां पृथिवीं बुधगुप्ते प्रशासति' ॥

मंगाम लेख में "गौप्ताब्दे वर्षे सप्तत्रये" की तिथि सप्ताह के लिए मिलती है। (ए इ भा ६ पृ १४३)

ईसा की दसवीं शताब्दी के मोरवि ताम्रपत्र में भी तिथि का उल्लेख गुप्त संवत् में पाया जाता है। उस ताम्रपत्र में 'गौप्ते' शब्द से स्पष्ट प्रकट होता कि गुप्त लोगों की भी कुछ काल-गणना थी[3]

'पञ्चाशीत्या युतेऽतीते समानां शतपञ्चके।
गौप्ते ददावदो नृपः सोपरागेऽर्कमण्डले' ॥

---

१ गु ले नं १४।

२. आ स रि १९१४ १२।

३ गु ले भूमिका ९७। इस ताम्रपत्र के लोग भी समय स्थापित किसी नाम से बतलाते हैं परन्तु यह निर्विवाद है कि इसका सम्बन्ध गुप्त लोगों से है। (कनोरोल वॉल्यूम आर भण्डारकर का पृ ११६—४)

गुप्त सम्राटो के सामत परिव्राजक महाराजाओ के लेखो मे तिथि का उल्लेख गुप्तनृपराज्यभुक्तौ के साथ मिलता है[1] । अत यह निर्विवाद है कि गुप्त सवत् की अवश्य स्थापना हुई जिस समय से गुप्तो की काल गणना प्रारम्भ हुई ।

ग्यारहवी शताब्दी मे महमूद गजनवी के समकालीन इतिहासज्ञ अल-बेरूनी भारत आया । उसने भारत के अनेक विषयो का वर्णन अपनी पुस्तक मे किया है । भारतीय सवतो की वार्ता को उसने अछूता नही छोडा, परन्तु अक्षरश उसके वर्णन को सत्य नही माना जा सकता । अलबेरूनी ने गुप्त-सवत् के बारे मे भिन्न विवरण दिया है—'लोग कहते हैं कि गुप्त शक्तिशाली तथा क्रूर नरेश थे । जब उस वश की समाप्ति हुई उसी समय से इस सवत् की गणना होने लगी । यह भी ज्ञात होता है कि वलभ प्रतापी राजा था क्योकि बलभी सवत् के समान गुप्त काल की गणना शक काल के २४१ वर्ष बाद प्रारम्भ होती है" ।

अलबेरूनी का कथन

अब विचारणीय प्रश्न यह है कि जिस गुप्तकाल या गुप्त-सवत का उल्लेख किया गया है, वह किस समय चलाया गया तथा इसके प्रतिष्ठाता कौन थे ? इस सवत् के समय निर्धारित करने मे अलबेरूनी से बहुत सहायता मिलती है ।

अनेक सवतो की समानता दिखलाते हुए अलबेरूनी ने (१) १०८८ विक्रम सवत् (२) ९५३ शक सवत् (काल) तथा (३) ७१२ वलभ काल = गुप्त काल का उल्लेख किया है, जिससे उसके कथन की पुष्टि होती है कि गु० स० श० का० से २४१ वर्ष बाद प्रारम्भ हुआ । अलबेरूनी के इन सवतो की तिथि ठीक है, परन्तु उसके समस्त वर्णन जनश्रुति के आधार पर लिखे गये हैं । उसके कथन से ज्ञात होता है कि गुप्त-सवत् उस वश के नष्ट होने पर प्रारम्भ हुआ । वलभ, जो वलभी नगर (सौराष्ट्र मे स्थित) का शासक था, उस वश का

---

१ गु० ले० न० २२, २३, २५ आदि ।

1 As regards the Gupta Kala, people say that the Guptas were wicked powerful people and that when they ceased to exist this date was used as the epoch of an Era It seems that Valabha was the last of them, because the era of the Guptas falls, like that of the Valabha era, 241 years later than the Saka Kala

—आलबेरूनी इडिया, भा० २ पृ० ७ ।

अंतिम नरेश था। वलभी संवत् उसी के नाम से प्रारम्भ हुआ। जैसा ऊपर कहा गया है समस्त विवरण जनश्रुति के कारण अविश्वसनीय है। उसकी अप्रामाणिकता के लिए अन्य प्रमाण भी दिये जा सकते हैं। अलबेरूनी लिखता है कि शक काल विक्रमादित्य द्वारा शक पराजय के समय से प्रारम्भ हुआ[1] परन्तु चालुक्य प्रशस्तिकार रविकीर्ति ने शक संवत् का आरम्भ शक राजा के सिंहासनारूढ़ होने के समय से बतलाया है[2] जो वस्तुतः ठीक सिद्धान्त है। इसी प्रकार गुप्तों के विषय में भी उस इतिहासज्ञ ने असत्य बातें लिख डाली हैं। यदि वलभी लेखों पर ध्यान दिया जाय तो अलबेरूनी का कथन सर्वथा ग्राह्य नहीं है।

वलभी में मैत्रकों के सेनापति भट्टारक ने स्वतन्त्र राज्य स्थापित किया। उसके तीसरे पुत्र ध्रुवसेन प्रथम के एक लेख में २ ६ तिथि का उल्लेख मिलता है[3]। यदि वलभी राज्य स्थापन के अवसर पर वलभी संवत् का आरम्भ हुआ तो कभी भी माना नहीं जा सकता कि वलभी वंश के संस्थापक (भट्टारक) के २ ६ वर्ष पश्चात् उसका पुत्र (ध्रुवसेन प्रथम) शासक हुआ। अतएव इस तिथि का वलभी संवत् से कुछ भी सम्बन्ध प्रकट नहीं होता। ऐसी परिस्थिति में वलभी राज्य में किसी अन्य संवत् का प्रचार मानना आवश्यक है जिसमें उस वंश की तिथियाँ मिलती हैं। ऐतिहासिक पण्डितों ने वलभी लेखों की तिथियों का सम्बन्ध गुप्त-संवत् से बतलाया है। इस विचार का परिणाम यही ज्ञात होता है कि गुप्तों के अधीनस्थ मैत्रकों ने स्वतन्त्र होने के समय से वलभी में प्रचलित गुप्त-संवत् को वलभी-संवत् का नाम दे दिया। अतः यह स्पष्ट रीति से कहा जा सकता है कि वलभी संवत् नामक कोई स्वतन्त्र गणना नहीं थी परन्तु गुप्त संवत् का दूसरा नाम है। इस आधार पर अलबेरूनी का वर्णन यथार्थ हो जाता है तिथि उल्लेख प्रमाणयुक्त है। उसके कथनानुसार गुप्त संवत् भी शक काल से २४१ वर्ष बाद आरम्भ हुआ जो अन्य प्रमाणों से भी सिद्ध होता है। कुछ जैन ग्रंथों से भी इसकी पुष्टि होती है कि गुप्त-संवत् शक काल से २४१ वर्ष पश्चात आरम्भ होता है।

अलबेरूनी से पूर्व शताब्दियों में कुछ जैन ग्रंथकारों के आधार पर यह ज्ञात

---

१ अलबेरूनी इंडिया भा० २ पृ० ६।

२ पञ्चाशत्सु कलौ काले षट्सु पञ्चशतासु च।
समासु समतीतासु शकानामपि भूभुजाम्।—ऐहोल का लेख शक संवत् ५५६ (ए० इ० भा० ६ पृ० १)

३ इ० हि० क्वा० भा० ४ पृ० ४८।

होता है कि गुप्त तथा शक काल मे २४१ वर्ष का अन्तर है। प्रथम लेखक जीनसेन, जो आठवी शताव्दी मे वर्तमान था, वर्णन किया है भगवान महावीर के निर्वाण के ६०५ वर्ष ५ माह पश्चात् शक राजा का जन्म हुआ तथा शक के अनन्तर और गुप्तो के २३१ वर्ष शासन के वाद कल्किराज का जन्म हुआ[1]। द्वितीय ग्रथकार गुणभद्र ने उत्तर पुराण मे (८९८ ई०) लिखा है कि महावीर निर्वाण के १००० वर्ष वाद कल्किराज पैदा हुआ[2]। जीनसेन तथा गुण भद्र के कथन का समर्थन तीसरे जैन लेखक नेमिचन्द्र करते हैं[3]।

जैन ग्रथो के आधार पर गु० स० तथा श० का० का अन्तर (२४१)

नेमिचन्द्र त्रिलोकसार मे लिखते हैं कि शकराज महावीर निर्वाण के ६०५ वर्ष ५ माह के बाद तथा शककाल के ३९४ वर्ष ७ माह के पश्चात् कल्कि राज पैदा हुआ[4]।

इनके योग से—	वर्ष	माह
	६०५	५
	३९४	७
	१०००	

१ गुप्तानां च शदद्वयम्
एक त्रिशच्च वर्षाणि कालविद्भिरुदाहृतम्।
द्विचत्वारिंशदेवात' कल्कि राजस्य राजता ।
ततोऽजितजयो राजा स्यादिन्द्रपुरसस्थित ।
वर्षाणि पट्शतीं त्यक्त्वा पञ्चाग्रां मामपञ्चकम्।
मुक्ति गते महावीरे शकराज ततोऽभवत ।—जीनसेनकृत हरिवश अध्याय ६०

२ इ० ए० भा० १५ पृ० १४३।

३ नेमिचन्द्र की तिथि दशवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में मानी जाती है। एक लेख पर नेमिचन्द्र चामुण्डराय का राजकवि ज्ञात होता है—
त्रिलोकसारप्रमुखप्रबन्धान्।
(विरच्य सर्वान्) मुनि नेमिचन्द्र
विभाति सैद्धान्तिकसार्वभौम ।
चामुण्डरायार्ञ्चितपाद पद्म —(नागर लेख इ० का० भा० ८)
यह (चामुण्डराय) गग राजा रासमल्ल चतुर्थ का ई० सन् ९७७ के लगभग मन्त्री था जो श्रवण-वेलगोला की प्रशस्ति से पता चलता है (राइस—वेलगोला का लेख भूमिका पृ० ३४) आधार पर नेमिचन्द्र की तिथि निश्चित की गई है।

१ पण छसय वस पणमास जुद गमयि वीरणि बुइदो सगराजो सो कल्किचदुण वतिय महिय सगमासं (त्रिलोकसार पृ० ३२)

खोह लेख गु० न० १५६ मे मिलता है।[1] इस आधार पर शक तथा गुप्त काल मे निम्नलिखित समता तैयार की जा सकती है—

शक ३९४=माघ	सवत्सर=गुप्त-सवत्				१५३	व्यतीत
" ३९५=फाल्गुन	"	=	"	"	१५४	"
" ३९६=चैत्र	"	=	"	"	१५५	"
" ३९७=वैशाख	"	=	"	"	१५६	"

इस समता से यह ज्ञान होता है कि गुप्त-सवत् की तिथि मे २४१ जोडने से शक काल मे परिवर्तन हो जाता है। इस विस्तृत विवेचन के कारण अलबेरूनी के कथन की सार्थकता ज्ञात हो जाती है। यह निश्चित हो गया कि शक-काल के २४१ वर्ष पश्चात् गुप्त सवत् का आरम्भ हुआ।

फ्लीट का मत

गुप्त-सवत् तथा शक काल मे २४१ वर्ष का अन्तर स्थिर हो जाने पर, यह प्रश्न उपस्थित होता है कि शक काल के २४१ वें वर्ष या २४१ वर्ष व्यतीत होने पर गुप्त काल (सवत्) प्रारम्भ हुआ। फ्लीट महोदय का मत है कि गुप्त सवत् शक काल के २४१ वें वर्ष में आरम्भ हुआ उनके कथानुसार दोनो सवतो में २४२ वर्ष का अन्तर पडता है[2]। उदाहरणार्थ उसने वुध गुप्त के एरणस्तम्भलेख[3] की तिथि गु० स० १६५ शक काल ४०७ (१६५+२४२) से समता वतलाई है। यदि वैज्ञानिक रूप से विचार किया जाय तो फ्लीट की धारणा तथा कथन सर्वथा निराधार प्रकट होते हैं।

मत का खण्डन

जैनग्रथकार नेमिचन्द्र के कथनानुसार यह ज्ञात होता है कि शक काल के ३९४ वर्ष ७ माह व्यतीत होने पर कल्किराज का जन्म हुआ। इस लिए यह कहा जा सकता है कि ३९५ वे वर्ष मे ७ माह वीतने पर कल्किराज का जन्म हुआ। ऊपर तुलनात्मक प्रसग मे दिखलाया गया है कि—

शक	३९४=माघ	सवत्सर=गु० स०		१५३	व्यतीत
"	३९७=	"	"	१५६	"

अतएव शक काल तथा गु० स० मे २४१ वर्ष का अन्तर ज्ञात होता है, २४२ वर्ष का नही।

---

१ शतपञ्चशतोत्तरेब्दे शते गुप्तनृपराज्यभुक्तौ महावैशाखसवत्सरे कार्त्तिकमासशुक्ल पक्षतृतीयाम्। (गु० ले० २१)।

२ फ्लीट गु० ले० भूमिका ८४।

३ का० इ० इ० भा० ३ न० १९।

गुप्त गु स — शक २४१
१ ,, प्रचलित — २४२ प्रचलित

इस उपरियुक्त कथन की पुष्टि लेखों से होती है। गुप्त लेखों में भी इसके अनेक प्रमाण मिलते हैं। गुप्त राजा कुमारगुप्त द्वितीय के सारनाथ लेख की तिथि गु स १५४ है[1] जो शक काल ३९५ व्यतीत (१५४ लेखों का प्रमाण +२४१) में परिवर्तन हो सकता है। इसके अतिरिक्त बुध गुप्त के सारनाथ प्रतिमा लेख में स्पष्ट उल्लेख मिलता है कि गु स १५७ वर्ष व्यतीत होने पर शासन करता था[2]। इस स्थान पर पूर्व समता को ध्यान में रखते तथा ज्योतिषसार के आधार पर एक नवीन तुलनात्मक वृत्त तयार हो सकता है। यह निम्न प्रकार है :—

मालव-संवत्	शक काल	गुप्तसंवत्
५२९ व्यतीत	३९४ व्यतीत	१५३
५३	३९५	१५४
५३१ ,,	३९६	१५५
५३२ ,,	३९७	१५६
५३३	३९८	१५७ व्यतीत[3]

इस तुलना से यही परिणाम निकलता है कि शक काल तथा गुप्त संवत् में २४१ का ही अन्तर है। इन प्रमाणों के आधार पर यह प्रकट होता है कि व्यतीत गुप्तवर्ष सवत् में २४१ जोड़ने से व्यतीत शक काल तथा प्रचलित गु स में २४१ जोड़ने से प्रचलित शक काल में परिवर्तन होता है। अलबेरूनी ने

---

१ वर्ष शते गुप्तानां सचतु-पञ्चाशदुत्तरे भूमिम्। शासति कुमारगुप्ते मासे ज्येष्ठे द्वितीयायाम्।

२ गुप्तानां समतिक्रान्ते सप्त पंचाशदुत्तरे।
शते समानां पृथिवीं बुधगुप्ते प्रशासति।

३ बुधगुप्त के सारनाथ के लेख से स्पष्ट हो जाता है कि वह गुप्तों के १५७ वर्ष व्यतीत होने पर सप्तमी वसाख में शासन करता था या उस समय को प्रचलित १५८ वर्ष कह सकते हैं। इसी नरेश का एक दूसरा लेख (एरण) आठ वर्ष के बाद गु स १६५ का है (गु ले न १९)। इसके वर्णन से ज्ञात होता है कि वह राजा गु स १६५ आषाढ़ १२ में राज्य करता था। इससे भी आषाढ़ मास में व्यतीत गु स १६५ यानी प्रचलित १६६ ज्ञात होता है।

४ कलेक्टेड वर्क्स आफ सर भण्डारकर भा ३ पृ १८७।

दोनो सवतो का अन्तर वतलाते हुए विक्रम, शक काल तथा वलभी (गुप्त) सवत् मे तीन तिथियो का उल्लेख किया है[1]।

मालव स०	श० का०	वलभी (गु०) स०
१०८८	९५३	७१२

यदि उपरियुक्त तुलना पर ध्यान दिया जाय तो प्रकट होता है कि लेखो तथा अलवेरूनी कथित सख्या (२४१) का ही अन्तर गु० स० तथा श० का० मे पाया जाता है।

मालव-सवत्	शक काल	गुप्त-सवत्
५२९	३९४	१५३
१०८८	९५३	७१२

गुप्त लेख के अतिरिक्त वेरावल लेख के अव्यन से भी गु० स० तथा श० का० के अन्तर (२४१ वर्ष) पर प्रकाश पडता है। कर्नल टाड ने गुजरात के चालुक्य नरेश अर्जुनदेव के समय के वेरावल नामक स्थान से लेख का पता लगाया था[2]। इस लेख की विशेषता यह है कि इसमे चार सवतो मे तिथि लिखी गई है। प्रशस्तिकार ने विक्रम १३२० वलभी ९४५, हिजरी ६६२ तथा सिंह सवत् १५१ तिथियो का उल्लेख किया है[3]। दीवान वहादुर पिलाई के गणनानुसार आषाढ़ वदी १२ रवि शक-काल ११८६ तथा विक्रम १३२१ एक ही वर्ष मे पडता है[4]। लेखो मे वर्ष तथा इस गणना मे भिन्नता इसलिए होती है कि वेरावल के लेख मे दक्षिण भारत की प्रणाली के अनुसार विक्रम १३२० तथा वलभी ९४५ कार्तिकादि मे उल्लिखित है। अतएव—

वलभी व गुप्त सवत् की एकता

विक्रम	शक	वलभी
१३२१=	११८६=	९४५

इसमे से ७९२ घटाने पर

वि०	शक	वलभी
५२९=	३९४=	१५३

---

१ अलवेरूनी इडिया भा० २ पृ ७।

२ एनल्स आफ राजस्थान भा० १ पृ० ७०५।

३ श्रीनृपविक्रम १३२० तथा श्रीमद्वलभी स० ९४५ तथा श्रीसिंह स० १५१ वर्ष आषाढ वदी १२ रवि (इ० ए० भा० ११ पृ० २४२)।

४ इडियन क्रानालोजी टेवुल १० पृ० ९२।

तथा इसमें से १९ घटाने पर

वि	श	वलभी
४८१	३५८	११७

आता है। इस गणना में वलभी ११७ तथा गुप्त नरेश कुमारगुप्त प्रथम की करमदण्डा की प्रशस्ति की तिथि (गु स० ११७) समान है[1]। अतः ज्ञात होता है कि वलभी तथा गुप्त-संवत् में कोई विभिन्नता नहीं है। इस वैराबल लेख की समता

श	वि	वलभी
११८९	१३२१	९४५

तथा उपर्युक्त तुलना में

श	मा स	वलभी (गु स)
३९४	५२९	१५३

२४१ वर्ष का ही अन्तर है जो ऊपर बतलाया गया है।

सारा ताम्रपत्र अंतिम लेख है जिससे शक काल तथा गुप्त संवत् के अन्तर सीरा का ताम्रपत्र (२४१) पर प्रकाश पड़ता है। इस लेख की तिथि वलभी संवत् ११ मिलती है[2] जिसका उल्लेख निम्न प्रकार है—

सं १ १ हि माग शीर्ष सु २

इस वलभी सम्वत् में २४१ जोड़ने से शक काल में परिवर्तन हो जाता है।

वलभी	शक
११	५७१

ज्योतिष गणना के आधार पर शक ५७१ अधिक मार्गशीर्ष में पड़ेगा[3]। अतएव

वलभी	शक
११ प्रचलित =	५७१ प्रचलित

के समान है। पूर्व तुलना से इस तिथि का स्थान निश्चित हो जाता है।

श	मा स	गु (वलभी) स
३९४[4]	५२९	१५३

---

१ ए इ मा १ पृ ७।
२ गु से भूमिका पृ १।
३ मंडारकार कामेमोरेशन वाल्यम पृ २९।
४ देखिए ऊपर की तिथि।

५७१[1]	७०६	३३०[1]
११८६[2]	१३२१[2]	९४५[2]

अतएव इन समस्त लेखो तथा अलबेरूनी के कथन के आधार पर यही निश्चित होता है कि गु० स० मे २४१ जोडने पर श० का० बनता है। व्यतीत तथा प्रचलित मे जोडने से क्रमश व्यतीत तथा प्रचलित श० का० परिवर्तन होता है।

फ्लीट का मत था कि गु० स० श० का० के २४१ वर्ष बाद नही परन्तु २४२ वर्ष पश्चात् प्रारम्भ हुआ[3]। परन्तु ऊपर कथित विस्तृत विवेचन के सम्मुख फ्लीट महोदय का मत स्वीकार नही किया जा सकता

चैत्रादि वर्ष का प्रचार

फ्लीट ने डा० कीलहार्न के कथन का समर्थन करते हुए यह भूल की कि दक्षिण भारत की तरह उत्तरी भारत मे भी मालव सवत् का प्रारम्भ कार्तिक से हुआ[4] चैत्र से नही, इसको मान लिया। परन्तु यदि गुप्त लेखो का अध्ययन किया जाय तो स्पष्ट प्रकट हो जाता है कि मालव सवत् चैत्र से प्रारम्भ होता है[5]। कुमार गुप्त द्वितीय के सारनाथ लेख से पता चलता है कि गु० स० १५४ व्यतीत यानी गु० १५५ के ज्येष्ठ द्वितीया को वह मूर्ति स्थापित की गई थी[6]। इसी प्रकार बुध गुप्त के सारनाथ तथा एरण के लेखो से भी यही बातें प्रकट होती है। इन लेखो मे स्पष्ट उल्लेख मिलता है कि राजा व्यतीत गु० स० १५७ तथा १६५ या प्रचलित १५८ वैशाख तथा प्रचलित १६६ आषाढ मे शासन करता था। इतना ही नही, यशोधर्मन के मदसोर के लेख (मा० स० ५८९) मे यह वर्णन मिलता है कि सवत वसत (चैत्र तथा वैशाख) से प्रारम्भ होता है[7]। इन प्रमाणो

---

१ खैरा ताम्रपत्र की तिथि।

२ वेरावल लेख की तिथि।

३ गु० ले० भूमिका पृ० ८४।

४ इ० ए० भा० २० पृ० ३२, गु० ले० भूमिका पृ० ६६।

५ भडारकर कामेमोरेशन वालुम पृ० २०७-८।

६ आ० स० रि० १९१३—४।

७ पञ्चसु शतेषु शरदा यातेष्वेकान्ननवति सहितेषु।
मालवगणस्थितिवशात् कालज्ञानाय लिखितेषु ॥
यस्मिन् काले कलमृदुगिरा कोकिलाना प्रलापा
भिन्दन्तीव स्मरशरनिभा प्रोषिताना मनासि।

से यह सिद्ध होता है कि गुप्तों के शासनकाल में मालव-संवत् चैत्र से प्रारम्भ होता था कार्तिक से नहीं। वेरावल लेख के आधार पर प. गौरीशंकर ओझा ने दिखलाया है कि विक्रम संवत् चैत्रादि है। वेरावल लेख के अनुसार वि. सं. तथा गु. स. का अन्तर ३७५(१३२०–९४५) आता है परन्तु यह लेख काठियावाड़ में स्थित होने के कारण वि. स. कार्तिकादि है जो चैत्रादि १३२१ होता है इस कारण वि. स. तथा गु. स. का अन्तर ३७६ होगा[1]। गु. स. में ३७६ जोड़ने से चैत्रादि वि. स. २४१ मिलाने से श. स. का तथा ३१९ २ मिलाने से ई. स. होता है।

गुप्त संवत् पर इस विस्तृत विवरण से निम्न परिणाम निकलते हैं।

संक्षिप्त परिणाम

(१) मालव तथा शक संवत चैत्र से प्रारम्भ होता है।

(२) गुप्त तथा वलभी संवत एक ही है। दोनों के भिन्न भिन्न नाम होने के कारण समय में तनिक भी भिन्नता नहीं है।

(३) वलभी या गु. स. शक काल के २४१ वर्ष के पश्चात् आरम्भ होता है। शक काल के व्यतीत तथा प्रचलित होने का निर्णय गु. स. पर अवलम्बित है।

(४) गुप्त संवत् भी चैत्र से प्रारम्भ होता है। चैत्रादि होने के कारण गुप्त संवत् का ई. स. ३१८–१९ से गणनारम्भ हुआ। इसका प्रारम्भिक वर्ष ई. सन् ३१९ २ (७८+२४१) से लिया जायगा।

गु. स. व्यतीत—शक २४१ व्यतीत

१ प्रचलित— २४२ प्रचलित

यदि समस्त संवतों के इतिहास पर ध्यान दिया जाय तो यह पता चलता है कि अमुक संवत् का प्रारम्भ किसी काल विशेष से होता था या उस वंश के किसी

मृगाक्षीणां ध्वनिरगुरवं मारमन्त्रस्य यस्मिन्,
नाभूतस्यं मधुरिव नवच्यूतते पुष्पकेतोः॥
प्रियतमकुपितानां रामयन्मावसानं किसलयमिव मुग्धं मानसं मानिनीनाम्।
उपनयति नमस्वा मानमञ्जाय यस्मिन्, कुसुमसमयमासे तत्र निर्मापितोऽस्मिन्
—(क. इ. इ. भा. ३ नं. १८)

1 प्राचीन लिपिमाला पृ. १७५।

घटना के स्मारक मे मवत्सर चलाया गया। गुप्त-वश मे भी ऐसी ही घटना उपस्थित हुई जिस कारण से वश नाम के साथ (गुप्त) सवत् का प्रयोग प्रारम्भ हुआ। गुप्त-वश के आदि दो नरेश—गुप्त एव घटोत्कच का नाम इतिहास मे प्रसिद्ध नही है। वे सावारण सामन्त के रूप मे शासन करते थे। गुप्तो के तीसरे राजा चन्द्रगुप्त प्रथम ने अपने वाहुवल से राज्य का विस्तार किया तथा इसी ने सर्व प्रथम 'महाराजाधिराज' की पदवी धारण की। वहुत सभव है कि सिहासनारुढ होने पर इसने यह पदवी धारण की तथा उसी के उपलक्ष मे अपने वश के नाम के साथ गुप्त सवत् की स्थापना की। इस की पुष्टि गुप्त लेखो मे उल्लिखित तिथियो से भी होती है। चन्द्रगुप्त प्रथम के पौत्र चन्द्र गुप्त विक्रमादित्य के लेखो मे ८२, ९३ की तिथियाँ मिलनी हैं। इस आधार पर विद्वानो का अनुमान ठीक ज्ञात होता है कि चन्द्रगुप्त प्रथम ही प्रतापी शासक था और उसी के रज्यारोहण पर सवत् चला। पितामह तथा पौत्र के बीच तीन पीढियो मे ९३ वर्ष का अन्तर युक्त-सगत मालूम पडता है। इस सवत् का प्रारम्भ ई० स० ३१९-२० से होता है। फ्लीट व एलन के मतानुसार गुप्त सवत् अन्य मवतो की भाँति राज्यवर्षो मे गणना की परिपाटी से वरावर उसका प्रयोग होते रहने पर क्रम से प्रचलित हो गया, इस से अनुमान होता है कि चन्द्रगुप्त प्रथम के प्रचलित किये हुए राज्य-सवत् का प्रयोग उस के उत्तराधिकारी वशवर करने लगे, जो आगे चलकर गुप्त सवत् के नाम से प्रसिद्ध हो गया। जो हो परन्तु यह नि सदेह है कि गुप्त सवत् या गुप्त-काल नामक सवत्सर का प्रारम्भ ई० स० ३१९-२० से हुआ। इसी मे समस्त गुप्त लेखो तथा समकालीन प्रशस्तियो की निथिया दी गई हैं। यह सवत् लगभग ६००० वर्ष तक प्रचलित रहा और गुप्तवश के नष्ट हो जाने पर काठियावाड मे वलभी सवत् के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

गुप्त-सवत के सस्थापक

गुप्त सम्वत् की चर्चा करते समय इस वात का उल्लेख किया जा चुका है कि अलवेरूनी के कथनानुमार वलभ नामक राजा ने वलभी सम्वत् चलाया जो शक काल के २४१वें वर्ष प्रारम्भ होता था। गुप्त सम्वत् के समान ही यह गणना थी। गुजरात के वलभी नरेशो के लेख मे जो सम्वत् मिलता है वह गुप्त सम्वत् ही है। सौराष्ट्र मे गुप्त सवत का प्रयोग होता था और वहा गुप्त शामन के समाप्त हो जाने पर वलभी के राजा ने इमी गणना का नाम परिवर्तित कर 'वलभी सम्वत्' रख दिया।

वलभी सम्वत्

हर्ष-सम्वत्

थानेस्वर के पुष्पभूति वंश के अंतिम सम्राट हर्ष ने भी एक गणना प्रारम्भ की थी जिसे हर्ष-सम्वत् नाम से पुकार सकते हैं। इस गणना के साथ भी हर्ष का नाम जुड़ा नहीं मिलता। उसके लेख की तिथियां राज्यकाल में दी गई हैं। बांसखेरा ताम्रपत्र में "सम्वत् २ +२ कार्तिक वदि १ उल्लिखित है (ए इ भा ४ पृ २ ८) उसी का मधुबन ताम्रपत्र पच्चीसवें वर्ष में लिखा गया था (सम्वत् २ +५ मार्गशीर्ष)। उत्तरी भारत तथा नेपाल में भी इस गणना का (हर्ष-सम्वत्) प्रयोग होता रहा जो कालान्तर में हटा दिया गया और विक्रम सम्वत् प्रयुक्त होने लगा। पिछले गुप्त नरेश आदित्यसेन का शाहपुर वाला लेख में ६६ वर्ष अंकित है। फ्लीट के मतानुसार यह वर्ष हर्ष-सम्वत् से सम्बन्ध रखता है इसी के सहारे आदित्यसेन की तिथि ई स ६७२ मानी जाती है। इसकी प्रामाणिकता साहित्य के आधार पर भी सिद्ध की गई है। बाण ने माधव गुप्त को हर्ष का मित्र बतलाया है। अपसड़ लेख में भी आदित्यसेन के पिता का नाम माधव गुप्त उल्लिखित है तथा वहीं हर्ष का मित्र कहा गया है [श्री हर्षदेव निजसङ्गमवाञ्छया च] उसी वंश के राजा विष्णु गुप्त का मंगराव का लेख ११७ वर्ष में उत्कीर्ण किया गया था। डा अल्तेकर के कथनानुसार ११७ हर्ष-सम्वत् से सम्बन्ध रखता है [ए इ भा २६ पृ २४१] इसी ढंग से नेपाल के राजा अंशुवर्मन के एक लेख में तिथि निम्न प्रकार उल्लिखित मिलती है—

"संवत् ३ +४ प्रथम पौष शुक्ल द्वितीयायाम्" कीलहार्न का मत है कि तिथि ३४ का सम्बन्ध हर्ष सम्वत् से है जिससे प्रकट होता है कि नेपाल में भी सदी म हर्ष संवत् का प्रयोग किया गया।

अलबेरूनी ने लिखा है कि काश्मीर के पत्रा में इस बात का उल्लेख पाया जाता है कि विक्रमादित्य के ६६४ वर्ष बाद हर्षवर्धन ने राज्य किया। इसलिए ६६४–५७=६ ६०७ ई हर्ष सम्वत की तिथि स्पष्ट मिल जाती है। इसी के अनुसार हर्ष आदित्यसेन विष्णुगुप्त या अंशुवर्मन का शासन-काल निश्चित किया गया है।

सातवीं सदी के पश्चात सम्पूर्ण भारत में सर्वत्र प्रचलित किसी नई काल गणना का अभाव दिखलाई पड़ता है। हर्ष-संवत् तो उत्तरी भारत तथा नेपाल में प्रचलित रहा। पर कलचुरी अथवा लक्ष्मणसेन संवत् स्थानीय गणना ही थे। मध्ययुग में इनका प्रारम्भ हुआ और शीघ्र समाप्ति हो गई। उत्तरी भारत में विक्रम संवत् का प्रचार हम पाते हैं। मध्य भारत तथा राजपूताना के जितने

राजवश उत्तरी भारत मे शासन किए, सभी ने विक्रम सम्वत् का प्रचार किया और वह लोकप्रिय हो गया। उज्जैन मे शक राज्य नष्ट हो जाने पर मालव-सवत ही लोकप्रिय हुआ तथा वहा से उत्तरी भारत मे प्रचलित हुआ। बगाल मे लक्ष्मण सेन सवत् के पश्चात् मुसलमानो ने फसली सम्वत् का प्रसार किया। आज वह गणना बगला-सवत् के नाम से पुकारी जाती है। दक्षिण भारत मे शक सम्वत् का प्रचार रहा क्योंकि मालवा तथा महाराष्ट्र पर शासन करने वाले क्षत्रप नरेश शक गणना का ही प्रयोग करते थे। उज्जैन के गणितज्ञो ने उस शक सवत् का प्रयोग किया। भारत के गणित शास्त्र मे शक गणना की प्रधानता तथा उत्तरी भारत मे विक्रम सम्वत् का प्रचलन होने के कारण ज्योतिष के पण्डितो ने पत्रा मे दोनो सम्वत् का उल्लेख किया। वर्तमान सरकार को किसी कारणवश यह प्रचलन उचित न मालूम हुआ और शक-सम्वत् को ही राष्ट्रीय सम्वत् घोषित कर दिया है।

अध्याय ११
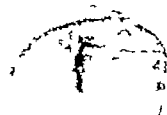
भारत में लेखनकला की प्राचीनता

भारतवासी जिस वस्तु के सम्बन्ध में जानकारी नहीं रखते उसे ईश्वर द्वारा रचित समझते हैं। यही कारण है कि भारतीय जनमति में लेखन कला का सम्बन्ध ब्रह्मा से स्थिर किया गया और प्राचीन भारतीय लिपि को ब्राह्मी का नाम दिया गया। इस विचार को प्रस्तर पर भी बादामी में (ई सं ५८) प्रदर्शित किया गया है जहां ब्रह्मा के हाथ में ताड़पत्र का समूह दिखलाई पड़ता है (इ ए भा ६ पृ ३६६ भा ११ पृ १) लेखन कला का विशेष अधिक प्रकाश में नहीं आया है। इस कारण विद्वान विभिन्न मत रखते हैं। पश्चिमी विद्वानों का मत था कि आर्य लोगों के आगमन (ईसा पूर्व दो हजार वर्ष) के पश्चात् लेखन कला का विकास हुआ होगा परन्तु हड़प्पा की सभ्यता के प्रकाश में आने पर तथा मध्य पूर्व से तुलनात्मक अध्ययन के कारण विचार में परिवर्तन आना स्वाभाविक है। लेखन कला की प्राचीनता के सम्बन्ध में दो विद्वानो के नाम—पं गौरीशंकर हीराचन्द्र ओझा तथा बूलर, उल्लेखनीय हैं। मक्समूलर लेखन कला की उत्पत्ति ईसा पूर्व चौथी सदी (हिस्ट्री आफ एन्सेंट संस्कृत लिटरेचर पृ २६२) तथा बूलर ई पू ८ से पूर्व कथमपि मानने को तयार नही है (इण्डियन पैलियोग्राफी—इ ए १९ ४ परि पृ १७) डिरिंजर न प्राय बूलर की तिथि का समर्थन किया है (दि एलफाबेट—१९४९ पृ ३३४) पश्चिमी तथा भारतीय विद्वानों की विचार धारा में एकता नही है इसलिए भारतीय लेखन कला का इतिहास एक विवादास्पद विषय बना है।

इससे सम्बन्धित जितने विचारणीय प्रमाण हैं उन्हें कई वर्गों में रक्खा जा सकता है। इस प्रसंग मे विभिन्न विद्वानों की सम्मति जानकर ही संतोष करना होगा।

(१) यूनानी लेखको के कथन ।
(२) यात्रियो के विवरण ।
(३) ब्राह्मण ग्रन्थो की विचारधारा ।
(४) वौद्ध एव जैन ग्रथो मे उल्लेख ।
(५) भारतीय अभिलेख की परम्परा ।

यूनानी लेखको ने, जो सिकन्दर के आक्रमण के पश्चात् भारत आए, भारतीय लेखन कला का प्रगार विभिन्न रूप से व्यक्त किया था। सिकन्दर के सेनापति ने आखो देखा वर्णन दिया था कि भारतवासी रुई से कागज तैयार करना जानते थे (स्ट्रेवो १५, ७१७) । इसी प्रकार यूनानी दूत मेगस्थनीज ने (ई० पू० चौथी सदी) मार्गों पर स्थित प्रस्तरो पर अक उत्कीर्ण करने की परिपाटी का वर्णन किया है (इडिया आफ मेगस्थनीज) इसका तात्पर्य यही था कि भारत-वासी लिखने की कला से विज्ञ थे । मक क्रिण्डिल ने करटियस के कथन का उद्धरण देते लिखा है कि वृक्ष के छाल (भोजपत्र) का प्रयोग लिखने के कार्य मे किया जाता था। (हिस्ट्री आफ एलेक्जेन्डर इनवेजन आफ इडिया अ० ८)

विदेशी यात्रियो ने भी भारतीय लिपि के सम्वन्ध मे विवरण दिया है। चीनी यात्री ह्वेनसाग ने प्राचीन युग मे भारतीय लिपि की उत्पत्ति वतलाई है। (वील-सिमुकी १,७७) चीनी ग्रथ-फ-वन-सु-लीन मे ब्राह्मी के विषय मे उल्लेख मिलता है कि ब्रह्मा ने लिखने की कला को जन्म दिया और ब्राह्मी वाए से दाहिने लिखी जाती थी (वेविलोनियन तथा ओरियटल रेकर्ड १,५९) दसवी सदी का मुसलमान लेखक अलवेरूनी ने यह वर्णन किया है (साचू-अलवेरूनी का भारत अ० १) कि हिन्दू लिखने की कला भूल गए थे जिसे पुन व्यास ने आरम्भ किया जो कलियुग (ई० पू० ३१०१) से प्रचलित हुआ (व्यास का वेद तथा महाभारत से सम्वन्वित मानते हैं। इस कारण अलवेरूनी ने कलियुग का उल्लेख किया है।)

ईसवी पूर्व छठी शताब्दी में कई वौद्ध ग्रथो का सकलन हो गया था जिनमे लेखन-कला के सम्वन्ध मे सारगर्भित वातें लिखी हैं। सूत्तान्त (१, १) नामक ग्रथ मे भिक्षुओ को अक्षरिका नामक खेल खेलना निषेध किया गया था। इस तरह के खेल मे व्यक्ति के पीठ या आकाश मे अक्षर के सकेत को समझ कर पहचानना पडता था। विनयपिटक मे (पाराजिक भा० ३, ४) लेखन-कला की प्रशसा की गई है कि गृहस्थो के लिए यह जीविका पैदा करने का एक साधन था। (वुधिस्ट इडिया पृ० १०८)। कई जातको (रूरू, कन्ह आदि) मे व्यक्तिगत तथा सरकारी पत्रो का लेखन, सरकारी घोषणा, हस्तलिखित

पुस्तक आदि का उल्लेख मिलता है। महावग्ग में (भिक्खुपाचित्तिय ६६.१) लेख गणना तथा रूप को प्रारम्भिक शिक्षा का विषय माना है। जातक में भी फलक (तख्ती) और वर्णक (कलम) के नाम मिलते हैं। ललितविस्तर (अध्याय १) में भी बुद्ध को लिपिशाला (पाठशाला) में विश्वामित्र द्वारा पत्र लिखना सिखलाने की बात उल्लिखित है। यूनानी लेखकों ने कागज तयार करने की बात लिखी है (ई पू ४)। प्राचीन समय में तालपत्र तथा भोजपत्र भी लिखने के काम में आता था। अतएव बौद्धग्रंथों के आधार पर यह प्रकट होता है कि ई पू ६ के समीप लेखन-कला की जानकारी भारतवासियों को अवश्य थी।

ललितविस्तर की तरह जैन ग्रंथ समवायांगसूत्र (ई पू तीसरी सदी) तथा पण्णवणासूत्र में भी लेखन-कला की प्राचीनता का उल्लेख पाया जाता है। पिछली सदियों में काव्य नाटक तथा स्मृति ग्रंथों में स्थान-स्थान पर एसा वर्णन आता है जिससे पता चलता है कि भारतवर्ष में प्राचीन काल में लेखन-कला का ज्ञान था। नारद तथा बृहस्पति ने लिखा है कि ब्रह्मा द्वारा लिखने की कला उत्पन्न की गई जिससे शास्त्रों का ज्ञान हो सका। मौर्य युग के राजनीति तथा अर्थशास्त्र में लिखने का संदर्भ कई स्थानों पर पाया जाता है—

(अ) वृत्त चौलकर्मा लिपि संख्यानं चोपयुंजीत (१ ५ २)
(ब) पत्र मन्त्रयवन मंत्रयेत (१ १९, ६)
(स) सर्वसमय विरागुर्भेण कार्यक्षरा लेखवाचन समर्थो लेखक स्यात् (२ ९, २८)

यानी चूड़ाकर्म के पश्चात् गणना तथा लिखना सीखना चाहिए। पत्र द्वारा मंत्रणा करना चाहिए। राजकार्य में लेखक को शीघ्र पढ़ना तथा लिखना आवश्यक समझा जाता है। इससे भी पूर्व (ई पू आठ सौ) वसिष्ठ धर्मसूत्र (१६ १ १४) के वचनानुसार लिखित पत्र को प्रमाण में प्रस्तुत किया जा सकता है। इसके पश्चात्कालीन व्याकरण (वेदांग में) लेखन-कला का विवरण मिलता है तथा यह कदापि सम्भव नहीं है कि बिना लेखन-कला की जानकारी के व्याकरण तथा दर्शन आदि का प्रसार हो सकता। पाणिनि के अष्टाध्यायी में लिपि लिपिकार यवनानी पद (अध्याय प्रथम तथा तृतीय) शब्दों का प्रयोग यह सिद्ध करता है कि समाज में लिपि कला का समुचित ज्ञान था। ८ अध्याय में स्वस्तिक के चिह्न के साथ ५ या ८ अंक के चिह्न लगाने का वर्णन है। व्याकरण के प्रसंग में पाणिनि ने अनेक व्याकरणों का नाम उल्लिखित किया है। तात्पर्य यह है कि पाणिनि से पूर्व ई पू आठवीं सदी

मे) लिपि का ज्ञान लोगो का था। यास्क ने भी निरुक्त मे अपने पूर्ववर्ती विद्वानो का नामोल्लेख किया है। शब्दो के चयन के साथ लेखन-कला की भी तिथि यास्क से पूर्व ही मानी जा सकती है। छादोग्य उपनिपद (२, १०) मे अक्षर के लिखने का सदर्भ मिलता है तथा वर्ण और मात्रा का उल्लेख तैतरीय उपनिपद (१, १) मे आता है (वर्ण स्वर मात्रा बलम्)। उपनिपद ग्रथो मे दार्शनिक विचारो का विवेचन अधिकतर गद्य मे किया गया है और उन विवेचनो को यथा शक्ति लोग स्मरण रखते थे, तथापि लिखित ग्रथ की स्थिति असम्भव नही मानी जा सकती। वेदो का अध्ययन भी कण्ठगता समझा जाता था पर ऋग्वेद मे (१०, १४, १६) गायत्री, विराज, जगती छदो के नाम आते हैं। सहिता तथा अथर्व मे (८, ९, १९) भी ग्यारह छदो का उल्लेख पाया जाता है अतएव लेखन-कला की जानकारी की बात स्वत सिद्ध हो जाती है। ऋग्वेद मे अक से अकित गायो का वर्णन मिलता है (सहस्रमेददतो अष्टकर्ण्य १०, ६२, ७) जो भिक्षा या दान मे दी गई थी। तात्पर्य यह है कि ऊपर लिखी बातो से वैदिक युग मे भी लिखने के प्रमाण को असिद्ध नही किया जा सकता। आश्चर्य यह है कि ईसा पूर्व पाचवी सदी से पहले लिखने का कोई भी नमूना सामने नही आता। सम्भवत भोजपत्र या कागज पर लिखे ग्रथ सदियो तक वास्तविक रूप मे न रह सके और जलवायु के कारण नष्ट हो गए। प्राचीन हस्तलिखित ग्रथ को नष्ट होते देखकर लोगो ने पुन कागज पर लिखा ताकि शास्त्र का ज्ञान स्थायी रहे। इस क्रम मे समय-समय लिपि का परिवर्तन होता गया और नए रूप मे ग्रथ सामने आते गए। प्राचीनकाल मे विद्या कण्ठगता थी और गुरु के मुख से सुनकर शास्त्र का पठन-पाठन किया जाता था। वेदो का ठीक उच्चारण आवश्यक था और धार्मिक जगत मे अशुद्ध उच्चारण यजमान का घातक समझा गया है।

सवाग्वज्रो यजमान हिनस्ति यथेन्द्र शत्रु स्वरतोऽपरा, धात् महाभाष्य १)

इस कारण गुरु मुख से सुनकर यज्ञ करना अथवा स्मरण करना उचित समझा गया। पुस्तक पढने से यह कार्य सिद्ध नही हो सकता था।

पुस्तकस्था च या विद्या पर हस्तगतधनम्।
कार्य काले तु सम्प्राप्ते नसा विद्या न तद्धनम्।

(चाणक्य नीति)

पश्चिमी विद्वानो मे राथ के मत को डा० हीरा० गौरीशकर ओझा ने (लिपि माला पृ० १५ मे प्र० सस्करण) उद्धृत किया है। उनके मतानुसार वेदो का

प्रातिशाख्य बिना लिखे प्रस्तुत नहीं किया जा सकता था मानो अत्यन्त प्राचीन काल में ही लिखित प्रातिशाख्य वर्तमान था। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि लेखन कला का ज्ञान भारत वासियों को अवश्य था।

संस्कृत साहित्य का इतिहास लिखते समय भारतीय प्राचीन साहित्य की तिथि का निर्णय पश्चिम विद्वान (मक्समूलर आदि) नहीं कर सके। परन्तु यह तो निश्चित है कि ईसा पूर्व सहस्रों वर्ष उनकी रचना हो चुकी थी। अप्रत्यक्षरूप से यह कहना यथार्थ होगा कि ईसवी पूर्व एक हजार वर्ष में लेखन कला का प्रारम्भ हो चुका था।

ईसवी पूर्व तीसरी सदी के अशोक के लेख साक्षात् प्रमाण हैं कि उस समय ब्राह्मी तथा खरोष्ठी का प्रचार था। पेशावर से उड़ीसा तथा हिमालय (कालसी) से मैसूर की (करनूल मद्रास) तक उसके लेख मिलते हैं। उन लेखों में अभिन्न रूप की लिपि है कुछ में भेद भी है। इससे यह स्पष्ट विदित है कि भारत में लिपि का ज्ञान पूर्व से ही रहा जिसका विकास अशोक के लेखों में हुआ था। एक दिन में ऐसी ब्राह्मी सम्मुख नहीं आ सकती। ब्राह्मी का विभिन्न स्वरूप यह घोषित करता है कि अशोक से पूर्व लिपि का परिज्ञान था जो परि वर्द्धित तथा परिवर्तित होकर अशोक ब्राह्मी के रूप में आ गई। लिपि के विकास में कई सदियां बीत जाती हैं।

इसके प्रमाण में अशोक के लेख ही सम्मुख रखे जा सकते हैं। दक्षिण से उत्तर तक के सभी लेखों के अक्षर एक से नहीं हैं। गिरनार, सिद्धपुर जौगढ़ तथा धौगढ़ के अक्षर असमान हैं। अ क म तथा स विभिन्न रूप से लिखे गए हैं। स्थानीय भक्ति से यह अर्थ निकलता है कि अशोक से पूर्व यहां लिपि का प्रचार था।

अशोक ने प्रस्तर पर लेख चिरस्थायी होने के हेतु खुदवाया था [इय धंमलिपि लेखिता चिलठितीका होतु—प्र शि ले २]। इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि अन्य आधार पर भी लेख लिखे जाते होंगे। अशोक पूर्व युग के पिपरावा (उत्तर प्रदेश) सोहगौरा ताम्रपत्र (गोरखपुर) महास्थान लेखों के (बंगाल) प्रमाण पर यह कहा जा सकता है ईसवी पूर्व पांच सौ के लगभग लेखन कला का प्रचार अवश्य था। साहित्यिक आधार पर ई पू कई हजार वर्ष में भी इसकी लिपि मानी जा सकती है। ब्राह्मी अत्यन्त प्राचीन काल से समस्त भारत में प्रयुक्त होती रही और इस ही हम राष्ट्र लिपि कह सकते हैं। उत्तर पश्चिम भारत में जहां खरोष्ठी का प्रचार था वहां भी तक्षशिला के सिक्कों पर ब्राह्मी लिपि अंकित है। रुपमन को एगे ग्रामों गिनके मिले हैं

जिन पर खरोष्ठी तथा ब्राह्मी लिपियो मे मुद्रा-लेख खुदे हैं। तात्पर्य यह है गान्धार के भू भाग मे खरोष्ठी का प्रयोग रहते ब्राह्मी को राष्ट्रीय लिपि मानना उचित है।

भारतीय लेखो का सम्बन्ध लेखन कला तथा लिपि मे इतना अधिक है कि इनका अध्ययन नितान्त आवश्यक हो जाता है। ससार मे सस्कृति के आरम्भ के साथ लिखने-पढने का कार्य होने लगा। लेखन कला जानने के कारण ही मनुष्य के ज्ञान की स्थिरता मानी गई है। इस कारण लेखन कला का इतिहास महत्व रखता है तथा मनुष्य के मस्तिष्क की उन्नति का लेखा उपस्थित करता है। लिखने की क्रिया का समाज मे बडा आदर रहा और लेखन कला के जन्मदाता को ईश्वरीय शक्ति से सम्पन्न मानते हैं। मिश्र, यूनान, चीन तथा भारत आदि देशो मे देवता को ही इसका उत्पादक माना गया है। भारत मे लिपि की उत्पत्ति ब्रह्मा मे मानते हैं, अतएव प्राचीन भारतीय लिपि को ब्राह्मी का नाम दिया गया।

लिपि, लेखन-कला तथा उसका इतिहास

ससार की सभ्यता एव सस्कृति मे मनुष्य के मानसिक विकास के साथ लिपि का जन्म स्वतत्र रूप मे ही हुआ। मनुष्य ने आध्यात्मिक प्रगति मे इसे जन्म दिया ताकि विचारो का आदान-प्रदान कर सके। अधिक समय तक लिखने की कला अज्ञात थी और मनुष्य सकेत से ही अपना कार्य करता रहा। शताब्दियो बाद मुख मे निकली ध्वनि को लिपि बद्ध करने की क्रिया ज्ञात हुई।

लेखन-कला का इतिहास यह बतलाता है कि सर्व प्रथम आकृतियो द्वारा या चित्र द्वारा मनुष्य अपने विचार को व्यक्त करता अथवा लिखता था। सूर्य कहने का भाव बतलाने के लिए चक्र की आकृति जानवर के लिए जानवर तथा मनुष्य के लिए मनुष्य के चित्र खीच दिए जाते थे। इसे "चित्र-लिपि" कह सकते हैं। शब्द या उच्चारित ध्वनि का लिखना अज्ञात था। इस चित्र से किसी घटना को व्यक्त नही करते परन्तु उसे वर्णित करते थे। मिश्र, मेसोपटामिया, क्रीट, स्पेन, अमेरिका आदि देशो मे ऐसे शब्द चित्र पाये गए हैं। उन चित्रो से किसी धारा प्रवाहिक घटना का स्पष्टीकरण नहीं हो सकता था। उच्चारण किए शब्दो का लिखना यानी लिपि बद्ध करना अथवा यो कहा जाय कि मु ह से निकले ध्वनि को लिखने की कला सब से उन्नत अवस्था का द्योतक है। इसमे किसी प्रकार के चिह्न (प्रतीक) का प्रयोग नहीं किया जाता परन्तु अक्षर मुख मे उच्चारित ध्वनि को व्यक्त करते हैं'

मेसोपोटामिया की संस्कृति में एक अक्षर (का चिह्न) किसी पूर्ण शब्द को व्यक्त करता रहा। लेकिन भारत में एक अक्षर एक ध्वनि का द्योतक है। यही कारण है कि भारतीय लिपि वैज्ञानिक मानी जाती है। जो कुछ उच्चारण किया जाता है वही अक्षरों के माध्यम से लिखा जाता है। जो लिखा गया है उसे पढ़ कर उसी बात का ही समझ सकते हैं। किसी भाषा के वाक्य को भारतीय लिपि से लिख सकते हैं तथा उसका उच्चारण भी एक सा होता है। पढ़ने से यह पता नहीं चल सकता कि भारतीय भाषा या लिपि से इसका कुछ भी सम्बन्ध है। जैसे 'आइ गो' इस अंग्रेजी वाक्य को नागरी में लिखने पर भी पढ़ने में अन्तर नहीं आ सकता। अतएव भारतीय लिपि सर्वथा वैज्ञानिक हो जाती है।

ईसा पूर्व चार हजार वर्ष में मिस्र देश में 'चित्र लिपि' का व्यवहार होता था। हथियार के साथ सिपाही का चित्र यह बतलाता था कि सेना का एक सिपाही हथियार लेकर युद्ध स्थल को जा रहा है। क्रमशः बोले गए एक शब्द के लिए विशिष्ट चिह्न का प्रयोग होने लगा। उस चिह्न के कथन से एक शब्द का भाव प्रकट होता था। इस रूप से अक्षर का प्रयोग मिस्र में आरम्भ हुआ। यह अक्षर दाएं से बाएं लिखे जाते थे।

लिपि तथा लेखन कला का इतिहास यह बतलाता है कि ई. पू. ४ वर्ष में सुमेरियन लोगों की एक विचित्र लिपि थी जो नुकीली चीज से निशान बना कर लिखी जाती रही। उसे १ हजार वर्षों के पश्चात् दजला-फरात की घाटी के बेबिलोन तथा एसिरिया के वासियों ने अपनाया। इस तरीके को प्राचीन एशिया के एलामाइट हिटाइट मिटानी तथा ऊर के लोगों ने कार्यों में अपनाया तथा जीवन में अनुकरण किया। ईरानी लेख भी इसी नुकीली (कीलाक्षर) लिपि (क्यूनिफार्म) में अंकित किए गए तथा इस तरह की लिपि-शैली ईसवी सन् तक एशिया के पश्चिमी भाग में प्रचलित रही। उसे कुछ पुरोहित ज्योतिषी तथा कानून वेत्ता प्रयोग करते थे। ईसा पूर्व छठी सदी का एक ईरानी लेख कीलाक्षर में पाया गया है जिसे उन्नीसवीं सदी में पढ़ा जा सका।

ईसा पूर्व १ वर्ष में हड़प्पा तथा मोहेनजोदड़ो नामक भारतीय प्रागैतिहासिक स्थानों में एक विचित्र लिपि का प्रयोग हुआ जिसके सम्बन्ध में कुछ निश्चित कहा नहीं जा सकता। मानी हड़प्पा सभ्यता की लिपि (?) अभी तक पढ़ी नहीं जा सकी। जो तावीज उन स्थानों की खुदाई से निकले हैं उन पर ही लेख खुदा है। प्रायः आज की मुद्राएं (तावीज) लेख युक्त हैं। यह भी एक तरह की 'चित्र-लिपि' कही जा सकती है। कुछ विद्वान

हरप्पा सभ्यता की लिपि को ब्राह्मी से सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयत्न करते रहे तथा कुछ इसे तात्विक मानते हैं परन्तु उनके कथन सारगर्भित नही है।

भारत से पूर्व एशिया मे चीन देश में लिपि का आरम्भ मानते हैं। ईसा पूर्व २००० मे पहले लेखन कला का आरम्भ हुआ और ११०० ईसा पूर्व मे ही धातु तथा प्रस्तर पर लेख खोदे जाने लगे। पहले लकडी तथा बास की तख्तियो पर पुस्तके लिखी गई जो जलवायु के कारण नष्ट हो गई। प्राय ई० स० १५० के समीप चीन मे कागज का प्रयोग आरम्भ हुआ जो वही तैयार किया जाता था।

पश्चिमी एशिया मे लेखन कला का आरम्भ मिश्र के अनुकरण पर हुआ था जहा अधिकतर 'चित्र-लिपि" का प्रयोग होता रहा। मिश्र से क्रीट तथा फिलिस्तीन मे लिखने की क्रिया प्रचलित की गई। भूमध्य सागर के किनारे रहने वाले फिनिशियन जाति ने उसका अनुकरण कर अत्यधिक प्रसारित किया। उनके अक्षर भी भाव को व्यक्त करने वाले "चित्र-लिपि" की तरह थे। कुछ विद्वानो का यह मत है कि फिनिशिया तथा सीरिया मे अक्षर का जन्म हुआ। अक्षरो के प्रतीक (Symbols) का पता लगाना कम महत्वपूर्ण कार्य न था। और इस ओर मिश्र, क्रीट, एशिया माइनर, ईराक तथा भारत के निवासी कार्य करते रहे परन्तु कोई पूर्णता को पहुँच न सका। फिनिशिया के निवासियो ने जिस लिपि का प्रचार किया उसे सेमिटिक (अनार्य) का नाम दिया गया है जिसमे २२ व्यजन अक्षर थे तथा उसमे स्वर का सर्वथा अभाव था (यूनानी भाषा मे भी २२ अक्षर माने गए हैं) इसे दाहिने से बाए लिखा करते थे जो शैली आज भी प्रचलित है। व्यजन मे स्वर का न होना एक अजीब बात थी जिसका कोई समुचित उत्तर नही दिया जा सकता। एक अक्षर एक शब्द की ध्वनि करता था। अथवा स्थानीय प्रसग मे स्वर जोड दिया जाता था। इसका अर्थ यह है कि सेमिटिक अक्षर अपूर्ण थे। स्वर के सम्बन्ध मे कुछ निश्चित मत प्रकट करना कठिन है। व्यजनो की प्रधानता सदियो तक बनी रही। इसका यह अर्थ नहीं कि स्वर का प्रयोग जान बूझ कर छोड दिया गया था पर इसकी अनुपस्थिति मे कोई कठिनाई सामने नही आई। सेमिटिक (अनार्य) भाषा मे २२ अक्षर व्यजन से आरम्भ किए गए थे। आर्य भाषा मे इसका विपरीत ढग दिखलाई पडता है। भारतीय लिपि मे स्वर के सहारे व्यजन का प्रयोग किया जाता है। पाणिनि सूत्रो मे स्वर पहले उल्लिखित हैं तत्पश्चात् व्यजन। अच् को स्वर तथा हल् को व्यजन कहा गया है। सेमिटिक अक्षरो के नाम दैनिक जीवन के वस्तुओ से लिया गया था पर आर्य भाषा मे ऐसी बात नही है।

दक्षिणी अरब मे अक्षर का जन्म अज्ञात है। सेमिटिक शाखा से सम्बन्धित

पश्चिम या पूरब में अक्षरों का प्रयोग बढ़ता गया । अरब में २२ से २८ अक्षर हो गए जिसमें अंतिम व्यंजन पीछे जोड़ गए थे । अशोक के से वीम मादि । यही अरबी अक्षर धर्म तथा व्यापार के साथ पूरब की ओर बढ़ । अरब से ईरान में इन अक्षरों का प्रसार हुआ और कालान्तर मे भारत के पश्चिमोत्तर प्रदेशों में इसका प्रयोग हुआ । जो खरोष्ठी के नाम से विख्यात है। कहने का तात्पर्य यह है कि आरमईक (दक्षिणी अरब) से इस खरोष्ठी का जन्म हुआ । ईरानी इसे ईसा पूर्व ६ में व्यवहृत करते थे और उत्तरी पश्चिमी भारत में ईरानी राज्य के विस्तृत होने पर सीमा प्रान्तों में खरोष्ठी का प्रयोग होने लगा । मौर्य सम्राट् अशोक ने भी इसे अपने शिला लेखों में प्रयोग किया क्योंकि मौर्य साम्राज्य काबुल तक विस्तृत था ।

भारतीय लिपि का जन्म तथा इतिहास

भारतीय साहित्य के आधार पर यह पता चलता है कि इस देश में कम से कम ईसा पूर्व ७ वर्ष में लिपि का ज्ञान था । पाणिनि ने अपने अष्टाध्यायी (३ २, २१) में लिपि के प्रसंग में यवनानि शब्द का प्रयोग किया है यानी उन्हें यूनानी लिपि के प्रचलन की सूचना थी । स्पष्ट है कि पाणिनि ने भारतीय लिपि के विषय में कुछ कहा नहीं । अर्थशास्त्र (२ १ २) में भी लिपि शब्द का प्रयोग मिलता है तथा अशोक ने अपने लेखों में लिपि लिपि तथा दिपि शब्दों का प्रयोग किया है (चौदहा लेख) कहने का तात्पर्य यह है कि ईसा पूर्व कई सदियों में ही भारत वासी लिखने की कला जानते थे तभी तो लिपि शब्द प्रयुक्त किया गया । यद्यपि यह शब्द ताड़पत्र पर कील से खुदे अक्षरों पर स्याही लेपन किया से ही सम्बन्धित समझा जाता है [स्याही लेपन से ताड़ पत्र के सुराख में काला रंग प्रवेश कर जाता था और अक्षर स्पष्ट हो जाते थे] परन्तु कमजोर ऐसी बात नहीं जाती है । जैन सूत्र तथा बौद्ध साहित्य के आधार पर प्राचीन समय में क्रमशः अठारह तथा चौंसठ लिपियों के नाम मिलते हैं । जैन ग्रंथ समवायांग सूत्र में (अ १८) पहला नाम बम्भी (ब्राह्मी) का मिला है (नमो बंभीये लिविये-ब्राह्मी को नमस्कार) तथा दूसरा स्थान जवणालीय (यूनानी लिपि) को दिया गया है । बौद्ध ग्रंथ ललितविस्तर (अध्याय १ १ ५—जिसमे भगवान बुद्ध के जीवन चरित का वर्णन है) में पहला स्थान ब्राह्मी तथा दूसरा खरोष्ठी को दिया गया है। उन सूची के अवलोकन से पता चलता है कि सबसे प्रचलित लिपि ब्राह्मी थी जो सारे भारत में व्यवहृत होती थी (भरोपरु १ ११९५) । खरोष्ठी तथा यवनानि का प्रयोग उत्तर पश्चिम भारत (वर्तमान पश्चिमी पाकिस्तान) में होता था ।

ब्राह्मी तथा खरोष्ठी का प्रयोग भारतीय राजाओ ने भी किया। मौर्य सम्राट् अशोक के दो लेखो को छोड कर सारे लेख ब्राह्मी मे मिलते हैं। दो लेख—मनसेरा तथा शाहबाज गढी (उत्तर पश्चिम भारत=पाकिस्तान) खरोष्ठी मे लिखे मिले हैं। उसका कारण भी स्पष्ट है। यह कहा जा चुका है कि ईरानी राजाओ द्वारा उत्तर-पश्चिम भारत विजय कर लेने पर खरोष्ठी का वहा प्रचार किया गया। इसलिए उस भाग मे खरोष्ठी की ही सदा प्रधानता थी और जो राजा वहा शासन करते थे उन लोगो ने अपने शासन लेख या मुद्रा लेख मे खरोष्ठी का ही प्रयोग किया। मौर्य-काल के पश्चात् यूनानी शासको ने भी खरोष्ठी का प्रयोग किया उक्रतिद ने (१७५ ई० पू०) अपने सिक्को पर खरोष्ठी मे "महरजस एउक्रतितस" खुदवाया था। इसी तरह मिलन्द के लेख तथा मुद्रा लेख खरोष्ठी मे लिखे गये। अतिम यूनानी नरेश हरमेयस (३० ई०) ने सिक्के पर खरोष्ठी मे मुद्रा लेख अकित कराया था। (महरजस त्रतरस हेरमयस) कुषाण सम्राटो ने पेशावर को अपनी राजधानी बनाया और वही से शासन करने लगे। इस कारण जितने लेख कदफिस अथवा कनिष्क समूह के नरेशो ने उत्कीर्ण कराया वह सभी खरोष्ठी मे हैं। कलवान ताम्रपत्र, स्यूविहार ताम्रपत्र तथा कुरम ताम्रपत्र का नाम उदाहरण स्वरूप लिया जा सकता है। ईसवी सन् के आरम्भ मे कनिष्क के सामत जुवल ने मथुरा मे भी खरोष्ठी मे लेख खुदवाया था (मथुरा सिहस्तम्भ लेख) परन्तु यह एक ही लेख है जो उत्तरी पश्चिमी सीमा के बाहर खरोष्ठी मे मिला है। सोडास ने मथुरा मे ब्राह्मी का प्रयोग किया तथा कनिष्क ने भी सहेत महेत (श्रावस्ती गोंडा उत्तर प्रदेश) मे ब्राह्मी मे लेख खुदवाए। कहने का तात्पर्य यह है कि खरोष्ठी का प्रयोग सीमित था जिसके बाहर भारत के अन्य प्रदेशो मे ब्राह्मी का प्रयोग होता रहा। खरोष्ठी का प्रसार उत्तर मे मध्यएशिया (तरीम घाटी) मे हुआ था और वहा के शासन लेख पट्टियो पर खरोष्ठी मे मिले हैं। खोतान मे खरोष्ठी खोतानी लिपि के नाम से प्रसिद्ध हो गई थी।

ललित विस्तार तथा चीनी ग्रथ फवानसूलीन मे खरोष्ठी नाम की लिपि का उल्लेख पाया जाता है और सातवी सदी तक यह नाम प्रचलित रहा।

खरोष्ठी

इसके नाम करण के विषय मे विद्वानो मे मतभेद है। यह कहा जाता है कि इस लिपि का जन्म दाता वह व्यक्ति था जिसके होंठ गदहे के सदृश (खर+ओष्ठ) था। इसके साथ यह भी कहा जा सकता है कि अनार्य लोगो द्वारा उत्तर पश्चिम भारत मे इसका प्रयोग हुआ था (यूनानी, शक, पहलव तथा कुषाण)। कुछ विद्वानो-

सिलवन लेवी तथा स्टन कोनो आदि का मत था कि खरोष्ठ मध्य एशिया के नगर काशगर का संस्कृत रूप है। मध्य एशिया के अनेक नगरों से खरोष्ठी में शासन लेख तथा हस्तलिखित ग्रंथ मिले हैं किन्तु खरोष्ठी में सभी ग्रंथ ई. स. के दूसरी सदी तक के हैं। उत्तर पश्चिम भारत में (तक्षशिला भू भाग में) ई. पू. तीसरी शताब्दी में इसका प्रयोग हो रहा था।

ईरानी भाषा में खरपोस्त शब्द का अर्थ गदहे का चर्म है। स्यात् चमड़े पर लेख लिखे जाते रहे इस कारण भारतीय विद्वानों ने इसका नाम खरोष्ठी रक्खा था।

दक्षिण अरब में आरमेयिक भाषा में खरोष शब्द मिलता है जो लिपि के लिए प्रयुक्त है। अतः खरोष्ठी उसी का संस्कृत रूप माना जा सकता है।

इस लिपि का खरोष्ठी नाम चीनी ग्रंथ (ई. स. ६६८) में मिलता है जिसके जन्म दाता खरोष्ठ माने गए हैं। यह भारतीय शब्द था जो चीनी साहित्य में प्रयुक्त है। स्यात् इस लिपि को टेढ़ा लिखने के कारण ही (गधे के ओठ के समान घूमन वाला) खरोष्ठी का नाम दिया गया हो।

खरोष्ठी आरमेयिक लिपि से ही निकली जो पाँचवी सदी ई. पू. में प्रचलित थी। यह दाहिने से बाएं लिखी जाती है। यह अनार्य सेमिटिक लिपि से सर्वथा मिलती है और फारसी प्रसार के साथ खरोष्ठी का प्रयोग भारत वर्ष में होने लगा। मध्ययुग की अरबी लिपि भी इसके समान है। जिसमें दीर्घ स्वर का सर्वथा अभाव है। इस आधार पर जनता में एक कल्पना सम्मुख आई कि प्राकृत भाषा लिखने के लिए खरोष्ठी का आविष्कार किया गया जिस भाषा में दीर्घ स्वर तथा लम्बे समास का अभाव सभी को ज्ञात है। खरोष्ठी साधारणतया लोकप्रिय लिपि थी। इसके प्रचार तथा प्रसार के सम्बन्ध में विशिष्ट रूप से कहना कठिन है। यों तो ईरानी राजाओं ने उत्तर पश्चिम भारत पर शासन किया पर उन्होंने स्वयं खरोष्ठी का प्रयोग लेखों में नहीं किया। इसलिए आरमेयिक से इसकी उत्पत्ति स्वीकार मानी जा सकती है। जबकि उसका प्रयोग उत्तर पश्चिमी भाग में कभी भी नहीं हुआ। खरोष्ठी का प्रयोग अशोक ने मानसेरा तथा शाह बाजगढ़ी के लेखों में किया था। वहीं से भारत के व्यापारियों ने उत्तर उपनिवेश मध्य एशिया तक इस लिपि का प्रसार किया। इस लिपि में मध्य एशिया के लिखित ग्रंथ ईसवी सन् के बाद के हैं। अतएव यह कहा जा सकता है कि सम्भवतः खरोष्ठी का जन्म उत्तर पश्चिम भारत में हुआ। ईरानी साम्राज्य के उस भाग पर विस्तृत होने पर ईरानी मुद्रा पर खरोष्ठी में शब्द अंकित किए गए। उत्तर पश्चिम भारतीय सीमा पर जिन शासकों ने राज्य किया

सभी ने खरोष्ठी का प्रयोग किया। और भारत वासियो को उस लिपि के प्रयोग के लिए वाध्य किया गया। चू कि उसमे स्वर का अभाव है अत प्राकृत भाषा लिखने मे प्रयुक्त हुई। वहा दीर्घ स्वर का प्रयोग कम रहता है ब्राह्मी मे ई उ ए तथा ओ स्वरो के लिए सीधी रेखा का प्रयोग होता था जिसका अनुकरण खरोष्ठी मे किया गया जो जेर, जवर, पेश के नाम से प्रसिद्ध है।

साहित्य मे लिपियो की सूची मे ब्राह्मी को पहला स्थान दिया गया है और वह पश्चिमोत्तर प्रात को छोड कर सर्वत्र व्यवहृत होती थी। भारत वर्ष के मौर्य सम्राट् अशोक के लेखो मे ब्राह्मी का प्रयोग मिलता है। जैसा नाम मे ही पता चलता है कि प्राचीन काल मे ब्राह्मणो ने वेदो के रक्षार्थ इस लिपि को जन्म दिया। यह तो सभी मानते हैं कि ब्राह्मी का आविर्भाव भारत वर्ष मे हुआ और ब्राह्मण द्वारा ग्रथो मे इसका प्रयोग हुआ। इस मार्ग मे केवल कठिनाई यह है कि ई० पू० चौथी सदी से पूर्व का कोई लेख ब्राह्मी मे नही मिला है। अतएव पश्चिमी विद्वानों का मत है कि व्यापारियो ने पश्चिमी एशिया से ब्राह्मी का अनुकरण किया, जो भारत की राष्ट्रीय लिपि नही है।

ब्राह्मी

जो विद्वान ब्राह्मी को विदेशी लिपि से उत्पन्न मानते हैं उनमे अधिकतर इस लिपि को अरबी (सेमिटिक) मे विकलित समझते हैं। जेम्स प्रिंसेप (अलफाबेट पृ० ३३५) विलसन, सेनार्ट आदि (इ० ए० भा० ३५ पृ० २५३) ब्राह्मी को यूनानी लिपि से उत्पन्न मानते हैं और यूनानी सम्पर्क से इसमे सुधार की बातें देखते हैं। इनके मतानुसार यूनानी लिपि (जिसका वर्णन पाणिनि ने किया है) से ब्राह्मी निकली है। यूनानी लिपि फोनिशियन अक्षरो से अधिक प्रभावित है। वैदिक पणिस (फोनिशियन) ने ही भारत से लेखन कला को पश्चिमी एशिया तक पहुचाया और उसी से यूनानी लिपि का प्रचलन हुआ।

वहलर तथा वेवर इससे विपरीत विचार रखते हैं। (अलफावेट पृ० ३३५, इडि० पैलियो० पृ० १०) उनके विचार मे फोनिशिया (पश्चिमी एशिया की एक जाति) से ही ब्राह्मी की उत्पत्ति हुई। यानी अनार्य लिपि से ब्राह्मी निकली है। उनके कथनानुसार फोनिशिया की लिपि का एक तिहाई अक्षर ब्राह्मी से मिलता (यानी सदृश) है। यद्यपि दोनो देशो मे आवागमन के साधन कठिन थे तथापि यह क्यो निश्चित कर लिया जाय कि फोनिशिया मे ही व्यापारी भारत आए और अपनी लिपि का प्रसार किया? इसके विपरीत यह भी माना जा सकता है कि भारतीय व्यापारी जब वहा गए तो पश्चिमी एशिया मे लिपि की उत्पत्ति हुई।

टेलर दक्षिणी सेमिटिक तथा बुहलर न उत्तरी सेमिटिक से ब्राह्मी की उत्पत्ति का सिद्धान्त स्थिर किया है (डिरिंजर अल्फाबेट पृ ३३५) अत्यन्त प्राचीन समय में भू मध्य सागर से हिन्द महासागर में आवागमन की सुविधा रही। परन्तु अरब से ब्राह्मी पर प्रभाव की बात हास्यास्पद है। बुहलर अपने विचार पर अधिक बल देते हैं कि मेसोपटामिया तक प्रचलित उत्तरी समिटिक अक्षरों में सुधार लाकर ब्राह्मी का विकास किया गया। उनके सिद्धान्त के अनुसार (अ) ब्राह्मी के अक्षर सीधे तथा एक ऊंचाई के होते हैं (ब) सभी अक्षर सम्भवत् लिखे जाते हैं और ऊपर तथा नीचे ही कुछ चिह्न जोड़ा जाता है।

इस तरह ब्राह्मण जाति न कुछ चिह्न आदि जोड़ कर अपनी सुविधा से ब्राह्मी को तयार किया। उन लोगों न सदा ही सिरे के लकीर से अक्षर को नीचे लटकाया और स्वर के चिह्न को ऊपर या नीचे जोड़ दिया। इसके कारण सेमिटिक अक्षर को उलट कर दूसरे रूप में परिवर्तित कर दिया। ऐसी परिस्थिति (सेमिटिक अक्षर में नए चिह्नों को जोड़न से) म सेमिटिक लिपि के लिखने की दिशा को भी बदलना पड़ा और भारत में उसे बाएं से दाहिन लिखा गया। बुह्लर के कथनानुसार ब्राह्मी के २२ अक्षर उत्तरी सेमिटिक से लिए गए हैं। कुछ फौनिशिया से और थोड़े एसिरिया क तौल पर अंकित लिपि से। शेष अक्षर नए चिह्नों को जोड़ कर तयार किए गए और इस ढंग से ब्राह्मी की वर्णमाला तयार हो सकी।

डा डिरिंजर का मत भी बुहलर के सिद्धान्त से मिलता है। उनके कथन से अनार्य (आरमेइक) अक्षर ही ब्राह्मी के पूर्व रूप मान जा सकते हैं (अल्फाबेट पृ ३३६-७)। उनका कहना है कि पश्चिमी एसिया की सेमिटिक या आरमीनियन व्यापारियों ने सर्व प्रथम भारत से सम्पर्क स्थापित कर अक्षरों का यहां समावेश किया। भारत ने ब्राह्मी को जन्म नहीं दिया। जो पश्चिमी एसिया से लो गई वही लिपि प्रचलित की गई। स्वर तथा व्यंजन को चिह्न से व्यक्त करन की कला भी पश्चिमी एसिया से भारत पहुची। प्रथम अरबी अक्षर (अलिफ (अ) बेथ (ब) गिमेल (ग) दालेथ (द) आदि ब्राह्मी के सदृश लिखे जाते हैं। दूसरे स्थान पर यह कहा जाता है कि भारतीय अक्षर चित्रलिपि की तरह थे। सर्व प्रथम 'चित्र-लिपि' सेमिटिक ही थी। इसलिए सेमिटिक से ब्राह्मी उत्पन्न हुई। तीसरा प्रमाण दिया जाता है कि ब्राह्मी आरम्भ में दाहिन से बाएं लिखी जाती रही (जैसे अरबी लिखी जाती है)। अन्त में यह व्यक्त किया गया है कि ई पू ५ से पहले ब्राह्मी का कोई रूप नहीं मिलता अतएव अशोक ब्राह्मी को

क्यो कर भारतीय मान सकते हैं ? उपरि-लिखित प्रमाणो के उत्तर मे यह कहना यथार्थ होगा कि बुह्लर तथा डिरिंजर द्वारा कथित सेमिटिक तथा ब्राह्मी की समानता काल्पनिक है। उत्तर पश्चिम भारत मे प्रचलित खरोष्ठी मे मिलता है परन्तु ब्राह्मी मे नही। फिर भी यह मत अन्य प्रमाणो से पुष्ट नही होता कि सेमिटिक से ही ब्राह्मी या खरोष्ठी की उत्पत्ति हुई। यह ठीक विपरीत भी हो सकता है (खरोष्ठी से सेमिटिक निकली) दोनो लिपियो अथवा अक्षरो मे कुछ समानता दिखलाई पडती है, पर इससे यह भाव नही निकाला जा सकता कि ब्राह्मी सेमिटिक का अनुकरण है। यो तो अग्रेजी अक्षर इ(E) के सदृश ब्राह्मी ज होता है किन्तु ऐसे आधार पर कोई सिद्धान्त स्थिर करना युक्तिसगत नही।

ससार मे प्राय सभी लिपिया प्रारम्भ मे "चित्र-लिपि" थी। उससे ही लोगो ने कालान्तर मे अक्षरो को लिखना शुरू किया। भारतवर्ष के प्रागैतिहासिक युग के मुहरो के लेख सर्वथा "चित्र-लिपि' मे नही हैं। कुछ चित्र हैं पर स्वरध्वनि तथा शब्दाश के द्योतक है या नही यह निर्णय नही हो सका है। उनमे कुछ अक्षर भी प्रकटित हो रहे है। अतएव सम्भव है कि हरप्पा सभ्यता मे उपलब्ध मुहरो (seals) की लिपि से ब्राह्मी क्रमश विकसित हुई हो।

बूह्लर ने ब्राह्मी को दाहिने से बाए लिखने का जो प्रमाण दिया है वह अशोक के येरगुडी (करनूल, मद्रास) लेख तथा एरण के एक मुद्रा-लेख पर आधारित है। कनिघम ने मध्य प्रदेश के जबलपुर मे उस सिक्के का पता लगाया था जिस पर ब्राह्मी मे मुद्रा लेख दाहिने से बाए लिखा है। इसे एक आकस्मिक् घटना मान सकते हैं और टकसाल के साँचा निर्माता-की भूल से ऐसा हो गया होगा। इसी तरह अशोक के लेख मे लिखने का क्रम उलटा मिलता है। येरगुडी के लेख मे पहली पक्ति ठीक ढग से बाए से दाहिने लिखी है और दूसरी पक्ति दाहिने से बाए। तीसरी बाए से दाहिने तथा चौथी दाहिने से बाए। इससे स्पष्ट है कि लेख अकित करने वाला वास्तविक रूप मे ब्राह्मी लिखना जानता था। पर एक नयी प्रणाली (दाहिने से बाएँ) का उसी लेख मे समावेश करना चाहता था। इसलिए उलटा क्रम (दाहिने से बाए) भी कार्यान्वित किया। किन्तु इस कृत्रिम रूप के आधार पर कोई गम्भीर सिद्धान्त स्थिर करना युक्ति सगत न होगा।

यह कहना उचित होगा कि साहित्यिक आधार पर बुद्ध-काल से भी पूर्व ब्राह्मी का प्रचलन प्रकट होता है। पुरातत्व विभाग की खुदाई मे अशोक ब्राह्मी से भी पूर्व पिपरावा स्तूप (उत्तर प्रदेश) से प्राप्त पात्र पर अक्षर खुदे है (ई० पू० ४५०) इससे भी पूर्व पाणिनि के समय लिपि का ज्ञान भारतवासियो को

था। संक्षेप में यह व्यक्त करना आवश्यक है वैज्ञानिक रूप में ब्राह्मी में प्रत्येक अक्षर ध्वन्यात्मक चिह्न हैं। लिखने तथा बोलने में समता है यानी जो लिखते हैं उसी के समान उच्चारण भी करते हैं। इसमें चौंसठ स्वर व व्यंजन के चिह्न हैं। ह्रस्व तथा दीर्घ के पृथक पृथक चिह्न वर्तमान हैं तथा मध्य में स्थित चिह्न से स्वर व्यंजन का मेल होता है। अ सभी व्यंजन में निहित तथा अन्तर्वर्ती है। इस प्रकार ब्राह्मी वैज्ञानिक लिपि है जिसमें एक क्रम है। इन सबल प्रमाणों के सम्मुख समिटिक ऐसी अनियमित तथा अवैज्ञानिक लिपि से ब्राह्मी की उत्पत्ति कैसे मानी जा सकती है?

ब्राह्मी से भारतीय लिपियों का विकास

यह तो कहा जा चुका है कि बौद्ध ग्रंथों में जितनी लिपियों के नाम आते हैं उनमें ब्राह्मी को सर्व प्रथम स्थान दिया गया है। ईसा पूर्व पांच सौ वर्षों से ब्राह्मी का प्रयोग निरन्तर होता रहा है। अशोक के समय में तो सारे भारत वर्ष में (उत्तर पश्चिम के कुछ भाग को छोड़ कर) इसी लिपि में लेख अंकित किए गए। यह राष्ट्रीय लिपि ई पू ५ से ईसवी सन् के १ तक समान रूप में पाई जाती है जिसके पश्चात कुछ विभिन्नता आने लगी। गुप्त काल से ब्राह्मी में स्पष्ट विभेद दिखलाई पड़ने लगा और उस के स्वरूप को ध्यान में रख कर दो विभाग किया जा सकता है—

(१) उत्तरी भारतीय शैली
(२) दक्षिण भारत की शैली

डिरिंजर के मतानुसार मौर्य सम्राट अशोक के लेखों में प्रयुक्त लिपि के पश्चात (ईसा पूर्व दूसरी सदी) कलिङ्ग में कुछ भिन्नता उत्पन्न हो गयी थी। हाथी गुम्फा लेख की लिपि को कलिंग शैली की ब्राह्मी कह सकते हैं। इसी प्रकार शुंग कालीन भारहुत बेसनगर के लेख तथा दक्षिण के शासक सातवाहन लेखों (नासिक नानाघाट) की लिपि एक सदृश नहीं है। बुहलर ने उत्तरी भारत की शैली को यानी गुप्त युग से पूर्व लिपि को दो भागों में विभक्त किया है। शुंग कालीन लिपि से उत्तरी क्षत्रप (रजुवुल) का मथुरा लेख के अक्षर भिन्न हैं तथा दोनों लिपियों में समानता है। उससे भी भिन्न कुषाण लिपि समझी जाती है जो कनिष्क हुविष्क तथा वासुदेव की प्रशस्तियों में प्रयुक्त है। प्रायः मथुरा लेखों में उस तरह की लिपि वर्तमान है।

यदि मौर्य काल से ईसवी सन की द्वितीय शताब्दी तक के लिपियों का गम्भीर अध्ययन किया जाय तो पता चलता है कि अशोक कालीन लिपि में स्वर के चिह्न अक्षर के सिरे पर या नीचे लगाए जाते थे। विसर्ग का नाम नहीं।

ऋ का सर्वथा अभाव था। इनका व्यवहार सर्वप्रथम उएवदत्त के नासिक लेख (ई० स० १२०-२५) मे पाया जाता है। रुद्रदामन के गिरनार लेख (ई० म० १५०) मे सयुक्त अक्षर का प्रयोग निश्चित रूप मे पाया जाता है।

अशोक के पश्चात् अनेक लेखो (वेमनगर, नानाघाट, भारहुत तथा हाथी गुम्फा के लेख) मे विभिन्नता दृष्टिगोचर होती है। उदाहरणार्थ पहले चार विन्दुओ से इ मात्रा का वोध होता था पर वाद से तीन विन्दुओ से ई तथा चौथे से अनुस्वार का वोध होने लगा। भारहुत मे ई के लिए एक निश्चित स्वरूप दिखलाई पडता है। मथुरा के क्षत्रप लेखो मे अक्षरो का आकार त्रिभुज के रूप मे होने लगा। हाथी गुम्फा मे अक्षरो के सिरे छोटी रेखा आती है। अशोक कालीन ब्राह्मी मे अक्षरो मे गोलाई थी। रेखा नही थी जो आगे चल कर प्रकट हो गई। मौर्य ब्राह्मी मे दीर्घ ई तथा ऊ के लिए क्रमश सिरे तथा नीचे दो रेखा जोड दी जाती थी। परन्तु ईसवी सन् से इनका पृथक स्वरूप मिलता है। मथुरा तथा सारनाथ के लेख मे कुषाण युग मे ई के लिए विन्दुओ के स्थान पर रेखाओ का प्रयोग होने लगा। ई स्वर के चिह्न ने नवीन रूप धारण कर लिया। ण चार प्रकार से लिखे जाने लगे। दूसरी सदी मे हलत् का प्रयोग आरम्भ हुआ। उसके लिखने मे हलत वाला अक्षर साधारण अक्षरो से नीचे (उसी सीध मे नही) लिखा जाने लगा। अक्षरो की सिरो रेखा गिरनार के लेख मे (१५० ई०) अक्षरो के सिरे पर एक छोठी रेखा के सदृश प्रकट हुई जो आगे चलकर लम्बी लकीर वन गई। पश्चिमी भारत के क्षत्रप शासक तथा दक्षिण के सातवाहन नरेशो के मुद्रा लेखो मे अक्षरो के नए स्वरूप मिलते हैं। ज्ञ, य, स, ह, क्ष, म तथा इ का नया रूप सामने आता है। इसका कारण यह वतलाया जाता है कि सिक्को पर स्थान की कमी के कारण नए शैली के अक्षर लिखे गए।

चौथी सदी मे भारतीय लिपि मे विशेष रूप से भिन्नता आ गई। मौर्य युग से तीसरी सदी तक ब्राह्मी मे आमूल परिवर्तन नही दिखलाई पडता। अक्षर का रूप तथा कुछ नए रूप के समावेश से वह भिन्नता नही आ सकी जिसे नाम देकर व्यक्त किया जाता। किन्तु चौथी सदी से छठी सदी तक नर्वदा के उत्तर मे प्रचलित लिपि का "गुप्त लिपि" का नाम दिया गया क्योकि उस अवधि मे गुप्त शासक थे। समय तथा स्थान के कारण निश्चित रूप से ब्राह्मी मे विभेद आ गया। गुप्त लिपि का प्रयोग सस्कृत भाषा मे सर्वत्र होने लगा। उदयगिरि

गुप्तलिपि

(भिलसा के समीप) के लेख में जिह्वामूलीय तथा उपध्मानीय का सर्वप्रथम उपयोग दिखलाई पड़ता है। गुप्त लिपि के अध्ययन के फलस्वरूप दो उप-विभाग किये गये हैं। श्री राखालदास बनर्जी चार उपविभाग मानते हैं।
(१) पश्चिमी ढंग के अक्षर जिसमें कोई नया रूप नहीं है। कुमार गुप्त प्रथम के बिलसद लेख (एटा जिला उत्तर प्रदेश) की लिपि पश्चिमी उपविभाग का प्रतिनिधि समझी जाती है। इसमें स्वर के चिह्न स्पष्ट हैं जो बाद चलकर कुटिल लिपि का स्थान लेते हैं।

(२) पूर्वी शाखा में ष स ह तथा म अक्षरों का नया रूप दिखलाई पड़ता है। प्रयाग का स्तम्भ लेख इसका प्रतिनिधित्व करता है। ह के लिए दो बिन्दु तथा सामने लम्बवत् रेखा का प्रयोग मिलता है। सभी अक्षरों में कोण तथा सिरे पर रेखा का समावेश गुप्त लिपि में पाया जाता है। इसी को 'सिद्धमातृका' के नाम से पुकारने लगे।

गुप्त युग के पश्चात छठी से नवीं सदी तक गुप्त-ब्राह्मी से भी अधिक भिन्नता उत्तरी भारत के लिपि में दिखलाई पड़ने लगी। गुप्त लिपि के प्रत्येक अक्षर में नीचे की ओर खड़ी रेखाएं बाईं ओर मुड़ी हैं

कुटिल लिपि

तथा स्वर की मात्राएं टेढ़ी और लम्बी हो गई। इसी कारण इन तीन सौ वर्षों की लिपि की कल्पना की गई जो 'कुटिल लिपि' के नाम से प्रसिद्ध हुई। यह शब्द देवल लेख (उत्तर प्रदेश) में 'कुटिला क्षराणि' कहा गया है तथा विक्रमाङ्कदेव चरित में कुटिललिपि उल्लिखित है। पीछे इसको 'विकटाक्षरा' भी कहने लगे। पिछले गुप्त नरेश आदित्यसेन के अपसद (गया जिला) तथा विष्णु गुप्त के मंगराव (शाहाबाद जिला) लेख इस लिपि में उत्कीर्ण हैं। उत्तर प्रदेश बिहार तथा राजपूताना के लेख इस लिपि से सम्बन्धित हैं। मंदसोर, मधुबन जोधपुर आदि लेखों में अक्षर नागरी से मिलते जुलते हैं। का हलंत उपध्मानीय आदि का प्रयोग नागरी के समान है यानी कुटिल तथा देव नागरी लिपि मे कोई अन्तर नहीं दिखलाई पड़ता। कुटिल लिपि से ही नागरी तथा शारदा 'लिपियाँ' निकलीं। हलंत व्यंजनों के सिरे पंक्ति से नीचे नहीं किन्तु स्वर व्यंजनों के साथ समान पंक्ति में ही लिखा है।

भारतवर्ष की सर्व प्रसिद्ध लिपि नागरी का विकास सिद्धमातृका से माना जाता है। नागरी का नामकरण विवादास्पद है। नगर के

देवनागरी लिपि

रहने वाले जिस लिपि में लिखने लगे उसे नागरी का नाम दिया गया अथवा गुजरात के नागर ब्राह्मण जिस लिपि का प्रयोग करते थे उसे नागरी कहा गया। इसमें सिरे की पड़ी रेखा लम्बी हो गई

और अक्षरो मे लम्बी लकीर का समावेश हो गया। सिद्धमातृका से भिन्न सिरे की मात्राए अधिकतर सीधी हो गई। सातवी सदी मे नागरी के स्वरूप का आभास मिलने लग गया था। परन्तु नवी सदी से सर्वत्र नागरी मे लेख या पुस्तक लिखना आरम्भ हो गया। ११वी सदी तक तो उत्तरी भारत मे नागरी ही प्रधान लिपि थी और उत्तर प्रदेश, मध्यप्रदेश, विहार, वगाल, राजपुताना मे सर्वत्र नागरी मे अभिलेख तथा मुद्रालेख उत्कीर्ण किए गए।

नागरी को देव नागरी का नाम दिया गया। सम्भवत देव कार्य के लिए ब्राह्मण प्रयुक्त करते थे इसलिए देवनागरी नाम प्रसिद्ध हुआ। यह सब मे अधिक वैज्ञानिक लिपि है जिस के अक्षर मे 'अ' अन्तर्निहित है। उसका पृथक उच्चारण नही होता। इसमे १४ स्वर तथा ३४ व्यजन पाए जाते हैं।

उत्तरी भारत की ब्राह्मी से ही देव नागरी विकसित हुई और उसके समकालीन शारदा तथा वगला लिपियो की भी उत्पत्ति हुई। पश्चिमी गुप्त लिपि मे आठवी सदी मे काश्मीर मे शारदा लिपि का विकास

कैथी आदि

तथा प्रसार हुआ। शारदा मे अक्षर मूलत देवनागरी के समान है परन्तु उनका स्वरूप भिन्न है। पूर्वी गुप्त लिपि मे वगला लिपि का पूर्व रूप पाया जाता है। यानी सातवी सदी के पश्चात् नागरी लिपि से ही वगाला लिपि निकली। पाल राजा धर्मपाल तथा देवपाल के लेख नागरी लिपि मे ही मिलते हैं। श्री चक्रवर्ती ने अपने लेख (वगाली अक्षर का विकास) मे इस बात को सिद्ध किया है कि सातवी सदी की लिपि के पूर्वी उपविभाग से वगला का जन्म हुआ। नागरी से दसवी सदी तक वह प्रभावित रही यानी दोनो लिपियो मे समानता रही। परन्तु इसके बाद स्वतन्त्र रूप धारण कर लिया। उसे १५वी तथा १६वी सदी मे पूर्ण विकसित पाते हैं। पूर्वी नागरी से ही कैथी, महाजनी, राजस्थानी तथा गुजराती लिपिया निकली। कैथी को कायस्थ लोग लिखते रहे। देवनागरी से इसमे विभिन्नता दो स्थानो मे दिखलाई पडती है। सिरे की पडी रेखा तथा अक्षरो मे खडी रेखा का कैथी मे सर्वथा अभाव है। कैथी मे ई या ऊ का दीर्घ नही होता तथा स या श मे अन्तर नही दिखलाई पडता। महाजनी को मारवाडी वर्ग व्यापार के सम्बन्ध मे प्रयोग करते हैं।

भारत मे विन्ध्या के दक्षिण नर्वदा नदी दक्षिणापथ की सीमा निश्चित करती है परन्तु लेखन कला के आधार पर पश्चिम मे काठियावाड तथा पूरब मे

दक्षिण भारत की शैली

वगाल के दक्षिण भाग को दक्षिणी भारत के नाम से प्रयुक्त किया गया है और उस भाग मे प्रचलित लिपि दक्षिण भारतीय शैली कही जाती है। उस भूभाग मे वसने वाले लोग

द्रविड़ या द्रमिड़ के नाम से विख्यात है। पाली दमिल तथा संस्कृत तमिल शब्दों से यहां की भाषा परिवार की जानकारी होती है। इसलिए भारतीय लिपि के दक्षिणी शाखा को 'द्रविड़ लिपि' कहा जा सकता है। यह लिपि ईसवी स की चौथी सदी से प्रयुक्त होने लगी और गुप्त काल में उत्तर तथा दक्षिण शाखाएं पृथक हो गई। मोटे तौर पर उत्तरापथ की लिपि में कोण युक्त अक्षर तथा अक्षर के सिरे पर पड़ी रेखा को स्थान मिल गया। दक्षिण के अक्षरों पर वर्गाकार आकृति जोड़ दी गई जो बाक्सनुमा कहा जाता है।

दक्षिणापथ के द्रविड़ लिपि निम्न भागों में विभक्त की गई है —

(१) पश्चिमी उपविभाग—काठियावाड़ गुजरात मराठा जिले तथा कोंकण में प्रयुक्त। गुजरात काठियावाड़ में उत्तरी शाखा की लिपि काम में लाई जाती थी अतएव उसका प्रभाव दिखलाई पड़ता है।

(२) मध्यभारत की लिपि—इसमें भी अक्षरों पर वर्ग का स्थान दिया गया था मानी बाक्सनुमा आकार वाले अक्षर।

(३) तेलगु लिपि—दक्षिण भारत में इस लिपि को प्रधान स्थान दिया गया है। इसका प्रयोग तथा विकास बम्बई के दक्षिण भाग में मैसूर तथा आंध्र प्रदेश में मिलता है। इस लिपि का सर्वप्रथम प्रयोग पांचवीं सदी में पाया जाता है तथा कन्नड़ ग्रंथ कविराज मार्ग (९वीं सदी) में यह दिखलाई पड़ती है। मद्रास प्रदेश के तेलगु लेख से भी पहले तामिल का प्रयोग मिलता है।

(४) ग्रंथ लिपि—पूर्वी मद्रास किनारा कांची के भाग से प्राप्त प्राचीन संस्कृत अभिलेख की लिपि 'ग्रंथ' के नाम से प्रसिद्ध थी। कांची में ५वीं-९वीं सदी तक तथा चोल (उत्तरी मद्रास) राज्य में ९ वीं से १४वीं सदी तक प्रयुक्त होती रही। पल्लव राजवंश के ताम्रपत्र (७वीं सदी) 'ग्रंथ' में ही लिखे गये थे। आरकाट से केरल तक पुस्तक इसी लिपि में लिखी गई थी इसी कारण इसका नाम 'ग्रंथ लिपि' पड़ा।

(४) तामिल लिपि—इसकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में कुछ निश्चित नहीं कहा जा सकता। बुहलर का मत था कि पांचवी सदी की ब्राह्मी से यह निकली और कालान्तर में 'ग्रंथ' से प्रभावित हुई। द्रविड़ी लिपि से तामिल लिपि का सम्बन्ध अनिश्चित है। आरकाट मदुरा तथा केरल तक तामिल की अपूर्णता के कारण संस्कृत की पुस्तकें 'ग्रंथ' लिपि में लिखी गई। मद्रास के भूभाग में तथा मालाबार प्रदेश के लेखों में (चोल चालुक्य एवं राष्ट्रकूट के दानपत्रों) में सातवीं सदी से तामिल का प्रयोग होने लगा था। इस में संयुक्त व्यंजन एक दूसरे से मिला कर नहीं किन्तु पास-पास लिखे जाते हैं।

इसमे कुल १८ व्यजन है। इसी कारण सस्कृत इसमे लिखा नही जा सकता। जब आवश्यकता पडती है तो 'ग्रथलिपि' मे लिखे जाते है।

मद्रास के गजाम तथा कलिंग मे शासन करने वाले गग वशी राजाओ के दानपत्रो मे ७वी से ११वी सदी तक इस लिपि का प्रयोग

कलिंग लिपि मिलता है। इसमे मध्यदेशीय लिपि का अनुकरण है तथा अक्षर के सिरे सदूक की आकृति वर्तमान है। इसमे तेलेगु, ग्रथ तथा नागरी का सम्मिश्रण पाया जाता है।

लेखक तथा लिखने की विधि

भारतवर्ष मे अक्षर को विद्वानो ने पता लगाया और साहित्यिक क्षेत्र मे पुरोहित अथवा ब्राह्मण इसका प्रयोग करते रहे। लिपि से पूर्व भाषा तथा स्वर विद्या का ज्ञान स्वत प्रमाणित होता है। भाषाविद् के समक्ष साहित्य का अध्ययन प्रधान था और लेखन कार्य को उतनी आवश्यकता न थी। समाज के विकास के साथ विभिन्न जीविका के द्वारा लोग निर्वाह करने लगे और लेख-कार्य भी एक जीविका का साधन बन गया।

हमारे महाकाव्यो मे लेखन शब्द का उल्लेख पाया जाता है। रामायण तथा महाभारत के अतिरिक्त पालि साहित्य मे इस शब्द का प्रचुर प्रयोग किया गया है। मुद्राराक्षस मे पदाधिकारी लेखक या श्रोतिय की प्रशसा की गई है—

(अ) श्रोत्रिय अक्षराणि प्यत्न लिखितान्यपि

(ब) अहो दर्शनीयान्यक्षराणि (प्रथम अक)

बौद्ध ग्रथ विनयपिटक (भिक्खुपाचितिय एव बुधिस्ट इडिया पृ० १०८) मे लेखन कला की प्रशसा की गई है। महावग्ग (१, ४९) तथा जातको मे (इडियन स्टडीज ३, २) राजकीय पत्रो का विवरण पाया जाता है जिससे प्रकट होता है कि राजकीय आज्ञा पत्रो के लिखने मे दक्षता की आवश्यकता रहती थी। अभिलेखो मे सर्वप्रथम साची के लेख मे (स्तूप न० १ स० १४३) 'लेखक' शब्द का प्रयोग मिलता है। उससे दानकर्त्ता के जीविका का तात्पर्य था। पीछे 'लेखक' शब्द का प्रयोग प्रशस्तिकार (शिला या ताम्रपत्र) से किया जाने लगा। ब्राह्मण या कायस्थ वर्ग के व्यक्ति इस कार्य को करते थे। जैन-धर्म ग्रथ-भिक्षु तथा भिक्षुणी द्वारा नकल किया जाता था। नालदा के लेख मे धर्म-ग्रथ के लिखने के लिए (नकल करने) दान देने का वर्णन मिलता है (ए० इ० भा० २०)। अशोक के लेख मे (ईसा पू० चौथी सदी मे) लिपिकर

दिया जाता था। खजुराहो लेख (१०वी सदी) मध्यप्रदेश के कलचुरि प्रशस्ति तथा मारवाड मे प्राप्त चाहमान लेखो मे कायस्थ की प्रशसा की गई है क्योकि वह राजकीय पत्रो को सुन्दर व ललित अक्षरो मे लिखता था।

(१) लिखित श्री गौडान्वय कायस्थ पेथडेन

(ए० इ० ११ पृ० ४१)

(२) द्विजवरनतिरिक्त शुद्ध कायस्थ वश्यो
हृदयधर ममात्य श्री शिव स्तभ सूनु
अलिख दखिल वर्ण व्यक्त प वित प्रशस्य
नव किसल्य कान्तें ताम्रेत द्विजानाम् (ए० इ० १४ पृ० १९५)

(३) विरचित शुभ कर्म्मानाम कायस्थ वश्य
सकल गुण गुणाना वेश्य पृथ्वीधरास्य
अलिख दवनि पालस्याज्ञया धर्मलेखी
स्फुट ललित निवेशैरक्षरैस्ताम्रपट्टम् (ए० इ० १४ पृ० १४)

इसी तरह करणिक की भी चर्चा लेखो मे आती है जो सुन्दर अक्षर लिखने के कारण गौड देश से मध्य देश या राजपुताना मे निमन्त्रित किये जाते थे। यह भी कहा गया है कि उन्हें सस्कृत भाषा का अच्छा ज्ञान रहता था, इस कारण शुद्ध लिख सकते थे।

लिखित चेद करणिक श्री सर्वानन्देन

(ए० इ० ११ पृ० १४५)

सँस्कृत भाषा विपुषा जयगुण पुत्रेण
कौतुका लिखिता रुचिराक्षरा
प्रशति करणिक जद्धेन गौडेन

(ए० इ० १ पृ० १२९)

प्राचीन अभिलेखो मे प्रशस्ति अकित कराने के प्रसग मे शिल्पिन, रूपकार या सूत्रधार या शिलाकूट शब्दो का प्रयोग मिलता है। उसके विवेचन से प्रकट होता है कि सर्व प्रथम प्रशस्ति या लेख राजकीय पदाधिकारी द्वारा लिखा जाता था (जिसे लेखक कह सकते हैं) उसको प्रस्तर अथवा ताम्रपत्र पर खोदा जाता था।

सूत्रधार

गौतमी पुत्र शातकर्णी के नासिक लेख मे "तापसेन कृता' अत मे उल्लिखित है जिसका भाव यह है कि तापस (नाम) द्वारा खोदा गया (उत्कीर्ण किया गया)। इस तरह का सदभ पूर्व मध्यकालीन प्रशस्तियो मे अधिकतर पाया जाता है। जो

ताम्रपट्टिका या प्रतिमा आधार शिला पर खोदी गई है। खोदने वाला शिल्पी कहा गया है बमास के लेख में मगध के शिल्पी सोमेश्वर का उल्लेख है जिसने प्रशस्ति खोदी थी—

> शिल्पविन मागधः कामी तन्मना वत्समक्तिभिः
> सोमेश्वरो लिखितिमाम् प्रशस्ति स्वामिन प्रियाम्
>
> (ए इ ११ पृ ४२)

उसी तरह महीपाल के लेख में—इमं शासन उत्कीर्णं श्री महीधर शिल्पिना" पाया जाता है (ए इ १४ पृ १२१) अन्य लेखों में भी ऐसा ही उल्लेख मिलता है।

> रत्नपालस्य पुत्रेण पाहुपेन च शिल्पिना
> उत्कीर्णा धर्म्मघटना बरापी विश्वकर्मणा
>
> (ए इ भा २ पृ १११)
>
> यशोवर्म सुनेनेयं साधुना नाम धर्मणा
> रम्या प्रशस्तिरुत्कीर्णा कला कौशलशालिना
>
> (नासिक की नगर प्रशस्ति से)

ताम्रपत्र पर कुशल शिल्पी द्वारा लेख खुदवाने का कार्य १२वीं सदी तक के लेखों में पाया जाता है—

(१) उत्कीर्णा प्रचुरासा प्रशस्तिरियमक्षर रुचिरै

(ए इ भा २६ पृ २११)

(२) लिपिज्ञान विधिज्ञेन प्राज्ञेन गुणशालिना
सिहनेयं समुत्कीर्णा ताम्र्यां रूप शालिना

(ए इ १ पृ १४७)

(३) उत्कीर्णा सोमनाथेन टङ्क विज्ञान शालिना (वही पृ ८१)

इन उदाहरणों से अर्थ यह निकलता है कि शिल्पी को प्रस्तर या ताम्रपट्टिका पर प्रशस्ति खोदने (उत्कीर्ण) में कुशल समझ कर कार्य सौंप दिया जाता था। वह सुन्दर अक्षरों में उचित रीति से प्रशस्ति उत्कीर्ण करता जिससे उसकी कुशलता का परिज्ञान होता था। वह कारीगर सुनार, लोहार कांस्यकार या ताम्रकार जाति का होता था जिसकी जीविका उसी कार्य पर निर्भर थी।

शासन का निर्माणकर्ता

गुप्त युग के लेखों का अध्ययन यह बतलाता है कि शासन (राजकीय पत्र) तैयार करने का कार्य किसी ऊंचे पदाधिकारी के हाथ में रहता था। प्रयागस्तम्भ लेख में हरिषेण ने प्रशस्ति तैयार करवाई थी जो कुमारामात्य तथा सन्धिविग्रहिक (मंत्री) पद को सुशोभित कर चुका था। वलभी के राजा धरसेन के ताम्रपत्र

पर मिलता है (गरुड ध्वज)। गजलक्ष्मी, शिव प्रतिमा, वोधिवृक्ष आदि चिह्न विभिन्न राजवशो की प्रशस्तियो पर मिलते हैं।

प्राचीन भारत मे सहस्रो अभिलेख, प्रस्तर या ताम्रपट्टिकाओ आदि पर उत्कीर्ण किए गये थे जिनकी लिपि के सम्वन्ध मे ऊपर लिखा जा चुका है।

प्राचीन भारतीय लिपि का स्पष्टी करण

प्राय सभी को जानने की प्रवल इच्छा होगी कि इन ब्राह्मी तथा खरोष्ठी के लेखो तथा प्रशस्तियो का स्पष्टीकरण कब और किस प्रकार हुआ। इसका इतिहास यह वतलाता है कि कुछ भारतीय विद्वान ७वी या आठवी सदी के हस्तलिखित ग्रथो को (सस्कृत या प्राकृत) पढ सके थे परन्तु इसके पूर्व लिपियो की जानकारी न हो पाई थी। १४वी सदी मे फिरोजशाह तुगलक ने अशोक के लेखो को पढाने का प्रयत्न किया था जो अशोक स्तम्भ पर खुदे थे और जिस स्तम्भ को अम्वाला के टोयरा तथा मेरठ से दिल्ली लाया गया था। भारत वासी उस लिपि से १८वी सदी तक अनभिज्ञ थे जव १७८४ मे स्थापित वगाल एशियाटिक सोसाइटी के सहयोग से इस कार्य मे प्रगति हुई। १७८५ मे विल्किन्स ने एक पाल प्रशस्ति को (वदल स्तम्भ लेख) पढा तथा राधाकान्त शर्मा ने चाहमान विशाल देव की प्रशस्त को स्पष्ट किया। विल्किस ने उन पठित अक्षरो की सहायता से गुप्त लिपि के थोडे अक्षरो को स्पष्टतया पढ लिया। जेम्स टाड को राजपुताना मध्य भारत तथा गुजरात से एकत्रित लेखो को पढने मे आशिक सफलता मिल सकी।

१८३४ मे ट्रायर तथा डा० मिल प्रयाग स्तम्भ लेख के पढने मे सफलीभूत हुए थे। उसके वाद ही स्कन्द गुप्त का भितरी स्तम्भ लेख पढा गया। इस सम्वन्ध मे जेम्स प्रिसेप का नाम गर्व के साथ लिया जा सकता है जिसने गुप्त लिपि को पूर्ण रीति से स्पष्ट किया और अक्षर पहचाने जा सके। चार्ल्स मेलेट ने ब्राह्मी अभिलेखो के स्पष्टीकरण का कठिन परिश्रम किया था पर सफल न हो पाया। १८३६ मे लसेन द्वारा भारतीय यूनानी मुद्रा लेख पढा गया और इस तरह ब्राह्मी के अक्षर अशत ज्ञात हो गए। इसका कारण यह था कि अगथुल्केयस के सिक्को पर एक ओर यूनानी लिपि मे मुद्रा लेख था और पृष्ट और ब्राह्मी मे। कभी-कभी अग्रभाग मे यूनानी और पृष्ठ भाग मे खरोष्टी तथा ब्राह्मी के लेख क्रमश अग्र तथा पृष्ठ भाग पर अकित थे। इस समय यूनानी लिपि की सहायता से खरोष्ठी तथा ब्राह्मी के अक्षर स्पष्ट हो सके। ब्राह्मी के पूर्ण ढग से स्पष्ट करने का श्रेय जेम्स प्रिसेप को है जिसने प्रयाग, रधिया, मथैया तथा दिल्ली स्तम्भ लेखो का तुलनात्मक अध्ययन किया और

तात्पर्य यह है कि बाएं से दाएं लिखने की परिपाटी ही सब से प्राचीन तथा तथा भारतीय है।

पुराने अक्षरों में सिरे पर पड़ी लकीर देने की रीति ई सं से आरम्भ हुई परन्तु वह भी नोक की तरह छोटा। पड़ी रेखा नहीं थी। यह कहना उचित होगा कि अक्षर सीधी पंक्ति में होते थे। सम्भव है कि सीधी पंक्ति के लिए लिखने पूर्व ही निशान लगा देता रहा ताकि लिखते समय टेढ़ा न हो। प्राचीन लेखक अक्षर समूह या शब्द समूह की ओर ध्यान नहीं देते थे और वाक्य को पृथक दिखा के लिए किसी तरह का विराम चिह्न का प्रयोग नहीं करते रहे। यद्यपि प्राकृत लेखों में अक्षर समूह का प्रारम्भ हो गया था परन्तु संस्कृत अभिलेखों में विराम या खाली स्थान के प्रयोग से पद पृथक किए जा सकते थे।

मौर्य युग से ईसवी सन् की पहली सदी तक विराम के निश्चित चिह्न नहीं थे। केवल एक छोटी पड़ी रेखा का प्रयोग मिलता है। किन्तु पांचवीं शताब्दी से विराम के चिह्न स्पष्ट हो गए। मंदसोर तथा हरहा (फ्लीट नं ३५ तथा ए इ भा १४) की प्रशस्ति में एक खड़ी रेखा से पूर्ण विराम व्यक्त किया गया है। तीन खड़ी रेखाएं कभी शासन के अंत में दिखलाई पड़ती हैं।

दक्षिण के सातवाहन उत्तर पश्चिम के शक क्षत्रप तथा कुषाण लेखों में एक संक्षिप्त चिन्ह विशेषता है कि उनमें संक्षिप्तीकरण की परिपाटी दिखलाई पड़ती है।

सम्वत्सर के लिए सम्व		सव सं या स
ग्रीष्म	,,	ग्रु ग्रि गि
हेमन्त		हे
दिवस		दि
शुक्ल पक्ष		सु दि
बहुल पक्ष	,,	ब भ दि
द्वितीय	,,	द्वि
सिद्धम्		सी सी सि
राउत	,,	रा

अंत में इस विषय को समाप्त करते यह कहना असंगत न होगा कि स्वस्तिक त्रिरत्न या धर्मचक्र आदि धार्मिक चिह्न भी प्रशस्ति उत्कीर्ण करते समय खोदे जाते थे जो धार्मिक भावना के द्योतक हैं। लेख के अन्त में राजमुद्रा को भी अंकित किया जाता था। गुप्त युग में गरुड का चिह्न सिक्कों तथा कुछ लेखों

पर मिलता है (गरुड ध्वज)। गजलक्ष्मी, शिव प्रतिमा, बोधिवृक्ष आदि चिह्न विभिन्न राजवंशो की प्रशस्तियो पर मिलते हैं।

प्राचीन भारत मे सहस्त्रो अभिलेख, प्रस्तर या ताम्रपट्टिकाओ आदि पर उत्कीर्ण किए गये थे जिनकी लिपि के सम्बन्ध मे ऊपर लिखा जा चुका है।

प्राचीन भारतीय लिपि का स्पष्टीकरण

प्राय सभी को जानने की प्रबल इच्छा होगी कि इन ब्राह्मी तथा खरोष्ठी के लेखो तथा प्रशस्तियो का स्पष्टीकरण कब और किस प्रकार हुआ। इसका इतिहास यह बतलाता है कि कुछ भारतीय विद्वान ७वी या आठवी मदी के हस्तलिखित ग्रथो को (सस्कृत या प्राकृत) पढ सके थे परन्तु इसके पूर्व लिपियो की जानकारी न हो पाई थी। १४वी मदी मे फिरोजशाह तुगलक ने अशोक के लेखो को पढाने का प्रयत्न किया था जो अशोक स्तम्भ पर खुदे थे और जिस स्तम्भ को अम्बाला के टोयरा तथा मेरठ मे दिल्ली लाया गया था। भारत वामी उम लिपि से १८वी सदी तक अनभिज्ञ थे जब १७८४ मे स्थापित बगाल एशियाटिक सोसाइटी के सहयोग से इस कार्य मे प्रगति हुई। १७८५ मे विल्किन्स ने एक पाल प्रशस्ति को (बदल स्तम्भ लेख) पढा तथा राधाकान्त शर्मा ने चाहमान विशाल देव की प्रशस्त को स्पष्ट किया। विल्किस ने उन पठित अक्षरो की सहायता मे गुप्त लिपि के थोडे अक्षरो को स्पष्टतया पढ लिया। जेम्स टाड को राजपुताना मध्य भारत तथा गुजरात से एकत्रित लेखो को पढने मे आशिक सफलता मिल सकी।

१८३४ मे ट्रायर तथा डा० मिल प्रयाग स्तम्भ लेख के पढने मे सफलीभूत हुए थे। उसके बाद ही स्कन्दगुप्त का भितरी स्तम्भ लेख पढा गया। इस सम्बन्ध मे जेम्स प्रिंसेप का नाम गर्व के साथ लिया जा सकता है जिसने गुप्त लिपि को पूर्ण रीति से स्पष्ट किया और अक्षर पहचाने जा सके। चार्ल्स मेलेट ने ब्राह्मी अभिलेखो के स्पष्टीकरण का कठिन परिश्रम किया था पर सफल न हो पाया। १८३६ मे लसेन द्वारा भारतीय यूनानी मुद्रा लेख पढा गया और इस तरह ब्राह्मी के अक्षर अशत ज्ञात हो गए। इसका कारण यह था कि अगथुल्केयस के सिक्को पर एक ओर यूनानी लिपि मे मुद्रा लेख था और पृष्ट और ब्राह्मी मे। कभी-कभी अग्रभाग मे यूनानी और पृष्ठ भाग मे खरोष्ठी तथा ब्राह्मी के लेख क्रमश अग्र तथा पृष्ठ भाग पर अकित थे। इस समय यूनानी लिपि की सहायता से खरोष्ठी तथा ब्राह्मी के अक्षर स्पष्ट हो सके। ब्राह्मी के पूर्ण ढग से स्पष्ट करने का श्रेय जेम्स प्रिंसेप को है जिसने प्रयाग, रधिया, मथैया तथा दिल्ली स्तम्भ लेखो का तुलनात्मक अध्ययन किया और

गुप्त लिपि को पूर्णतः ज्ञात किया। गुप्त लिपि से ब्राह्मी की जानकारी सरल हो गई क्योंकि अक्षरों के सिलसिला पता लग गया। उसने स्वर तथा व्यंजन को पृथक किया। स्वर का मूल्य जान कर प्रिंसेप ने वर्ग में उन्हें विभाजित कर दिया। सांची वेदिका पर खुदे लेख के अंतिम दो अक्षरों का ज्ञान अनुमान से ठीक हो गया। दान शब्द सर्वत्र एक सा था जिसे वेदिका के दान देने के प्रसंग से पकड़ा जा सका। अनुमान से अक्षर का वास्तविक ज्ञान हो गया।

खरोष्ठी के पढ़ने में अधिक सुविधा दो भाषा के मुद्रालेख से मिली जो भारतीय-यूनानी सिक्कों पर खुदी थी। टाड तथा मर्ने को ऐसे अनेक सिक्के मिले थे जिनपर अग्रभाग में यूनानी तथा पृष्ठ भाग में खरोष्ठी लेख उत्कीर्ण था। विद्वानों का अनुमान ठीक निकला कि यूनानी लिपि तथा खरोष्ठी के मुद्रालेख एक समान हैं और दोनों लिपियों में एक नाम अंकित है। प्रिंसेप इस को ध्यान में रखकर ग्रीक राजाओं का नाम पढ़ सका तथा खरोष्ठी के लेख पढ़े गये। इस प्रकार मुद्रालेख के सहारे लिपि की जानकारी पूर्ण हो सकी। क्रमशः धन ब्राह्मी तथा खरोष्ठी के समस्त वर्णमाला का ज्ञान हो सका जिससे भारतीय संस्कृति के अमूल्य रत्नों की जानकारी सुलभ हो गई।

अध्याय १०

भारतीय अभिलेख तथा बृहत्तर भारत

पिछले पचास वर्षों से भारतीय इतिहास के एक विशेष शाखा का अध्ययन किया जा रहा है जिसे 'बृहत्तर-भारत' की सज्ञा दी गई है। भारत की सस्कृति वर्तमान भौगोलिक सीमा के बाहर विस्तृत थी जिसके अध्ययन से एक ज्ञान-राशि प्रकाश मे आई है। उत्तर-पश्चिम मार्ग से होकर मध्यएसिया, चीन तथा जापान तक भारतीय सस्कृति का विस्तार हुआ और पूर्वी बदरगाहो से दक्षिण-पूर्वी एशिया में हमारी सस्कृति का फैलाव हुआ। बृहत्तर-भारत मे इस सस्कृति के ले जाने का श्रेय भारतीय व्यापारियो को है जो वाणिज्य की उन्नति तथा व्यवसाय की अभिवृद्धि के लिए उन देशो मे गए। वहा जाकर उन्होने अपना उपनिवेश बसाया और क्रमश सास्कृतिक बातो का फैलाव किया। बृहत्तर-भारत की सामाजिक, धार्मिक तथा कला का इतिहास इस बात को स्पष्ट व्यक्त करता है कि भारतीय सस्कृति का विस्तार किस रूप मे वहाँ हुआ था। वहाँ के खण्डहर, भवन, मन्दिर तथा खुदाई से प्राप्त पुरातत्व सामिग्रियाँ ऐसे अकाटय प्रमाण हैं जिसके आधार पर भारतीय सस्कृत के स्वरूप तथा उसके विस्तार का परिज्ञान हो जाता है।

उन ऐतिहासिक सामिग्रियो मे लेखो पर विचार करना ही प्रस्तुत विषय है। समस्त प्राप्त अभिलेखो पर विचार करने से पता चलता है कि लेख शिलाखण्ड, स्तम्भ (यूप), प्रतिभा आधार, ताम्रपत्र तथा कास्य घटे (bell) पर अकित किए गए है। एशिया के दक्षिण पूर्वी भाग मे अनाम, चम्पा, मलय, वोर्नियो, जावा, बाली, वर्मा आदि देशो मे लेख पर्याप्त सख्या मे मिले हैं। जावा मे अधिकतर ताम्रपत्र तथा वर्मा मे घटे पर लेख खुदे प्राप्त हुए हैं। मध्यएशिया मे खुदाई के फल-स्वरूप जो भोजपत्र पर लिखे ग्रथ मिले हैं और गुफाओ से चित्र तथा मूर्तियाँ प्रकाश मे आई है, इनके अध्ययन से विस्तारपूर्ण भारतीय सस्कृति की

जानकारी होती है। अतएव बृहत्तर-भारत के अभिलेखों की चर्चा तथा वर्णन से सीमित विवरण उपस्थित किया जायगा। अभिलेखों के अध्ययन से विशिष्ट देशों का राजनीतिक इतिहास का ही ज्ञान नहीं होता किन्तु उस देश का समाज शासन तथा अन्य विचार धारा का परिज्ञान होता है। यहाँ पर यह कहना आवश्यक है कि हिन्द-चीन के समस्त लेख संस्कृत भाषा में तथा भारतीय लिपि में अंकित किए गए हैं। भाषा अलंकारिक तथा काव्यमय है। उसका वैज्ञानिक विश्लेषण कतिपय विषयों पर प्रकाश डालता है।

उनके विवेचन से भारतीय देवता तथा धर्म सम्बन्धी बातों का परिचय मिलता है। प्रतिमाओं पर अंकित लेख यह बतलाता है कि हिन्द चीन की जनता भारतीय लोगों की तरह देवताओं की पूजा करती थी। बुद्ध-धर्म के वहाँ प्रचार होने से हिन्दू धर्म पर प्रभाव स्पष्ट हो जाता है। हीनयान तथा महायान का प्रचार प्रकट होता है। "ये धम्मा हेतु प्रभवा" का मंत्र भी अंकित मिलता है। लेखों का अध्ययन इस बात को स्पष्ट कर देता है कि हिन्द चीन की जनता भारतीय साहित्य को पढ़ती थी। ब्राह्मण यज्ञ का वहाँ प्रचार था। कहने का तात्पर्य यह है कि बुद्ध मत के साथ हिन्दू धर्म का प्रसार भली भाँति हो गया था। ब्राह्मण संस्कृति की ही प्रधानता दिखलाई पड़ती है। भारतवर्ष की तरह पद-चिह्न की पूजा होती थी। दानपत्रों की चर्चा करते समय भारत के दान पत्रों की याद आती है। उनमें दान का वर्णन है। षोडश महादान की भारतीय कल्पना हिन्द चीन में भी घर बना चुकी थी। उस प्रसंग में कल्पवृक्ष तथा गोसहस्र' का उल्लेख लेखों में आया है। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि दक्षिण-पूर्व एशिया के इतिहास उपनिवेश का प्रारम्भ भारतीय संस्कृति के विभिन्न अंगों का प्रसार आदि बातों की जानकारी लेखों से हो जाती है।

भारतीय साहित्य के आधार पर पता लगता है कि सुवर्ण-द्वीप (=सुमात्रा) में सर्व प्रथम ईश्वर वर्मा ने पदार्पण किया था और क्रमशः वहाँ उपनिवेश बना।

सुमात्रा के लेख

अरब या चीनी यात्रियों के विवरण के अतिरिक्त सुमात्रा के अभिलेख उस देश को सुवर्ण द्वीप या सुवर्ण भूमि कहते हैं (सुवर्णभूमि से मलय प्रायद्वीप तथा समीपवर्ती सारे द्वीप समूह का बोध होता था।) उस द्वीप के लेखो में भी विजय राज्य की चर्चा की गई है। सारे अभिलेख संस्कृत में लिखे गए हैं और लिपि के विचार से सातवीं सदी के उत्तर भारत की लिपि से मिलते हैं। विजय राज्य के इष्टदेव की विजय की प्रार्थना से लेख आरम्भ हुए हैं और उस संरक्षक के विरोधी लोगों के दमन का भी विधान किया है। लेखों में वर्णन आता है कि श्री विजय नाम का

स्थान सस्कृत विद्या का केन्द्र हो गया था। उसी मे श्रीविजय राजा का विजय और वैदेशिक नीति की भी चर्चा है। दो सस्कृत लेखो मे एक बौद्ध राजा जयसिंह का विवरण करता है।

मलय के सस्कृत लेख भी बुद्ध धर्म के प्रचार का वर्णन करते हैं। सभी सस्कृत लेख पाँचवी सदी की गुप्त-लिपि मे अकित हैं। इससे प्रमाणित हो जाता है कि पाँचवी सदी तक मलय मे भारतियो का उपनिवेश स्थापित हो गया था। प्रयाग स्तम्भ लेख मे समुद्रगुप्त द्वारा समतट के भू-भाग पर अधिकार करने का वर्णन आता है। वहाँ के प्रसिद्ध वन्दरगाह ताम्रलिप्ति (वर्तमान तामलुक) से भारत-वासी मलय गए होगे और वहाँ उपनिवेश वनाकर लेख खुदवाया होगा। एक लेख मे वर्णन है कि कर्ण सुवर्ण से (उत्तरी बगाल) बुधगुप्त नामक नाविक मलय प्रायद्वीप मे गया था। मलय के समस्त सस्कृत लेख शिलाखण्ड या स्तम्भ पर अकित हैं। एक मे "महानाविक बुधगुप्तस्य रक्तमृतिका वास्तकस्य" (कर्णसुवर्ण = रक्तमृतिका का निवासी नाविक बुधगुप्त का—ज० ए० सो० व० ९४ पृ० ७१) का उल्लेख है। सुवर्णभूमि के लेख तथा प्रतिमाए ब्राह्मण धर्म तथा दर्शन के विस्तार का ज्ञान कराती हैं। लेखो के काव्यमय लिखने की शैली यह घोषित करती है कि वहाँ के निवासी भारतीय साहित्य से परिचित थे। नालदा का एक प्रसिद्ध बौद्ध विद्वान धर्मपाल भी आठवी सदी मे सुवर्णभूमि मे गया था। हिन्दू तथा महायान का विशेष प्रचार था और भारतीय परम्परा तथा सास्कृतिक विचारधारा का प्रवाह भलीभाँति हो गया था।

दक्षिण पूर्व एशिया मे उपनिवेश स्थापित हो जाने पर भारतीय सामाजिक रीति-रिवाज का प्रचार हुआ। स्वभावत उन द्वीप समहो मे हिन्दू धर्म व साहित्य की ओर लोगो का ध्यान गया। जावा मे बौद्ध तथा

जावा के अभिलेख

हिन्दू मत का ज्ञान वहा के लेखो से होता है जो सस्कृत मे लिखे गए थे। सस्कृत का विशेष प्रभाव जावा पर दिखलाई पडता है। दूसरी सदी से ही भारतीय जावा मे जाते रहे। फाहियान ने हिन्दू धर्म के प्रचार का विशद वर्णन किया है। पाचवी सदी से वहा लेख भी अकित हुए जिनकी भापा सस्कृत है तथा उत्तरी भारत की लिपि मे उत्कीर्ण किए गए थे। सस्कृत लेख छदवद्ध, काव्यशैली मे लिखे गए थे। जावा के प्राचीन "कवि भापा" मे भी रामायण तथा महाभारत से सम्वन्वित काव्य मिलते हैं, जो कालिदास के काव्य से प्रेरित हुए हैं।

जावा के लेखो मे ब्राह्मण तथा वौद्ध धर्म का वर्णन है। उनमे महायान तथा वज्रयान मतो का विवरण मिलता है। एक लेख के चार पक्तियो मे वौद्ध

धर्म का प्रसिद्ध पद मिलता है—

ये धम्मा हेतु प्रभवा

तेषाम् हेतु तथागतो ह्यवदत्

तेषां च यो निरोध

एवं वादी महाश्रमण

ब्राह्मण धर्म के लेखों में महादान का वर्णन आता है। एक स्थान पर ब्राह्मण द्वारा षोडश सहस्र दान करने का उल्लेख है [षोडश महादान का विवरण भारतीय अभिलेखों में मिलता है जिसमें तुलापुरुषदान के साथ सहस्र गाय दान को भी महादान कहते हैं] दूसरे लेखों में विष्णुपद की पूजा की चर्चा की गई है। जावा के राजा पूर्ण वर्मन के राज्य काल में संस्कृत साहित्य का अध्ययन होता था। उसके निम्न लिखित लेख में भारतीय तिथि तथा पर्व का उल्लेख मिलता है।

श्री मान्दाता हस्ति नरपतिरसमो य~पुरातारमामा

नाम्ना श्री पूर्णवर्मा प्रचुर—रिपु-शरामेद्य विख्यात वर्मा

(चक्रवर्ती—इण्डिया एण्ड जावा पृ २५)

मोम-ध्वज पूतेन धीमता पूर्णवर्मणा

प्रारम्भ फाल्गुन मासि खाता कृष्णाष्टमी तिथौ

चैत्र शुक्ल त्रयोदस्याम् दिनै सिद्धैकविंशकैः।

× × ×

ब्राह्मणैर्गोसहस्रेण प्रयाति कृत दक्षिण

[वोगेल—दि एरलीयस्ट इन्स्क्रिप्शन्स आफ जावा पृ १२]

जावा के शैलेन्द्र वंश का इतिहास अभिलेखों में ही सुरक्षित है। इस वंश ने राजा व जावा सुमात्रा तथा मलय पर अधिकार कर लिया था। आठवीं सदी

के सिगार स्थल मे बौद्ध धर्म सम्बन्धी देवी देवताओं का

भारतीय अभिलेखों उल्लेख यह बतलाता है कि शैलेन्द्र वंशी राजा बौद्ध थे।

में शैलेन्द्रवंश उन लोगों ने तीन बौद्ध मंदिरों का निर्माण किया

की चर्चा तारा की प्रतिमा स्थापित की और संघ के लिए

कई ग्राम दान में दिये। कलसन के लेख में इस तरह के

दान का विवरण प्राप्त हुआ है। उस वंश के प्रसिद्ध राजा बालपुत्रदेव ने नालंदा में दो विहार तयार कराये थे और उनके रक्षण तथा संस्कार के लिए पालवंशी राजा देवपाल देव से पाँच ग्राम दान देन के लिए निवेदन किया था। देवपाल न उस प्रार्थना को स्वीकार कर लिया और स्वयं बौद्ध होने के कारण

पटना तथा गया जिले के पाच गाव दान मे दे दिये। नालदा के ताम्रपत्र से उनके नाम नन्दीवनाक, मणिवाटक, नाटिका, हस्तिग्राम तथा पालामक–मिलते है (ए० इ० भा० १७पृ० ३१०) इसी प्रकार का वर्णन चोलप्रशस्ति मे भी पाया जाता है। लीडेन मे एक्कीस ताम्रपत्र सुरक्षित हैं जिनका अधिक अश सस्कृत मे लिखा है तथा कुछ अश तामिल मे। सस्कृत अश मे वर्णन आता है कि शैलेन्द्र वश के राजा मार विजयो तु गवर्मन ने नागपट्टन मे (आध्रप्रदेश) विहार तैयार किया था और उसके व्यय निमित्त राजराजा राजकेशरी वर्मन ने सघ को ग्राम दान किया। राजेन्द्रचोल ने उस अग्रहार की प्रतिष्ठा के लिए ताम्रपत्र खुदवाया था। इस तरह पता लगता है कि आठवी सदी से ११वी सदी तक शैलेन्द्र वशी (जावा के शासक) राजा भारतीय नरेश से सौहार्द्रपूर्ण व्यवहार रखते रहे। वगाल के पाल राजा देवपालदेव तथा राजराजा ने उनको प्रतिष्ठा को स्थायी रखने के लिए ग्राम दान किया था। जावा के निम्नलिखित शिला लेख के अध्ययन से पता चलता है कि भारत तथा जावा मे दान का उद्देश्य एक ही प्रकार का था। पूजा के लिए भूमि का दान किया गया था। इसके अतिरिक्त यज्ञ तथा धार्मिक ग्रथो का अध्ययन के लिए भी व्यय दिया जाता था। भारतीय दान की शैली से जावा का दानपत्र समानता रखता है। पूर्वी जावा के एक शिलालेख (७६० ई०) मे अगस्त ऋपि की काले स्तर की प्रतिमा स्थापित करने का विवरण पाया जाता है। अगस्त ऋषि की परम्परा उत्तर भारत से दक्षिण होकर स्यात् जावा पहुच गई थी। इसलिए लेख मे पाषण मूर्ति की स्थापना का वर्णन किया गया है।

आज्ञाप्य शिल्पिनमर स च दीर्घदर्शी कृष्णाद् भूतोपसमयी नृपत्ति चकार।
राज्ञागस्त शकाब्दे नयन वसुरमे मार्गशीर्षे च मासे
आर्द्रस्थे शुक्रवारे प्रतिपद दिवसे पक्षसन्धौ ध्रुवे।
ऋत्विग्भि वेदविद्भि यतिवर सहितै स्थापकाद्यै सभौमै
क्षेत्र गाव सुपुष्पा महिष गणयुता दासदासी पुरोगा
दत्ता राज्ञा महर्षिप्रवर चरू हविस्स्नान सम्वर्धनादि
वश्या नृपस्य रुचिता यदिवदत्तिवृद्धौ आस्तिक्वशुद्ध मतय पूजा,
दानाद्यपुण्य यजनाद्ध ययनादिशीला रक्षन्तु राज्य (मखिल) नृपति मथैवम्।

राजेन्द्र चोल से प्रेम पूर्ण व्यवहार स्थायी न रह सका और शैलेन्द्र नरेश और चोल राजा मे युद्ध छिड़ गया। तिरवालगाडु के सस्कृत प्रशस्ति मे इस युद्ध का विवरण पाया जाता है (सा० इ० इ० भा० ३० हि० ३ पृ० ३८३)। बगलोर के मेलूर मदिर के लेख मे राजेन्द्र चोल के समुद्र पर विजय का वर्णन

मिलता है (इ कर० भा ९ पृ० १४८ ५२)। तंजोर लेख (१ १ १) में वर्णन है कि राजराज चोल का जहाजी बेड़ा सुमात्रा के पूर्वी भाग मलय का भाग तथा श्री विजय पर अधिकार कर लिया था। चीडन के छोटे लेखों में शैलेन्द्र वंश का इतिहास तथा जावा मलय तथा सुमात्रा पर अधिकार का वर्णन मिलता है। दसवीं सदी के ताम्रपत्रों में (चांगल तथा केड) वहां के शासकों के नाम उल्लिखित हैं। चांगल के एक शिलालेख में हिन्दू देवता शिव ब्रह्मा विष्णु की प्रार्थना बारह श्लोकों में मिलती है। यह निश्चित कहना कठिन है कि कलिंग या आन्ध्र देश से भारतीय जावा में जाकर उपनिवेश स्थापित किए परन्तु मध्य तथा पूर्वी जावा के ताम्रपत्रों से पता लगता है कि अगस्त्य ऋषि के नाम पर एक मंदिर मध्य जावामें निर्मित हुआ था। इस आधार पर दक्षिण भारत से प्रचलित अगस्त्य की बन स्तुति का प्रसार जावा में हो गया था। चांगल के लेख में अगस्त्य के पूजा का वर्णन आता है। लेखों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि समय ने दक्षिण भारत से अगस्त्य पूजा को जावा में फलाया था। पूर्वी जावा के संस्कृत लेखों से सब मत का प्रसार भी ज्ञात होता है।

भारत के प्राचीन साहित्य तथा अभिलेखों में सुवर्ण भूमि से मलाया तथा बर्मा का बोध होता है। महावंश में सोम तथा उत्तर द्वारा उपनिवेश स्थापित करने का वर्णन आता है। बर्मा के लेख तथा मलाया की बर्मा तथा मलाया प्रशस्तियां चौथी तथा पांचवीं सदी में संस्कृत में लिखी गये के स स्तम्भ लेख जिसमें भारतीय लेखों के सदृश दान का वर्णन किया गया है। बर्मा के लेख बौद्ध धर्म से सम्बन्धित होने के कारण 'यीधम्मा हेतु प्रभवा' के मन्त्र सेप्रारम्भ होते हैं।

बोर्नियो में चौथी सदी से ही उपनिवेश स्थापित हो गया था और भारतीय संस्कृति का विस्तार पूर्णरूप में वहां हुआ। बोर्नियो के अभिलेख इसके प्रमाण हैं और संस्कृत लेख मूर्तियों के आधारशिला अथवा स्तम्भ (यूप) पर खोदे गए थे। एक यूपप्रशस्ति मे मूलवर्मन राजा के धार्मिक कार्यों का वर्णन मिलता है। लेख में यज्ञ तथा कल्पवृक्ष के महादान का विवरण है। लेख निम्न प्रकार है —

बोर्नियो तथा
बलि के लेख

श्री मूलवर्मा राजेन्द्रो यष्ट्वा बहु सुवर्णकम्
तस्य यज्ञस्य यूपोऽयम् द्विजेन्द्रैस्सम्प्रकल्पितः ।

× × ×

दानं पुण्यतमे क्षेत्रे यद्दत्तम् वप्रकेश्वरे
द्विजातिभ्यो भिलकल्पेभ्य । विहग विप्रो सहस्रिकम्

(ज रा ए सो लि भा १ १ १८)

वालि एक ऐसा द्वीप है जहा आज भी भारतीय सस्कृति की लहर वहती है। वहा पर भी सस्कृत भाषा मे लेख उपलब्ध हुए हैं। उनमे राजा धर्मादिमन का नाम विशेप उल्लेखनीय है। दसवी सदी के लेखो मे वहा का इतिहास तथा भारतीय सस्कृति की चर्चा सुरक्षित है।

हिन्द-चीन के सस्कृत लेख

हिन्द-चीन के विभिन्न प्रदेशो से—अनाम, कम्बोडिया आदि स्थान से—जितने लेख प्राप्त हुए हैं उन सव की भापा सस्कृत है। चम्पा (अनाम) की प्रशस्तियो का अध्ययन यह वतलाता है कि सस्कृत वहा की राजभाषा थी और सव लेख ब्राह्मी मे लिखे गए थे। सम्भवत तीसरी सदी से वहा सस्कृत भाषा और ब्राह्मी मे लेख मिलते हैं। भारतीय धर्म तथा साहित्य के प्रचार मे सस्कृत का ही सहारा था और इस की प्रधानता हो गई। उन लेखो की सहायता से अनाम मे प्रचलित साहित्य (रामायण तथा महाभारत)तथा हिन्दू देवी देवताओ की पूजा का ज्ञान हो जाता है। शिव तथा विष्णु के पूजा का विवरण मिलता है। चम्पा के अन्य लेखो मे त्रिदेव (ब्रह्मा विष्णु व महेश) का नाम आता है। एक सस्कृत लेख इन की प्रार्थना से प्रारम्भ होता है—नमो महेश्वरम् उमाश्च प्रति ब्रह्माण विष्णु-मेव च नमो। (मजूमदार—चम्पा ३ पृ० ४)

चम्पा के शासक विक्रान्त वर्मा का ६५३ शक का लेख भी ऐसी ही स्तुति से आरम्भ किया गया है।

जयति जित मनोजो ब्रह्मविष्णवादि देव
प्रणतपद-युगाब्जो निष्फलोऽप्यष्ट मूर्ति.
त्रिभुवनहित हेतु सर्व सकल्पहारी
पर परुप इह श्री शानदेवोऽप्यत्राध

सव से विचित्र वात यह है कि चम्पा के चौथी सदी के एक शिलालेख मे (चो दिन—cho—dinh)मनुष्य वलि का वर्णन किया गया है। महाराज भद्रवर्मन ने ऐसा कहा कि मै तुम्हें अग्नि को समर्पित करूगा (लेख न०२) उस भावना के साथ एक दास को यूप से वाधने का विवरण मिलता है। सम्भवत इस ढग की वलि का क्रम प्राचीन भारत से अनुकरण किया गया होगा जिसका वर्णन शतपथ ब्राह्मण(१३, ६, १, २) आपस्तम्ब (२०,२४, २)तथा कात्यायन (२१, १)सूत्रो मे मिलता है [मजूमदार-चम्पा न०२,३] वहाँ के निवासी चाम जाति के लेखो मे भारतीय दार्शनिक विचार का उल्लेख किया गया है। दक्षिणी

ये केचित् साधुपुरुषा स्वपुण्यपरिरक्षार्थं ते तानि सर्व्वाणि
संरक्ष्य दीर्घायुषा भवन्तु सर्वं' कुल सन्तानैं स्स्वर्गं
वसन्तु——। ये केचित् पापपुरुषा नरक निर्भया
तानि द्रव्याणि वा हरन्ति नाशयन्ति तेह्यल्पायुषा
वन्तु नरके पतन्तु, सर्वै सप्तमकुलै यावत्
सूर्या चन्द्रमसौ ग्रहनक्षत्र तारा गणस्तन्ति
तावत् नरके वसन्तुस्म।

कम्बोज (कम्बोडिया) के संस्कृत लेखो मे पर्याप्त विषयो पर प्रकाश पडता है। उन प्रशस्तियो मे दान का विवरण के साथ दानग्राही ब्राह्मणो के विद्या तथा ज्ञान का वर्णन मिलता है। उनमे वेद वेदाग मे पारगत ब्राह्मणो का उल्लेख है। रामायण तथा महाभारत का पठन पाठन भी ब्राह्मण करते थे। हिन्दू शास्त्रो के साथ बौद्धधर्म ग्रथो का भी वे ज्ञान रखते थे। अभिलेखो मे इस बात पर बल दिया कि राजा तथा मत्री गण धर्मशास्त्र का पूर्ण रूप से अध्ययन करे। ९वी सदी के कम्बोडिया की प्रशस्तियो मे भारतीय षड्दर्शन का नाम (न्याय, मीमासा, सांख्य, योग, वैशेषिक तथा वेदान्त) पृथक पृथक मिलता है। कम्बोज के इतिहास मे ८वी तथा १०वी सदियो मे संस्कृत की अभिवृद्धि हुई और अधिक सख्या में संस्कृत लेख भी खोदे गए थे (मजुमदार—हिन्दू-कालोनीज इन फारईस्ट पृ० १८२) संस्कृत के लेखो का विवेचन यह स्पष्टतया बतलाता है कि कम्बोडिया मे छद तथा अलकार शास्त्र का ज्ञान लोगो को पूर्ण रीति से था, इसीलिए लेख काव्यमय शैली मे लिखे गए। उसमे दार्शनिक विचार तथा पौराणिक आख्यानो का विशद विवेचन पाया जाता है। एक लेख मे कम्बोज नरेश यशोवर्मन द्वारा महाभाष्य पर लिखित टीका का उल्लेख है जिसमे पाणिनि अष्टाध्यायी सम्बन्धी बातें लिखी हैं। वहा के अभिलेखो मे मनु तथा कालिदास के श्लोक उद्धृत किए गए हैं। यशोवर्मन के लेख मे वाकाटक नरेश प्रवरसेन के सेतुबन्ध काव्य की चर्चा की गई है। इस प्रकार अभिलेखो का अध्ययन संस्कृत की उन्नत अवस्था तथा पूर्ण काव्यमय शैली का परिज्ञान कराता है।

जहा तक धार्मिक विषयो का प्रश्न है, कम्बोडिया के लेखो मे धार्मिक क्रिया तथा नियमो का विवेचन मिलता है। देवता की पूजा तथा दार्शनिक पद्धति का भी विवरण है। दान का वर्णन तो साधारण घटना है। मनुष्य जीवन के गूढ रहस्य तथा बाहरी धार्मिक कर्त्तव्यो का विवेचन लेखो मे किया गया है। संसार की अनित्यता, मुक्ति, ब्रह्म मे विलीन होना, तप, दया आदि बातो की चर्चा सुन्दर शब्दो मे की गई है (मजुमदार-कम्बोज इन्सक्रिपशन्स) नवी सदी के शासक

सियडोक में अपने समकालीन शंकर के विचार तथा धार्मिक भावना का उल्लेख किया है। कम्बोज के लेखों में एक विचित्र प्रकरण मिलता है जिसमें आश्रम स्थापना की बातें लिखी हैं। कम्बोडिया के संस्कृत लेख यह बतलाते हैं कि शासक तथा प्रजावर्ग आश्रम स्थापना में अभिरुचि रखते थे। यशोवर्मन ने अकेले सौ आश्रमों की स्थापना की। वह स्थान ध्यान चिन्तन तथा मनन के के लिए उपयुक्त समझा गया था। इस कारण इसकी स्थापना के साथ दान भी दिया गया जिसका अत्यन्त सुन्दर वर्णन अभिलेखों में किया गया है। इन प्रशस्तियों का अध्ययन भारतीय संस्कृत के प्रचार का (ज्ञान) तथा उसके बाहर संस्कृत लेखों के महत्त्व की जानकारी कराता है। कहने का तात्पर्य यह है कि हिन्द चीन के संस्कृत अभिलेख बृहत्तर भारत में भारतीय संस्कृति के प्रचार तथा उसकी वृद्धि और भारत से सदियों तक उन प्रदेशों का सम्बन्ध बतलाते हैं।

दक्षिण पूर्व एशिया के अतिरिक्त उत्तर पश्चिम के मार्ग से भी भारतीय संस्कृति का प्रचार मध्य एशिया तक हुआ। अफगानिस्तान को तो नपाक स्थित भारतीय सीमा में यथा समय हम पाते हैं इसलिए वहाँ भारत तथा का प्रभाव स्वाभाविक है। मध्य एशिया में भारतीय संस्कृति मध्य एशिया का प्रचार व्यापारियों के हाथों हुआ। वहाँ भारतीय उपनिवेश स्थापित हुए। चीनी यात्रियों के विवरण से पता चलता है कि भारतीय धर्म को प्रसार कर वहाँ संघ कायम किए गए। उन विहारों में भीखभिक्षु रहते तथा भारतीय साहित्य का अध्ययन करते थे। मध्य एशिया के भोजपत्रों पर जो कुछ लिखा जाता था वह खरोष्ठी तथा मिश्रित भाषा में। उस मरु भूमि में लेख नहीं मिलते परन्तु प्राप्त संघ गुहा चित्र विहार के भग्नावशेष से भारतीय संस्कृति का मूल्य आंका जा सकता है।

नेपाल का भारत से घनिष्ठ सम्बन्ध सदा से रहा है। भारतीय शासक वहाँ राज्य करते रहे हैं। तीसरी सदी में लिच्छवी लोगों का नेपाल में शासन था जिनके लेख संस्कृत भाषा तथा ब्राह्मी में मिले हैं। चांगु-नारायण का स्तम्भ लेख इसका ज्वलन्त उदाहरण है। इसकी भाषा संस्कृत है तथा चौथी पांचवीं सदी के ब्राह्मी में लिखा गया है। इसमें भारतीय सम्वत् तथा मास तिथि का उल्लेख है (इ ए भा ९ पृ १६३)।

सातवीं सदी के पश्चात् तिब्बत का इतिहास हमें ज्ञात है। नेपाल से ही वहाँ भारतीय संस्कृति धर्म आदि का (वज्रयान का) प्रसार हुआ जिस के

सम्बन्ध से भारतीय साहित्य वहा फैला। तिब्वत-लिपि गुप्त-लिपि से ही निकली है जो मैथिली से अधिक समीप है। (ए० इ० भा० ११ पृ० २६७)

वृहत्तर भारत की चर्चा समाप्त करने से पूर्व भारतीय लेखो के आधार पर यह विवरण उपस्थित किया जा सकता है कि प्राचीन समय मे विदेशियो का क्रमश भारतीय करण हो गया। वाहर से लोगों ने विभिन्न धर्म तथा परिस्थिति को लेकर भारत मे प्रवेश किया। कालान्तर मे उन्होंने भारतीयता को अपनाया। ईसवी पूर्व सदियो मे इसके कई उदाहरण मिलते हैं। विदिसा (मालवा) के समीप यूनानी दूत हेलियोदोरस का जो स्तम्भ लेख मिला है उसमे यूनानी दूत हेलियोदोरस भागवत शब्द से विभूषित किया है। इससे पता चलता है कि वह वैष्णव मतानुयायी हो गया था। इसलिए विष्णु मदिर के सम्मुख गरुड ध्वज स्थापित किया। इतना ही नही अपलदतस तथा पतलेव नामक यूनानी शासक भारतीय धर्म से प्रभावित हुए थे। ईसवी सन् के आरम्भ मे शक राजा वीमकदफिस भी शैव हो गया और भगवान शिव की मूर्ति को अपने सिक्को पर स्थान दिया था। वह अपने को 'महीश्वरस्य' भी लिखा था। कुषाण नरेश के सामत भी पश्चिमी भारत मे भारतीय सस्कृति के अनुगामी हो गये और वैदिक कर्मकाण्ड को अपनाया था। नासिक के लेख मे नहपान के जामाता ऋषभदत्त ने ब्राह्मणो को ग्राम दान दिया तथा नदियो के घाट को पुण्यतर (नि शुल्क) कर दिया। उसमे इस वात का उल्लेख किया गया है कि ब्राह्मणो के कन्या-दान का सारा व्यय ऋषभदत्त ने दिया था। भारतीय सस्कृति मे इसे एक महादान मानते थे तथा ब्राह्मण कन्या के विवाह के लिए द्रव्यदान करना अत्यन्त पुण्य समझा जाता था। पद्म पुराण मे वर्णन आता है कि ऐसे कार्य से स्वर्ग की प्राप्त होती थी (ब्रह्मखण्डअध्याय २४)

विदेशियों का भारतीय करण

सालङ्कार द्विज श्रेष्ठ कन्या यच्छति यो नर
स गच्छेत् ब्रह्म सदन, पुनर्ज्जन्म न विद्यते।

विदेशी शक लोगो ने सीथियन नाम छोड कर भारतीय नामो को अपनाया। घममोटिक के वशज रूद्रसिंह कहलाए तथा वीम के उत्तराधिकारी वासुदेव के नाम से विख्यात हुए। खरोष्ठी तथा प्राकृत के स्थान पर ब्राह्मी तथा सस्कृत को क्रमश स्थान दिया गया। अतएव सक्षेप मे यह कहा जा सकता है कि विभिन्न भारतीय लेखो का अध्ययन यह सूचित करता है कि विदेशियो ने किस प्रकार भारतीय सस्कृति को अपनाया।

इस सम्बन्ध में भागवत का श्लोक प्रस्तुत किया जा सकता है कि विदेशी जातियां वैष्णव धर्म में दीक्षित हो गई।

किरात–हूणान्ध्र–पुलिन्द–पुल्कसा
आभीर–कङ्का यवना खसादय:
येऽन्ये च पापा यदुपाश्रयाश्रया
शुध्यन्ति तस्मै प्रभविष्णवे नमः

(भागवत स्कन्ध २, अ ४ श्लो १८)

परिशिष्ट—अ

पुरातत्व सम्बन्धी चर्चा

इस विषय की चर्चा करने मे पूर्व यह उचित है कि पुरातत्व के कार्यारम्भ का इतिहास हम जान लें। सन् १८६२ की बात है कि भारत मे पुरातत्व विभाग का श्रीगणेश हुआ था। परन्तु इससे पहले भी इस देश मे सांस्कृतिक विषयो पर अनुसधान तथा अध्ययन का काम हो रहा था। सन् १७८३ मे कलकत्ता के सुप्रीमकोर्ट के जज सर विलियम जोन्स के मस्तिष्क मे सर्व प्रथम यह बात आई कि भारतीय साहित्य तथा संस्कृति के अध्ययन के निमित्त एक संस्था स्थापित करनी चाहिये। दूसरे वर्ष ही यानी १७८४ ई० मे एशियाटिक सोसाइटी का जन्म हुआ जिसकी स्थापना मे प्राच्य विद्या के अनेक प्रेमियो ने सहायता की थी। सोसाइटी के द्वारा एक पत्र प्रकाशित होने लगा जिसमे भारतीत इतिहास कला, विज्ञान आदि-आदि विषयो पर लेख छापे जाते थे। उसी मे प्राचीन भारतीय खण्डहरों का भी विवरण छपने लगा। साहित्य के साथ प्रशस्तियो तथा मुद्राओं के अध्ययन की ओर भी विद्वानो का ध्यान गया। इसी अध्ययन के प्रसग मे १८३७ के समीप जेम्स प्रिसेप नामक विद्वान् ने ब्राह्मी लिपि का स्पष्टीकरण किया, जिस से पूर्व के लोगो के लिये ब्राह्मी एक समस्या थी। इसी लिपि मे भारत के प्राचीनतम लेख खुदे हैं जिन्हें पढने के लिये उद्योग किया जा रहा था। उसी के समकालीन दूसरी लिपि खरोष्ठी मे भी प्रशस्तियाँ उत्कीर्ण की गई थी। उत्तर पश्चिमी भारत मे इस का प्रचार था जिस लिपि का स्पष्टीकरण ब्राह्मी के बाद किया गया।

सन् १८४८ मे 'कनिंघम' जो ब्रिटिश सेना के इजीनियर के पद पर नियुक्त होकर भारत आये थे, ने सरकार से आग्रह किया कि भारतवर्ष मे पुराने खडहरो तथा प्रचीन स्थानों के सम्बन्ध मे अन्वेषण करने के लिये एक विद्वान पदाधिकारी की नियुक्ति हो। वह व्यक्ति भारत के धर्म कला तथा अन्य पुरातत्व विषयो का जानने वाला हो ताकि वह कार्य को शीघ्र बढा सके। उस समय कैम्पनी के

डायरेक्टरों ने कनिंघम की बात अनसुनी कर दी। १८५७ ई० में भारत में क्रान्ति हुई और भारत का शासन ब्रिटिश सत्ता के हाथों आ गया। १८६१ में भारत के सर्व प्रथम गवर्नर जनरल व वायसराय लार्ड कैनिंग न लोगों के आग्रह पर उत्तरी भारत में पुरातत्व विभाग की स्थापना की जिसे प्राचीन स्थानों तथा ध्वंसावशेष के संरक्षण का कार्य सौंपा गया। कनिंघम इस विभाग के डायरेक्टर चुन गये। उन्हें आदेश दिया गया कि वास्तविक अनुश्रुति तथा ऐतिहासिक आधार पर ऐसे स्थानों की सूची तयार करें जिन पर सरकार का ध्यान होना चाहिए। कनिंघम चार वर्षों (१८६२ १८६५ ई०) तक कार्य करते रहे किन्तु उत्तर प्रदेश तथा बिहार प्रान्तों के बाहर जाने का उन्हें अवसर न मिल सका। दूसरे वर्ष ही इस पद को अनावश्यक समझ कर समाप्त कर दिया गया जिसके कारण सारे भारत में हल्ला मचा। भारतीय तथा अंग्रेज विद्वानों न इस विभाग की उपयोगिता पर जोर दिया। उस उत्तेजना का फल यह हुआ कि १८१७ ई० में वायसराय लार्ड मेयो न पुरातत्व विभाग के डाइरेक्टर का पद स्थायी कर दिया और कनिंघम सर्वोच्च पदाधिकारी नियुक्त किय गय। कनिंघम ने अपने तीन सहायकों के साथ उत्तरी भारत के सम्बन्ध में सारे ऐतिहासिक विवरण एकत्रित किय और सातवी सदी के चीनी यात्री ह्वेनसांग द्वारा कथित स्थानों का पहचान किया। उसके कार्य का वास्तविक मूल्यांकन नहीं हो सकता। कनिंघम ने थोड़े ही समय २१ जिल्दों में अपना पुरातत्व सम्बन्धी वृतान्त तैयार किया था। उसने प्रशंसनीय कार्य कर कई अमूल्य ग्रन्थों की रचना की जिसे 'अशोक की प्रशस्तियां और' भारत का प्राचीन भूगोल' का नाम लिया जा सकता है। कार्य का मूल्य बढ़ने लगा और चार वर्षों के बाद पश्चिमी तथा दक्षिणी भारत के लिये जेम्स बर्गेस इस विभाग के प्रधान अधिकारी नियुक्त किये गये।

पुरातत्व विभाग के अधिकारी प्राचीन खण्डहरों तथा टीलों के सम्बन्ध में सरकार को सूचना देते रहे जिनका संरक्षण प्रांतीय सरकार द्वारा होता था। इस कार्य में जन कार्य विभाग समुचित प्रबन्ध न कर पाता जिस कारण संरक्षण कार्य गिरता जा रहा था। १८७८ ई० में लार्ड लिटन का ध्यान इस दोष की तरफ गया और तीन वर्षों के पश्चात् प्राचीन इमारतों की देख रेख के लिये एक अधिकारी नियुक्त हुआ जो संरक्षण सम्बन्धी वृतान्त तथा कार्य शैली का लेखा प्रांतीय सरकार के सम्मुख उपस्थित करता रहा। केन्द्रीय सरकार का भी समुचित ध्यान संरक्षण की ओर था और वह प्रान्त को इसके लिये आर्थिक सहायता दिया करती थी।

१८८५ ई० में जनरल कनिंघम के अवकाश ग्रहण करने पर जेम्स बर्गेस सारे

भारत के पुरातत्व विभाग के प्रमुख अधिकारी बनाये गये। उनके कार्य मे अनुसधान, सरक्षण तथा पैमाइश करना भी सम्मिलित था। उसी समय से प्रशस्तियो के स्पष्टीकरण के लिये हुल्स की नियुक्ति हुई। बर्गेस इमारतो के अध्ययन मे जुटे रहे और तीस वर्षों मे उसने अनेक मूल्यवान पुस्तके लिख डाली। ब्रिटिश सरकार की नीति स्थिर न हो पाई थी इसलिये पुरातत्व विभाग का भविष्य कभी उज्जवल और कभी अधकारमय हो जाता था। भारत मे कई प्रातो मे पैमाइश का भी काम बन्द हो गया था। सरक्षण तथा अनुसधान की तो कोई कथा ही नही। १८९९ ई० मे भारतीय सरकार ने एक नयी व्यवस्था चलाई जिससे सारे देश को पाच भागो मे बाट दिया गया—(१) पजाब (२) मद्रास (३) उत्तरप्रदेश तथा मध्यप्रदेश (४) बम्बई (५) बगाल और आसाम। इन पाच केंद्रो मे जो अधिकारी रहे वह प्रान्तीय सरकार को इमारतो तथा टीलो के सरक्षण विषय मे केवल सलाह देते थे। केन्द्र की सरकार ने प्रशस्तियो के प्रकाशित करने के लिये एक पत्र (इपिग्राफिया इडिका) निकाला जिसका सम्पादन हुल्स को सौंपा गया। इस विभाग के कार्य ज्ञानवर्धक थे। १८९९ मे लार्ड कर्जन ने भारत पहुचते ही यह घोषणा की कि पुरातत्व विभाग बढाया जायगा। और अध्ययन तथा अनुसधान को प्रोत्साहन मिलेगा। बगाल एसियाटिक सोसाइटी के समक्ष भाषण करते समय वायसराय ने कहा कि प्राचीन इमारतो का सरक्षण सरकार का मुख्य कर्त्तव्य है। वह प्राचीन इमारतो का सरक्षण करे। विशाल इमारतो तथा सुन्दर कलात्मक मदिरो को नष्ट होने से बचाना सरकार के अतिरिक्त सस्थाओ का भी कर्त्तव्य हो जाता है क्योकि ये ऐतिहासिक भवन तथा देवालय पुराने राज्य वशो के सम्बन्ध मे ज्ञान की अभिवृद्धि करते हैं। लार्ड कर्जन ने विश्वास दिलाया था कि भविष्य मे पुरातत्व के कार्य मे किसी प्रकार की बाधा नही आ सकती और सरकार अपनी जिम्मेदारी से मुक्त नही हो सकती। इस कार्य को राष्ट्रीय स्तर पर देखना होगा और प्रान्तीय सरकार की जिम्मेदारी पर छोडा नही जा सकता। सन् १९०१ का शुभ वर्ष था जब भारत सचिव ने वायसराय के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया और पुरातत्व विभाग के डायरेक्ट जनरल का पद स्थायी कर दिया गया। उस समय एक लाख रुपया प्रति वर्ष काम के लिय निश्चित हुआ। सरकार ने १९०२ में सरजान मार्शल को डायरेक्टर जनरल के पद पर नियुक्त किया। केन्द्रीय सरकार के अतिरिक्त रियासतो मे भी इमारतों के सरक्षण का कार्य आरम्भ हो गया और कई स्थानो में पुरातत्व सम्बन्धी काम प्रारम्भ कर दिये गये।

आरम्भ मे इस कार्य मे विशेष प्रगति न हो सकी। मार्शल अन्य पदा-

धिकारियों से साथ प्रत्येक प्रान्त की आवश्यकता की जाँच करने लगे। प्राचीन खण्डहर तथा भवनों की सुरक्षा की ओर उन लोगों का समुचित ध्यान दिलाया परन्तु पर्याप्त धन तथा कार्यकर्त्ताओं के अभाव में सन्तोषप्रद कार्य न हो पाता। १९ ४ में विधान सभा ने प्राचीन इमारतों का संरक्षण बिल पास कर दिया जिससे पुरातत्व विभाग में कुछ जान आ गई। उस समय के शिक्षा विशारद सर आरेल स्टीन भी अस्थायी रूप से इस विभाग से सम्बन्धित कर लिये गये। सबसे बड़ी बात यह थी कि भारतवासियों को पता देकर पुरातत्व सम्बन्धी अन्वेषण के लिये आमंत्रित किया गया। १९ ६ से इस विभाग का स्थायी रूप से संगठन हुआ और डाइरेक्टर की सहायता के लिए सर स्टन कोनो को प्रशस्तियों के सम्बन्धी कार्य निमित्त नियुक्त किया गया।

१९१४ई में प्रथम महायुद्ध छिड़ जाने से पुरातत्व विभाग के दुदिन आ गये। इस विभाग के व्यय में भारी कमी कर दी गई। १९१९ के भारतीय संविधान के अनुसार पुरातत्व विभाग केन्द्रीय विभाग घोषित कर दिया गया। यद्यपि कुछ वर्ष के पश्चात् ही न पदाधिकारियों की नियुक्ति की गयी परन्तु कन्नौली समिति न इस विभाग को समाप्त करने को सिफारिश उपस्थित की। तत्कालीन भारत सचिव तथा वायसराय ने ऐसा करना उचित नहीं समझा। केवल व्यय में कमी कर दी और विभाग का काम धीमा पड़ गया।

प्राचीन टीलों की खुदाई के सिलसिले में संयोगवश सिन्ध नदी की घाटी में मोहेन जोदड़ो तथा हड़प्पा के स्थानों का पता लगा। भारतीय इतिहास में इन स्थानों के कारण उथल-पुथल मच गई। १९२१ के पहले पुरातत्व विभाग की ओर से जिनने स्थानों का पता लगा था उन सबका सम्बन्ध मौर्यकाल से था। साधारणतया ईसा पूर्व ६ से पहले का इतिहास अज्ञात था। वैदिक युग के किसी स्थान का पता नहीं लग सका था। मोहन जोदड़ो तथा हड़प्पा के कारण ईसापूर्व ३ माल से भारतीय संस्कृति का इतिहास ज्ञात हो गया। मोहन जोदड़ो की खुदाई १ ३१ ई तक तथा हड़प्पा की १९३५ तक चलती रही। सर जानमार्शल के समय में वैज्ञानिक ढंग से भारतवर्ष में खुदाई का भी प्रचार हो सका।

इसी के समय में भारतीय सीमा के बाहर तुर्किस्तान में भी भारत के सांस्कृतिक विस्तार का पता चला। इसलिये भारतीय सरकार ने सर आरेलस्टीन को चीनी तुर्किस्तान में खोज के लिये नियुक्त किया जो १ ०-१९१६ तक कार्य करते रहे। सिन्ध की सीमा तथा बिलोचिस्तान में खोज का काम भी आरम्भ था। मार्ग तथा मजदूरों से इस विभाग के अधिकारी अब न प्राचीन

वस्तुओं का पता लगाया था। कारण वश भारत मे अंग्रेजो के कार्यों की समालोचना होने लगी थी और मार्शल के कार्य से लोग पूर्ण सतुष्ट नही थे। भारत मे १९३१ का सत्याग्रह प्रसिद्ध है। ब्रिटिश सरकार के सामने कांग्रेस को दवाने की समस्या थी। ससार मे अशान्ति थी। इसलिये सेना के व्यय के कारण ब्रिटिश सरकार ने पुरातत्व विभाग के व्यय को वहुत कम कर दिया, जिससे खुदाई या खोज का काम ठप पड गया। १९३५ ई० मे भारतीय सविधान मे परिवर्तन होने पर भी पुरातत्व विभाग मे कुछ भी सुधार न हो पाया। सन् १९३८ मे भारतीय सरकार ने इस विभाग में सुधार की वाते सोची और इसीलिये सर ऊली को पुरातत्व विषय पर सलाह देने के लिये आमन्त्रित किया। उनके रिपोर्ट मे कई वातो पर अधिक ध्यान देने की वात कही गई थी तथा इस विभाग के कार्य कर्त्ताओ की कार्य क्षमता पर भी प्रकाश डाला गया था। धन का अभाव, वैज्ञानिक ढग से शिक्षा की कमी तथा उचित सख्या मे कार्य कुशल व्यक्ति न होने के कारण पुरातत्व विभाग पूर्णरूप से विकसित न हो सका था। उस रिपोर्ट से अवगत हो जाने पर १९४४ मे विदेश से डा० ह्वीलर को डायरेक्टर जनरल के पद पर नियुक्त किया गया।

ह्वीलर ने भारत मे आतेही कई विभागीय सुधार किये। सरक्षण का कुछ काम केन्द्रीय सरकार के हाथों से हटा कर प्रातीय पुरातत्व विभाग को सोपा गया। कई अधिकारी गण नियुक्त हुये और सब को विशेष रूप से शिक्षित किया गया। सरक्षण तथा खुदाई विभाग को नये सिरे से सगठित किया। सरकार को सलाह देने के लिये केन्द्रीय सलाहकार समति वनाई गयी जिसमे विश्व विद्यालय के प्रतिनिधि तथा प्रमुख विद्वान सदस्य वनाये गये। और वह समिति आज तक इस कार्य मे सलाह देती है। भारतीय स्वतन्त्रता के पश्चात् पुरातत्व विभाग की भी वृद्धि होती जा रही है। रियासतो के गण तत्र मे मिल जानेसेनये केन्द्र खोले जा चुके हैं जहाँ पर पहले कोई काम न हो सका था। स्वतत्रता प्राप्ति के वाद इस विभाग की सार्थकता बढ़ गई है और भारत के प्राचीन वैभव तथा सस्कृति को प्रकाश मे लाने का भार इस पर आ गया है।

परिशिष्ट—म

भारत में पुरातत्व का ज्ञान

प्राचीनकाल में भारतवासियों का ध्यान इतिहास की ओर न था। सांसारिक बातों से अधिक पारलौकिक विषयों का चिंतन किया करते थे। यही कारण है कि उनमें ऐतिहासिक वर्णन की ओर झुकाव न था। इसी कारण भारतवासियों को अपने राष्ट्रीय वीरों के विषय में कम बातें ज्ञात हैं। उस सम्बन्ध में जो कुछ कहा जाता है वह कथानक का रूप प्रकट करता है। व्यास पाणिनि कालिदास अथवा भास के जीवन सम्बन्धी बातों का कुछ पता नहीं चलता। हां अशोक तथा समुद्रगुप्त ऐसे वीरों के विषय में प्रस्तर पर खुदे लेख जानकारी उपस्थित करते हैं। जो थोड़ी जानकारी हुई वह ज्ञान भी बिना खुदाई या पुरातत्व की सहायता के उपलब्ध नहीं हो सकता था। लेखों की सहायता से टुकड़े-टुकड़े को जोड़ कर क्रमबद्ध इतिहास खड़ा किया जाता है इस तरह पुरातत्व खोजों की सफलता से ही प्राचीन भारत का इतिहास तैयार हो सका है। यदि हमारे पूर्वजों ने इतिहास लिखा होता तो देश की दूसरी स्थिति होती। सौभाग्यवश उन्होंने पुरातत्व सम्बन्धी अनेक प्रकार के ऐतिहासिक सामग्रियां छोड़ी हैं जिनके आधार पर प्राचीन इतिहास तैयार किया जा रहा है। पुरातत्व सम्बन्धित विषयों को प्रकाश में लाने का श्रेय योरप निवासियों को है जो यहां सत्तरहवीं सदी से ही व्यापार में लगे थे। अपने कार्य के सम्बन्ध में उन्होंने भारतीय भाषा पढ़ना आरम्भ किया और बाद में संस्कृत की ओर भी आकर्षित हुए। मिशनरी लोगों ने संस्कृत पढ़ना आरम्भ किया। एब्राहिम राजर नामक डच व्यक्ति ने १६५१ ई० में एक पुस्तक लिखी जिसमें ब्राह्मण रीतिरिवाज का वर्णन पाया जाता है। बरनियर (१७७१ में) तथा टवर्नियर (१७७७) ने भारत में कई वर्ष रहकर भूगोल का ज्ञान सबके सामने उपस्थित किया। धर्म प्रचारकों ने भारतीय समाज तथा धर्म का अध्ययन कर पुस्तकें

लिखना आरम्भ किया जिससे उनमे भारतीय विषयों की ज्ञान पिपासा की बात स्पष्ट हो जाती है। उस समय भारतीय धर्म तथा साहित्य पर पुस्तकें प्रकाशित की गयी। योरप के लोगो ने वेदो का अध्ययन आरम्भ कर दिया जिसमे जर्मन विद्वानो का प्रधान हाथ था। योरप मे भारत के सम्बन्ध मे भी पुस्तकें छपने लगी। १८वी सदी तक कई पुस्तके तैयार हो गयी जिसमे भारतीय सस्कृति के विभिन्न अगो की ओर योरप वालो का झुकाव प्रकट होता है। वेद, व्याकरण, दर्शन तथा धर्म का अध्ययन आगे बढता ही गया। १७७६ ई० मे वारेन हेस्टिग्ज की इच्छानुसार अग्रेजी मे भारतीय कानून पर एक ग्रथ लिखा गया जिसके अनुसार अग्रेज न्यायाधीश कलकत्ते मे मुकद्मा फैसला करने लगे। गवर्नर जनरल की आज्ञा से कुछ पडित भी नियुक्त किये गये जो मूल सस्कृत से कानून की सामग्री एकत्रित करने मे व्यस्त थे। इस तरह विद्वानो की दिलचस्पी बढने लगी और सस्कृत से फारसी तथा अग्रेजी मे अनुवाद होने लगे। १७८४ ई० मे एशियाटिक सोसाइटी बगाल की स्थापना हुई जिसके अगुआ सर चार्ल्स जोन्स थे। फोर्टविलियम मे जज का काम करते हुए जोन्स ने शकुन्तला तथा गीत गोविन्द का अनुवाद किया था। विल्किन्स ने सर्वप्रथम प्रस्तर पर खुदे लेखो का अध्ययन किया था और अग्रेजी मे उसका अनुवाद किया। इस प्रकार सस्कृत से अन्य भाषाओं का सम्बन्ध स्थापित हो गया। यद्यपि सरकार की ओर से पुरातत्व का कोई विभाग न था तथापि उससे सम्बन्धित कार्य होते रहे। विल्किन्स के काम को कोल्ब्रुक ने आगे बढाया जो सर जोन्स का इस मार्ग मे उत्तराधिकारी समझा जाता है। इसने स्मृति ग्रथो का अनुवाद सब के सामने उपस्थित किया तथा कतिपय सस्कृत लेखों का अनुवाद किया। उसने अपने कार्य काल के अत मे बहुत सी हस्त लिखित प्रतिया इगलैड भी भिजवायी थी। अग्रेजो के अतिरिक्त जर्मन तथा फ्रासीसी विद्वान भी इस ओर लगे थे। जर्मनी मे सस्कृत का पठन पाठन तथा शोध का कार्य आरम्भ हो गया था। १९वी सदी के मध्य तक योरपीय विद्वानो ने सस्कृत की ओर ही अधिक ध्यान दिया और बौद्ध साहित्य अछूता सा था। जब योरप मे भारतीय साहित्य का अध्ययन चल रहा था, यहाँ अग्रेजी विद्वान प्राचीन इतिहास की खोज मे व्यस्त थे। भारत मे पुरातत्व विषयक सामग्रिया एकत्रित की जा रही थी। सिक्के तथा प्रस्तर पर खुदे लेखो की लिपि पढने मे विद्वान व्यस्त थे। उस ओर साहित्य से किसी तरह की सहायता न मिल सकी। इस सम्बन्ध मे जेम्स प्रिंसेप का नाम लिया जाता है जिसने १९वी सदी मे प्रशसनीय कार्य किया। उस समय लेख तथा सिक्को पर खुदे अक्षरो के

था। बूह्लर तथा कीलहार्न ने भारतीय पडितो द्वारा प्राचीन सस्कृत का अध्ययन कर अपना नाम विख्यात किया था। उस दिशा मे फ्लीटने गुप्त शासको के सस्कृत लेखो पर कार्य किया तथा गुप्त लेखो पर उनकी पुस्तक सर्व प्रसिद्ध मानी जाती है।

भारतीय विद्वान किसी से पीछे नही रहे। भारतीय लेख विद्या मे भगवान लाल इन्द्रजी का कार्य सब से अधिक है और बूह्लर द्वारा जन्मना पुरातत्व वेत्ता, कहे गये हैं। दूसरे स्थान पर डा० भाऊदा जी का नाम उल्लेखनीय है। लेख तथा मुद्रा सम्बन्धी शास्त्रो पर उनके कार्य अधिक प्रशसनीय हैं। मथुरा के सिंह स्तम्भ का पता लगाने के कारण उनका नाम अमर हो गया है। डा० रामकृष्ण गोपाल भण्डारकर के नाम से सभी परिचित हैं। भण्डारकर की तरह खोज पूर्व तथा मनन करने वाला व्यक्ति मिलना कठिन हैं। अपने अन्वेषण मे वह न्याय तथा तर्क से काम लेते थे। तत्कालीन विद्वानो मे हुल्स ने भी लेख विद्या पर सराहनीय कार्य किया था।

राखालदास बनर्जी तथा डा० काशीप्रसाद जायसवाल किसी ऐतिहासिक विद्वान से छिपे नही थे। उनके लेख तथा ग्रथो ने भारतीय इतिहास के कितने प्रश्नो पर प्रकाश डाला है। यह श्री बनर्जी का ही अध्यवसाय था कि सिन्ध की घाटी मे मोहन जोदडो का पता लग सका।

मुद्राशास्त्र मे कनिघम, राजर्स, बनर्जी, रैपसन, अलन तथा नेल्सन आदि के नाम प्रमुख माने गये हैं। भारतीय विद्वानो मे डा० अलतेकर का कार्य प्रशसनीय है। सिक्को द्वारा भारतीय इतिहास के कई काल विभाग प्रकाश मे आये है।

भारतीय सस्कृति का अध्ययन विभिन्न देशो मे अनेक विद्वानो द्वारा होता रहा है। साहित्यिक विकाश के साथ भारतीय इतिहास का ज्ञान भारतीय पुरातत्व से पूर्ण हो सका। जहाँ तक लेख का सम्बन्ध है भारत मे इसका अथाह भण्डार है। वे ही ऐतिहासिक अनुसधान के वास्तविक आधार हैं। भारतीय प्रशस्तियो का अध्ययन १९ वी सदी के मध्य से आरम्भ हुआ था जिसे पश्चिमी तथा भारतीय विद्वानों ने आगे बढ़ाया। उनसे भारतीय सस्कृति के प्रत्येक अग पर प्रकाश पडा है। किसी विषय को उठा लें भारतीय लेखो मे उसका विवरण किसी-न-किसी रूप मे अवश्य मिलेगा।

द्वितीय-खण्ड

मूल-लेख

अशोक के धर्म लेख

(१) प्रधान शिला लेख

[१ गिरनार पाठ]

१ इय( ) धम-लिपी देवान पि[प्रि] येन
२ पि[प्रि]यदसिना राञा लेख(ा)पि(ता) (।*) (इ)ध न कि-
३ चि जीव आरभित्पा[त्पा] प[प्र]जूहितव्य[व्य] (।*)
४ न च समाजो कतव्यो[व्यो] (।*) बहुक हि दोस
५ समाजम्हि पसति देवान पि[प्रि]यो पि[प्रि]यदसि राजा (।*)
६ अस्ति पि तु एकचा समाजा साधु-मता देवान
७ पि[प्रि]यस पि[प्रि]यदसिनो राञो (।*) पुरा महानसम्हि
८ देवान पि[प्रि]यस पि[प्रि]यदसिनो राञो अनुदिवस ब-
९ हूनि पा[प्रा]ण-सत-सहस्रा[स्रा]नि आरभिसु सूपाथाय (।*)
१० से अज यदा अय धम-लिपी लिखिता ती एव पा[प्रा]-
११ णा आरभरे सूपाथाय द्वो मोरा एको मगो (।*) सो पि
१२ मगो न धुवो (।*) एते पि त्री[त्री] पा[प्रा]णा पछा न आरभिसरे (।।*)

[२]

१ सर्वत विजितम्हि देवानंपि[प्रि]यस पियदसिनो राञो
२ एवमपि प[प्र]चतेसु यथा **चोडा पाडा सतियपुतो केतलपुतो** आ तंब-
३ **पणी अतिय(ो*)को योन-राजा** ये वा पि तस अतिय(ो*) कस सामीप(ा)
४ राजानो सर्वत्र[त्र] देवानंपि[प्रि]यस पि[प्रि]यदसिनो राञो द्वे चिकीछ(ा*) कता
५ मनुस-चिकीछा च पसु-चिकीछा च (।*) ओसुढानि च यानि मनुसोप-गानि च
६ पसो(प)गानि च यत यत नास्ति सर्वत्र[त्र] हारापितानि च रोपा-पितानि च (।*)
७ मूलानि च फलानि च यत यत नास्ति सर्वत हारापितानि च रोपापितानि च (।*)

८ पंथेसू कूपा च खानापिता व्रं[छ]छा च रोपापित(।) परिभोगाय पसु-मनुसानं (॥*)

[३]

१ देवानंपि[प्रि]यो पियदसि र(।*)जा एवं आह (।*) द्वादस-वासाभिसितेन मया इदं आञपितं (।*)

२ सर्वत विजिते मम युता च राजूके च प्रा[प्रा]देसिके च पंचसु पंचसु वासेसु अनुसं-

३ य(ा)न( ) f (न) यातु एतायेव अथाय इमाय धंमानुसस्टि[स्टि]य यथा अञा

४ च पि कंमाय (।) (सा)धु मातरि च पितरि च सुस्रू[सू]सा मितासंस्तु ञातीनं बाम्हण-

५ समणानं सा(धु) (दा)नं प्रा[प्रा]णानं साधु अनारंभो अप-व्य[व्य]यता अप-भांडता साधु (।*)

६ परिसा पि युते आञपयिसति गणनायं हेतुतो च व्यं[व्यं]जनतो च(॥*)

[४]

१ अतिकातं अंतरं बहूनि वास-सतानि वढितो एव प्रा[प्रा]णारंभो विहिंसा च भूतानं ञातीसु

२ अ(सं)प्रं[प्र]तिपती ब्रा(म्ह)ण-स्रं[स्र]मणानं असंप्रं[प्र]तीपती-(।) त अज देवानंपि[प्रि]यस प्रि[प्र]यदसिनो राञो

३ ध्रंम-चरणेन (भ)री-घोसो अहो धंम-घोसो।(*) विमान-दसणा च हस्ति द(स)णा च

४ अगि-खंधा(नि) च (अ)ञानि च दिव्या[व्या]नि रूपानि दसयित्पा[त्वा] जनं यारिसे बहूहि वा(स)-सतेहि

५ न भूत-पु(वे) तारिसे अज वढिते देवानंपि[प्रि]यस प्रि[प्रि]यदसिनो राञो धंमानुसस्टि[स्टि]या अनारं

६ (भो) प्रा[प्रा]णानं अविहीसा भू(ता)नं ञातीनं संपटिपती ब्राम्हणसमणानं संपटिपती मातरि पितरि

७ (सु)स्रु[स्रू]सा थैर-सुसुसा (।) एस अञे च बहुविधे (ध) मचरणे व(ढि)ते(।) वढयिसति चेव देवानंपि[प्रि]यो

८ (प्रि)यदसि राजा धंम (च)रणं इदं (।) पुत्रा[त्रा] च(पो)त्रा-

[आ] च पं[प्र]पो-तां[आ] च **देवानंपि[प्रि]यस पि[प्रि] यदसिनो राञो**

९ (प्र*)ववयिसति इद (ध)म-चरण आव सवट-कपा धमम्हि सीलम्हि तिट्म[स्ट]तो (ध)म अनुसासिसति (।*)

१० (ए)स हि सेट्से[स्टे] कमय धमानुसासन(।*) धमचरणे पि न भवति असीलस (।*) (त) इमम्हि अयम्हि

११ (व*)धी च अहीनी च साधु(।*) ए(ता)य अयाय-इद( ) लेखापित इमस अय(स) वधि युजतु ह(ी)नि च

१२ (नो) लोचेतव्या[व्या] (।*) **द्वादसवासाभिसितेन देवानंपि[प्रि]येन पि[प्रि]यदसिना** राञा(ा) इद लेखापित (॥*)

[५ मानसेरा पाठ]

१ दे(वन)प्रियेन प्रियद्रशिदरज एव( ) अह (।*)कलण( )दुकर( )(।*) ये अदिकरे कयणस से दुकर करोति(।*) त मय वहु (क)यणे(क)टे(।*) (त) म(अ) पुत्र (च)

२ नत(रे) च पर च(ते)न ये अपतिये मे (अ)व-कप तथ अनुवटिशति से सुकट क(प)ति (।*) ये (चु) अत्र देश पि हपेशति से दुकट कपति(।*)

३ पपे हि नम सुपदरवे (।*) (से) अतिक्रन( ) अ( )तर( ) न भुतप्रुव **ध्रम(म)हमत्र** नम (।*) से **त्रेडश-व(ष)भिसितेन** मय **ध्रम-महमत्र** कट(।*) ते सन्न-प(प)डेप

४ वपुट ध्रमधिय(न)ये च ध्रम-वध्रिय हिद-सुखये च (ध्र)मयुतस **योन-कबोज-गधरन** र(ठि)क-**पितिनिकन** ये व पि अञो अपरत (।*) भ(ट)मये

५ षु व्रमणिभ्येषु अनथेषु वुध्रेषु हिद-सु(खये) ध्रमयुत-अपलिबोधये विय-(पु)ट ते (।*) बवन-वध(स) पटिवि(धतये) अपलिबोधये मोक्ष(ये) (च) (इय)

६ अनुबध (प्र)ज(व*) (ति) व कट्रभिकर ति व महलके ति व वियप्रट ते (।*) हिद बहिरेषु च नगरे(षु) सव्रेषु (ओ)रोधनेषु भतन च स्प(सु)न (च)

७ ये व पि अञे ञातिके सव्रत्र वियपट(।*) (ए) इय ध्रम-निशितो तो व ध्रमधियने ति व दन-सयुते ति व सव्रत्र विजतसि मअ ध्रमयुतसि वपुट(ते)

८ **ध्रम-महमत्र** (।*) एतये अथ्रये अयि ध्रम-दिपि लिखित चिर-ठितिक होतु तथ च मे प्रज अनुवटतु (॥*)

[६]

१ (देवा)(नंपियो॰) (पियद॰)सि राजा एवं आह (।॰) अतिक्रातं अंतरं
२ न भूतपु(व्रु)(व)(स)(वे॰)(काले॰)अथ-कंमे व पटिवेदना वा(।॰) त मया एवं कत (।॰)
३ (स)वे काले भू(ं)(ज)मानसम ओरोधनम्हि गभागारम्हि वचम्हि व
४ विनीतम्हि च उयानसु च सर्वत[्र] पटिवेदका द्सि[स्टि]ता अथे मे (ज)नस
५ पटिवेदेथ इति (।) सर्वत्र च जनस अथे करोमि (॰।) य च किंचि मुख(तो)
६ आञपयामि स्वयं दापकं वा स्रां[व]ापकं वा य वा पुन महामा(त्रे[सु])सु
७ आचायि(के) अरोपितं भवति ताय अथाय विवादो निझती व (स)तो परिसायं
८ आनंतरं प(टि)वेदेत(व्यं[व्यं]) म स(र्व)तं[्र] सर्वे काले(।॰) एवं मया आञपितं(।॰) नास्ति हि म तो(सो)
९ उद्सा[स्टा]नम्हि अथ-संतीरणाय च (।॰) कतव्य [मत]-तेहि मे स(र्व)-लोक-हितं (।)
१ तस च पुन एस मूले उद्सा[स्टा]नं च अथ-संतीरणा च (।॰) नास्ति हि कंमतरं
११ सर्व-लोक-हितत्पा[त्पा](।) य च किंचि पराक्रमामि अहं किंति भूतान आनणं गछेयं (।)
१२ इध च नानि सुखापयामि परत्रा च स्वग आराधयंतु (।) त एताय अथाय
१३ अयं ध( )म लिपी लेखापिता किंति चिरं तिद्से[स्टे]य इति तथा च म पुत्रा पोता च पं[्र]पोत्रा[त्रा] च
१४ अनुवतरां सव-लोक-हिताय (।) दुकरं (तु) इदं अञत्र[त्र] अगेन पराक्रमेन (।।)

[७ शाहबाजगढ़ी पाठ से]

१ देवनंप्रियो प्रिय(द्र)शि रज सवत्र इछति सव
२ (प्र)षंड वसेयु (।) सवे हि ते सयमे भव-शुधि च इछंति (।)
३ जनो चु उचवुच-छंदो उचवुच रगो (।) ते सर्व व एकदेश व

४ पि कपति (।*) विपुले पि चु दने यस नस्ति सयम भव-
५ शुधि किट्रञ्नात द्रिढ-भतित निचे पद (॥*)

[८]

१ अतिकात अतर राजानो विहार-याता ञयासु (।*)एत मगय्या[व्या] अञ्नानि च एतारिस(ा*)नि
२ अभीरमकानि अहु सु(।*)सो देवानपियो पियदसि राजा दसवसभिसितो सतो अयाय सवोधि(।*)
३ तेनेसा धम-याता (।*) एतय होति वाम्हण-समणान दसणे च दाने च थैरान दसणे (च)
४ हिरण-पटिविधानो च जानपदस च जनस दस्पन धमानु(स)ठ्सी [स्टी] च धम-परिपुछा च
५ तदोपया (।*) एसा भुय-रति भवति देवानपियसि पि[प्रि]यदसिनो राञो भागे अञे (॥*)

[९ मानसेरा पाठ से]

१ (देवनप्रिये) प्रियद्रशि रज एव अह (।*) जने उचवुच ( ) (म)गल ( ) करोति(।*)
२ अवधसि अ(व) हसि वि(व)हसि प्रजोपदये प्रवसस्पि एतये अञाये(च) (एदि)श(ये) (जने)
३ वहु मग(ल) (क)रो(ति)(।*) अत्र तु अबक जनिक वहु च वहुविध च खुद च निरथ्रिय च मगल करोति (।*) से क(टविये) (चे) व खो
४ मगले(।*) अप-फले चु (खो) (ए)षे (।*) इय चु खा मह-फले ये ध्रम-मगले(।*) अत्र इय दस-भटकसि सम्य-पटिपति गुरुन अ(पचिति)
५ प्र(ण)न (स)यमे श्रमण-ब्रमणन (दने) एषे अणे च एदिशे ध्रम-मगले नम (।*) से वतविय पि(तु)न पि पुत्रेन पि भ्रतुन पि स्पमिकेन पि
६ मित्र-स( )स्तुतेन (अ)व पटिवेशियेन पि इय सधु इय कटविये मगले अव तस अथ्रस निवुटिय निवुटसि व पुन इम (क)षमि ति(।*) ए हि (इ)-तरे मग(ले)
७ श(श)यिके से(।*) (सि)य व त अथ्र निवटेय (सि)य पन नो (।*) हिद (लो)-किके चेव से (।*) इय पुन ध्रम-मगले अकलिके (।*) (ह)चे पि त अथ्, नो निवटेति (हि)द, अ(थ)परत्र
८ अनत पुण प्रसवति (।*) हचे पुन त( ) अथ्र निव(टे)ति हिद ततो

उभयसं (भर)मे होति(।*) हिद च से अथ्र परत्र च अनत पुनं प्रसवति तेन ध्रम-(म*)गलेन(॥*)

[१०]

१ देवानंपि[प्रि]यो पि[प्रि]यदसि राजा यशो व कीति व न महथावह(।) मञति अञत्र तदात्प[त्व]मो दिघाय च म (य)नो
२ ध्रम-सुश्रु[ष]षा सुश्रु[षु]सतु ध्रम-वुतं च अनुविधियतु (*) एतकाय देवानंप्रियो प्रियदसि राजा यसो व किति व इ(छ)ति (।*)
३ यं तु किचि परिकामते देवानं(प्रियो) पि[प्रि]यदसि राजा त सर्व पारत्रि[कि]काय किति सकल अपपरिस्रे[व]वे अस(।) एस तु परिस्रवे य अपुञं (।)
४ दुकरं तु खो एतं छुदकेन व वगन उसटेन व अञत्र[ग]अग्रन पराक्रे[क]मन सर्व परिचजित्ता[त्वा] (।) एत (तु) (खो) उसटेन दुकरं (॥*)

[११ कालसी पाठ]

१ देवानं(पि)य पियदसि (ल)जा हेवं (आ)हा (।) नथि (हे)दिसे दान अदिस ध( )म-दान । धम-स(ं)थव । धंम-संव(भ) । त(त) एसे दास-भट-कसि । सम्या-पटिपति माता-पितिषु । सुसुसा । मित-संथुत-नातिक्याम समना(ब) भनाना (दा)न
२ पानानं अनाल( )भ(।) एसे वत(ि)व्ये पि (त)ना पि पुते(न)पि भा(त)-ना पि सुवा(मि)कस्पन पि मित-संथुताना अवापटिवेसियन(।) इय( ) साधु इयं कटविये (।) (स) तथा करु (त) हिदलोकिक्य च के आलधे होति परत च(।) अनत पुना पसवति तेना धंम-दानना (॥)

[१२ शाहबाजगढ़ी पाठ]

१ देवनंप्रियो प्रियद्रशि रय सव्र-प्रषंडनि प्रव्रजित(नि) ग्रहथनि च पुजेति दनन विविधये च पुजय ( ) नो तु तथ(द)न व पुज व
२ देवनंप्रियो मञति यथ किति स(ल)-वढि सिय सव्र-प्रषंडनं ( ) सल-वढि तु बहुविध ( ) तसमु इयो मुल यं वचोगुति(।)
३ किति अत-प्रषड-पुज व प(र)-प्रषड-गर[ह]न व नो सिय (अ) पकरणसि लहुक व सिय तसि तसि प्रकर(णे) (।) पुजेतविय व तु पर-प्रषं
४ (ड) तेन तेन अकरेन (।) ए(वं) करतं अत-(प्र)षंडं वढेति पर

प्रपडन पि च उपकरोति (।*) तद अञ्नयक(र)मि (नो) अत-प्र-(पड)

५ क्षणति (पर)-प्रपडस च अपकरोति (*) यो हि कचि अत-प्रपड पुजेति (पर)-(प्र)-पड( ) गरहति सब्रे अत-प्रपड-भतिय व्र किति

६ अत-प्रपंड दिपयमि ति सो च पुन तथ करत -सो च पुन तय करत) व(ढत)र उपहति अत-प्रपड (।*) सो सयमो वो सधु(।*) किति अञमञस ध्रमो

७ श्रुणेयु च सुश्रुषेयु च ति (।*) एव हि देवनप्रियस इछ किति सब्र-प्रपड बहु-श्रुत च क(लण)गम च सियसु (।*) ये च तत तत्र

८ प्रसन तेप( ) वतवो देवनप्रि(यो) न (तय) (द)न( ) (व)(पुज) व मञति य(थ) किति सल-वढि सियति सब्रप्रपडन (।*) बहुक च एतये अठ(ये*)

९ व(प)ट (ध्र)म-म(ह) इ (स्त्रिधि)यक्ष-म(ह)मत्र (व्र)च-भूमिक अञे च निकये (।*) इम च एतिस (फ)ल य अत-पपड-वढि (भोति)

१० ध्रमस च दि(पन) (।।*)

[१३ शाहवाजगढ़ी पाठ]

१ (अठ-वष-अ(भिसि)त(स) (देवन)प्रि(अ)स प्रि(अ)द्रशिस र(ञो) क(लिग) वि(ज)त (।*) दिअढ-म(त्रे) प्रण-शत(सह)स्रे (ये) ततो अपवुढे शत-सहस्र-मत्रे तत्र हते बहु-तवत(के) (व) (मुटे) (।*)

२ ततो (प)च अ(धु)न ल(धे)षु (कलिगेषु) (तिव्रे) (ध्रम-शिलन)ध्र-(म-क)मत ध्रमनु-शस्ति च देवनप्रियस (।*) सो (अ)स्ति अनुसोचन देवन(प्रिअ)स विजिनिति कलिग(नि) (।*)

३ अविजित (हि) (वि)जिनमनो-या त(त्र) वध व मरण व अपवहो व जनस त बढ (वे)दनि(य)-म(त) गुरु-मत( ) च देवनप्रियस (।*) इद पि चु (ततो) गुरुमततर (देवन)प्रियस ये तत्र

४ वसति ब्रमण व श्रम(ण) व अ( )ञे व प्रषड ग्र(ह)थ व येसु विहित एष अग्रभुटि-सुश्रुष मत-पितुषु सुश्रुष गुरुन सुश्रुष मित्र-सस्तुत-सहय-

५ ञातिकेषु दस-भटकन सम्म-प्रतिप(ति) द्रिढ-भतित तेष तत्र भोति(अ) प-(ग्र)थो व वधो व अभिरतन व निक्रमण (।*) येष व पि सुविहितन (सि) (ने*)हो अविप्रहिनो (ए) (ते)ष मित्र-सस्तुत सहय-ञातिक वसन

६ प्रपुणति (त)त्र त पि तेष वो अपध्रथो भोति (।*) प्रतिभग च(ए)त सब्र-मनुशन गुरुमत च देवनप्रि(स) (।*) नस्ति- च एकतरे पि प्रषडस्पि

न नम प्रमदो (।*) सो ममभा (च)मा तम कलिगे (ह) तो च मु(टो) च अप (वुढ) च ततो

७ शत-भग च सहस्र-भगं च(अ)ज गुरु-मत (वो) देवनंप्रियस (।*) यो पि च अपकरेयति छमितवियमते व देवन(प्रि)यस यं शको छमनये (।*) य पि च अटवि देवनंप्रियस विजिते भोति त पि अनुनेति अनुनिझपेति (।*) अनुतपे पि च प्रभवे

८ देवनंप्रियस वुचति तेष किति अवत्रपेयु न च (ह) नेयसु (।*) इछति हि (देव)नंप्रियो सव-भुतन अछति स( )यमं समचरियं रभसिये (।*) अयि च मुख-मुत विजय देवनंप्रिय(स) यो ध्रमविजयो (।*) सो च पुन लधो देवनंप्रियस इह च सवेषु च अंतेषु

९ (अ) षषु पि योजन-श(ते)षु यत्र अंतियोको नम (यो)न-रज परं च तेन(अ(*)-तियो(के)न चतुरे ४ रजनि तुरमये नम अंतिकिनि मक नम अलिकसुदरो नम निच चोड-पंड अव त( )बपं(नि)य (।) (ए)वमेव (हि)द रज-विषवस्पि योन-क( )बोयेषु नभक नभितिन

१० भोज-पितिनिकेषु अंध्र-पलिदेषु सवत्र देवनंप्रियस ध्रमनुशस्ति अनु वटंति (।) यत्र पि देवनंप्रियस दुत न वचंति ते पि श्रुतु देवनंप्रियस ध्रम-वुटं विधनं ध्रमनुशस्ति ध्रमं (अ)नुविधियंति अनुविधियिषं(ति) च (।*) यो (स) लधु एतकेन भा(ति) सवत्र विजयो सव(त्र) पु(न)

११ विजयो प्रिति-रसो सो(।) लध (भोति) प्रिति ध्रम-विजयस्पि (।) लहुक तु खो स प्रिति (।*) परत्रि(क)मेव मह-फल मेञति देवन( )प्रियो (।) एतये च अठये अयि ध्रम-दिपि निपि(स्त) (।) किति पुत्र पपोत्र मे असु नवं विजयं म विजेत(वि)मञ मजिषु स्प(कस्पि) यो विज(ये) (क्षं)ति च लहु-द( )डत च रोचेतु तं च यो विज(यं) मञ(तु)

१२ यो ध्रम-विजयो (।) सो हिदलोकिको परलोकिको (।) सव चति-रति भोतु य (ध्र) म-रति- (।) स हि हिदलोकिक परलोकिक (।।)

[१४]

१ अयं ध्रम-दिपि देवानंपि[प्रि]येन प्रि[प्रि]यद्रशिना र(ा)ञा (ने) खापित (।) अस्ति एव

२ संखि(तै)न अस्ति मझमेन अस्ति विस्तटेन (।) न च सर्वे (स)र्वत्र घटितं (।)

३ महालके हि विजित वहु च लिखित लिखापयिस चेव (।*) अस्ति च एत क
४ पुन पुन व् ु त तम तत अयस मावूरताय (।*) किति जनो तया पटिपजेय (।*)
५ तत्र एकदाअसम ा(त) लिखित ( ) अस देम व सछाय-(का)रण च
६ (अ)लोचेप्ता(त्पा) लिपिकरापरधेन व (॥*)

(२) कलिङ्ग लेख

घौली लेख

१ (वेवान) (पि)य(स) (वच)नेन तोसलिय म(हा)मात (नग)ल-
ि(व)(यो)हालक(ा)
२ (व)तविय (।*) (अ) किछि (दखा)मि हक त इछामि (किति)
क(मन) (प)टि(पादये)ह
३ दुवालते च आलभेह (।*) एस च मे मोख्य-मत दुवा(ल) (एतसि) (अठ)-
सि अ तु(फेसु)
४ अनुसथि (।*) तुफे हि वहूसु पानसहसेसु आ(यत) पन(य) (ग)छेम सु
मुनिसान (।*) सवे
५ मुनिसे पजा ममा (।*) अथ(ा) पजाये इछामि हक( ) (किति) (स)वे
(न)-(हि)त-सुखेन हिदलो(किक)-
६ पाललोकिके(न) (यूजेवू) (ति) तथा (सव*)-(मुनि)सेसु पि (इ)छामि
(ह)क( ) (।*) नो च पापुनाथ आव-ग-
७ (मुके) (इय अठे) (।*) (केछ) (व) एक-पुलि(से) (पापु*)नाति
ए(त) से पि देस नो सव (।*) दे(खत) (हि) (तुफे) एत
८ सुवि(हि)ता पि (।*) (नि)तिय एक-पुलिसे (पि) (अथि) (ये) वधन
वा पलिकिलेस वा पापुनाति (।*) तत होति
९ अकस्मा तेन वधन( )तिक अने च (तत*) (व*)हुजने द(वि)ये
दुखीयति (।*) तत चिर इछितविये
१० तुफेहि किति मझ पटिपादयेमा ति (।*) इमे(हि) चु (जातेहि) नो
सपटिपजति इसाय आसुलोपेन
११ नि(ठू)लियेन तूलना(य) अनावूतिय आलसियेन (ि)कलमथेन (।*)
से इछितविये किंति एते
१२ (जाता) (नो) हुवेवु म(म)ा ति (।*) एतस च सव(स) मूले
अनासुलोपे अ(तू)लना च (।*) निति(य) ए किलते सिया
१३ (न) ते उग(छ) सचलितवि(ये) तु वर्ि (ट)तर्ि (व)(ये) एतविये वा
(।*) हेव मेव ए द(खेय) (तु)फाक तेन वतविये

१४ मातं मे देवान हेवं च हेवं च (दे)वानंप्रियस अनुसथि(।*) से मह(।-फ) (ले) (ए)तस (संप)टिपाद

१५ महा-अपाये असंपटिपति(।*) (वि)प(टि)पादयमीन हि एतं नथि स्वगस (आल)धि नो लाज(ा)लधि (च) (।*)

१६ दु-आ(ह)ले हि इ(म)स कंम(स) (मे) कुते म(न)अतिलेके (।) स( ) पटिपज(मी) (न) चु(एतं) स्वगं( )

१७ आलाध(यि)स(थ) (मम) (च) (आ)ननियं एहथ (।*) इयं च (लिपि) (ति)स-न(ख)तेन सो(त)विय(ा) (।*)

१८ अंत(ल)ा ति(स)च ति(स)(खन)(सि)नसि च(मसि) एकेन पि सोतविय (।*) हेवं च कलंतं तुफे

१९ चघथ संप(टि)पाद(यि)तवे (।) (एता)ये अठाय इयं( ) (लिपि) लिखित (हि)द एन

२ नगलक-वि(योहा)लका स(स्व)तं समयं यूजयु (ति)त (एन*) (च) (न)स अकस्मा (प)लिबोधे व

२१ अकस्मा पलिकि(लेसे) व ना सिया ति (।*) एताये च अठाय हक( ) (महा)मते पंचसु पंचसु (व)से

२२ सु (निखा)मयिसामि ए अखखसे अ(चंड) सखिनालंभे होसति एतं अठं जानितु (त) (पि) (त)था

२३ कल( )ति अथ मम अनुसथी ति (।) उजेनिते पि चु कुमाले एताये च अठाये (नि)खाम (यिस)(ति) *

२४ हेदिसमेव वग नो च अतिकामयिसति तिंनि वसानि (।) हेमेव तखस (सि)लाते अप (।) (अ)दा अ * *

२५ ते महामता निखमिसंति अनुसयानं तदा अहापयितु अतने कंमं एतं पि जानि-सति

२६ तं पि त(था) कलंति अ(थ) लाजिने अनुसथी ति (।।)

जौगड़ लेख

१ देवानंपिये हेवं आ(ह) (।)समापाय महामता च(ा)लवचनिक वतविया (।) अं किछि दखा(ा)मि हकं तं इ(छा)मि हकं (कि)ति कंमन

२ पटिपातयेहं दुवा(ल)ते च आलभेहं (।) एस च मे मोखियमत दुवाल एतस अ(थ)स अं( ) (तुफे)सु अनुस(थि) (।) सव-मुनि

३ सा मे पजा (।) अथ पजा(य) इछामि किंति म सवेना हित-सु(खे)न यु(जे)यू (अ)थ पजाये इछामि कि(ति) (मे) सवेन हित-सु

४ (ख)न युजेयू ति हिदलोगिक-पाललोकि(केण) हेवमेव मे इछ सवमुनिसेसु (।*) सिया अतान (अ)विजिता-

५ न किं-छादे सु लाजा अफेसू ति(।*) एताका (वा) मे इछ (अ)तेसु पापुनेयु लाजा हेव इछति अनु(विगि)न ह्वे(यू)

६ ममियाये (अ)स्वमेयु च मे मुख(मेव च लहे(यू) ममते (नो) (दु*)ख() (।*) हेव च पापुनेयु ख(मिस)ति ने लाजा

७ ए सकिये खमितवे मम निमित च धम( ) चले(यू) ति हिदलोग( ) च पललोग च आलाधये(यू) (।*) एताये

८ च अठाये हक तुफेनि अनमासामि अन(ने) (एत)केन (ह)क तुफेनि अ(नु)मासितु छद( ) (च) वेदि-

९ (तु) आ मम धिति पटिना च अचल (।*) म हेव (क)टू क( )मे (च)लितविये अस्वास(नि)या च ते एन ते पापुने-

१० यु अ(थ)ा पित (हे)व (ने) लाजा ति अथ(अ)तान अनुकप(ति) (हे)व अ(फे)नि अनुक(प)ति अया पजा हे-

११ व (मये) ला(जि)ने (।*) तुफेनि हक अनुसासित (छ)ाद (च) (वेदि)त (आ) (म)म धिति पटिना चा अचल (सक)ल-

१२ देसा-आ(युति)के- होसामी एतसि (अ)थ(ि)स (।*) (अ)ल (हि) तुफे अस्वास(ना)ये हि(त)-सुखाये (च) (ते)स( ) हिद-

१३ लोगि)क)-प(ा)ल(लो)कि(काये) (।*) हेव च कलत स्वग( ) (च) (आ)लाधयिस(थ) मम च आन(ने)य एसथ (।*)ए-

१४ ताये च अ(थ)ाये इ(य) लिपि लि(खित) (हि)द ए(न) (म)-ह(ा)माता सास्वत सम युजेयू अस्वासनाये च

१५ धम-चल(ना)ये च अता(न) (।*) इय च लिपि अ(नु)च(ा)तु (म)ास (सोत)विया तिसेन (।*) अतला पि च सोतविया (।*)

१६ खने सत एके(न) पि (सोतवि(या) (।*) हेव( ) च (क)ल(त) चघथ सपटिपातयित-(वे) (।।*)

(३) लघु शिला-लेख

रूपनाथ[1]

१ **देवानपिये** हेव( ) आहा (।*) साति(र)केकानि अढति(या)नि

---

१ इस लेख की प्रतिया कई स्थानो पर मिली हैं। ब्रह्मगिरि मे कुछ अधिक पक्तिया हैं जिनमे आमूल भेद नही है। मास्की के लेख मे "देवान पियस असोकस" से प्रारम्भ होता है।

म(सानि*) य सुमि पाकास (सके) (।*) नो मु बाडि पक्टे (।*) सावितेके मु छवछरे य सुमि हुक( ) सम उ(पे)ते

२ बाडि म पक्ते(।*) या (इ)माम कालाय अबुविपति अमिसा देवा हुसु ते बानि (मिसा) फ्टा(।*) पकमसि हि (ए)स फले(।*) नो म एता महतता प(ा)पोतवे सुवकेन

३ पि प(क)म(मि)मेना सक्यि विपुले पा स्वगे आरोधवे (।*) एतिम अठाय च सावने कटे (खु)दका च उडाला च पकमतुति अता पि च जानंतु इय पक(रा) (म)

४ किति चिर-ठितिके सिया (।*) इय हि अठे वडि वडिसिति विपुल च वडिसिति अपलधियना दियडिय वडिसत (।*) इय च अठे पवति(सु) लेखापेत वालत (।*) हुथ च अथि

५ साला-ठ(भे) सिला-ठ( )मसि लाखापेतवय त(।*) एतिना च वयजनना यावतक तुपक अहाले सवर विवसेतवा(य) ति (।) (व्यु)ठेना सावने कट (।*) २ (+*) ५ (+) ६ स-

६ त विवासा त (॥*)

यवगुडी लेख

१ देवानंपिय हेवं　　१a हेमा (।*)　　१b (स)पिकानि....

२ वे(कप रवनसं कप्)　　२a सोतुमो (।*) केसपाज कंह (यं)

३ हुस साति(रे)कं (तु सो) सवछरे यं ममा सवे उपयि

४ (भ) (न)केका च नामिड (।) तेकप मे च हवा तै

५ -मिसा मुनि-

५a सा देवेहि ते बानि मिसिमूता (।) पकमस हि (एस फलो ।)

६ खु मेकिस बमेवेत्पहूम (म)

७ -यकेन पि प(क)　　७a पेतवे (।) ए

८ (म)मीनेन सक्यि विपुले स्वगे आरा　　ताय च अठाय हर्म

९ (स)ावने सावितेे अभा खुदक-महपता इमं पराकमेयू अं

१० च कातिठिरचि धुनेवा म च ता-

११ (इ)य पकमे होतु विपुले पि च वडसिता अपरधिया दियडियं (।)

१२ ला नेबसा च मं(इ)

१३ (सावि)ते व्यूथेन २ (+*)५ (+)६(।)

१३a हेव देवानं देवानंपि　　१३b -ये आह् ममा देवानं-

१४ (।) (यवसिक बात हाका) यपि

१५ (राजू)फे आनपितविये
१६ नआ दपनजा नीदा ते
१७ -पयिसति रठिकानि च (।*) मातापितूसू सु(सु*)-
१८ सितविये हेमेव गरूसु सुसूसितविये पानेसु दयितविये
१८a सच वतविय
१९ सुसुम धमगुना पवतितविया (।*) हेव तुफे आनपयाथ देवानपियस वचनेन (।*) हे-
२० पनआ वमे
२१ यथ हथियारोहानि कारनकानि यू(ग्य)चरियानि वभनानि च तुफे (।*) हेव निवेसया-
२२ थ अतेवासीनि या(रि)सा पोराना पकिति (।*) इय सुसुसितविये अप-चायना य वा सव मे
२२a आचरि-
२३ -यस यथाचारिन आचरियस (।*) नातिकानि यथारह नातिकेसु पव-तितविये (।*) हेसा (पि)
२४ अतेवासीसु यथारह पवतितविये यारिसा पोराना पकिति (।*) यथारह यथा इय
२५ आरोके सिया हेव तुफे आनपयाथ निवेसयाथ
२५a च अतेवास(ी)नि (।*) हेव दे- २६ (॥*) तियपनआ योपिनवा[1]

(४) अशोक के स्तम्भ-लेख

[१ देहली-तोपरा का पाठ]

१ देवानपिये पियदसि लाज हेव आहा (।*) सडुवीसति-
२ वस-अभिसितेन मे इय धम-लिपि लिखापिता (।*)
३ हिदत-पालते दुसपटिपादये अनत अगाया धम-कामताया
४ अगाय पलीखाया अगाय सु(सू)साया अगेन भयेना
५ अगेन उसाहेना (।*) एस चु खो मम अनुसथिया

१ इस लेख की खुदाई विभिन्न ढग से की गई है। कुछ पक्तिया बाए से दाहिने तथा कई दाहिने से बाए लिखी गई हैं। उस ढग से पढने पर क्रम ठीक हो जाता है। पहली पक्ति मे आह के स्थान पर हआ खुदा है। दूसरी पक्ति को उल्टा पढने से एक सवछरे पकते हो जाता है। २a के अत को इक उपासके पढ़ा जायगा। चौथे का अत 'ते वाढय मे पकते' इमिनाय कालेन हो जायगा। इस तरह १०, १२, १४, १६, २० तथा २६ पक्तियो को ऊपर मिलाकर उल्टा पढें।

६ धमापेखा धंम-कामता चा सुवे सुवे वढिता वढीसति चेवा (।*)
७ पुलिसा पि च मे उकसा चा गेवया चा मझिमा चा अनुविधीयंती
८ संपटिपादयंति चा अलं चपलं समादपयितवे (।*) हेमेवा अंत-
९ महामाता पि (।) एस हि विधि या इयं धंमेन पालना धंमेन विधाने
१० धंमेन सुखियना धंमेन गोती ति (॥*)

[२]

१ देवानंपिये पियदसि लाज
२ हेवं आहा (।) धंमे साधू (।*) कियं चु धंमे ति (।) अपासिनवे बहु-कयाने
३ दया दाने सचे सोचये (।) चखु-दाने पि मे बहुविधे दिंने (।*) दुपद
४ चतुपदेसु पखि-वालिचलेसु विविधे मे अनुगहे कटे आ पान
५ दाखिनाये (।*) अंनानि पि च मे बहूनि कयानानि कटानि (।) एताये मे
६ अठाये इयं धंम-लिपि लिखापिता हेवं अनुपटिपजंतु चिलं-
७ थितिका च होतू ती ति (।*) ये च हेवं संपटिपजीसति से सुकटं कछती ति (॥)

[३]

१ देवानंपिये पियदसि लाज हेवं अहा (।*) कयानंमेव देखति इयं मे
२ कयाने कटे ति (।*) नो मिन पापं (दे)खति इयं मे पापे कटे ति इयं वा आसिनवे
३ नामा ति (।) दुपटिवेखे चु खो एसा (।*) हेवं चु खो एस देखिये (।*) इमानि
४ आसिनव-गामीनि नाम अथ चंडिये निठूलिये कोधे माने इस्या
५ कालनेन व हकं मा पलिभसयिसं (।) एस बाढ देखिये इयं मे
६ हिदतिकाये इयंमन मे पालतिकाये (॥)

[४]

१ देवानंपिये पियदसि ला(जा) हेवं आहा (।) सडुवीसति-वस
२ अभिसितेन मे इयं धंम-लिपि लिखापिता (।) लजूका मे
३ बहूसु पान-सत-सहसेसु जनसि आयता (।) तेसं ये अभिहाले वा
४ दंडे वा अत-पतिये मे कटे (।) किंति लजूका अस्वथ अभीता
५ कंमानि पवतयेवू जनस जानपदसा हित-सुखं उपदहेवू
६ अनुगहिनेवु चा (।) सुखीयन-दुखीयनं जानिसंति धंमयुतेन च

(अशोक का दिल्ली स्तम्भ लेख)

७ वियोवदिसति जन जानपद (।*) किंति हिदत च पालत च
८ आलाधयेवू ति (।*) लजूका पि लघति पटिचलितवे म (।*) पुलिसानिपि मे
९ छदनानि पटिचलिसति (।*) ते पि च कानि वियोवदिसति येन म लजूका
१० चघति आलाधयितवे (*) अथा हि पज वियताये धातिये निसिजितु
११ अस्वथे होति वियत धाति चघति मे पज सुख पलिहटवे
१२ हेव ममा लजूका कटा जानपदस हित-सुखाये (।*) येन एते अभीता
१३ अस्वथ सत अविमना कमानि पवतयेवू ति एतेन मे लजूकान
१४ अ(भि)हाले व दडे वा अत-पतिये कटे (।*) इछितविये (हि) एसा-(।*) किंति
१५ वियोहाल-समता च सिय दड-समता चा (।*) अव इते पि च मे आवुति (।*)
१६ बधन-बधान मुनिसान तीलित-दडान पत-वधान तिंनि दिवसा(नि) मे
१७ योते दिंने (।*) नातिका व कानि निझपयिसति जीविताये तान
१८ नासत वा निझपयिता दान दाहंति पालतिक उपवास व कछति (।*)
१९ इछा हि मे हेव निलुधसि पि कालसि पालत आलाधयेवू ति (।*) जनस च
२० वढति विविधे धम-चलने सयमे दान-सविभागे ति (॥*)

[५ रामपुरवा का पाठ]

१ **देवानपिये पियदसि लाज** हेव आह (।*) **सडुवीसति-(व)साभिसितेन** मे इमानि पि जातानि अवध्यानि कटानि (।*) से यथ
२ सुके सालिक अलुने चकवाके हंसे नदीमुखे गेलाटे जतूक अवा-कपिलिक दुलि अनठिक-मछे वेदवेयके
३ गगा-पुपुटके सकुज-मछे कफट-सेयके पन-ससे सिमले सडके ओकपिंडे पलसते सेत-कपोते
४ गाम-कपोते सवे चतुपदे ये पटिभोग नो एति न च खादियति (।*) अजका नानि एलका च सूकली च गभिनी व
५ पायमीना व अवध्य पोतके च कानि आसमासिके (।*) वधि-कुकुटे नो कटविये (।*) तुसे सजीवे नो झापयितविये (।*)
६ दावे अनठाये व विहिसाये व नो झापयितविये (।*) जीवेन जीवे नो पुसितविये (।*) तीसु चातुमा(सी)सु तिस्य पुनमासिय
७ तिंनि दिवसानि चावुदस पनडस पटिपद धुवाये च अनु-पोसथ मछे अवध्ये नो पि विकेतविये (।*) एतानि येव

८ दिवसानि नाग-वनसि केवट-भोगसि यानि अंनानि पि जीव-निकायानि नो हंतवियानि (।*) अठमि-पखाये चावुदसाये
९ पंनडसाये तिसाये पुनावसुने तीसु चातुंमासीसु सुदिवसाये गावे नो निलखितविये (।*) अजके एडके सूकले
१ ए वापि अंने नीलखियति नो नीलखितविये (।*) तिसाये पुनावसुने चातु मासिये चातुमासि-पखाये अस्वस गोनस
११ लखने नो कटविये (।*) याव-सडुवीसति-वसाभिसितेन मे एताये अंतलिकाये पंनवीसति बंधन-मोखानि कटानि (॥*)

[६]

१ देवानंपिये पियदसि लाज हेवं आहा (।*) दुवाडस-वसाभिसितेन मे धंम लिपि लिखापित लोकस हित-सुखाये (।*) से तं अपहटा
२ तं तं धंम-वढि पापोव (।*) हेवं लोकस हित-सुखे ति पटिवेखामि अथ इयं नातिसु हेवं पत्यासंनेसु हेवं अपकठेसु किमं कानि
३ सुखं आवहामी ति तथा च विदहामि (।*) हेमेव सव-(नि)कायेसु पटिवेखामि (।*) सव-पासंडा पि म पूजित विविधाय पूजाय (।*) ए चु इयं
४ अतन पचूपगमन से मे मोख्य-मुते (।) सडुवीस(ति)-वसाभिसितेन म इयं धंम-लिपि लिखापित (॥)

[७]

१ देवानंपिय पियदसि लाजा हेवं आहा (।*) ये अतिकंतं
२ अंतलं लाजाने हुसु हेव इछिसु कथं जने
३ धंम-वढिया वढेया नो चु जने अनुलुपाया धंम-वढिया
४ वढिथा (।) एतं देवानंपिये पियदसि लाजा हेवं आहा (।) एस मे
५ हुथा (।) अतिकंतं च अंतलं हेवं इछिसु लाजाने कथं जने
६ अनुलुपाया धंम-वढिया वढेया ति नो च जने अनुलुपाया
७ धंम-वढिया वढिथा (।) से किनसु जने अनु(प)टिपजेया (।*)
८ किनसु जने अनुलुपाया धंम-वढिया वढेया ति (।) (कि)नसु कानि
९ अभ्युंनामयेहं धंम-वढिया ति (।) एतं देवानंपिये पियदसि लाजा हेवं
१ आहा (।) एस मे हुथा (।) धंम-सावनानि सावापयामि धंमानुसथिनि
११ अनुस(ा)सामि (।) एतं जने सुतु अनुपटीपजीसति अभ्युंनमिसति
१२ धंम-वढिया[1] च बाढं वढिस(ति) (।*) एताये मे अठाये धंम-सावनानि सावा-

---

१ १२ से स्तम्भ की गोलाई में खुदा है।

-पितानि धमानुसथिनि विविधानि आनपितानि य(था*) (पुलि*) (स)। पि बहुने जनसि आयता एते पलियोवदिसति पि पविथलिसति पि (।*) **लजूका** पि बहुकेसु पान-सत-सहसेसु आयता (।*) ते पि मे आनपिता हेव च हेव च पलियोवदाथ

१३ जन धम-यु(त) (।*) (देव)**नपिये पियदसि** हेव आहा (।*) एतमेव मे अनुवेखमाने धम-थभानि कटानि **धम-महामाता** कटा ध(म)(सावने*) कटे (।*) **देवानपिये पियदसि लाजा** हेव आहा (।*) मगेसु पि मे निगोहानि लोपा-पितानि छायोपगानि होसति पसु-मुनिसान अवा-वडिक्या लोपापिता (।।*) अढ(कोसि)क्यानि पि मे उदुपानानि

१४ खानापापितानि निंसि(ढ)या- च कालापिता (।*) आपानानि मे ब(हु)कानि तत तत क(ा)लापितानि पटीभोगाये पसु-मुनिसान (।*) (ल)(हुके*) (चु*) एस पटीभोगे नाम (।*) विविधाया हि सुखायनाया पुलिमेहि पि लाजीहि ममया च सुखयिते लोके (।*) इम चु धमानुपटीपती अनुपटीपजतु ति एतदथा मे

१५ एस कट(।*) **देवानपिये पियदसि** हेव आहा(।*) **धम-महामाता** पि मे ते बहुविधेसु अठेसु आनुगहिकेसु वियापटासे पवजीतान चेव गिहिथान च सव-(पास*)-डेसु पि च वियापटासे(।*)सघठसि पिमे कटे इमे वियापटा होहति ति हेमेव **बाभनेसु आ(ज)ीविकेसु** पि मे कटे

१६ इमे वियापटा होहति ति **निगठेसु** पि मे कटे इमे वियापटा होहति नानापासडेसु पि मे (क)टे इमे वियापटा होहति ति पटिविसिठ पटीविसिठ तेसु तेसु (ते) (ते)*) (**महा***)**माता** (।*) **धर्म-महामाता** चु मे एतेसु चेव विया(प)टा सवेसु च अनेसु पासडेसु (।*) **देवानपिये पियदसि लाजा** हेव आहा (।*)

१७ एते च अने च बहुका मुखा दान-विसगसि वियापटासे मम चेव **देविन** च (।*) सवसि च मे ओलोधनसि ते बहुविधेन आ(का)लेन तानि तानि तुठा-यतन(ा)नि पटी हिद चेव दिसासु च (।*) **दालकानं** पि च मे कटे अनान च **देवि-कुमालान** इमे दान-विसगेसु वियापटा होहति ति

१८ धमापदानठाये धंमानुपटिपतिये (।*) एस हि धमापदाने धम-पटीपति च या इय दया दाने सचे सोचवे मदवे साध(वे) च लोकस हेव वढिसति ति (।*) **देवानांपिये** (**पियदसि***) **लाजा** हेव आहा (।*) यानि हि (क)ा निचि ममिया सावयानि कटानि त लोके अनूपटीपने त च अनुविधियति (।*) तेन वढिता च

१९ बहिर्संति च मातापितिसु सुसुसाया गुलसु सुसुसाया वयो-महालकानं अनुपटीपतिया बामन-समनसु कपन-वलाकेसु आव दास-भटकेसु संपटीपतिया (।*) हेवामपि(प*) (पि*) (य)बसि साजा हेवं आहा (।*) मुनिसानं चु या इयं धंम-वढि वढिता दुवेहि येव आकालेहि धंम-नियमेन च निझतिया च (।*)

२० तत चु लहु से धंम-नियम निझतिया व भुय (।) धंम नियमे चु खो एस मे इयं कट इमानि च इमानि जातानि अवधियानि (।*) अंनानि पि चु बहु-(कानि*) धंम-नियमानि यानि मे कटानि (।*) निझतिया व चु भुये मुनिसानं धंम-वढि वढिता अविहिंसाय भूतानं

२१ अनालंभाय पानानं (।*) से एताये अ(थ)ाय इयं कटे पुता-पपोतिके चंदम सुलियिके होतु ति तथा च अनुपटीपजंतु ति (।) हेवं हि अनुपटीपजंतं हि(द)त (पाल)ते आलधे होति(।) सतविसति वसाभिसितेन मे इयं धंमलिबि लिखापापिता ति(।*) एतं देवानंपिये आहा(।*) इयं

२२ धंम-लिबि अत अथि सिला थंभानि वा सिला-फलकानि वा तत कटविया एन एस चिल-ठितिके सिया (।।)

(४) गौण स्तम्भ लेख

रानी का स्तम्भ लेख

१ देवानंपियसा वचनेना सवत महमता

२ वतविया (।*) ए हेता दुतियाये देवीये दाने

३ अंबा-वडिका वा आलमे व दान-(गहे) (व) (ए) (वा) (पि) (अ)ने

४ कीछि गनीयति ताये देविये से (।)नानि (हे)वं (न) (न) (वतिये)

५ दुतीयाये देविये ति तीवल-मातु कालुवाकिये (।।)

कौशाम्बी स्तम्भ लेख

१ (देवानं) (पि)ये आनपयति (।*) कोसंबियं महाम(त)त

२ ---(स)म(गे) (कटे) व( )नसि नो लहिये

३ -- (संघं) (भा)खति भि(खु) व(।) भि(खु)नि वा (ति) (पि)वा

४ (ओ*)दाता(।)नि दुसानि (स)नंधापयितु अ(नावा)स(धि) (वा)
व(।)सयि(ये) (।।*)

साची स्तम्भ लेख

१

२ (य)ा भे(त) (।*) (स*)(घे) (स*)मगे कटे

३ (भि*)खून( ) च भि(खुनी)न चा ति (पु)त- प-

४ (पो*)तिके च(द)न-(सू)रि(यि)के(।*) ये सघ

५ भ(ा)खति- भिखु वा भिखुनि वा ओदाता-

६ नि दुस(ानि) सन(धापयि)तु अना(वा)-

७ ससि वा(सा)पेतवि(ये) (।*) इछा हि मे कि-

८ ति सघे समगे- चिल-ायतीके सिया ति (॥*)

सारनाथ स्तम्भ लेख

१ **देवा(नपिये–)**

२ ए ल

३ **पाट** ये- केन पि **सघे** भेतवे(।*)
ए चु खो

४ (भिखू) (वा) (भिखु)नि वा **सघ** भ(ाखति) (से) ओदातानि दुस(ानि) (स) - नधापयिया आनावाससि

५ आवासयिये (।*) हेव इय सासने **भिखु-सघसि** च **भिखुनि-सघसि** च विनपयितविये (।*)

६ हेव **देवानपिये** आहा (।*) हेदिसा च इका लिपी तुफाकतिक हुवा ति ससलनसि निखिता (।*)

७ इक च लिपि हेदिसमेव उपासकानतिक निखिपाथ (।*) ते पि च उपासका अनु-पोसय यावु

८ एतमेव सासन विस्वसयितवे(।*) अनपोसथ च धुवाये इकिके महामाते पोसथाये

९ याति एतमेव सासन विस्वसयितवे आजानितवे च(।*) आवते चतुफाक आहाले

१० सवत विवासयाथ तुफे एतेन वियजनेन(।*) हेमेव सवेसु कोट-विषवेसु एतेन

११ वियजनेन विवासापयाथा (॥*)

(६) स्मारक स्तम्भ लेख

सम्मनदेई स्तम्भ लेख

१ देवानंपियेन पियदसिन लाजिन वीसति-वसाभिसितेन
२ अतन आगाच महीयिते हिद बुधे जाते सक्य-मुनी ति (।)
३ सिला-विगडभीचा कालापित सिला-थभे च उसपापिते (।*)
४ हिद भगवं जाते ति लुमिनि-गामे उबलिके कटे
५ अठ-भागिये च (॥*)

(७) गुहा लेख

बराबर

I

१ लाजिना पियदसिना दुवाडस-वसा (भिसितेना)
२ (इय) (निगोहु)-कुभा दि (ना) (आजीविकेहि) (॥*)

II

१ लाजिना पियदसिना दुवा-
२ डस-वसाभिसितेना इय
३ कुभा खलतिक-पवतसि
४ दिना (आजीवि)केहि (॥*)

III

१ लाजा पियदसी एकुनवी-
२ सति-वसा (भि) सिते (।*) ज (लघो)
३ (सागम) थात (मे) इ (य) (कुभा)
४ सुपि (ये) ख (खलतिकपवतसि*) (दि)
५ ना (॥*)

नागार्जुनी गुहा लेख

I

१ वहियका (।) कुभा दशलथेन देवानंपियेना
२ आनंतलियं अभिसितेना (आजीविकेहि)

३ भदतेहि- वाष-निषिदियाये निषिठे
४ आ-चदम-षूलिय (।।*)

II

१ गोपिका कुभा दषलथेना देवा(न) पि-
२ येना आनतलिय अभिषितेना आजी-
३ विके(हि) (भद)तेहि वाष-निसिदियाये
४ निसिठा आ-चदम-षूलिय (।।*)

I I

१ वडथिका कुभा दषलथेना देवान
२ पियेना आनतलिय अ(भि)षितेना (आ)-
३ (जी)विके हि भदतेहि वा(ष-निषि)दियाये
४ निषिठा आ-चदम-षूलिय (।।*)

(८) बैराट-शिला लेख

१ पि(प्रि)यदसि लाजा मागधे सघ अभिवादे(तू)न आहा अप(ा)बाधत च फासुविहालत चा (।*)
२ विदिते वे भते आवतके हमा बुधसि धमसि सघमी ति गालवे च पं(प्र)-सादे च(।*) ए केचि भते
३ भगवता बुधे(न)भामिते सवे से सुभासिते वा(।*)ए चुखो भते हमियाये दिसेया हेव सघमे
४ चिल-(ठि)तीके होसती ति अलहामि हक त व(ा)तवे (।*) इमानि भते (ध)म-पलियायानि विनय-समुकसे
५ अलिय-वसाणि अनागत-भयानि मुनि-गाथा मोनेय-सूते उपतिस-पं(प्र)सिने ए चा लाघुलो-
६ वादे मुसा-वाद अधिगिच्य भगवता बुधेन भासिते एतानि भते धमपलिया-यानि इछामि
७ किंति वहुके भिखु(प)ाये चा भिखुनिये चा अभिखिन सु(ने)यु चा उपधालयेयू चा (।*) -
८ हेवमेवा उपासका चा उपासिका चा (।*) एतेनि भते इम लिखा(प)यामि अभिपेत मे जानतू ति (।।*)

शुङ्ग कालीन तथा आंध्र वंशी लेख

भारहुत वेदिका स्तम्भ लेख

१ सुगनं रजे रञो गागी-पुतस विसदेवस
२ पौतेण गोति-पुतस आगरजुस पुतेण
३ वाछि-पुतेन धनभूतिन कारितं तोरनां
४ सिला-कंमंतो च उपंन (॥*)

बेसनगर का गरुड़स्तम्भ लेख

[१]

१ (दे)वदेवस वा(सुदे*)वस गरुडध्वजे अयं
२ कारिते इ(अ) हेलिओदोरेण भाग-
३ वतेन दियस पुत्रेण तखसिलाकेन
४ योन-दूतेन (आ)गतेन महाराजस
५ अंतलिकितस उप(*)ता सकासं रञो
६ (का)सीपु(त्र)स (भ)ागभद्रस त्रातारस
७ वसेन च(तु)दसेन राजेन वधमानस (॥*)

[२]

१ त्रिनि अमुत पदानि (इअ*) (सु) अनुठितानि
२ नेयंति (स्वगं) दम चाग अप्रमाद (॥*)

घोसुंडी शिला लेख

१ (कारितो अयं राज्ञा भागव*)(ते)न गाजायनेन पाराशरी-पुत्रेण स-
२ (र्वतातेन अश्वमेध-या*)जिना भगव(द्*)भ्यां संकर्षण-वासुदेवाभ्यां
३ (अनिहताभ्यां सर्वेश्वरा*)भ्यां पूजा-शिला-प्राकारो नारायण-वाटका
(॥*)

(बेसनगर गरुड़ स्तम्भ लेख)

धनदेव का अयोध्या शिला लेख

१ कोसलाधिपेन द्विरश्वमेध-याजिन सेनापते पुष्यमित्रस्य षष्ठेन कौशिकी पुत्रेण धन .

२ धमराजा पितु फल्गुदेवस्य केतन कारित (॥*)

मौखरि वंशी वडवा यूप लेख

[१]

१ सिद्ध (*।) क्रितेहि २०० [+*]१० [+*] ५ फ(ा-)ल्गुनशुल्कस्य पञ्चे दि० श्रि-महासेनापते मोखरे वल-पुत्रस्य वलवर्द्धनस्य यूप (।*) त्रिराग्र-समितस्य दक्षिण्य गवा सहस्र (१०००) (।*)

[२]

१ सिद्ध (।*) क्रितेहि २०० [+*]१० [+*]५ फ(ा)ल्गुण-शुक्लस्य पञ्चे दि० श्री-महासेनापते मोखरे वल-पुत्रस्य सोमदेवस्य यूप (*।) त्रिराग्र-समितस्य दक्षिण्य गव(ा)सह(स्र) (१०००)-(।*)

[३]

१ क्रितेहि २००[+*]१०[+*]५ फ(*ा)ल्गुण-शुक्लस्य पञ्चे (ि)-द० श्रीमहा-सेनापते(*) (मो)खरे-

२ वल-पुत्रस्य वलसिंहास्य यूप (*।) त्रिराग्र-समितस्य दक्षिण्य गवा सहस्रं (१०००) (।*)

मिलिन्द कालीन लेख

(शरीर के भस्मपात्र पर उत्कीर्ण)

[१]

मिनेंद्रस महरजस कटिअस दिवस ४[+*] ४[+*] ४[+*]१ [+*]१ प्र(ण-(स)मे(द) (शरीर)

A

(प्रति*) (थवि)त (।*)

A

प्रण-समे(द) (शरिर*) (भगव*)(तो) शकमुनिस (।*)

B

सियकमिस अप्रय-रजस (।*)

[२]

C

१ सिवम (मित्र)स   २ पठे मशियमिवे

D (पाम के भीतर)

१ इम घरिर पसग मुड़यो न सकरे अमित (।*) स घरिअमि अर्थे नो अभो न पिजोयकेमि पिभि सिमयमि (।*)

२ तस ये पमे अपोमुम (।*) बयवे पंचमय ४[+ *]१ वेमयास मसात सिवत पंचमिमय इमो

३ पशियमिमे सिवमयमित्रेन अमसरजेन समसतु सक्रिमुमित सर्भ-स( )मुमस धरिर (।*)

E

सिहिसेनेन अनकसेन लिखिमे (।*)

खारवेल का हाथी गुम्फा लेख

१ नमो अरहंतानं (।*) नमो सव-सिधानं (।।*) ऐरेन महाराजेन महामेघवाहनेन चेति-राज-व( )स-वधनेन पसथ-सुभ-लखनेन चतुरंत-लुठ-(ण)-गुण-उपितेन कलिंगाधिपतिना सिरिखारवेलेन

२ (पं)दरस-वसानि सीरि (कडार)-सरीर-वता कीडिता कुमार-कीडिका (।।*) ततो लेखरूप-गणना-ववहार-विधि-विसारदेन सव-विजावदातेन नव-वसानि योवरज (प)सा-सितं (।।)संपुंन-चतुवीसति-वसो तदानि वधमानसेसयो-वेनाभिविजयो ततिये

३ कलिंग-राज-वसे पुरिस-युग महाराजाभिसेचनं पापुनाति (।।*) अभिसितमतो च पधमे वसे वात-विहत-गोपुर-पाकार-निवेसन पटिसंखारयति कलिंग-नगरि-खिबी(र) (।*) सितल-तडाग-पाडियो च बंधापयति सवुयान-प(टि)संथपन च

४ कारयति पनति(सि?)साहि सत-सहसेहि पकतियो च रंजयति (।।*) दुतिये च वसे अचितयिता सातकंनि पछिम-दिसं हय-गज-नर-रध-बहुलं दंडं पठापयति (।*) कन्हबेंना-गताय च सेनाय वितासिति असिकनगरं (।।*) ततिये पुन वसे

५ गधव-वेद-बुधो दप-नत-गीत-वादित-सदसनाहि उसव-समाज-कारापनाहि च कीडापयति नगरिं (।।*) तथा **चवुथे वसे विजाधराधिवास** अहतपुव **कलिंग** (?-) पुव-राज-(निवेसित) वितथ-म(कु)ट च निखित-छत(?)-

६ भिंगारे(हि)त-रतन-सपतेये सव-**रठिक-भोजके** पादे वदापयति (।।*) **पचमे** च दानी **वसे नद-राज-ति-वस-सत**-ओ(घा)टित **तनसुलिय-वाटा** पणाडि नगर पवेम(य)ति सो (।*) (अ*)भिसितो च(छठे वसे*)राजसेय सदसयतो सवकर-वण-

७ अनुगह-अनेकानि सत-सहसानि विसजति पोर-जानपद (।।*) **सतम** च **वस** (पसा)सतो वजिरघर स मतुक पद (कु) प (।*) **अठमे च वसे** महता सेन(ा) **गोरधगिरिं**

८ घातापयिता **राजगह** उपपीडपयति (।*) एतिन(ा) च कमपदान-स( )नादेन सेन-वाहने विपमुंचितु **मधुर** अपयातो **यवनरा(ज)** (डिमित?) यछति पलव

९ कपरुखे हय-गज-रथ-सह यति सव-घरावास सव-गहण च कारयितु ब्रह्मणान ज(य)-परिहार ददाति(।*) अरहत **(नवमे च वसे*)**

१० **महाविजय-पासाद** कारयति अठतिसाय सत-सहसेहि (।।*) **दसमे च वसे** दड-सधी-सा(ममयो)(?) **भरधवस-पठा**(?)न मह(ि) जयन(?) कारापयति (।।*) **(एकादसमे च वसे*)** प(ा) यातान च म (नि)-रतनानि उपलभते(?)

११ पुव राज-निवेसित **पीथुड** गदभ-नगलेन कासयति (।*) जन(प)द-भावन च तेरस-वस-सत-कत भि( )दति **त्रमिर-दह**(?)-सघात (।*) **बारसमे च वसे** (सह)सेहि वितासयति **उतरापध**-राजानो

१२ **म(ा)गधान** च विपुल भय जनेतो हथस **गगाय** पाययति (।*) **म(ग)ध( )** च राजान **बहसतिमित** पादे वदापयति (।*) **नदराज**-नीत च **का(लि)**ग-जिन सनिवेस **अग-मगध**-वसु च नयति(।।*)

१३ (क)तु( ) जठर-(लखिल-(गोपु)राणि सिहराणि निवेसयति सत-विसिकन (प)रि-हारेहि(।*) अभुतमछरिय च हथी-निवा(स) परिहर हय-हथि-रतन-(मानिक) **पडराजा** (मु)त-मनि-रतनानि आहरापयति इध सत-(सहसानि)

१४ सिनो वसीकरोति (।*) **तेरसमे च वसे** सुपवत-विजय-चके **कुमारीपवते** अरहते[हि*] पखिन-स(मि)तेहि **कायनिसीदियाय**

यापूजावकेहि राजभितिनि चिन-वतानि वास(ा)(सि)तानि पूजानुरत-उवा(सग-खा)रवेलसिरिना जीवदेह(सयि)का परिखाता (।।*)

१५ ......सकत-समण सुविहितान च सव-दिसानं ञा(नि)न(?) तपसि-इ(सि)न संघियन अरहतनिसीदिया-समीपे पाभारे वराकार-समुथापिताहि अनेकयोजना-हिताहि ... सिलाहि

१६ पतरे च वेडुरिय-गभे थमे पतिठापयति पानतरीय-सत सहसेहि (।*) मु(रि)य-काल-वोछिनं च चोय(ठि)-अंग संतिक( ) तुरियं उपादयति (।*) खेम राजा स वढ-राजा स भिखु-राजा धम राजा पसं(तो) सुनं (तो) अनुभव(तो) कलानानि

१७ ... गुण-विसेस-कुसलो सव-पासंड-पूजको सव-दे(वाय)तन-सकारकारको अपतिहत-चक-वाहनबलो च करो गुतचको पवतचको राजसिवसु-कुल-विनिश्रितो महाविजयो राजा खारवेलसिरि (।।*)

खारवेली महिषी का मचपुरी लेख

१ अरहत पसादाय कलिंगा(न) (सम)नान लेन कारितं (।*) राजिनो ललाक(स)

२ हथि(सि)हस पपोतस धु(तु)ना(ना?) कलिंग-च(कवतिनो सिरि खार*)वेलस

३ अगमहिसि(ना?)(कारित) (।।*)

सातवाहन वंशी लेख

नासिक-गुहा लेख

१ सादवाहन-कु(ले) कन्हे राजिनि नासिककेन
२ समणेन महामातेण लेण( ) कारित( ) (॥*)

नानाघाट गुहा चित्र लेख

[१]

१ राया सिमुक-सातवाह-
२ नो सिरिमातो (॥*)

[२]

१ देवि-नायनिकाय रञो
२ च सिरि-सातकनिनो (॥*)

[३]

१ कुमारो भा-
२ य (॥*)

[४]

महारठि त्रनकयिरो (॥*)

[५]

कुमरो हकुसिरि (॥*)

[६]

कुमारो सातवाहनो (॥*)

नागनिका का नानाघाट गुहालेख

१ (सिंध।*) नो धमस नमो ईदस नमो सकसन-वासुदेवान चद-सूरान (महि)मा(व)तान चतु न च लोकपालान यम-वरुन-कुवेर-वासवान नमो (॥*) कुमारवरस ख(द)सिरिस र(ञो)
२ (व)ीरस थेरस अ-प्रतिहत-चकस दखि(नप*)ठ-(पतिनो*)

१ (मा) ....(बाला*)य महारठिनो अंगिय-कुल-वधनस सगर-गिरिवर
वल(या)य पथविय पथम-वीरस वस...य च अलह (मंठ?).... सम्भु
...महतो मह--

४ सिरिस. मारिया देवस पुतस्स वरदस कामवस धनवस (वेद)सिरि
मातु ससिनो सिरिमतस च मातु(य) सीम.......

५ वरिय... त (न)गवर-वमिनिय मासोपवासिनिय गह-तापसाय चरित
ब्रह्मचरिमाय दिख-वत-यंञ-सुडाय यञा हुता धूपन-सुगधा य निय--

६ रायस (य*)अहि मिठ(।*)धनो । मगाधय यञो द(खि)ना दिना
गावो बारस १ [+*]२ असो च १(।*)अनारमनियो यञो दखिना
धेनु.........

७ ...... दखिनायो दिना गावा १ [+*]७ हथी १ ......

८ ...... म ससतरय (व)सकठि २० [+*] ८ [+*]९ कुमियो
रुपामयियो १ [+*]७ मि

९ रिको यंञो दखिनाया दिना गावो १ [+*] १ ० असा
१ पस(पको*)...

१ १ [+*]२ ममवगो १ दखिना काहापना २ [+*]
४ [+*]४ पमपको कहापना ६ ⊢ राज(सुयो यंञो*)
सकटं द्वितीय अष्ट

११ पंञगिरि-तम्र-पयत सकटा १ असो १ अस-रथो १ गावीनं १ (।*)
असमेधो यंञो बितियो (वि*)ठो दखिनायो (दि)ना असो रुपाल-
(का)रो १ सुवन नि १ [+*]२ दखिना दिना काहापना १
[+*] ४ गामा १ (हठि)... (दखि)ना दि(ना)

१२ गावो— सकटं धमगिरितम-...पयुतं (।*) *भेवायो यंञो... १
[+*] ७ (मनु?) (*)ो(*)भाव सतरस

१३ १ [+*]० अप...न मय पमरको दि(नो)....(दखि)
ना दिना मु पीनि १ [+*]२ व(?)मो रुप(ाल)कारो १
दखिना काहार(ना)१ ...२

१४ गावा २ (।*) (अपम)-वतरतो यंञो यि(ठा) (दखिना)
(दि)ना (गावो) १ । गर्मतिरतो यञो यिठो (दखिना)...
पमपको पटा १ । अवामयनं यञो यिठो (दखिना दिना) गावो १
[+*]१ । गावा १ [+*] १ (?)पमपका काहापना...
पटा १ (।*) अनुयामो यञो

१५ (ग)वामयनं य(ञो) दखिना दिना गावो १ [+*] १ [1]

अगिरस(ा)-**मयन** यञो यिठो (द)खिना गावो १००० [+*]१००। त (दखिना दि)ना गावो १०००[+*]१००। **सतातिरत** यञो १०० (।*) (य)ञो दखिना ग(ा)(वो) १००० [+*] १०० (।*)**अगिरस**(**ति**)**रात्र**. यञो यिठो (दखि)ना गा(वो) (।*)

१६ (गा)वो १०००[+*] २(।*) **छन्दोमप**(**व**)**मा**(**नतिरात्र**) दखिना गावो १०००। **अ**(**गि**)**र**(**सतिर**)**तो** य(ञो) (यि)ठो द(खिना) **रतो** यिठो यञो दखिना दिना (।*) **तो** यञो यिठो दखिना (।*) यञो यिठो दखिना दिना गावो १०००।

१७ न स सय दखिना दिना गावो त (।*)(**अ**)**गि**(**रसा**) **मयन** छवस (दखि)ना दिन गाव १००० (।*) (दखिना) दिना गावो १०००। **तेरस** अ (।*)

१८ (।*)**तेरसरतो** स छ (अ)ग-दखिना दिना गावो (।*) **दसरतो** म (दि)ना गावो १००००। उ १०००० । द

१९ (य)ञो दखिना दि(ना)

२० (द)खिना दिना

गोतमी पुत्र शातपर्णी का नासिक गुहालेख

(तिथि १८ वर्ष)

१ सि(ध) (॥*) सेनाये (वे)जय(त)ये विजय-खधावारा **(गो)वधनस बेनाकटक**-स्वामि **गोतमि-पुतो** सिरि-**सदकणि**

२ आनपयति **गोवधने** अमच (विराहु)पालित(।*) गामे **अपर-कखडि** (**ये**) (य) खेत अजकालकिय **उसभदातेन** भूत निवतन

३ सतानि वे २०० एत अम्ह-खेत निवतण-सतानि बे २०० इमेस पवजितान **तेकिरसिण** वितराम (।*) एतस चस खेतस परिहार

४ वितराम अपावेस अनोमस अलोण-खा(दक) अरठसविनयिक सवजा-तपारिहारिक च (।*) ए(ते)हि न परिहारेहि परिह (र) हि (।*)

५ एते चस खेत-परिहार(रे) च एय निवधापेहि (।*) अवियेन आणत (।*) अमचेन सिवगुतेन छतो (।*) महासमियेहि उपरखितो (।*)

६ दता पटिका **सवछरे** १०(*।)८वास-पखे २दिवसे १(।*)तापसेन कटा(॥*)

गोतमी पुत्र शातकर्णी का नासिक गुहालेख

(तिथि २४ वर्ष)

१ सिद्ध (॥*) **गोवधने** अम(च)स सामकस (दे)यो (रा)जाणितो(।*)

२ रमा गोतमिपुतस सातकणि (स) म(ह)देवीय च जीवसुताय राजमातुय वचनेन गोवधने (अम*) चो सामको अरोग वतव (।*) ततो एव च

३ वतवो (।*) एत अम्हेहि पवते तिरण्हुम्हि अम्ह-धमदान लेण पतिवस-तान पवजितान भिखुन गा(म) कखडीसु पुव खेत दत (।*) त च खत

४ (न) कसते (।) सो च गामो न वसति (।*) एवं सति य दानि एथ नगर-सीमे राजक खेत अम्ह-सतकं ततो एतस पवजितान भिखुन तेरण्हुकान दद(म)

५ खेतस निवतण-सत १ (।*) तस च खेतस परिहार वितराम अपावेस अनोमस अ-लोण-खादक अ रठ-सविनयिक सव-जात-पारिहारिक च (।*)

६ एतेहि न परिहारेहि परिहरेठ (।) एत चस खेतपरीहा(रे) च एथ निबधापेथ (।*) अवियेन आणत (।*) पतिहार(र*)-रखिय लोटाय छतो लेखा (।*) सवछरे २ [+*]४

७ वासान पखे ४ दिवसे पचमे ५ (।*) पुजिविना कटा (।*) निबधो-निबधो सवछरे २ [+*]४ गिम्हान पखे २ दिवसे १ (॥*)

पुलमावी का कार्ले गुहा-लेख

(तिथि ७ वर्ष)

१ रञो वासिठिपुतस सामि-सिरि (पुलमायिस*) सवछरे सतमे ७ गिम्ह-पख पचमे ५

२ दिवसे पथमे १ एताय पुवाय ओखलकियानं महार(थि)स कोसिकि-पुतस मित-देवस पुतेन

३ (म)हारथिना वासिठिपुतेन सोमदेवेन गामो दतो वलुरक-संघस वलुरक-लेनस स-करुकरो स-देय-मेयो (॥*)

पुलमावी का नासिक गुहालेख

(तिथि १९ वर्ष)

१ सिधं (॥*) रञो वासिठीपुतस सिरि-पुलुमायिस सवछरे एकुनवीसे १ [+*]९ गीम्हानं पखे बितीये २ दिवसे तेरसे १ [+*]३ राजरञो गोतमी-पुतस हिमव(त)-मेरु

२ मंदर-पवत-सम-सारस असिक-असक-मुळक-सुरठ-कुकुरापरंत-अनुप-विदभ आकरावंति-राजस विझछवत-पारिचात-सय्ह(ह्य)-कण्हगिरि-मचसिरि टन-मलय-महिंद

३ सेटगिरि-चकोर-पवत-पतिस सवराज(लोक)म( )डल-पतिगहीत-सासनस दिवसकर-(क)र-विबोवित-कमलविमल-सदिस-वदनस तिसमुद-तोय-पीत-वाहनस पतिपू( )ण-चद-मडल-ससिरीक-

४ पियदसनस वर-वारण-विकम-चारु-विकमस भुजगपति भोग-पीन-वाट-विपुल-दीघ-सुद(र*)-भुजस अभयोदकदान-किलिन-निभय-करस अविपन-मातु-सुसूसाकस सुविभत-तिवग-देस-कालस

५ पोरजन-निविसेस-सम-सुख-दुखस खतिय-दप-मान-मदनस सक-यवन-पल्हव-निसूदनस धमोपजित-कर-विनियोग-करस कितापराधे पि सतु-जने अ-पाणहिसा-रुचिस दिजावर-कुटूब-विवध-

६ नस खखरात-वस-निरवसेस-करस सातवाहनकुल-यस-पतिथापन-करस सव-मडला-भिवादित-च(र*)णस विनिवतित-चातूवण-सकरस अनेक-समरावजित-सतु-सघस अपराजित-विजयपताक-सतुजन-दुपधसनीय-

७ पुरवरस कुल-पुरिस-परपरागत-विपुल-राज-सदस आगमान (नि)लयस सपुरिसान असयस सिरी(ये) अधिठानस उपचारान पभवस एककुसस एक-धनुधरस एक-सूरस एक-बम्हणस राम-

८ केसवाजुन-भीमसेन-तुल-परकमस छण-घनुसव-समाज-कारकस नाभाग-नहुस-जनमेजय-सकर-य(या)ति-रामावरीस-सम-तेजस अपरिमितमखयमचितभुत पवन-गरुल-सिध-यख-राखस-विजाधर-भूत-गधव-चारण-

९ चद-दिवाकर-नखत-गह-विचिण-समरसिरसि जित-रिपु-सघस नागवर-खधा गगनतल-मभिविगाढस कुल-विपु(लसि)रि-करस सिरि-**सातकणिस** मातुय महादेवीय **गोतमीय बलसिरीय** सचवचन-दान-खमाहिसा-निरताय तप-दम-निय-

१० मोपवास-तपराय राजरिसिवधु-सदमखिलमनुविधीयमानाय कारित देयधम (केलासपवत*)-सिखर-सदिसे (ति)रण्हु-पवत-सिखरे विम-(ान*)वर-निविसेस-महिढीक लेण(।*) एत च लेण महादेवी महाराज-माता महाराज-(पि)तामही ददाति निकायस **भदावनीयान** भिखु-सघस (।*)

११ एतस च लेण(स) चितण-निमित महादेवीय अयकाय सेवकामो पिय-कामो च ण(ता) * * * * (वखिणा*)**पथेसरो** पितु-पतियो धमसेतुस (ददा)ति गाम **तिरण्हु**-पवतस अपर-दखिण-पसे **पिसाजिपदक** सव जात-भोग-निरठि (।।*)

पुलभावी का नासिक गुहा लेख

(तिथि २२ वर्ष)

१ सिद्धम् । **नवनर**-स्वामी **वासिठी-पुतो** सिरि-**पुलुमवि** (आ)नपयति **गोवधने** आमच

२ सिमतविक य म(म्हे हि) सव १ [+*]९ गि प २ दिव १ [+*] १ वनकम-समनहि मो एप (पवठे) तिर(ण्हुम्हि*) म म(म)हितुस(के)वस पटिसंधरणे (दठ) मवय(नीवि*)-हेतु एप मोवमनाहारे वसिम-मने गामो सुविसना भिखुहि देवि-लेण-वासीहि निकामेन मवायनियहि (प)तिगय दता (।*) एतस वान-गामस सुविसन(स) परिघटके एम मोवकन(हारे)पुब-मन

३ गाम समतिपव दवाम (।*) एत त मह-महरकन वोदेन ममसेतुस लेणस पटिसंधरणे मवय-निवि-हेतु गाम सामसिम(स) (भिखुहि देवि)-लेण-(वासीहि*) (भिका)पम मपामनियहि पवि(म)मह (मा)मप (पे)हि (।*) एतस च गामस सामति-(पवस भिखुहस-परिहार)

४ वितराम मपा(वे)स ममोमस म(को)पसारव मरठसविनविक सवजात-पारिहारिक च (।*) एतेहि न परिहारेहि परिहरेहि (।*) एत च माम-समतिपवन-म(रि)हारे च एव निबधापेहि सु(विसन) पामस च (।*) सुविसना (स)- विनिव(च*)कारेहि मवता (।*) महासेनापतिना मेघुनव .... मा छतो (।*) वटि(का) ...केहि तो (।*) दता पटिका सव २२ गि पख * दिव ७(।*) * तवविना कटा (।*) पोवबन-मावपाम पम(सुकाये) विराहुपालेन स्वामि-भपन मत (।*) मम भमत-सपति-पतपस विनमरस वुमस (॥*)

पुलमावी का कार्ले गुहा लेख

(तिथि २४ वर्ष)

१ सिध (।*) रञो वासिठिपुतस सिरि-पुलुमाविस सवछरे चतुविसे २ [+*] ४ हेमंताण पख ततिये ३ दिवसे बि

२ तिय २ उपासकस हरफरणस सेतफरण-पुतस्य सोवसकस्य अबुलामाय वथवस्य इम देयधम मडपो

३ नव-गभ माहासंघियानं परिगहो सवे चातुदिसे दिन मातापितुनं पुजा-(य*) सव-सतानं हित-सुख-स्वतये (।) एक(वि)से स्

४ वछरे निठितो सहेत च मे पुन बुधरखितेन मातर चस्य वि उपासिकाय (।*) बुधरखितस मातु देयधंम पिठो अमो (॥*)

यज्ञ शातकर्णी का नासिक गुहा-लेख

(तिथि ७ वर्ष)

१ सिधं (।*) रञो गोतमिपुतस सामि-सिरि-यञ-सातकणिस संवछरे सातमे ७ हेमताण पखे ततिमे ३

दिवसे पयमे कोसिकस महासे(णा)पतिस (भ)वगोपम भरिजाय माहसेणापतिणिय वासुय लेण

वोपकि-यति-सुजमाने अपयवमित-समाने वहुकाणि वरिमाणि उकुते पयवमाण नितो चातुदि-

४ सस च भिखु-सवम आवमो दतो ति ॥

इच्छाकुवंशी वीर पुरुषदत्त

का नगार्जुनी कोडा लेख

[१]

१ सिध (॥*) नमो भगवतो देवराज-सकतस सुपवुध-बाधिनो सवञुनो
२ सव-सतानुकपकस जित-राग-दोस-मोह-विपमुतस महागणि-वसभ-
३ (ग)धहथिस सम-स(बुध)स धातुवर-परिगहितस (।*) महाचेतिये महाराजस
४ विरूपखपति-महासेन-परिगहितस हिरण कोटि-गोसतसहस हलस-
५ तसह(स)-दायिस सवयेसु अपतिहतसकपस वासिठिपुतस इस्वाकुस
६ सिरि-चातमूलस सोदरा भगिनि रञो माढरीपुतस सिरि-विरपुरिसदतस
७ पितुछा महासेनापतिस महातलवरस वासिठी-पुतस पूकीयान कदसिरि (स)
८ भरिया समण-बमण-कवण-वनिजक-दीनानुगह-वेलामिक-दान-पटिभागवो-
९ छिन-धार-पदायिनि सव-साधु-वछला महादानपतिनि महातलवरि खदसागरनक माता
१० च(T)तिसिरि अपनो उभयकुलस अतिछितमनागतवटमानकान परिनामेतुन
११ उभय-लोक-हित-सुखावहथनाय च अतनो च निवाण-सपति-सपादके
१२ सव-लोक-हित-सुखावहथनाय च इम खभ पतिथपित ति (।*)
१३ रञो सिरि-वीरपुरिसदतस सव ६ वा प ६ दि १० (॥*)

[२]

१ सिध (॥*) नमो भगवतो देवराज-सकतस सुपबुध-बोधिनो सवञुनो सवसत(ानु*)
२ कपकस जित-राग-दोस-मोह-विपमुतस महागणि-वसभ-गधहथिस
३ सम-सबुधस धातुवर-परिगहितस (।*) महाचेतिये उजनिका-महार-बलिका
४ महादेवि रुद्रधरभटरिका इम सेल-खभ अपनो हित-सुख-निवाणथनाय पतिठपित (।*)
५ महातलवरिहि च पूकियान चातिसिरिणिकाहि इमस महाविहारस महाचेतिय

६ समुपपियमाने महातसवरीय उभयिया बिमारि-मासका सतरि-सतं १
[+*]७ वंमो च(।*)

७ रमो सिरि बिरपुरिसदतस संव ६ वाप ६ दिव १ (॥*)

[१]

१ सिधं (॥*) ममो भगवतो देवराज-सकतस संम-संम-संबुधस धातुवर
२ परिगहितस (।*) महाचेतिये महारजस विरूपखपति-महासेन-परिगहितस
३ अगिहोतागिठोमिठोम-वाजपेयासमेध-याजिस हिरणकोटि-गोसत-
४ सहस-हलसतसहस-पदायिस सबथेसु अपतिहत-संकपस
५ वासिठी-पुतस इखाकुस सिरि-चातमूलस सोदराय भगिनिय हम-
६ सिरिणिकाय बालिका रञो सिरि-विरपुरिसदतस ममा महादेवि बपिसिरिणिका
७ अपनो मातरं हंमसिरिणिक परिनमतुन अतनो च निवान-संपति-संपादके
८ इमं सेलथंमं पतिठपितं (।*) अचरि(या)नं अपरमहाविनसेलियानं
सुपरिगहित(*)
९ इमं महाचेतिय-नवकमं (।*) पंनगाम-बथवानं दीघ-मझिम-पद-म (ा)तुक-
देस(क-वा*)-चकानं
१ अ(च*)रयान अयिर-हघान अंतेवासिकेन दीघ-म(झिम*)-निकय- धरेन
भदंतानं-देन
११ निठपित( ) इम( ) नवकम( ) महाचेतिय खंमा च ठपिता ति(।*)
रञो सरि-बिरिपुरिसदतस
१२ संव ६ वा प ६ दिव १ (॥*)

वीर पुरुषदत्त का नागार्जुनी कोंडा लेख

(तिथि १४ वर्ष)

१ सिधं (॥*) नमो भगवतो इखाकराज-पवररिसिसतपभव-वस-संभवस देव
मनुस-सब-सत-हित-सुख-मग-देसिकस जित-काम-कोध-भय-हरिस- तरिस
मोह-दोसस दपित-मार-बल-दप-मान-पसमन-करस दसबल-महबलस अठंग
मग-धमचक पवतकस चक-लखण-सुकुमार-सुजात-चरणस तरुण
दिवसकर-पभस सरद-ससि-सोम-दरिसनस सव-लोक-चित-महितस बुधस
(।*) रञो मा(ढ)रिपु(त*)(स) (संवछरं*) चोदं १ [+*]४
हेमंत-पख छ' ६ दिवसं तेरं १ [+*] ३(।*) (म*)(हे)त
(रा)जाचरीयानं कस्मीर-गंधार-चीन-चिलात-तोसलि-अवरंत-वंग-वनवासी-
(यवन) (दमिल) (प)लूर-तंबपंनिदीप-पसदकानं थेरियानं तंबपंनकानं
सुपरिगहे

२ **सिरिपवते विजयपुरीय** पुव-दिसा-भागे विहारे **चुल-धमगिरीय** चेतिय घर सपट-सयर स-चेतीय सव-नियुत कारित उवासिकाय वोधिसिरिय अपनो भतुनो वुधि( )नकम पितुनो च से **गोवगाम**-वयवस रेवत-गहपतिस मातुय च स वुधनिकाय भातुन च से चदमुखनस करुनुधिनस हघनस भगिनीय च रेवतिनिकाय भातु-पुतान च महाचदमुख-चुलचदमुखान भागिनेयान च महामूल-चुलमूलान अपनो च अयकस मूल-वानियस अयिकाय वुधवानिकि(नाय) मातुलक कोठ(ा)-कारिकस भदस वोधिसमस चदस वोधिक (स) महामातुकाय भदि-(ला) य वोधिय च अपनो (पितुनो) वुधि(वा)नियस मा(तुय)

३ भातुनो मूलस भगिनीन वुधनिकाय मूलनिकाय नागवोधिनिकाय धूतुय वीरनिकाय पुतान नागनस वीरनस च सुन्हान च भदसिरि-मिसीन(।*) एवमेव च **कुलह-विहारे** चेतियघर **सीहल-विहारे** वोधि-रुख-पासादो **महाधमगिरीय** ओवरको १ महावि(हा*)रे मडव-खभो(१?) **देवगिरिय** पधान-साला **पुवसेले** तलाक( ) अल( )दा-मडवो च **कटकसोले** महाचेतियस पुव-दारे सेल-मडवो **हिरुमुठुवे** ओवरका तिणि ३ **पपिलाय** ओवरका सत ७ **पुफगिरीय**( ) सेल-मडवो **ध-** विहारे सेल-मडवो (१?) (।*) एत च सव उपरि-वणि(त*) (सा*) धुवगस अचत-हित-सुखाय थवित सव(स) च लोकस (।*) इम नवकम तिहि नवक( )मिकेहि कारित चदमुख-थेरेन च

४ धमनदि-थेरेन च नाग-थेरेन च (।*) सेल वढकिस विधिकस कम ति (॥*)

कुषाण तथा क्षत्रप लेख

कनिष्क का सारनाथ प्रतिमा लेख

(तिथि ३ वर्ष)

[१]

१ महाराजस्य कणिष्कस्य सं ३ हे ३ दि २ [+*] २
२ एताये पूर्वये भिक्षुस्य पुष्यवुद्धिस्य सद्ध्येवि
३ हारिस्य भिक्षुस्य बलस्य त्रेपिटकस्य
४ बोधिसत्वो छत्रयष्टि (च) प्रतिष्ठापितो
५ बाराणसिये भगवतो च( )कमे सहा मात(1*)
६ पितिहि सहा उपद्ध्यायाचर्येहि सद्ध्येविहारि
७ हि अंतेवासिकेहि च सहा बुद्धमित्रये त्रेपिटिक-
८ ये सहा क्षत्रपेन वनस्परेन खरपल्ला-
९ नेन च सहा च च(तु)हि परिषाहि सर्वसत्वनं
१० हितसुखार्थं (॥)

[२]

१ भिक्षुस्य बलस्य त्रेपिटकस्य बोधिसत्वो प्रतिष्ठापितो ।
२ महाक्षत्रपेन खरपल्लानेन सहा क्षत्रपेन वनस्परेन ॥

सूविहार ताम्र-पत्र

(तिथि ११ वर्ष)

१ महरजस्य रजतिरजस्य देवपुत्रस्य क(निष्कस्य) संव(त्स)रे एकदशे सं १ [+*]१ दइसिकस्य मस(स्य) दिवसे अठविशे दि २ [+*] ४[+*]४
२ (अत्र)त्र दिवसे भिक्षुस्य नगदतस्य ध(र्म)-कथिस्य अचर्य-दमत्रत-शिष्यस्य अचर्य-भवे-प्रशिष्यस्य यठि अरोपयत इह द(म)न
३ विहरस्वमिनि उपसिक (ब)लनदि (कु)टुंबिनि बलजय-मत च इमं यठिप्रतिठन उप(र)म अनु परिवरं ददति(।*) सर्व-सत्वनं
४ हित-सुखय भवतु (॥*)

कनिष्क का जेडा लेख

१ स १० (+ *) १ अषडस मसस दि २० उतर-फगुणे इशे क्षुगमि

कुर्रम ताम्र-पत्र

१ म २० [+*]१ मग)म अवदुनकस्न दि २० इ(शे) क्षुनमि श्वेड्रवर्म यश-पुत्र तनु(व)कमि रञामि (नवविह*)रमि अचर्यन सर्वस्तिवदन परि-(ग्रह)मि थुवमि भग्रवतस शक्यमुनिस

२ शरिर प्रतिठवेदि(।*) यय वुत भग्रवद अविज-प्रचग्रमकर मकर-प्रचग्र विञान (वि)ञान-प्रचग्र नम-रुव-नमरुव-प्रचग्र षड्र(य)-(दन) षड्रयदन-प्रचग्र फश षष-प्रचग्र

३ वेदन वेदन-प्रचग्र तष्ण तष्ण-प्रचग्र उवदन उवदन-प्रचग्र भव भव-प्रचग्र जदि जदि-प्रच(ग्र) जर-मर(न)-शोग्र परिदेव-दुख-दोर्मनस्त-उपग्रम (।*) (एव) (अस) केवलस दुख-कधस समुदए भवदि (।*)

४ सर्व-सत्वन पुयए अय च प्रतिच-समुपते लिखिद महिफतिएन सर्वसत्वन पुयए (॥*)

कनिष्क का श्रावस्ती-लेख

१ (महाराजस्य देवपुत्रस्य कणिष्कस्य(?) म * * * * दि) १० [+ *]९ एतये पुर्वये भिक्षुस्य पुष्य(वु*)–

२ (द्धिस्य*) सद्धेयविहारिस्य भिक्षुस्य व(ल)स्य त्रेपिकटस्य दान( ) (वो)धिसत्वो छात्र दाण्डश्च शावस्तिये भगवतो चकमे

३ कोसवकुटिये (अचर्य्या)णा सर्वस्तिवादिन परिगहे (॥*)

कनिष्क का आरा लेख

(तिथि ४१ वर्ष)

१ महरजस रजतिरजस देवपु(त्रस) (क)इ(स)रस

२ व(झि)ष्प-पुत्रस कनिष्कस सवत्सरए एकचप(रि)-

३ (शए) स २० [+ *]२०[+ *]१ जेठस मसस दिव(से)१ इ(शे) दिवस-क्षुणमि ख(दे)

४ (कुपे) दषव्हरेन पोषपुरिअ-पुत्रण मतर-पितरण पुय(ए)

५ (हि)रणस सभर्य(स) (स)पुत्रस अनुग्रहर्थए सर्व(सप)ण

६ जति(षु) छ(?)तए (।*)इमो च लिखितो म(धु) (॥*)

हुविष्क का जैन प्रतिमा लेख

(तिथि ४८ वर्ष)

१ मह(ा)राजस्य हु(वि)ष्कस्य संवत्सरे ४ [+*]८ व २ दि १ [+*]९ एतस्य पुर्वायं (कोट्टिय-गण) (बम)(दा*)-

२ (सि)मे (कु)ले पवनगरिय शाखाय (प)ष्मदत्तस्य शिषि(निम) पम्न(शि)रि(ये) निवतन

३ (म)पुत्रस्य ववव धवमात-गो(मिते) मता(य) दान स( )मवस्य भादिम प्र

४ त(स्व)पित (।।*)

हुविष्क का बौद्ध प्रतिमा लेख

(तिथि ५१ वर्ष)

१ महाराजस्य देवपुत्रस्य हुवष्कस्य संवत्सरे ५० [+*]१ हेमन्त-मास १ दव-(एतस्यां) पु(र्व्वा)यां (भिक्षुणा) (बु)द्धवर्म(णा) (मन*) मत य(वय)(मुर्ने *)

२ प्रतिमा प्रतिष्ठापित सर्व-बुद्ध-पूजात्व (म्) (।*) अ(नम) (वे) पधर्म-परित्यागन उपध्यायस्य संघदासस्य (निवाणा()प्तये (उ*)सु मा(तापित्रो च) (।*) (बुद्धार्मम् इदं च दानं ?)

३ बुद्धवर्मस्य सर्व (दु)खोपशम(ा)य सर्व-सत्व-हित-सुखार्थ( ) (म) हाराजस्य(देवपुत्र-वि)हरे (।।*)

सोडास क्षत्रप का मथुरा लेख

१ स्वामिस्य महाक्षत्रपस्य शोडासस्य गजवरेण ब्राह्मन सगव-सगोत्रेण (पुष्क*)

२ रणि इमाया यमक-पुष्करणीन पश्चिमा पुष्करणि उदपानो आरामो स्तम्भो इ(मो*)

३ (शिला)पट्टो च (।।*)

पतिक का तक्षशिला ताम्रपत्र

(तिथि ७८ वर्ष)

१ (संवत्स)रये अठसततिमए २ [+*]२ [+*]२ [+*]१ [+*]४[+*]४ महरयस महंतस (मो)गस प(नेमे*)मस- मसस दिवसे पचमे ४[+*]१ एतये पुर्वये क्षहर(स)

२ चुक्सस च क्षत्रपस **लिअको कुसुलुको** नम तस पुत्रो **(पति) (को*)**
तखशिलये नगरे (।*) उतरेण प्रचु-देशो **क्षेम** नम (।*) अत्र
३ (दे*)शे पतिको अप्रतिठवित भगवत शकमुनिस शरिर (प्र*)
तिथ (वेति) (स) घरम च सर्व-बुधन पुयए मत-पितर पुयय (तो)
४ क्षत्रपस स-पुत्र-दरस अयु-बल-वर्धिए भ्रतर सर्व (च) (ञातिग)-(ब*) धवस
च पुययतो (।*) महदनपति पतिक सज उव (झ)-ए (न*)
५ रोहिणिमित्रेण य इम (मि?) सघरमे नवकमिक (।।*)

कलवान ताम्रपत्र

१ **सवत्सरये** १[+*] १००[+*] २०[+*] १० [+*]४ **अजस**
श्रवणस मसस दिवसे त्रेविशे २०[+*] १[+*] १[+*] १
इमण क्षुणेण चद्रभि उअसिअ
२ ध्रमस ग्रहवतिस धित भद्रवलस भय छ (?) डशिलए शरिर प्रइस्तवेति गहथू-
३ बमि सघ भ्रदुण न दिवढणेण ग्रहवतिण सघ पुत्रेहि शमेण सइतेण च । धतुण च
४ ध्रमए सघ ण्णषएहि रजए इद्रए य सव जिवणदिण शमपुत्रेण अयरिएण
य स (वं) स्ति-
५ वअण परिग्रहे रठ-णिकमो पुयइत सर्व-स्वत्वण पुयए (।*) णिवणस
प्रतिअए होतु (।।*)

नहपान कालीन नासिक गुहालेख

(तिथि ४२, ४५ वर्ष)

१ सिध (।।*) **वसे** ४०[+*]२ वेसाख-मासे राञो **क्षहरातस** क्षत्रपस
नहपानस जामातरा दीनीक-पुत्रेन **उषवदातेन** सघस चातुदिसस इम लेण
नियातित (।*) दत चानेन अक्षय-निवि काहापण-सहस्रा-
२ नि त्रीणि ३००० सघस चातुदिसस ये इमस्मि लोणे वसातान ( )२
भविसति चिवरिक कुशाणमूले च (।*) एते च काहापणा प्रयुता गोवधन
वाथवासु श्रेणिसु (।*) कोलीक-निकाये २००० वृधि पडिक-शत
अपर-कोलीक-निका-
३ ये १००० वधि पा (यू) न-(प) डिक-शत (।*) एते च काहापणा
(अ) पडिदातवा वधि-भोजा (।*) एतो चिवरिक-सहस्रानि बे २०००
ये पडिके सते (।*) एतो मम लेणे वसवुथान भिखुन **वीस (1) य एकीकस**
चिवरिक बारसक (।*) य सहस्र प्रयुत पायुन-पडिके शते अतो कुशन-
४ मूल (।*) **कापुराहारे** च गामे चिखलपद्रे दतानि नालिगेरान मुल-

सहसाणि मठ ८ • (।*) एत च सव स्रावित (नि)गम-सभाय निबध च फलकवारे चरितती ति (।*) भूयोनेन न्तं वसे ४ [+ *]१ कातिक सुधे पनरस पुवाक वसे ४ [+ *]५

५ पनरस नियुतं भगवता( ) देवान ब्राह्मणान च कार्षापण-सहसाणि सतरि
  ७ प( )चत्रि( )शक सुवन कृता दिन सुवर्ण-सहस्रय मूल्य( ) (॥*)
६ फलकवारे चरितती ति (॥*)

नहपान कालीन नासिक गुहा लेख

१ सीद्धम् (॥*) राज्ञः क्षहरातस्य क्षत्रपस्य नहपानस्य जामात्रा दीनीक-पुत्रेन उषवदातेन त्रि-गोशत-सहस्रदेन नद्या बार्णासायां सुवर्णदान-तीर्थकरेन देवत(ा)भ्यः ब्राह्मणेभ्यश्च षोडश-ग्रामदेन अनुवर्ष ब्राह्मण-शतसाहस्री-भोजापयित्रा

२ प्रभासे पुण्यतीर्थे ब्राह्मणेभ्यः अष्टभार्याप्रदेन भरुकछे दशपुरे गोवर्धने शोर्पारगे च चतुशालावसध प्रतिश्रय-प्रदेन आराम-तडाग-उदपान-करेन इबा-पारादा-दमण-तापी-करबेणा-दाहनुका नावा पुण्य-तर-करेन एतासां च नदीनां उभतो तीरं सभा

३ प्रपा-करेण पींडीतकावडे गोवर्धने सुवर्णमुख शोर्पारगे च रामतीर्थे चरक-पर्षभ्य ग्राम नानंगोले द्वात्रीशत-नालीगेर-मूल-सहस्र प्रदेन गोवर्धने त्रीरश्मिषु पर्वतेषु धर्मात्मना इदं लेण कारित इमा च पोढियो (॥*) भटारका-अञ्ञातिया च गतोस्मि वर्षा-रतु मालय(हि) * * हि रुध उतमभाद्रं मोचयितुं (।*)

४ ते च मालया प्रनादेनेव अपयाता उतमभद्रकानं च क्षत्रियानं सर्वे परिग्रहा कृता(।*) ततोस्मिं गतो पोक्षरानि (।*) तत्र च मया अभिसेको कृतो त्रीणि च गोसहस्रानि दतानि ग्रामो च (॥*) दत च(ा)नेन क्षेत्र( ) ब्राह्मणस वाराहि-पुत्रस अश्विभूतिस हथे कीणिता मुलेन काहापण-सहस्रेहि चतुहि ४ यो स-पितु-सतक नगरसीमाय उतरापरा(यं दीसायं) (।)एतामम कन बस

५ तान चातुदीसस भिख-संघस मुखाहारो भविसती (॥*)

नहपान का नासिक गुहालेख

१ सीधं (॥*) राञो क्षहरातस क्षत्रपस नहपानस दीहि
२ तु दीनीक-पुत्रस उषवदातस कुटुबिनिय दखमित्राय देयधम ओवरको (॥*)

नहपान कालीन कार्ले गुहा लेख

१ सिव (॥*) रञो खहरातस खतपस नहपानस जा(म)तरा (दीनीक)-पूतेन उसभ-दातेन ति-
२ गो-सतसहस(दे)ण नदिया वणासाया (सु)वण-(ति)थकरेन (देवतान*) ब्रह्मगन च सोलस-गा
३ म-दे(न*) पभासे पूत-तिथे ब्रह्मणाण अठ-भाया प(देन*) (अ) नुवास पितु सतसहस (भो)-
४ जपयित वलूरकेसु लेण-वासिन पवजितान चातुदिसस सघस
५ यापणय गामो (कर)जिको दतो स(वा)न (वा)स-वासितान (?) (॥*)

नहपान कालीन जुनार गुहा लेख

(तिथि ४६ वर्ष)

१ (राञो*) महखतपस सामि-नहपानस
२ (आ)मतस- वछ-सगोतस अयमस
३ (दे*)(यधम) च (पो*)ढि मटपो च पुञाथय बसे ४०[+*]६ कतो (॥*)

चष्टन—रुद्रदामन का अंडौ लेख

(तिथि ५२ वर्ष)

[१]

१ (राज्ञो) (चाष्ट)नस ग्समोतिक-पुत्रस राज्ञो रुद्रदामम जयदाम-पुत्रस
२ व(र्षे) (द्वि)प( )च(ाशे) (५०) [+*]२ फगुण-वहुलस (द्वि) तिय-वारे(?) मदनेन सीहिल-पुत्रेन (भ)गिनिये जेष्टवीराये
३ (सी)हि(ल-धि)त ओपशति-सगोत्राये लष्टि उथापित (॥*)

[२]

१ (राज्ञो चाष्ट)नस ग्समोतिक-
२ पु(त्र)स राज्ञो (रु)द्रदामस
३ जयदाम-पुत्रस वर्षे द्वि-प( )-
४ (चा)शे ५०[+*]२ फागुण-वहुलस
५ द्वितीय-वारे(?) २ ऋषभदेवस
६ सीहिल-पुत्रस ओपशति-सगोत्रस

७ गाथ(ा) (मउन)म (सीरि)ग-पुत्रन
८ लन्टि उथापित (।।*)

[३]

१ राज्ञो चाष्टनस य्सा(म)ोतिक-पुत्रस राज्ञो रुद्रदामस जयदाम-पुत्रस वर्षे द्विपंचाश ५ [+*]२
२ फगुन-बहुलस द्वितिय वा २ मद नाम सीहिल-पुत्रस भगिनिय-समानार गोत्रस ऋषिभ
३ गोत्रस सीहिल-पुत्रस मुग्विस्थिम (लन्टि) उथापिता (।।*)

[४]

१ र(ा)ज्ञो चाष्टनस य्सामोतिक-पु(त्रस) (राज्ञो) रु(द्रदामस) ज(य)दा(म)
२ पुत्र(स) वर्षे ५ [+*२] फग(ु)न-बहुलस (द्वितिय) वारे (?) २
३ ऋषभदेवस अम्बरस-पुत्र(स) ओपश(ति)-गो(त्र)स
४ ति(धा(तिन?) सम्बरस धाम(ण)रैस लन्टि उथापित (।।*)

रुद्रदामन का गिरनार शिलालेख
(तिथि ७२ वर्ष)

१ सिद्धं (।*) इदं तडाकं सुदर्शनं गिरिनगरा(दि) * *—(मृ*)(त्ति)कोपल-विस्तारायामोच्छ्रय-निःसन्धि-बद्ध-दृढ-सर्व-पालीकत्वात्पर्वत-पा
२ द-प्रतिस्पर्द्धि-सुश्लि(ष्ट) (बन्धं*)—(जा)तेनाकृत्रिमेण सेतुबन्धेनोपपन्नं सुप्रतिविहित-प्रणाली-परीवाह
३ मीढविधानं च त्रिस्क(न्ध*)—नादिभिरनुग्र(है)र्महत्युपचये वर्तते (।*) तदिदं राज्ञो महाक्षत्रपस्य सुगृही
४ त-नाम्नः स्वामि-चष्टनस्य पौत्र(स्य*) (राज्ञः क्षत्रपस्य सुगृहीतनाम्नः स्वामि-जयदाम्न*) पुत्रस्य राज्ञो महाक्षत्रपस्य गुरुभिरभ्यस्त-नाम्नो रु(द्र)दाम्नो वर्षे द्विसप्ततित(मे) ७ [+*]२
५ मार्गशीर्ष-बहुल-प्र(ति) (पदि-)— सृष्टवृष्टिना पर्जन्येन एकार्णव भूतायामिव पृथिव्यां कृतायां गिरेरूर्जयतः सुवर्णसिकता-
६ पलाशिनी-प्रभृतीनां नदीनां अतिमात्रोद्वृत्तैर्वेगैः सेतुम—(यमा) नानुरूप-प्रतीकारमपि गिरिशिखर-तरु-तटाट्टालकोपत(ल्प) द्वारशरणोच्छ्रय-विध्वंसिना युगनिधन-सदृ
७ श-परम-घोर-वेगेन वायुना प्रमथि(त)-सलिल-विक्षिप्त-जर्जरीकृताव(दी)

(र्ण*) (क्षि)प्याग्म-वृक्ष-गुल्म-ल्ताप्रतान आ नदी(त)लादित्युद्घाटित-मार्गात् (।*) चत्वारि हस्त-शतानि वींशदुत्तराण्यायतेन एतावत्येव (वि)स्ती(र्णे)न

८ पचमप्तति-हस्तानवगाढेन भेदेन निस्मृत-मर्व्व-तोय मरु-धन्व-कल्पमतिभृश दु(र्द) (।*) (म्य)र्यें मौर्यस्य राज्ञ चन्द्र(गु)(प्त*)-(स्य) राष्ट्रियेण (वै)श्येन पुष्यगुप्तेन कारित अशोकस्य मौर्यस्य (कृ*)ते यवनराजेन तुष(ा)स्फेनाधिष्ठाय

९ प्रण(ा)लीभिरल( )कृत( ) (।*) (त)त्कारित(या) च राजानुरूप-कृत-विधानया तस्मि (भे)दे दृष्टया प्रनाड्या- वि(स्तृ)त-से)(तु*) णा आ गर्भात्प्रभृत्यवि(ह)त-समुदि(वरा)जलक्ष्मी-धारणा-गुणतस्सर्व्व-वर्णैरभिगम्य रक्षणार्थं पतित्वे वृतेन (आ) प्राणोच्छ्वासात्पुरुष-वधनिवृत्ति-कृत-

१० सत्यप्रतिज्ञेन अन्य(त्र) सग्रामेष्वभिमुखागत-सदृश-शत्रु-प्रहरण-वितरणत्वा-विगुणरि(पु*) त-कारुण्येन स्वयमभिगतजन-पदप्रणिपति (ता*) (यु)पशरणदेन दस्यु-व्याल-मृग-रोगादिभिरनुपसृष्टपूर्व्व-नगर-निगम-

११ जनपदाना स्ववीर्य्यार्जितानामनुरक्त-सर्व्व-प्रकृतीना पूर्व्वापराकरावन्त्यनूपनी-वृदानर्त्त-सुराष्ट्र-श्व (भ्र-मरु-कच्छ-सिन्धु-सौवी) र-कुकुरापरात-निषादा-दीना समग्राणा तत्प्रभावाद्य(थावत्प्राप्तधर्मार्थ*)काम-विषयाणा विषयाणा पतिना सर्व्वक्षत्राविष्कृत-

१२ वीर-शब्द-जा(ता)त्सेकाविधेयाना यौधेयाना प्रसह्योत्सादकेन दक्षिणापथ-पतेस्सातकर्णेर्द्विरपि नीर्व्याजमवजीत्यावजीत्य सवधा-(वि)दूर(त*)या अनुत्सादनात्प्राप्तयशसा (वाद)- (प्रा*)- (प्त)-विजयेन भ्रष्टराज-प्रतिष्ठापकेन यथार्थ-हस्तो-

१३ च्छ्र्यार्जितोर्जित-धर्मानुरागेन शब्दार्थ-गान्धर्व्व-न्यायाद्याना- विद्याना महतीना पारण-धारण-विज्ञान-प्रयोगावाप्त-विपुल-कीर्त्तिना तुरग-गज-रथचर्य्यासि-चर्म-नियुद्धाद्या ति-परबल-लाघव-सौष्ठव-क्रियेण अहरहर्द्दान-मानान-

१४ वमान-शीलेन स्थूललक्षेण यथावत्प्राप्तैर्बलिशुल्क-भागै कानक-राजत- वज्र-वैडूर्य रत्नोपचय-विष्यन्दमान-कोशेन स्फुट-लघु-मधुर-चित्र-कान्तशब्दसमयो-दारालकृत गद्य-पद्य-(काव्य-विधान-प्रवीणे*)न प्रमाण-मानोन्मान-स्वर-गति-वर्ण्ण-सारसत्वादिभि

१५ परम-लक्षण-व्यजनैरुपेत-कान्त-मूर्त्तिना स्वयमधिगत-महाक्षत्रप-नाम्ना नरेन्द्र-क(न्या)-स्वयवरानेक-माल्य-प्राप्त-दाम्न(ा) महाक्षत्रपेण रुद्रदाम्ना वर्ष-सहस्राय गो-ब्रा(ह्म)(ण*) (र्थ) धर्म्मकीर्त्तिवृद्ध्यर्थ च अपीडयि(त्व)ा कर-विष्टि-

१६ प्रणयक्रियाभि पौरजानपदं जनं स्वस्मात्कोशा महता धनौघेन अनतिमहता च कालेन त्रिगुण-दृढतर-विस्तारायामं सेतुं विधा(य स*) र्वत(टे) — (सु)दर्शन-तरं कारितमिति (।*) (अस्मि)नर्थे

१७ (च) महा(क्ष)त्र(प) मतिसचिव-कर्मसचिवैरमात्य-गुण-समुद्युक्तैरप्यति-महत्वाद्भेदस्यानुत्साह-विमुख-मतिभि( ) प्रत्याख्यातारंभ( )

१८ पुन सेतुबन्ध-नैराश्याद्धाहाभूतासु प्रजासु इहाधिष्ठाने पौरजानपदजनानु ग्रहार्थं पार्थिवेन कृत्स्नानामानर्त-सुराष्ट्राणां पालनार्थंनियुक्तेन

१९ पह्लवेन कुलैप-पुत्रेणामात्येन सुविशाखेन यथावदर्थ-धर्म-व्यवहारदर्शनैरनुराग मभिवर्द्धयता शक्तेन दान्तेनाचपलेनाविस्मितेनार्य्येणा-हार्य्येण

२ स्वधितिष्ठता धर्म-कीर्ति-यशांसि भर्तुरभिवर्द्धयतानुष्ठित(मि)ति (।*)

गुप्तवंशी लेख

समुद्रगुप्त का प्रयाग स्तम्भ लेख

१ कुल्यै (?) स्वै तस
२ (यस्य ?) (।।*) (१*)
३ मु (?) व
४ (स्फु)रद्व (?) क्ष स्फुटोद्ध( )सित प्रवितत (।।*)(२*)
५ यस्य प्र(ज्ञानु)पङ्गोचित-सुख-मनस शास्त्र-त(त्व)ार्थ-भर्त्तु
— —स्तब्धो ◡ — — ◡नि ◡ ◡ ◡ ◡ —नोच्छ्— — ◡ — —
(।*)
६ (स*)त्काव्य-श्री-विरोधान्बुध-गुणित-गुणाज्ञाहतानेव कृत्वा
(वि)द्वल्लोके(ऽ*)वि(ना)(शि*) स्फुटबहु-कविता-कीर्त्ति-राज्य भुनक्ति
(।।*) (३)
७ (आ*)र्य्यो हीत्युपगुह्य भाव-पिशुनैरुत्कर्णितै रोमभि
सभ्येपूच्छ्वसितेषु तुल्य-कुलज-म्लानाननोद्वीक्षि(त) (।*)
८ (स्ने)ह-व्यालुलितेन बाष्प-गुरुणा तत्त्वेक्षिणा चक्षुपा
य पित्राभिहितो नि(रीक्ष्य)निखि(ला*)(पाह्येव*)(मुर्वी)मिति ।।४।
९ (दृ*)ष्ट्वा कर्माण्यनेकान्यमनुज-सदृशान्य(द्भु)तोद्भिन्न-हर्षा
भ(ा*)वैरास्वादय(न्त*) ◡◡◡◡◡◡ — — ◡ — — ◡ (के*)
चित् (।*)
१० वीर्योत्तप्ताश्च केचिच्छरणमुपगता यस्य वृत्ते (ऽ*) प्रणामे-
(ऽ*)प्य(र्त्ति ?)-(ग्रस्तेषु ?) — — ◡ ◡ ◡ ◡ ◡ ◡ — — ◡
— — ◡ — —(।।*) (५*)
११ संग्रामेषु स्व-भुज-विजिता नित्यमुच्चापकारा
श्व -श्वो मान-प्र◡◡◡◡ — — ◡ — — ◡ — —(।*)
१२ तोषोत्तुङ्गै स्फुट-बहु-रस-स्नेह-फुल्लैर्म्मनोभि
पश्चात्ताप व ◡ ◡ ◡ ◡ — — ◡ म(?)स्य(ा)द्वसन्त(म् ?)।६।
१३ उद्वेलोदित-बाहु-वीर्य्य-रभसादेकेन येन क्षणा-
दुन्मूल्याच्युत नागसेन-ग ◡ — — — ◡ — — ◡ —(*)
१४ दण्डैर्ग्राहयतैव कोतकुलज पुष्पाह्वये क्रीडता

सूर्य्ये(?)निग्म(?)–⏑–⏑गट –––⏑––⏑–(॥*) (७*)

१५ धर्म्म-प्राचीर-बन्धः शशि-कर-शुचयः कीर्त्तयः स प्रताना
वैदुष्यं तत्त्व-भेदि प्रशम⏑⏑⏑ गु—य—⏑ मु (श्रु?)—⏑तार्त्थम्

१६ (अध्येयः) सूक्त-मार्गः कवि-मति-विभवोत्सारणं चापि काव्यं
को नु स्याद्(ऽ*)स्य न स्याद्गुण-मति(वि)दुषां ध्यानपात्रं य एकः
(॥*) (८)

१७ तस्य विविध-समर-शतावतरण-दक्षस्य स्वभुज-बल-पराक्रमैक-बन्धोः
पराक्रमाङ्कस्य परशु-शर-शङ्कु-शक्ति-प्रासासि-तोमर

१८ भिन्दिपाल-न(ा)राच-वैतस्तिकाद्यनेक-प्रहरण-विरूढाकुल-व्रण-शताङ्क-शोभा
समुदयोपचित-कान्ततर-वर्ष्मणः

१९ कौसलक-महेन्द्र-माह(ा*)कान्तारक-व्याघ्रराज-कौरालक-मण्टराज-पैष्टपुरक
महेन्द्रगिरि-कौट्टूरक-स्वामिदत्तैरण्डपल्लक-दमन-काञ्चेयक-विष्णुगोपावमुक्तक

२० नीलराज-वैङ्गेयक-हस्तिवर्म्म-पालक्ककोग्रसेन-दैवराष्ट्रक-कुबेर-कौस्थलपुरक
धनञ्जय-प्रभृति-सर्व्व-दक्षिणापथ-राज-ग्रहण-मोक्षानुग्रह-जनित-प्रतापोन्मिश्र
माहाभाग्यस्य

२१ रुद्रदेव-मतिल-नागदत्त-चन्द्रवर्म्म-गणपतिनाग-नागसेनाच्युत-नन्दि-बलवर्म्मा-
द्यनेकार्य्यावर्त्तराज प्रसभोद्धरणोद्वृत्त प्रभाव-महतः परिचारकीकृत-सर्व्वाट
विक-राजस्य

२२ समतट-डवाक-कामरूप-नेपाल-कर्त्तृपुरादि-प्रत्यन्त-नृपतिभिर्म्मालवार्जुनायन-
यौधेय-माद्रकाभीर-प्रार्जुन-सनकानीक-काक-खरपरिकादिभिश्च सर्व्व-कर
दानाज्ञाकरण-प्रणामागमन

२३ परितोषित-प्रचण्ड-शासनस्य अनेक-भ्रष्टराज्योत्सन्न-राजवंश-प्रतिष्ठापनोद्भूत
निखिल-भु(व)न (विचरण-शा)न्त-यशसः दैवपुत्रषाहिषाहानुषाहि-शक-
मुरुण्डैः सैंहलकादिभिश्च

२४ सर्व्व-द्वीप-वासिभिरात्मनिवेदन-कन्योपायनदान-गरुत्मदङ्क-स्वविषय-भुक्ति –
शासन (या)चनाद्युपाय-सेवा-कृत-बाहु-वीर्य्य-प्रसर-धरणि-बन्धस्य पृथि-
व्यामप्रतिरथस्य

२५ सुचरित-शतालङ्कृतानेक-गुण-गणोत्सिक्तिभिश्चरण-तल-प्रमृष्टान्य-नरपति
कीर्त्तेः साध्व-साधूदय-प्रलय-हेतु-पुरुषस्याचिन्त्यस्य भक्त्यवनति-मात्र-ग्राह्य
मृदुहृदयस्यानुकम्पावतो-(ऽ*)नेक-गो-शतसहस्र-प्रदायिन( )

२६ (कृप)ण-दीनानाथातुर-जनोद्धरण-सत्त्रदीक्षाभ्युपगत-मनसः समिद्धस्य विग्रह-
वतो लोकानुग्रहस्य धनद-वरुणेन्द्रान्तक-समस्य स्वभुज-बल-विजितानेक-
नरपति-विभव-प्रत्यर्पणा-नित्यव्यापृतायुक्तपुरुषस्य

२७ निशितविदग्धमति - गान्धर्व्वललितैर्व्व्रीडित - त्रिदशपतिगुरु - तुम्बुरुनारदादे - र्व्विद्वज्जनोप-जीव्यानेक-काव्य-क्रियाभिः प्रतिष्ठित-कविराज-शब्दस्य सुचिर-स्तोतव्यानेकाद्भुतोदार-चरितस्य

२८ लोकसमय-क्रियानुविधान-मात्र-मानुषस्य लोक-धाम्नो देवस्य- महाराज-श्री-गुप्त-प्रपौत्रस्य महाराज-श्री-घटोत्कच-पौत्रस्य महाराजाधिराज-श्री-चन्द्रगुप्त-पुत्रस्य

२९ लिच्छवि-दौहित्रस्य महादेव्यां कुमारदेव्यामुत्पन्नस्य महाराजाधिराज-श्री-समुद्रगुप्तस्य सर्व्व-पृथिवी-विजय-जनितोदय-व्याप्त-निखिलावनितलां कीर्त्तिमितस्त्रिदशपति-

३० भवन-गमनावाप्त-ललित-सुख-विचरणामाचक्षाण इव भुवो बाहुरयमुच्छ्रित स्तम्भः (।*) यस्य।
प्रदान-भुजविक्रम-प्रशम-शास्त्रवाक्योदयै-
रुपर्य्युपरि-सञ्चयोच्छ्रितमनेकमार्ग्गं यशः (।*)

३१ पुनाति भुवनत्रयं पशुपतेर्ज्जटान्तर्गुहा-
निरोध-परिमोक्ष-शीघ्रमिव पाण्डु गाङ्गं (पय *) (॥*) (९*)
एतच्च काव्यमेषामेव भट्टारकपादानां दासस्य समीप-परिसर्प्पणा-नुग्रहोन्मीलित-मते

३२ खाद्यटपाकिकस्य महादण्डनायक-ध्रुवभूति-पुत्रस्य सान्धिविग्रहिक-कुमारा-मात्य-म(हादण्डनाय*) क-हरिषेणस्य सर्व्व-भूत-हित-सुखायास्तु।

३३ अनुष्ठितं च परमभट्टारक-पादानुध्यातेन महादण्डनायक-तिलभट्टकेन।

समुद्रगुप्त का एरण लेख

१ (सवा*)रिता नृपतयः पृथु-राघवाद्या (॥*)१
२ (पुत्रो*) बभूव धनदान्तक-तुष्टि-कोप-तुल्यः
३ (पराक्र*)न-नयेन समुद्रगुप्तः (।*)
४ (य प्रा*)प्य पार्त्थिव-गणस्सकलः पृथिव्याम्
५ (पर्य*)स्त-राज्य-विभव-द्युतमास्थितो(ऽ*)भूत् (॥*)२
६ (ताते*)न भक्ति-नय-विक्रम-तोषितेन
७ (यो*) राज-शब्द-विभवैरभिषेचनाद्यैः (।*)
८ (सम्मा*)नितः परम-तुष्टि-पुरस्कृतेन
९ (सोऽयं ध्रु*)(वो) नृपतिरप्रतिवार्य्य-वीर्य्यः (॥*)३
१० (दत्ता*)स्य- पौरुष-पराक्रम-दत्त-शुल्का
११ (हस्त्य*)श्व-रत्न-धन-धान्य-समृद्धि-युक्ता (।*)
१२ (नित्य*)ङ्गृहेषु मुदिता बहु-पुत्र-पौत्र-

१३ (स*)त्कामिनी कुल्यजु धरिणी निविष्टा (॥*)४
१४ (यस्यो*)र्जितं समर-कर्म्म पराक्रमेद्धं
१५ (पृथ्व्यां*) यश सुविपुलम्परिबभ्रमीति (।*)
१६ (वीर्या*)णि यस्य रिपवश्च रणोर्ज्जितानि
१७ (स्व*)प्नान्तरेष्वपि विचिन्त्य परित्रसन्ति (॥*)५
१८ — — ◡ — ◡ ◡ ◡ — ◡ ◡ — ◡ — —
(स्त*)(म्भ?) स्वमोमनगररिकिन-प्रदेशे (।*)
१९ — — ◡ — ◡ ◡ ◡ — ◡ ◡ — ◡ — —
(सं*)स्थापितस्स्वयशस परिवृद्धहेतोर्म् (॥*)६

समुद्रगुप्त का नालन्दा लेख

१ १ स्वस्ति (।*) महानौ-हस्त्यश्व-जयस्कन्धावारान्नन्दपुर-वासका-(त्स) र्व्वरा-(जोच्छे)त्तु(ः*) पृथिव्यामप्रतिरथस्य चतुरुदधि-सलि-(लास्वा)
२ दित-यशसो धनद-वरुण(न्द्रा)न्त(क*)-समस्य कृतान्त-परशोर्न्यायागतानेक-गो-हिरण्य-कोटि-प्रदस्य चिरोत्स(न्ना)
३ श्वमेधाहर्त्तुर्म्महाराज-श्री-गु(प्त*)-प्रपौत्रस्य महाराज-श्री-घटोत्कचपौत्रस्य महारा(जाधि)राज (श्री-चन्द्रगुप्त)-पुत्र
४ स्य लिच्छवि-दौ(हि)त्रस्य महादेव्यां कुमारदेव्यामुत्पन्न⁀परमभा (गवतो महाराजाधिराज-श्रीसमुद्र)गुप्तः तावि(र्गुल्म) (?)
५ ये (वनिक)भद्रपुष्करकग्राम-विमिलकपेयविकपु(र्णाना?)यथा (म(मो*)]
(ब्राह्मणपुरोग*)-ग्राम-च (क)लीयन्या (?)माह (।*)
६ एव(*) चाह विदितमस्तो भवत्येषो ग्रा(मौ) (मया) (मा)तापित्रोरा-
(त्मनश्च) पु(ण्याभिवृद्ध)ये जयभट्टिस्वामिने
७ * * * * (सोपरि)करो(देयेनाग्र)हा(रत्वे)नातिसृष्टः (।*)
तद्युष्माभिर(स्य)
८ त्रैविद्यस्य श्रोतव्यमाज्ञा च कर्त्त(व्या) (स)र्व्वे च (स)मुचिता ग्रा
(म*) प्रत्या (या*) मेय-हिरण्यादयो देया न चेत⁀प्र-
९ (भृ)त्यनेन स्य (वि)द्येनान्य-ग्रामादि-करद-कुटुम्बि (कारुक)ादय⁀प्रवेश
(यित)व्या(न)न्यथ(ा) नियतमाग्रहाराक्षेप
१० (स्य)ादिति ॥ सम्वत् ५ माघ-दि २ निबद्ध (।*)
११ अनुग्रामाक्षपटलाधि(कृत)-महापीलुपति-महाबलाधि(कृत)त-गोप-स्वाम-
(य*)ादेश-लिखित (।*)
१२ (कुमा*)र-श्री-चन्द्रगुप्तः (॥*)

द्वितीय चन्द्रगुप्त का मथुरा स्तम्भ-लेख

(गु० स० ६१)

१ सिद्धम् (।*) भट्टारक-महाराज-(राजाधि)राज-श्री-समुद्रगुप्त-स-
२ (त्पु)त्रस्य भट्टारक-म(हाराज) (रा*जाधि)राज-श्री-चन्द्रगुप्त-
३ स्य विज(य*)-राज्य-सवत्स(रे*) (प)चमे (५) काला वर्त्तमान-स-
४ वत्सरे एकषष्ठे ६०[+*]१ (प्र)थमे शुक्लदिवसे प
५ चम्या (।*) अस्या पूर्व्वा(या) (भ)गव(त्कु)शिकाद्दशमेन भगव-
६ त्पराशराच्चतुर्थेन (भगवत्क*)पि(ल)विमल-शि-
७ ष्य-शिष्येग भगव(दुपमित*) विमल-शिष्येण
८ आर्य्योदि(ता*)चार्य्ये(ण*) (स्व*)-पु(ण्या*)प्यायन-निमित्त
९ गुरुगा च कीर्त्य(र्थमुपमितेश्व)र-कपिलेश्वरौ
१० गर्व्वायतने गुरु प्रतिष्ठापितो (।*) नै-
११ तत्ख्यात्यर्थमभिलि (ख्यते) (।*) (अथ*) माहेश्वराणा वि-
१२ ज्ञप्ति×क्रियते सम्बोधन च (।*) यथाका(ले)नाचार्या-
१३ णा परिग्रहमिति मत्वा विशङ्क( ) (पू)जा-पुर-
१४ स्कार( ) परिग्रह-पारिपाल्य (कुर्य्या)दिति विज्ञप्तिरिति (।*)
१५ यश्च कीर्त्य भिद्रोह कुर्य्या(।)द्य(श्चा)भिलिखित(मुप)र्य्यधो
१६ वा (स) पचभिर्म्मह(।*)पातकैरुपपातकैश्च सयुक्तस्स्यात् (।*)
१७ जयति च भगवा(ण्डण्ड) रुद्रदण्डो(ऽ*)ग्र(ना)यको नित्य( ) (॥*)

द्वितीय चन्द्रगुप्त का उदयगिरि गुहा-लेख

(गु० स० ८२)

१ सिद्धम् ॥ सवत्सरे ८०(+*)२ आषाढ़-सास-शुक्लेकादश्याम् परमभट्टा-
रकमहाराजाधि(राज*)-श्री-चन्द्र(गु)प्त-पादानुद्धचातस्य ।
२ महाराज-छगलग-पौत्रस्य महाराज-विष्णुदास-पुत्रस्य **सनकानिकस्य**
महा(राज*) * * लस्यायदे (यधर्म्म) ।
सिद्धम् (॥*) (सख्या २)
१ यद( )तज्ज्योतिरर्क्काभमुर्व्या(म्भा) * * ◡ — ◡ * (।*)
* * * * ◡ — व्यापि चन्द्रगुप्ताख्यमद्भुतम् (॥*) (१)
२ विक्रमावक्रयक्रीता दास्य-न्यग्भूत-पार्त्थिव(।) (।*)
* * * (स)न-सरक्ता धर्म्म * * ◡ — ◡ * (॥*) (२)

१ तस्य राजाधिराजर्षेरचि(न्त्यो) (त्मस्त-क*) (र्म)च (।*)
अन्वय-प्राप्त-साचिव्यो व्या(पृत-सन्धि-वि*)ग्रहः ( ) (।।*)३

४ कौत्सश्शाव इति ख्यातो वीरसेनः कुलाख्यया (।*)
शब्दार्त्थ-न्याय-लोकज्ञ×कवि×पाटलीपुत्रक (।।*) ४

५ कृत्स्न-पृथ्वी-जयार्त्थेन राज्ञवेह सहागत (।*)
भक्त्या भगवतश्शम्भोर्गुहामेतामकारयत् (।।*)५

द्वितीय चन्द्रगुप्त का साँची लेख

(गु स० ९३)

(सिद्धम् ।।*)

१ का(कना*)दबोट-श्रीमहाविहारे शील-समाधि प्रज्ञा-गुण-भावितेन्द्रियाय परम-पुण्य-

२ क्ष(त्र)(ग*)ताय चतुर्दिगभ्यागताय श्रमण-पुङ्गवावसथायार्य्य-सङ्घाय महाराजाधि

३ रा(ज-श्री)चन्द्रगुप्त-पाद-प्रसादाप्यायित-जीवित-साधन अनुजीवि-सत्पुरुष सद्भाव

४ वृ(त्त्यर्थ*) जगति प्रख्यापयन् अनेक-समरावाप्त-विजय-यशस्पताकः सुकुलिदेश-न

५ ष्टी * * * वास्तव्य उन्दान-पुत्राम्रकार्द्दवो मत्र-शरभङ्गाम्रराज-राजकुल-मूल्य-क्री-

६ त(म) * * * * * ईश्वरवासकं पञ्च-मण्डल्या(*) प्रणिपत्य ददाति पञ्चविंशतिश्च दीना-

७ रान् (।।*) * * * * * * * मावर्जेन महाराजाधिराज-श्रीचन्द्रगुप्तस्य देवराज इति प्रि-

८ य-ना(म*) * * * * * रितस्य सर्व्व-गुण-संपत्तये यावच्चन्द्रादित्यौ तावत्पञ्च भिक्षवो भुज

९ तां र(त्न*)-गृ(हे*) (च*) (दी*)(प)को ज्वलतु (।*) मम चापरार्द्धात्पञ्चैव भिक्षवो भुजतां रत्न-गृहे च

१ दीपक इ(ति) (।।*) (त)देतत्प्रवृत्तं य उच्छिन्द्यात्स गो-ब्रह्म-हत्यया संयुक्तो भवे-त्पञ्चभिरनान

११ न्तर्य्यैरिति (।।*) सं ९ (+*)३ भाद्रपद-दि ४ (।।*)

(चन्द्र का मेहरौली स्तम्भ लेख)

द्वितीय चन्द्रगुप्त का मेहरौली स्तम्भ-लेख

१ य(स्यो)द्वर्त्तयत प्रतीपमु(र)सा शत्रू न्समेत्यागता-
न्वङ्गेष्वाहव-वर्त्तिनो(ऽ*)भिलिखिता खड्गेन कीर्त्ति(र्भु)जे (।*)
२ तीर्त्वा सप्त मुखानि येन (स)म(रे) सिन्धोर्ज्जिता (व)ाह्लिकान्
यस्याद्याप्यधिवास्यते जलनिधिर्व्वीर्य्यानिलैर्द्दक्षिग (॥*)१
३ (खि)न्नस्येव विसृज्य गा नरपतेर्गामाश्रितस्येतरा
मूर्त्या कर्म्म-जितावनि-गतवत कीर्त्या स्थितस्य क्षितौ (।*)
४ शान्तस्येव महावने हुतभुजो यस्य प्रतापो महा-
न्नाद्याप्युत्सृजति प्रणाशित-रिपोर्य्यत्नस्य शेप क्षितिम् (॥*)२
५ प्राप्तेन स्व-भुजार्ज्जितञ्च सुचिरञ्चैकाधिराज्य क्षितौ
चन्द्राह्वेन समग्र-चन्द्र-(स)दृशी वक्त्र-श्रिय बिभ्रता (।*)
६ तेनाय प्रणिधाय- भूमि-पतिना भावेन विष्णो मर्ति
प्रान्शुर्व्विष्णुपदे- गिरौ भगवतो विष्णोर्ध्वज' स्थापित (॥*) ३

प्रथम कुमारगुप्त का भिलसद स्तम्भ-लेख

१ (सिद्धम्॥*) (सर्व्व-राजोच्छेत्तु पृथिव्यामप्रतिरथस्य चतुरुदधि-स*
(लिला)-स्वादित-यशसो
२ (धनद-वरुणेन्द्रान्तक-समस्य कृतान्त-परशो न्यायागतानेकगो-हि*)-
रण्यकोटि-प्रदस्य चिरोत्सन्नाश्वमेधाहर्त्तु
३ (महाराज-श्रीगुप्त-प्रपौत्रस्य महाराज-श्रीघटोत्कच-पौत्रस्य० म*)
(हा)राजाधिराज-श्रीचन्द्रगुप्त-पुत्रस्य
४ लिच्छ(वि-दौहित्रस्य*) (महादेव्या कुमारदेव्यामुत्पन्नस्य महाराजा*)
धिराज-श्रीसमुद्रगुप्त-पुत्रस्य
५ महादेव्या दत्त(देव्यामुत्पन्नस्य) (स्वयमप्रतिरथस्य*) (परम*)-भागवतस्य
महाराजाधिराज-श्रीचन्द्रगुप्त-पुत्रस्य
६ महादेव्या ध्रुवदेव्यामुत्पन्नस्य महाराजाधिराज-श्रीकुमारगुप्तस्याभि-
(व)र्द्धमान-विजय-राज्य-सवत्सरे षण्णवते
७ (अस्यान्दि)वस-पूर्व्वाया भगवतस्त्रैलोक्य-तेजस्सभार-सततादभुत-मूर्त्ते-
र्ब्रह्मण्यदेवस्य
८ * * * * निवासिन स्वामि-महासेनस्यायतने-
(ऽ*)स्मिन्कार्त्तयुगाचार-सद्धर्म्म-वर्त्मानुयायिना (॥*)१
९ (माता) * * * * * * (प)र्षदा (।*)

मानितेन भुवसर्म्मणा कर्म्म महत्तल्लेयम् ।(।*)२

१ क(त्व)ा (नेत्र*)ाभिरामां मु(नि-वसति) (मिह*) (स्व)र्ग सोपान-(रू)पां ।

कौबेरच्छन्दविम्बां स्फटिकमणिदलाभास-गौरां मतोल्लीम् ।

११ प्रासादाग्र्याभिरूप गुणवर-भवनं (धर्म्म-स*)त्रं यथावत् ।

पुण्येप्येषाभिरामं व्रजति सुमनविस्तार-धर्म्मा भुवो(ऽ*)स्तु ।(।*)३

१२ — । —ो — स्य ◡ — सुधामृतवर-प्रस्यात-स(त्वा भुवि) ।

— —भक्तिरहीन-सत्व-समता कस्त न संपूजयत् ।

१३ (सेनापूर्व*)-विभूति-सम्भ्रम-भय शली— ◡ — — ◡ — ।

तेनायं भुवसम्मया स्थिर-वरस्तम्भो(च्छू)य कारित ।(।*)४

प्रथम कुमारगुप्त का धनैदह ताम्रपत्र लेख

(ग स ११३)

१ ...... (स*)म्वत्सर-श(ते) त्रयोदशोत्त(रे*)

२ (१ +१ +१*)... (अस्या*)(न्दि)वस-पूर्व्वायां परमदैवत-पर

३ (म-भट्टारक-महाराजाधिराज-श्रीकुमारगुप्त*) ... कुट(म्बि) ...

ब्राह्मण-शिवशर्म्म-नागशर्म्म-मह

४ .... यशकीर्ति-क्षेमदत्त-गोष्ठक-वर्गपाल-पिङ्गल-शु ङ्कुक-काल-

५ ....विष्णु-(देव)शर्म्म-विष्णुभद्र—वासक-रामक-गोपाल-

६ भीमद्र-सोमपाल-रामादक (?)-प्रामाष्टकुलाधिकरणञ्च

७ ...... विष्णुना(?णा) विज्ञापिता इह कास्ता(रा?)वार-विषमे (ऽ*)नुवृत्तमर्य्यादास्थि(ति)

८ ...नीवीधर्म्म-क्ष(य्यक?)येण कल्प(ते) (।*) (त)दर्हथ ममाधानतं कल्पन(?न) दा(तुं)

९ ....समेत्या(?)मिहित(*) सर्व्वमेव * * कर-प्रतिवेषि(?) कुटुम्बिभिरवस्थाप्य क-

१ * रि * कम * मतिलो * * (त)दवधृतमिति यतस्तयेति प्रतिपाद्य

११ ... (अष्टक-न*)वक-नला(भ्या)मपविञ्छय क्षेत्र-कुल्यवापमकं दत्तं (।*) तत्र आयुक्तक-

१२ ... * भा(?)गुप्तक-वास्तव्य-छन्दोग-ब्राह्मण-वराहस्वामिनो दत्तं (।*) त(त्कृत)

(करमदण्डा शिवलिङ्ग प्रशस्ति)

१३ भूम्या दा(नाक्षे)पे च गुणागुणमनुचिन्त्य शरीर-क(ा*)-
ञ्चनकस्य चि-
१४ (र-चञ्चलत्व*) (॥*) (उ)क्तञ्च भगवता द्वैपायनेन (।*)
स्वदत्ताम्परदत्ताम्वा
१५ (यो हरेत वसुन्धरा ।*)
(स विष्ठाया क्रृमिर्भूत्वा पितृ*)भि सह पच्यते (॥*) १
षष्टि वर्ष-सहस्रानि स्वर्गे मोदति (भू)मिद (।*)
१६ (आक्षेप्ता चानुमन्ता च तान्येव नरके वसेत् ॥*) २
(पू*)र्व्वदत्ता द्विजातिभ्यो यत्नाद्रक्ष युधिष्ठिर (।*)
मही (मही) (मताञ्छ्रेष्ठ*)
१७ (दानाच्छ्रेयोऽनुपालन ॥*) ३
य भद्रेन उत्कीर्ण्णा स्यम्भेश्वरदासे(न) (॥*)

प्रथम कुमारगुप्त की करमदण्डा शिवलिङ्गप्रशस्ति

(गु० स० ११७)

१ नमो महादेवाय । म(हाराजाधिराज-श्री) (चन्द्रगुप्त-पादा*)-
२ नुध्यातस्य चतुरुदधि-सलिलास्वादित-य(शसो) (महाराजा*)
३ धिराज-श्रीकुमारगुप्तस्य विजयराज्य-सवत्स(र)-शते सप्तदशोत्त(रे*)
४ कार्त्तिक-मास-दशम-दिवसे(ऽ*)स्यान्दिवस-पूर्व्वायां (च्छान्दोग्याचार्य्यशिव) वाजि-
५ सगोत्र-कुरम(ा)र(व्या?)भट्टस्य पुत्रो विष्णुपालितभट्टस्तस्य पुत्रो-
- मह(ा)र(ा)-
६ जधिजाजा-श्रीचन्द्रगुप्तस्य मन्त्री कुमारामात्यशिखरस्वाम्यभूत्तस्य पुत्र
७ पृथिवीषेणो महाराजाधिराज-श्रीकुमारगुप्तस्य मन्त्री कुमारामात्यो(ऽ*)न-
८ न्तर च महावलाधिकृत भगवतो महादेवस्य पृथिवीश्वर इत्येव समाख्यातस्या-
९ स्यैव भगवतो यथा-कर्त्तव्य-धार्म्मिक-कर्म्मणा पाद-शुश्रूषणाय भगवच्छै-
१० लेश्वरस्वामि-महादेव पादमूले आयोध्यक-नानागोत्रचरण-तप -
११ स्वाध्याय-मन्त्र-सूत्र-भाष्य-प्रवचन-पारग-भारडिदसमद-देवद्रोण्या

प्रथम कुमारगुप्त का दामोदरपुर ताम्रपत्र लेख

(गु० स० १२४)

१ सम्व १००(+*) २० (+*)४ फाल्गुण-दि ७ परमदैवत-परम-
भट्टारकमहाराज (ा*)-

२ धिराज-श्रीकुमारगुप्ते पृथिवी-पतौ तत्पाद-परिगृहीते पुण्ड्रवर्द्ध(न*)
३ भुक्तावुपरिक-चिरातदत्तेनानुवहमानक-कोटिवर्ष-विषये च त
४ न्नियुक्तक-कुमारामात्य-वेत्रवर्म्मण्यधिष्ठानाधिकरणञ्च नगरश्रेष्ठि
५ धृतिपाल-सार्थवाहबन्धुमित्र-प्रथमकुलिकधृतिमित्र प्रथमका(य*)
६ स्थशाम्बपाल-पुरोगे संव्यवहरति यत ब्राह्मण-कर्प्पटिकेन
७ विज्ञापित(*) अर्हथ ममाग्निहोत्रोपयोगाय अप्रदाप्रहत-खि
८ ल-क्षेत्र(*) मदीनारिक्य-कुल्यवापेन शश्वदाचन्द्रार्क-तारक-भोज्ये(न*)

पृष्ठ भाग

९ मा नीवी-धर्म्मेण दातुमिति एवं दीयतामित्युत्पन्न विनी दीना(राभ्यु*)
१ पर्ंमृह्य मत पुस्तपाल-रिषिदत्त-जयनन्दि-विभुदत्तानामवधा
११ रणया दोङ्गाया उत्तर-पश्चिमप्रदेश-कुल्यवापमेकम् दत्तम् (॥*)
भूमि (दान)-संबद्धा(*) श्लोका भवन्ति (।*)
१२ स्व-दत्तां पर-दत्तांम्वा यो हरेत वसुन्धरां (।*)
१३ स विष्ठायां क्रिमिर्भूत्वा पितृभिः सह पच्येतेति (॥*) १

प्रथम कुमारगुप्त का दामोदरपुर ताम्रपत्र लेख

१ सं( ) १ (+*) २ (+*) ८ वैशाख-दि १ (+*) ३ पर
(मदैव)त परमभट्टारक-महाराजाधिराज (श्री) (कुमा*)
२ रगुप्ते पृथिवी-पतौ (तत्पाद)-परिगृहीतस्य पु(ण्ड्र)वर्द्धन-भुक्तावु-
(परिक-(चि)रात- दत्त(स्य)
३ भोगेना(नुव)ह(मानक)-कोटिव(र्ष)-विषय तन्नियुक्तक-कु(मा)रामात्य
वे(त्र)
४ वर्म्मणि अधिष्ठाना(धिक)र(णञ्च) नगर(श्रे)ष्ठिधृतिपाल-सार्थवा-
(हबन्धुमि)त्र-प्र(थ)
५ मकुलिकधृतिमित्र (प्रथ)मकायस्थ(शाम्ब)पाल-पुरो(ग)संव्यव (हर)ति
(यत *)ए
६ विज्ञापित अ(र्ह)थ मम प(ञ्च)-महायज्ञ प्रवर्त्तनायानुवृत्ताप्रदाक्षम
नि(वी*)
७ धर्म्मेणा दातुमिति एतद्विज्ञाप्यमुपलभ्य पुस्तपा(ल)-रिषिदत्त-
जयन(न्दि-वि) (भुदत्तानामव*)
८ धारणया दीयतामित्यु(त्प)न्ने एतस्माद(का)गुवृत-द्वैदीनारि(क्य कु)
ल्यवापे(न)

९ (द्व)यमुप(सगृ)ह्य (ऐरा)वता(गो)राज्ये पश्चिण-दिशि पञ्चद्रो(णा)-

१० (म)का ह(ट्ट)-पानकैश्च सहितेति दत्ता (।*) तदुत्तर-काल सम्व्य-
वहारिभि (धर्म्ममवेक्ष्या)नु(म)-

११ न्तव्या (।*) अपि च भूमि-दान-सम्वद्धामिमौ श्लोकौ भवत (।*)
पूर्व-दत्ता द्विजाति (भ्यो)

१२ यत्नाद्रक्ष युधिष्ठिर (।*)
मही महीवता श्रेष्ठ दानाच्छ्रे,यो(ऽ*)नुपा(ल*)न (॥*)१
बहुभिर्व्वसुधा दत्ता दी(य)ते च

१३ पुन पुन (।*)
यस्य यस्य यदा भूमिस्तस्य तस्य तदा फलमिति(॥*)२

प्रथम कुमारगुप्त का मन कुंवार प्रतिमा लेख

(गु० स० १२९)

१ १ँ नमो बुधान (।*) भगवतो सम्यक्सम्बुद्धस्य स्व-मताविरुद्धस्य इय प्रतिमा
प्रतिष्ठापिता भिक्षु-**बुद्धमित्रेण**

२ **सम्बत्** १००(+*)२०(+*)९ महाराज-श्री**कुमारगुप्तस्य** राज्ये
ज्येष्ठमास-दि १०(+*)८ सर्व-दु क्ख-प्रहानार्त्थम्- (॥*)

प्रथम कुमारगुप्त का मंदसोर प्रशस्ति

(मालव स० ४९३ व ५२९)

१ (सिद्धम् ॥)
(यो) (वृत्यर्त्थ)मुपास्यते सुर-गणै(स्सिद्धैश्च) सिद्धयर्त्थिभि-
र्द्ध्यानैकाग्र-परैर्व्विधेय-विषयम्मोक्षार्त्थिभिर्य्योगिभि ।
भक्तया तीव्र-तपोधनैश्च मुनिभिश्शाप-प्रसाद-क्षमै-
र्हेतुर्य्यो जगत×क्षयाभ्युदययो⁀पायात्सवो **भास्कर** । (।*)१
तत्व-ज्ञान-विदो(ऽ*)पि यस्य न विदुर्ब्रह्मर्ष-

२ यो(ऽ*)भ्युद्यता-
×कृत्स्न यश्च गभस्तिभि प्रवृसृतै⁀पु(ष्ण)ाति लोक-त्रयम् ।
ग(न्व)र्व्वामर-सिद्ध-किन्नर-नरैस्सस्तूयते(ऽ*)भ्युत्थितो
भक्तेभ्यश्च ददाति यो(ऽ*)भिलषित तस्मै **सवित्रे** नम ।(।*)२
य⁀(प्र)त्यह प्रतिविभात्युदयाचलेन्द्र-
विस्तीर्ण्ण-तुङ्ग-शिखर-स्खलितांशुजाल (।*)
क्षीवाङ्गना-

कैलास-तुङ्ग-शिखर प्रतिमानि चान्या-
न्याभान्ति दीर्घ-वलभी-
७ नि मवेदिकानि ।
गान्धर्व्व-शब्द-मुखरानि निविष्ट-चित्र-
कर्म्माणि लोल-कदली-वन-शोभितानि ॥११
प्रासाद-मालाभिरलङ्कृतानि
धरा विदार्य्यैव समुत्थितानि ।
विमान-माला-सदृशानि यत्र
गृहाणि पुर्ण्णेन्दु-करामलानि ॥१२
यद्भात्यभिरम्य-सरिद्वयेन चपलोर्म्मिणा समुपगूढ (।*)
८ रहसि कुच-शालिनीभ्या प्रीतिरतिभ्या स्मराङ्गमिव ॥१३
सत्य-(क्षमा)-दम-शम-व्रत-शौच-धैर्य्य-
(स्वाद्धया)य-वृत्त-विनय-स्थिति-वुद्धयुपेतैं ।
विद्या-तपो-निधिभिरस्मयितैश्च विप्रै-
र्य्यंद्भ्राजते ग्रहगणै×खमिव प्रदीप्तैं ॥१४
अथ समेत्य निरन्तर-सङ्गतै-
रहरह-प्रविजृम्भित-
९ सौहृदा (।*)
नृपतिभिस्सुतवत्प्रतिम(ा)निता
प्रमुदिता न्यवसन्त सुख पुरे ॥१५
श्रवण-(सु)भग( ) ध(ा)नुर्व्वे(द्य) दृ‌ढ परिनिष्ठिता
सुचरित-शतासङ्गा×केचिद्विचित्र-कथाविद ।
विनय-निभृतास्सम्यग्धर्म्म-प्रसङ्ग-परायणा-
प्रियमपरुप पत्थ्य चान्ये क्षमा वहु भापितु ॥१६
१० केचित्स्व-कर्म्मण्यधिकास्तथान्यै-
र्व्विज्ञायते ज्योतिममात्मवद्भि ।
(अद्यापि) चान्ये समर-प्रगल्भा-
(×कु)र्व्वन्त्यरीणामहित प्रसह्य ।(*।)१७
प्राज्ञा मनोज्ञ-वधव प्रथितोरुवशा
वशानुरूप-चरिताभरणास्तथान्य।
सत्यव्रता प्रणयिनामुपकारदक्षा
विस्रम्भ-

११ (पूर्ण्णे)भारे दृढ-पीडितेन ॥१८
विजित-विषय-गन्धदर्प्प-पीन-स्तनाग्र्य
(मृ)दुमि(लपि)त-म(हाम्भोदपाता)गमस्य ।
रव कुसुम निकर-मुकुलकारावनार
रतिरमपि(वि)भाति मदिरैर्व्वकारे ॥१९
तारुण्य-कान्त्युपचितो(ऽ)पि सुवर्ण्ण-हार
ताम्बूल-पुष्प-विधिना सम

१२ (लंकृ)ता(ऽ)पि ।
नारी जनः प्रियमुपैति न तावदग्र्यां
यावन्न पट्टमय-वस्त्र (यु)गानि धत्ते ॥२०
स्पर्श(वता वर्णा)न्तर-विभाग-चित्रेण नेत्र-सुभगेन (।)
यस्सकलमिदं क्षितितलमलङ्कृतं पट्टवस्त्रेण ॥२१
विद्याधरी-रुचिर-पल्लव-कर्ण्णपूर
वातेरिता(स्थि)रतरं प्रविचिन्त्य

१३ (लो)कं ।
मानुष्यमर्थ-निचयाश्च तथा विशालां
(स्ते)षां शुभा (म)ति(रभू)दचला ततस्तु ॥२२
चतु(स्समुद्रान्त)-विलोल-मेखलां
सुमेरु-कैलास-बृहत्पयोधराम् ।
वनान्त-वान्त-स्फुट-पुष्प-हासिनीं
कुमारगुप्ते पृथिवीं प्रशासति ॥२३
समान-धीश्शुक्र-बृहस्पतिभ्यां
ललामभूतो भुवि

१४ पार्थिवानां ।
रणेषु यः पार्थ-समानकर्म्मा
बभूव गोप्ता नृप-विश्ववर्म्मा ॥२४
दीनानुकम्पन-परः कृपणार्त्त-वर्ग्ग
सन्ध(ा)प्रदो(ऽ)धिकदयालुरनाथ-नाथः ।
(क)ल्पद्रुमः प्रणयिनामभयं प्रदश्च
भीतस्य यो जनपदस्य च बन्धुरासीत् ॥२५
तस्यात्मजः स्थैर्य्य-नयोपपन्नो
ब(न्धु)-प्रियो

१५ बन्धुरिव प्रजाना ।
वर्ध्वात्ति-हर्त्ता नृप-बन्धुवर्म्मा
द्विड्दृप्त-पक्ष-क्षपणैक(द)क्ष ॥२६
कान्तो युवा रण-पटुर्व्विनयान्वितश्च
राजापि सन्नुपसृतो न मदै स्मयाद्यै ।
शृङ्गार-मूर्त्तिरभिभात्यनलङ्कृतो(ऽ*)पि
रूपेण य⁀कुसुम-चाप इव द्वितीय ॥२७
वैधव्य-तीव्र-व्यसन-क्षताना

१६ स्मृत्वा यमद्याप्यरि-सुन्दरीणा ।
भयाद्भवत्यायत-लोचनाना
धन-स्तनायास-कर प्रकम्प ॥२८
तस्मिन्नेव क्षितिपति-वृषे बन्धुवर्म्मण्युदारे
सम्यक्स्फीत दशपुरमिद पालयत्युन्नतासे ।
(शि)ल्पावाप्तैर्द्धन-समुदयै पट्टवा(यैरु)दार
श्रे(णीभूतै)र्भवनमतुल कारित

१७ दीप्त-रश्मे ॥२९
विस्तीर्ण्ण-तुङ्ग-शिखर शिखरि-प्रकाश-
मभ्युद्गतेन्द्वमल-रश्मि-कलाप-(गौ)र ।
यद्भाति पश्चिम-परस्य निविष्ट-कान्त-
चूडामणि-प्रतिसमन्नयनाभिराम ॥३०
रामा-सनाथ-(र*)चने दर-भास्काराशु-
वह्नि-प्रताप-सुभगे जल-लीन-मीने ।
चन्द्राशु-हर्म्यतल-

१८ चन्दन-तालवृन्त-
हारोपभोध-रहिते हिम-दग्ध-पद्मे ॥३१
रोद्ध्र-प्रियगुतरु-कुन्दलता-विकोश-
पुष्पा-(सव)-प्रमु(दि)तालि-कलाभिरामे ।
काले तुषार कण-कर्क्कश-शीत-वात-
वेग-प्रनृत्त-लवली-नगणैकशाखे ॥३२
स्मर-वशग-तरुणजन-वल्लभाङ्गना-विपुल-कान्त-पीनोरु-

१९ स्तन-जघन-घनालिङ्गन-निर्भर्त्सित-तुहिन-हिम-पाते ॥३३
(मा)लवानां गण-स्थित्या या(ते) शत-चतुष्टये ।

त्रिनवत्यधिके(ऽ*)ब्दानामृतौ सेव्य-घनस्वने ॥३४
सहस्यमास-शुक्लस्य प्रशस्ते(ऽ*)ह्नि त्रयोदशे ।
मङ्गलाचार-विधिना प्रासादो(ऽ*)यं निवेशितः ॥३५
बहुना समतीतेन

२ कालेनान्यैश्च पार्थिवैः ।
व्यशीर्य्यतैकदेशो(ऽ*)स्य भवनस्य ततो(ऽ*)धुना ॥३६
स्वयशो-(वृद्धये सर्व्वमत्युदा)रमुदारया ।
संस्कारितमिदं भूय (श्रेण्या) भानुमतो गृहं ॥३७
अत्युन्नतमवदात नभ(*)-स्पृशन्निव मनोहरैश्शिखरैः ।
शशि-भान्वोरभ्युदयेष्वमल-मयूखायतन

२१ भूतं ॥३८
वत्सर-शतेषु पंचसु विंशत्यधिकेषु नवसु चाब्देषु ।
यातेष्वभिरम्य-(तप)स्यमास-शुक्ल-द्वितीयायां ॥३९
स्पष्टैरशोकतरु-केतक-सिन्दुवार
लोलातिमुक्तकलता-मदयन्तिकानां ।
पुष्पोद्गमैरभिनवैरधिगम्य नूनं
मैक्यं विजृम्भित-शरे हर-पूत-देहे ॥४०

२२ मधुपान-मुदित-मधुकर-कुलोपगीत-नगनैक-पृथु-शाखे ।
काले नव-कुसुमोद्गम-दन्तुर-कान्त-प्रचुर-रोध्रे ॥४१
शशिनेव नभो विमलं कौ(स्तु)भ-मणिनेव शार्ङ्गिणो वक्षः ।
भवन-वरेण तथेदं पुरमखिलमलंकृतमुदारं ॥४२
अमलिन-शशि

२३ लेखा-दन्तुरं पिङ्गलानां
परिवहति समूहं यावदीशो जटानां ।
वि(कच-क)मल-मालामंस-सक्तां च शार्ङ्गी
भवनमिदमुदारं शाश्वतन्तावदस्तु ॥४३
श्रेण्यादेशेन भक्त्या च कारितं भवनं रवेः ।
पूर्व्वा चेयं प्रयत्नेन रचिता वत्सभट्टिना ॥४४

२४ स्वस्ति कर्तृ-लेखक-वाचक-श्रोतृभ्यः ॥ सिद्धिरस्तु ॥

स्कन्दगुप्त का जूनागढ़ लेख

(गु० स० १३६, १३७ व १३८)

१ सिद्धम् ॥
श्रियमभिमतभोग्या नैककालापनीता
त्रिदशपति-सुखार्थं यो बलेराजहार ।
कमल-निलयनाया शाश्वत धाम लक्ष्म्या
२ स जयति विजितार्त्तिर्विष्णुरत्यन्त-जिष्णु ॥१
तदनु जयति शश्वत् श्री-परिक्षिप्त-वक्षा
स्वभुज-जनित-वीर्यो राजराजाधिराज ।
नरपति-
३ भुजगाना मानदर्प्पोत्फणाना
प्रतिकृति-गरुडा(ज्ञा) निर्व्विषी ( ) चावकर्त्ता ॥२
नृपति-गुन-निकेत स्कन्दगप्त पृथु-श्री
चतु रु(दधि जल)न्ता स्फीत-पर्यन्त-देशाम् ।
४ अवनिमवनतारिर्यं चकारात्म-सस्था
पितरि सुरसखित्व प्राप्तवत्यात्म-शक्त्या ॥३
अपि च जित(मे)व तेन प्रथयन्ति यशासि यस्य रिपवो(ऽ*)पि (।*)
आमूल-भग्न-दर्प्पा नि(र्वचना) (म्लेच्छ-देशेपु) ॥४
५ क्रमेण बुद्धया निपुण प्रधार्य
ध्यात्वा च कृत्स्नान्गुण-दोष-हेतून् ।
व्यपेत्य सर्व्वान्मनुजेन्द्र-पुत्रा-
ल्लक्ष्मी स्वय य वरयाचकार ॥५
तस्मिन्नृपे शासति नैव कश्चि-
द्धर्म्मादपेतो मनुज प्रजासु ।
६ आर्त्तो दरिद्रो व्यसनी कदर्यो
दण्ड नवा यो भृश-पीडित स्यात् ॥६
एव स जित्वा पृथिवी समग्रा
भग्नाग्र-दर्पा(न्) द्विपतश्च कृत्वा ।
सर्व्वेषु देशेपु विधाय गोप्तृन्
सचिन्तया (मा)स बहु-प्रकारम् ॥७
स्यात्को(ऽ*)नुरूपो
७ मतिमान्विनितो
मेधा-स्मृतिभ्यामनपेत-भाव ।

सत्यार्ज्जवौदार्य-नयोपपन्नो
माधुर्य-दाक्षिण्य-यशोन्वितश्च ॥८
भक्ता(ऽ)नुरक्तो नृ (विशे)ष-युक्त
सर्व्वोपधाभिश्च विशुद्ध-बुद्धि ।
आनृण्य-भावोपगतान्तरात्मा ।
सर्व्वस्य लोकस्य हिते प्रवृत्त ॥९

८ न्यायार्ज्जने(ऽ*)र्थस्य च कः समर्थ
स्यादर्जितस्याप्यथ रक्षणे च ।
गोपायितस्यापि (च) वृद्धि-हेतौ
वृद्धस्य पात्र प्रतिपादनाय ॥१
सर्व्वेषु भृत्येष्वपि संहतेषु
यो मे प्रशिष्यान्निखिलान्सुराष्ट्रान् ।
आं ज्ञातमेकः खलु पर्णदत्तो
भारस्य तस्योद्वहने समर्थ ॥११

९ एवं विनिश्चित्य नृपाधिपेन
नैकानहो-रात्र-गणान्स्व-मत्या ।
यः संनियुक्तो(ऽ*)र्थनया कथंचित्
सम्यक्सुराष्ट्रावनि-पालनाय ॥१२
नियुज्य देवा वरुणं प्रतीच्यां
स्वस्था यथा नोन्मनसो बभूवु( ) (।*)
पूर्व्वेतरस्यां दिशि पर्णदत्तं
नियुज्य राजा धृतिमांस्तथाभूत् ।(।*)१३

१० तस्यात्मजो ह्यात्मज-भाव-युक्तो
द्विधेव चात्मात्म-वशेन नीत ।
सर्व्वात्मनात्मेव च रक्षणीयो
नित्यात्मवानात्मज-कान्त-रूप ।(।*)१४
रूपानुरूपैर्ल्ललितैर्व्विचित्रै
र्न्नित्य-प्रमोदान्वित-सर्व्वभाव ।
प्रबुद्ध-पद्माकर-पद्मवक्त्रो
नृणां शरण्य शरणागतानाम् ।(।*) १५

११ अभवद्भुवि चक्रपालितो(ऽ*)साविति नाम्ना प्रथित प्रियो जनस्य ।
स्वगुणैरनुपस्कृतैरुदारै(स) पितरं यश्च विशेषयांचकार ।(।)१६

क्षमा प्रभुत्व विनयो नयश्च
शौर्य विना शौय-मह(ा)त्त्वंन च ।
दाक्ष्य दमो दानमदीनता च
दाक्षिण्यमानृण्यम(शू)न्यता च ।(।*) १७
सौंदर्यमार्यतर-निग्रहश्च
अविस्मयो धैर्य्यमुदीर्णता च ।

१२ इत्येवमेते(ऽ*)तिशयेन यस्मि-
न्नविप्रवासेन गुणा वसन्ति ।(।*) १८
न विद्यते(ऽ*)सौ सकले(ऽ*)पि लोके
यत्रोपमा तस्य गुणै क्रियेत ।
स एव कात्स्न्र्येन गुणान्वितानां
वभूव नृणामुपमान-भूत ।(।*)१९
इत्येवमेतानधिकानतो(ऽ*)न्या-
न्गुणान्प(री)क्ष्य स्वयमेव पित्रा ।
य स नियुक्तो नगरस्य रक्षा
विशिष्य पूर्वान्प्रचकार सम्यक् ।(।*) २०

१३ आश्रित्य विर्य- (स्वभु)ज-द्वयस्य
स्वस्यैव नान्यस्य नरस्य दर्प ।
नोद्वेजयामास च कञ्चिदेव-
मस्मिन्पुरे चैव शशास दुष्टा ।(।*) २१
विस्रम्भमल्पे न शशाम यो(ऽ—)स्मिन्
काले न लोकेषु स-नागरेषु ।
यो लालयामास च पौरवर्गान्
(स्वस्येव—) पुत्रान्सुपरीक्ष्य दोषान् ।(।*) २२
सरजया च प्रकृर्तीर्वभूव
पूर्व्व-स्मिताभाषण-मान-दानै ।

१४ निर्यन्त्रणान्योन्य-गृह-प्रवेश(*)
सर्व्वद्धित-प्रीति-गृहोपचा ।(।*) २३
व्रह्मण्य-भावेन परेण युक्त
(शु)क्ल शुचिर्दानपरो यथावत् ।
प्राप्यान्स काले विषयान्सिषेवे
धर्मार्थयोश्चा(प्य*)विरोधनेन ।(।*) २४

(यो — ∪ — — ∪ ∪ पर्वतता)
स्व न्यायवानत्र किमस्ति चित्रं ।
मुक्ता-कलापाम्बुज-पद्म-शीता-
च्चन्द्रात्किमुष्णं भविता कदाचित् ।(।*) २५
१५ अथ क्रमेणाम्बुद-काल आग(ते)
(नि)दाघ-कालं प्रविदार्य तोयदः ।
ववर्ष तोयं बहु संततं चिरं
सुदर्शनं येन बिभेद चात्वरात् ।(।*) २६
संवत्सराणामधिके शते तु
त्रिंशद्भिरन्यैरपि षड्भिरेव ।
रात्रौ दिने प्रौष्ठपदस्य षष्ठे
गुप्त-प्रकाले गणनां विधाय ।(।) २७
१६ इमाश्च या रैवतकाद्विनिर्गता (।)
पलाशिनीयं सिकता-विलासिनी ।
समुद्र-कान्ताः चिर-बन्धनोषिताः
पुनः पतिं शास्त्र-यथोचितं ययुः ।(।) २८
अवेक्ष्य वर्षागमजं महोद्भ्रम
महोदधेरूर्जयता प्रियेप्सुना ।
अनेक-तीरान्तज-पुष्प-शोभितो
१७ नदीमयो हस्त इव प्रसारितः ।(।) २९
विषाद(माना) (खल) (सर्वतो) (ज)ना ( )
कथं-कथं कार्यमिति प्रवादिनः ।
मिथो हि पूर्वापर-राष्ट्रमुत्थिता
विचिन्तयां चापि बभूवुरुत्सुका ।(।) ३
अपीह लोके सकले सुदर्शनं
पुमां हि दुर्दर्शनतां गतं क्षणात् ।
१८ भवेन्नु सो(ऽ*)म्भोनिधि-तुल्य-दर्शनं
सुदर्शनं — ∪ ∪ — ∪ — ∪ — (।।*) ३१
∪ — ∪ — — — ∪ वण स भूत्वा
पितुः परां भक्तिमपि प्रदर्श्य ।
धर्मं पुरोधाय शुभानुबन्धं
राज्ञो हितार्थं नगरस्य चैव ।(।*) ३२
संवत्सराणामधिके शते तु

१९ त्रिंशद्भिरब्दैरपि सप्तभिश्च ।
(गुप्त)-(प्रकाले*) (नय*)-शास्त्र-वेत्ता (?) ।
विश्वो (ऽ*)प्यनुज्ञात-महाप्रभाव ।(।*) ३३
आज्य-प्रणामै विबुधानयेष्ट्वा
धनैर्द्विजातीनपि तर्पयित्वा ।
पौरास्तथाभ्यर्च्य यथार्हमानै
भृत्यांश्च पूज्यान्सुहृदश्च दानै ।(।*) ३४
२० ग्रैष्मस्य मासस्य तु पूर्व-प(क्षे)
⏑ — ⏑ — — (प्र)थमे(ऽ*)ह्नि सम्यक् ।
मास-द्वयेनादरवान्स भूत्वा
धनस्य कृत्वा व्ययमप्रमेयम् ।(।*) ३५
आयामतो हस्त-शत समग्र
विस्तारत पष्टिरथापि चाष्टौ ।
२१ उत्सेधतो (ऽ*) न्यत् पुरुषाणि (सप्त?)
⏑ — ⏑ — (ह)स्त-शत-द्वयस्य ।(।*) ३६
बबन्ध यत्नान्महता नृदेवा-
न(भ्यर्च्य?) सम्यग्घटितोपलेन ।
अ-जाति-दुष्टम्प्रथित तटाक
सुदर्शन शाश्वत-कल्प-कालम् ।(।*) ३७
२२ अपि च सुदृढ-सेतु-प्रान्त(?)-विन्यस्त-शोभ-
रथचरणसमाह्व-क्रौचहसाम-धूतम् ।
विमल-सलिल — — — ⏑ — — ⏑ — —
भुवि त ⏑ ⏑ ⏑ — — — द(ने)(ऽ*)र्कं शशी च ।(।*)३८
२३ नगरमपि च भूयाद्वृद्धिमत्पौर-जुष्ट
द्विजबहुशतगीत-ब्रह्म-निर्नष्ट-पाप ।
शतमपि च समानामीति दुर्भिक्ष-(मुक्त*)
⏑⏑⏑ ⏑⏑⏑ — — — ⏑ — — ⏑ — —(।।*) ३९
(इति) (सुद)र्शन-तटाक-सस्कार-ग्रन्थ रचना (स)माप्ता ॥

द्वितीय अश

२४ दृप्तारि-दर्प-प्रणुद पृथु-श्रिय
स्ववङ्कश-केतो - सकलावनी-पते ।
राजाधिराज्याद्भुत-पुण्य-(कर्मण)-

◡ — ◡ — — ◡ ◡ — ◡ — ◡ (॥*) ४
— — ◡ — — ◡ ◡ — ◡ — —
— — ◡ — — ◡ ◡ — ◡ — — (।*)
द्वीपस्य गोप्ता महतां च नता
दस्यु-रिपु (दा)णा

२५ ज्ञिषतां दमाय ।(।*) ४१
तस्यात्मजेनात्मगणान्वितेन
गोविन्द-माताभिमत-जीवितेन ।
— — ◡ — ◡ ◡ — ◡ — —
— — ◡ — — ◡ ◡ — ◡ — — (॥*) ४२
— — ◡ — ◡ ◡ ◡ — ◡ ◡ — ◡ — र्म
दिव्योस्य पादकमले समवाप्य राज ।
धर्मस्यदन

२६ महता महता च काले-
नारम-प्रभाव-मत-पौरजनेन तेन ।(।*) ४३
चक्रं बिभर्ति रिपु — ◡ ◡ — ◡ — —
— — ◡ — ◡ ◡ ◡ — ◡ ◡ — ◡ — — (।*)
— — ◡ — ◡ ◡ ◡ — ◡ ◡ — ◡ — —
तस्य स्व-वंश-विधि-कारण-मानुषस्य ।(।*) ४४

२७ कारितमवक्र-मतिना चक्रभृत चक्रपालितेन गृह ।
वर्षशते(ऽ*)ष्टात्रिंशे गुप्तानां काल (क्रम-गणिते*) (॥*) ४५
— — ◡ — ◡ ◡ ◡ — ◡ ◡ — ◡ — —
— — ◡ — ◡ ◡ ◡ — ◡ ◡ — ◡ — — (।*)
(स-)र्ममुचितमिवार्जयतो(ऽ*)चलस्य

२८ कुर्वन्नमुत्कमिव भाति पुरस्य मूर्ध्नि ॥ ४६
अन्यच्च मूर्धनि मु — ◡ ◡ — ◡ — —
— — ◡ — ◡ ◡ ◡ — ◡ ◡ — ◡ — — (।*)

स्कन्द गुप्त का कहौम-लेख

(तिथि गु स १४१)

सिद्धम (॥*)

१ यस्योपस्थान-भूमिर्नृपति-शत-शिर:-पात-वातावधूता

२ गुप्ताना वन्शजस्य प्रविसृत-यशसस्तस्य सर्व्वोत्तमर्द्धे (।*)
३ राज्य शक्रोपमस्य क्षितिप-शत-पते स्कन्दगुप्तस्य शान्ते
४ वर्षे त्रिन्शद्दशैकोत्तरक-शततमे ज्येष्ठ-मासि प्रपन्ने।(।*) १
५ ख्याते(ऽ*)स्मिन्ग्राम-रत्ने ककुभ इति जनैस्साधु-सम्सर्ग-पूते।
६ पुत्रो यस्सोमिलस्य प्रचुर-गुण-निधेर्भट्टिसोमो महा(त्मा) (।*)
७ तत्सूनू रुद्रसोम(*) पृथुल-मति-यशा व्याघ्र इत्यन्य-सज्ञो।
८ मद्रस्तस्यात्मजो(ऽ*)भूद्द्विज-गुरु-यतिषु प्रायश प्रीतिमान्य ।(।*) २
९ पुण्य-स्कन्ध स चक्रे जगदिदमखिल सम्सरद्वीक्ष्य भीतो
१० श्रेयोर्त्थं भूत-भूत्यै पथि नियमवतामर्हतामादिकर्त्तॄन् (।*)
११ पञ्चेन्द्रा स्थापयित्वा धरणिधरमयान्सन्निखातस्ततो(ऽ*)यम्
१२ शैल-स्तम्भ सुचारुर्गिरिवर-शिखराग्रोपम कीर्त्ति-कर्त्ता (।।*) ३

स्कन्द गुप्त का इंदौर ताम्रपत्र-लेख

(तिथि गु० स० १४६)

१ सिद्धम् (।।*)

य विप्रा विधिवत्प्रवुद्ध-मनसो ध्यानैकताना स्तुव

यस्यान्त त्रिदशासुरा न विविदुर्न्नोर्ध्वं न तिर्य-

२ ग्गति(म्) (।*)

य लोको वहु-रोग-वेग-विवश सश्रित्य चेतोलभ

पायाद्व स जगत्पि(धा)न-पुट-भिद्ररश्म्या-

३ करो भास्कर ।।१

परमभट्टारक-महाराजाधिराज-श्रीस्कन्दगुप्तस्याभिवर्द्धमान-विजय-राज्य-सम्वत्सर-शते षच्चत्वा

४ (रि*)ङ्शदुत्तरतमे फाल्गुन-मासे तत्प(ा*)द-परिगृहीतस्य विषयपति-शर्व्वनागस्यान्तर्व्वेद्यां भोगाभिवृद्धये वर्त्त-

५ माने चन्द्रापुरक-पद्मा-चातुर्व्विद्य-सामान्य-ब्राह्मणदेवविष्णुर्द्देव-पुत्रो हरित्रात-पौत्र डुडिक-प्रपौत्र सततताग्निहो-

६ त्र-छन्दोगो राणायणीयो वर्षगण-सगोत्र इन्द्रापुरक-वणिग्भ्या क्षत्रियाचल-वर्म-भृकुण्ठसिंहाभ्याधिष्ठा-

७ नस्य प्राच्या दिशीन्द्रपुराधिष्ठान-माडास्यात-लग्नमेव प्रतिष्ठापितकभगवते सवित्रे दीपोपयोज्यमात्म-यशो-

८ भिवृद्धये मूल्य प्रयच्छति (।।*) इन्द्रपुर-निवासिन्यास्तैलिक-श्रेण्या जीवन्त-प्रवराया इतो(ऽ*)धिष्ठानादपक्रम म-

९ वन्द-मुनीर्तीव्यक्रमेण क्रमेण
प्रतिदिनमभियोगादीप्सित येन ल(ब्ध)ा (।*)
स्वभिमत-विजिगीषा-प्रोद्यताना परेषा
प्रणि-
१० हित इव ले(भे) (स) विधानोपदेश (॥*) ३
विचलित-कुल-लक्ष्मी-स्तम्भनायोद्यनेन
क्षितितल-शयनीने येन नीता त्रियामा (।*)
समु-
११ दित-वल(ल)-कोशा(न्पुष्यमित्राश्च) (जि)त्वा
क्षितिप-चरणपीठे स्थापितो वाम-पाद (॥*) ४
प्रसभमनुप [मै] र्विध्वस्त-शस्त्र-प्रतापै-
विन(य-स)मु-
१२ (चितैश्च*) क्षान्ति-शौ(र्य्यै)र्न्निरूढम् (।*)
चरितममलकीर्त्तेर्गीयते यस्य शुभ्र
दिशि दिशि परितुष्टैराकुमार मनुष्यै (॥*) ५
पितरि दिवमुपे(ते)
१३ विप्लुता वङ्श-लक्ष्मी
भुज-वल-विजितारिर्य्य प्रतिष्ठाप्य भूय (।*)
जितमिति परितोषान्मातर सास्त्र-नेत्रा
हतरिपुरिव कृष्णो देवकीमभ्युपे-
१४ (त) (॥*) ६
(स्वै)र्द(ण्डै) ⏑ ⏑ — ⏑ — त्प्रचलित वङश प्रतिष्ठाप्य यो
वाहुभ्यामवनिं विजित्य हि जितेष्वार्त्तेषु कृत्वा दयाम् (।*)
नोत्सिक्तो (न) च विस्मित प्रतिदिन
१५ सवर्द्धमान-द्युति
गीतैश्च स्तुतिभिश्च वन्दक-जनो (?) य (प्रा) पयत्यार्य्यताम्
(॥*) ७
हूणैर्य्यस्य समागतस्य समरे दोर्भ्या धरा कम्पिता
भीमावर्त्त-करस्य
१६ शत्रुषुशरा — — ⏑ — — ⏑ — (।*)
— — — ⏑ ⏑ - ⏑ - विरचित (?) प्रख्यापितो (दीप्तिदा?)
न द्यो(?)ति ⏑ नमी(?)षु लक्ष्यत इव श्रोत्रेषु गाङ्ग-ध्वनि
(॥*) ८

८ — — ⏑ — — — ⏑ ⏑ — ⏑ — —
— — ⏑ — — — ⏑ ⏑ — ⏑ — — (।*)
भद्रार्य्यया भाति गृह नवाभ्-
निर्म्मोक-निर्मु (क्त) ⏑ — ⏑ — — (॥*) ८

९ — — ⏑ — — — ⏑ ⏑ — ⏑ — —
— — ⏑ — — — ⏑ ⏑ — ⏑ — — (।*)
स्कन्द-प्रधानैर्भुवि मातृभिश्च
लोकान्स सुण्य (?) ⏑ ⏑ — ⏑ — — (॥*) ९

१० — — ⏑ — — — ⏑ ⏑ — ⏑ — —
— — ⏑ — — — ⏑ ⏑ — ⏑ — —
— — ⏑ — — — ⏑ ⏑ — ⏑ — —
— — ⏑ यूपोच्छ्रयमेव चक्रे (॥*) १०

११ (स्क*)न्दगुप्त-वटे अन्शानि ३०(+*) ५ ता(?)म्रकटा-
१२ पितु स्वमातुर्य्यदस्ति हि दुष्कृत भजतु तने
१३ काम्रहारे अन्शानि ३ अनन्तसेनेनोप

द्वितीय अश

१४ (सर्व्व-राजोच्छे*)त्तु प्रिथिव्यामप्रतिरथस्य
१५ (चतुरुदधि-सलिलास्वादित-यशसो धनद-वरुणे*)न्द्रान्तकसमस्य कृतान्त
१६ (परशो न्यायागतानेक-गो-हिरण्य-कोटि-प्रदस्य चिरो*)त्सन्नाश्वमेधाहर्त्तु
१७ (महाराज-श्रीगुप्त-प्रपौत्रस्य महाराज-श्रीघटो*)त्कच-पौत्रस्य महाराजा-
१८ (धिराज-श्रीचन्द्रगुप्त-पुत्रस्य लिच्छवि-दौहित्रस्य म*))हादेव्या कुमारदेव्यामुत्पन्नस्य
१९ (महाराजाधिराज-श्री-समुद्रगुप्तस्य पुत्र*)स्तत्परिगृहीतो महादेव्या
२० (दत्तदेव्यामुत्पन्न स्वय चाप्रतिरथ पर*)मभागवतो महाराजा-
२१ (धिराज-श्रीचन्द्रगुप्तस्तस्य पुत्रस्तत्पादानुद्धया*)तो महादेव्या ध्रुवदेव्या-
२२ (मुत्पन्न परम-भागवतो महाराजाधिराज-श्रीकुमारगुप्तस्तस्य*) पुत्रस्त-त्पादानुद्धयात
२३ (परम-भागवतो महाराजाधिराज-श्रीस्क*)न्दगुप्त (॥*)
२४ परमभागवतो
२५ (महाराजाधिराज-श्री-स्कन्दगुप्त *) (व*)पयिकाजपुरकसामै-(ग्रा) (म*)-
२६ ग्रा क (अ—)क्षय-नीवी ग्रामक्षेत्र

वुधगुप्त का सारनाथ प्रतिमा-लेख

(तिथि गु० स० १५७)

१ गुप्तानां समनिक्रान्ते सप्तपचाशदुत्तरे (।*)
शते समानां पृथिवी बुधगुप्ते प्रशासति ॥ १
(वैशाख-मास-सप्तम्या मूले श्याम-गते*)
मया (।*)
कारिताभयमित्रेण प्रतिमा शाक्य-भिक्षुणा ॥२
इमामुद्दण्ड-सच्छत्र-पद्मास(न-विभूषिता ।*)
(देवपुत्रवतो दिव्या *)
३ चित्रवि(द्या)-सचित्रिता ॥३
यदत्र पुण्य प्रतिमा कारयितत्वा मया भृतम् (।*)
माता-(पित्रोर्गु)(रूणा च लोकस्य च समाप्तये ॥*) ४

बुधगुप्त का दामोदर पुर ताम्रपत्र-लेख

(तिथि गु० स० १६३)

१ (स १००*)(+*) (६०) (+*) ३ आपाढ-दि १० (+*) ३ परमदैवत-परम-भट्टा(र)क-महाराजाधिराज-श्रीबुधगुप्ते (पृथि)वी-पतौ तत्पाद-(परि)गृहीते पुण्ड्र(व)-

२ (र्द्धन)भुक्तावुपरिक-महाराज-ब्रह्मदत्ते सव्यवहरति(।*) स्व(स्ति)(।*) पलाशवृन्दकात्सविश्वास महत्तराद्यष्टकुलाधि(क)-

३ (र)ण-ग्रामिक-कुटुम्बिनश्च चण्डग्रामके ब्राह्मणाद्यान्क्षुद्र-प्रकृति-कुटुम्बिन कुशल-मुक्त्वानुदर्शयन्ति (यथैव ?)

४ (वि)ज्ञापयती नो ग्रामिक-नाभको(ऽ*)हमिच्छे मातापित्रोस्स्वपुण्याप्यायनाय कदिचिद्ब्राह्मणार्य्यान्प्रतिवासयितु

५ (तद)र्हथ ग्रामानुक्रम-विक्रय-मर्य्यादया मत्तो हिरण्यमुपसगृह्य समुदयवाह्याप्रद-(खिल-क्षेत्राणा( )

६ (प्र)साद कर्त्तुमति (।*) यत पुस्तपाल-पत्रदासेनावधारित युक्तमनेन विज्ञापित-मस्त्यय विक्रय

७ मर्य्यादा-प्रसङ्गस्तद्दीयतामस्य परमभट्टारक-महाराज-पा(दे)न पुण्योपचयायेति (।*) पुनरस्यैव

८ (पत्रदा)सस्यावधारणयावधृत्य नाभक-हस्ताद्दीनार-(द्वय)मुपसगृह्य स्थायपाल-कपिल-श्रीभद्राभ्यायायकृत्य च समुदय-

९ (वाह्याप्रद*)-(खि)ल-क्षेत्रस्य कुल्यवापमेकमस्य वायिग्रामकोत्तर-पार्श्वस्यैव च सत्यमर्य्यादाया दक्षिण-पश्चिम-पूर्वेण

२७ ... ... क उपरिक-कुमारामात्य
२८ ग्रि कुल (?) वणि (ज*)क-पारिवारिक-
२९ ... (मा*) महारिक-शौल्किक-गौल्मिकास्स यां म (?)
३ वा (सि) कादीनस्मत्प्रसादोपजीविन ●
११ (समाज्ञापयामि*) ... अस्मत्पा वित्रापितो (ऽ*) स्मि मम पितामहेन
१२ मम भटृ-गुहिस्वामिना मम्रा (र्म) का
१३ ... (म) ति ... वाप्रोक्य ... वाक्य ... ...

द्वितीय कुमार गुप्त का सारनाथ प्रतिमा लेख

(तिथि गु स १५४)

१ वर्षशते गुप्तानां सचतुःपञ्चाशदुत्तरे (।*)
भूमि रक्षति कुमारगुप्ते मासि ज्यष्ठ- द्वितीयायाम् ॥ १
२ भक्त्यावर्जित-मनसा यतिना पूजार्थमभ्यमित्रय (।*)
प्रतिमा-प्रतिमस्य गण (र) प (रे) म (का) रिता शास्तु ॥ २
३ माता-पितृ-गुरु-पू (र्व्व) पुण्येनानेन सत्व-काया (ऽ*) य (।*)
लभतामभिमतमुपशमन * * * म् ॥ ३

द्वितीय कुमार गुप्त का भितरी मुद्रा-लेख

१ (सर्व्व) राजोच्छेत्तु पृथिव्यामप्रतिरथस्य महाराज-श्री (गुप्त)-प्रपौ (त्र)
स्य महाराज श्रीघटोत्कच-पौत्रस्य म (हा)
२ (राजा) धिर (ा) ज-श्रीचन्द्रगुप्त-पुत्रस्य लिच्छ (वि-दौहित्रस्य) म (हादे)
व्य (ा) (कुमा) रदेव्यामुत्पन्नस्य महाराजाधिराज
३ (श्री) समुद्रगुप्तस्य पुत्रस्तत्परि (गृही) तो म (हादेव्या) (दत्तदेव्या) मुत्पन्न-
स्स्वय च (ा) प्रतिरथ परमभाग
४ (वतो) (महाराजा) धिराज-श्रीचन्द्रगुप्तस्तस्य (पुत्र) स्तत्पाद (ा) नु
(ध्या) तो महादेव्य (ा) (ध्रु) वदेव्यामुत्पन्नो म (हारा)
५ (जाधि) राज-श्रीकुमार (गुप्त) स्तस्य पुत्रस्तत्पादानुध्या (तो) महादेव्यां-
अनन्तदेव्य (ा) मुत्पन्नो महा (रा)
६ (जाधिरा) ज-श्री (पुरगुप्त) स्तस्य पुत्रस्तत्पादानुध्या (तो) महादे (व्यां)
श्री चन्द्रदेव्यामुत्प (न्नो) म (हा)
७ (राजाधिरा) ज-श्रीनरसिंहगुप्तस्तस्य (पु) त्रस्त (त्पा) दा (नुध्यातो) मह
(ादेव्यां) श्रीम (मित्र)
८ (देव्या) मु (त्प) न्न परमभ (ा) गवतो मह (ाराजाधिरा) ज-श्रीकुम (ा) र
(गुप्त ॥)

बुधगुप्त का दामोदर पुर ताम्रपत्र-लेख

१ फाल्गुन-दि १० (+*) (५) परमदैवत-परमभट्टारक-
महाराजाधिराज-श्रीबुधगु(प्ते) (पृथिवी*)-

२ (पतौ*) (त*) त्पाद-परिगृहीतस्य पुण्ड्रवर्द्धन-भुक्तावुपरिक-महाराज-
जयदत्तस्य भोगेन(वहमा)-

३ नके (को)टि(वर्ष)-विषये च तन्नियुक्तकायुक्तक-शण्डके अधिष्ठानाधि-
करण(*) नगरश्रेष्ठिरिभु-

४ पा(ल)-सार्थवाहवसुमित्र-प्रथमकुलिकवरदत्त-प्रथमकायस्थविप्रपाल-पुरोगे
च सं(व्य)वहरति

५ अनेन श्रेष्ठि-रिभुपालेन विज्ञापितं हिमवच्छिखरे कोकामुखस्वामिन
चत्वार कुल्यवापा (श्वे)तव-

६ राहस्वामिनो(ऽ*)पि सप्त कुल्यवापा अस्म कृतज्ञतानिनो पुन्याभिवृद्धये
डोङ्गाग्रामे पूर्व्वं मया

७ अप्रदा अनिसृष्टास्तदहन्तक्षेत्र-सामीप्य-भूमौ तयोराद्य-कोकामुखस्वामि-
श्वेतवराह-

८ स्वामिनोर्न्ना(म)लिङ्गमेत देवकुल-द्वयमेतत्कोष्ठिका-द्वयञ्च कारयितुमि-
च्छाम्यर्हथ वास्तुना

९ सह(कुल्य)वापान्ययाप्रय-मर्य्यादया दातुमिति (।*) यत पुस्तपाल-
विष्णुदत्त-विजय-(नन्दि)-स्थानु-

१० नन्दिनामवधारणयावधृतमस्त्यनेन हिमवच्छिखरे तयो कोकामुखस्वामि-
श्वेतवरा(ह)-स्वामि(नो)

११ अप्रदा-क्षेत्र-कुल्यवापा एकादश दत्तकास्तदर्थञ्चेह देवकुल-कोष्ठिका-करणे
युक्त(मे)त-(द्विज्ञा)-

१२ (पित) (क्र)मेण तत्क्षेत्र-सामीप्य-भूमौ वास्तु दातुमित्यनुवृत्त-त्रिदीनारि-
क्यकु(ल्यवा)प-विक्रय(मर्य्या)द-

१३ (या*)

१४ पु(ष्करि)णी पू(र्व्वेण) रिभु(पा)ल-पु(ष्करिणी?)
(दक्षिणेन)

१५ दत्ता (ऽ*) (त)दुत्तरकाल (स)व्यवहारिभिर्द्धे-
वभ(क्त्या)नु-मन्तव्या (उक्त) व्यासेन (।*)
स्व-दत्ता परदत्ता-

१६ (म्वा) यो हरेत) वसुन्धराम् (।*)

आक्षेप्ता चानुमन्ता च ता-

१३ न्येव न(र*)के वसेत् (॥*) १
स्व-दत्ता पर-दत्ताम्वा यो हरेत (वसु)न्धरा (।*)
(स) विष्ठाया कृमिर्भूत्वा पितृभि सह पच्यते (॥*) २

१४ पूर्व्व-दत्ता द्विजातिभ्यो यत्नाद्रक्ष युधिष्ठिर (।*)
मही महीमता श्रेष्ठ दानाच्छ्रेयो(ऽ*)नुपालन (॥*) ३
वर्त्तमानाष्टाशीत्यु-

१५ त्तर-शत-संवत्सरे पौष-मासस्य चतुर्व्विन्शतितम-दिवसे दूतकेन महाप्रतीहार-
महापीलुपति-पञ्चाधि-

१६ करणोपरिक-पाटयुपरिक-(पुर?)पुरपालोपरिक-महाराज-श्रीमहासामन्त-
विजयसेने नैतस्मिकादश-पाटक-दा-

१७ नायाशासनुभाविता कुमारामात्य-रेवज्जस्वामी भामह-वत्स-भोगिका
(॥*) लिखित सन्धिविग्रहाधिकरण-काय-

१८ स्थ-नरदत्तेन (॥*) यत्रैक-क्षेत्रखण्डे नव-द्रोणावापाधिक-सप्त-पाटक-
परिमाणे सीमालिङ्गानि (।*) पूर्व्वेण गुणेका-

१९ ग्रहारग्राम-सीमा विष्णुवर्धकि-क्षेत्रञ्च (।*) दक्षिणेन मिदुविलाल(ऽ?)-
क्षेत्र राज-विहार-क्षेत्रञ्च (।*) पश्चिमेन सूरो-नागी-रम्पूर्णोक-

२० क्षेत्र (।*) उत्तरेण दापी-भोग-पुष्करिण (ी)
(ए*)वम्पियाकादित्य-बन्धु-क्षेत्राणाञ्च सीमा (॥*)

२१ द्वितीय-खण्डस्याष्टाविन्शति-द्रोणवाप-परिमाणस्य सीमा (।*) पूर्व्वेण
गुणिकाग्रहारग्राम-सीमा (।*) दक्षिणेन पक्क-

२२ विलाल(?)-क्षेत्र (।*) पश्चिमेन राजविहार-क्षेत्र (।*)उत्तरेण वैद्य-
(?)-क्षेत्र (॥*) तृतीय-खण्डस्य त्रयोविन्शति-द्रोणवाप-

२३ परिमाणस्य सीमा (*) पूर्व्वेण क्षेत्र (।*) दक्षिणेन
नखद्वार्च्चरिक(?)-क्षेत्र-सीमा (।*) पश्चिमेन

२४ ज(जो?)लारी-क्षेत्र (।*) उत्तरेण नागी-जोडाक-क्षत्र (॥*) चतुर्थस्य
त्रिंशद्द्रोणवाप-परिमाण-क्षेत्र-खण्डस्य सीमा (।*) पूर्व्वेण

२५ वुद्धाक-क्षेत्र-सीमा(।*) दक्षिणेन कालाक-क्षेत्र (।*) पश्चिमेन (सू)र्य्य-
क्षेत्र-सीमा (।*) उत्तरेण महीपाल-क्षेत्र (॥*) (प)ञ्चमस्य

२६ पादोन-पाटक-द्वय-परिमाण-क्षेत्र-खण्डस्य सीमा (।*) पूर्व्वेण खण्ड-
वि(ड्ड)ग्गुरिक-क्षेत्र (।*) दक्षिणेन मणिभद्द्र-

२७ क्षेत्र (।*) पश्चिमेन यज्ञरात-क्षेत्र-सीमा (।*) उत्तरेण नादडदकग्राम-
सीमेति (॥*) विहार-तलभूमेरपि सीमा-लिङ्गानि (।*)

स विष्टा (यां) क्रिमिर्भूत्वा पि (तृ) भिस्स (ह पच्यते) (॥*) १

पूर्व्व-दत्तां द्विजातिभ्यो

१७ (यत्नाद्रक्ष य) धिष्ठिर (।*)

महीं (महीमतां) श्रेष्ठ दा (नाच्छ्रे यो (ऽ*) नुपालनं) (॥*) २

(बहु) भिर्व्वसु (धा द) त्ता

१८ (राजभिस्स) गरा दिभिः (।*)

(य) स्य (य) स्य यदा भूमि (स्तस्य तस्य) त (दा) फलमिति (॥*) ३

वैन्यगुप्त का गुणैघर ताम्रपत्र-लेख

(तिथि गु स १८८)

१ स्वस्ति (॥*) महानौ-हस्त्यश्व-जयस्कन्धावारात्क्रीपुराद्भगवन्महादेव-पादा नुध्यातो महाराज-श्रीवैन्यगुप्तः

२ कुशली * * * * * * * * * स्वपादोपजीविनश्च कुशलमाशंस्य समाज्ञा- पयति (।*) विदितं भवतामस्तु यथा

३ मया मातापित्रोरात्मनश्च पु (ण्या) भिवृ (द्ध) य (ऽ*) स्मत्पादवास-महा- राजरुद्रदत्त-विज्ञाप्यादनेनैव महायानिक-शाक्यभिक्षा

४ चार्य्य-शान्तिदेवमुद्दिश्य गोप (?) (दिग्भाग?) कार्य्य माण-कार्य्यावलोकितेश्वराश्रम-विहारे अनेन

५ चाचार्य्येण प्रतिपादित (क?) -महायानिक-वैवर्त्तिक-भिक्षु-संघानाम्परिग्रहे भगवतो बुद्धस्य सततं त्रिष्कालं

६ गन्ध-पुष्प-दीप-धूपादि-प्र (वर्त्तनाय-) (त-) स्य भिक्षुसंघस्य च चीवर पिण्डपात-शयनासन-ग्लानप्रत्यय-भैषज्यादि

७ परिभोगाय विहारे (-च) खण्ड-फुट्ट प्रतिसंस्कार-करणाय उत्तरमाण्ड- लिककान्तेदत्तकग्रामे अग्रहारो भो-

८ मनाग्रहारत्वेनैकादश-खिल-पाटका पञ्चभिः ताम्रपट्टेनातिसृष्टा (।) अपि च खलु श्रुति-स्मृती

९ (ति*) हा (स)-विहितां पुण्यभूमिदान-श्रुतिमहिकामुष्मिक-फल-विशेष स्मृतो भावत समुपनम्य स्वदस्तु भी

१ ग्रामस्यपूर्व्वस्य पारवेभ्यो भूमि * * * * * * * * * * * (।*) शिव (?) क्रूरस्य-ब्राह्मण-गौरवास्य-यशो-धर्म्मावाप्तय भवे

११ पाटका अस्मिन्भि (?) हारे कस्यत्काकमन्य (नुपालयितव्या ॥) अनुपालन स्पृष्टि च भगवता पराशरात्मजेन वेदव्यासे

१२ नैव व्याहृता श्लोका भवन्ति (।) षष्टिं वर्ष-स (हस्रा) णि स्वर्गे मोदति भूमिदः (।)

२ गुप्ते पृथिवीपतौ तत्पाद-परिगृहीते पुण्ड्रवर्द्धन--भुक्तावुपरि (क-महाराजस्य) (महा*)-

३ राजपुत्र-देवभट्टारकस्य हस्त्यश्व-जन-भोगेनानुवहमा(न)के को(टिव)-र्ष-विष(ये) च त-

४ न्नियुक्तकेहविषयपति-स्वयम्भुदेवे अधिष्ठानाधिकरण(म्*) आर्य्य(न)गर-(श्रेष्ठिरिभु) पाल-

५ सार्त्थवाहस्थाणुदत्त-प्रथमकुलिकमतिदत्त-प्रथमकायस्थस्कन्दपाल-पुरोगे (स) व्य(वह) रति

६ आयोध्यक-कुलपुत्रक-अमृतदेवेन विज्ञापितमिह-विषये समुदयबाह्याप्रहत-खिल-(क्षे)त्त्रा-

७ णा त्रिदीनारिक्यकुल्यवाप-विक्रयो(ऽ*)नुवृत्त तपुर्हथ मत्तो दीनारानुप-सगृह्य मन्मातु (पु)ण्या-

८ भिवृद्धये अत्रारण्ये भगवत श्वेतवराहस्वामिनो देवकुले खण्ड-फुट्ट-प्रति-(स)स्का(र)-(क)-

९ रणाय बलिचरुसत्रप्रवर्त्तन-गव्यधूपपुष्पप्रापण-मधुपर्क्कदीपाद्युप(यो)गा(य) च

१० अप्रदा-धर्म्मेण ताम्रपट्टीकृत्य क्षेत्र-स्तोकन्दातुमिति (।*) यत प्रथमपुस्त-पाल-नर(न)न्दि-

११ गोपदत्त-भट(?)नन्दिनामवधारणयो युक्त(त)या धं(र्म्माधि)कार-(बु)-द्धया विज्ञापित (*) ना(त्र*) (वि*)-

१२ पय-पतिता(*) कश्चिद्विरोध केवल श्री-परमभट्टारकपादेन धर्म्मप(र)

१३ (तावाप्ति) (*)

१४ इत्यनेनावधारणाक्रमेण एतस्मादमृतदेवात्पञ्चदश-दीनारानुपसगृह्य एत-न्मातु (*)

१५ अनुग्रहेण स्वच्छन्दपाटके(ऽ*) (ढ्ढं)टी-प्रावेश्य-लवङ्गसिकायाञ्च वास्तु-भिस्सह कुल्यवाप-द्वय

१६ साट्वनाश्रमके(ऽ*)पि वास्तुना सह कुल्यवाप एक परस्पतिकायाँ पञ्च-कुल्य-वापकस्योत्त(रे)ण

१७ जम्बून(द्या) पुर्व्वेण कुल्यवाप एक पूरणवृन्विकहरो पाटक-पूर्व्वेण कुल्यवाप एक इत्येव खिल-क्षेत्त्र-

१८ स्य वास्तुना सह पञ्च कुल्यवापा अप्रदा-धर्म्मेण भग(व*)ते श्वेतवराह-स्वामिने शश्वत्कालभोग्या दत्ता (।*)

२ गुप्ते पृथिवीपतौ तत्पाद-परिगृहीते पुण्ड्रवर्द्धन-भुक्तावुपरि(क-म्हाराजस्य)
(महा*)-

३ राजपुत्र-देवभट्टारकस्य हस्त्यश्व-जन-भोगेनानुवहमा(न)क (को)(टिव)-
र्ष्य-विष(ये) च त-

४ न्नियुक्तकेह्विषयपति-स्वयम्भुदेवे अधिष्ठानाधिकरण(म्*) चार्य(न)गर-
(श्रेष्ठिरिभु) पाल-

५ सार्थवाहस्थाणुदत्त-प्रथमकुलिकमतिदत्त-प्रथमकायस्थस्कन्दपाल-पुरोगे (ण)
व्य(वह) रति

६ आयोध्यक-कुलपुत्रक-अमृतदेवेन विज्ञापितमिह-विषये समुदयबाह्याप्रहत-
खिल-(क्षे)त्रा-

७ णा त्रिदीनारिक्यकुल्यवाप-विक्रयो(ऽ*)नुवृत्त तदर्हथ मत्तो दीनारानुप-
सगृह्य मन्मातु (पु)ण्या-

८ भिवृद्धये अत्रारण्ये भगवत श्वेतवराहस्वामिनो देवकुले खण्ड-फुट्ट-प्रति-
(स)स्का(र)-(क)-

९ रणाय बलिचरुसत्रप्रवर्त्तन-गन्धधूपपुष्पप्रापण-मधुपर्कदीपाद्युप(यो)गा(य)
च

१० अप्रदा-धर्म्मेण ताम्रपट्टीकृत्य क्षेत्र-स्तोकन्दातुमिति (।*) यत प्रथमपुस्त-
पाल-नर(न)न्दि-

११ गोपदत्त-भट(?)नन्दिनामवधारणया युक्त(त)या ध(र्म्माधि)कार-(वृ)-
द्धया विज्ञापित (*) ना(त्र*) (वि*)-

१२ षय-पतिना(*) कश्चिद्विरोध केवलं श्री-परमभट्टारकपादेन धर्म्मप(र)

१३ (तावाप्ति) (*)

१४ इत्यनेनावधारणाक्रमेण एतस्मादमृतदेवात्पञ्चदश-दीनारानुपसगृह्य एत-
न्मातु (*)

१५ अनुग्रहेण स्वच्छन्दपाटके(ऽ*) (ड्ढ)टी-प्रावेश्य-लवङ्गसिकायाञ्च वास्तु-
भिस्सह कुल्यवाप-द्वय

१६ साट्ठवनाश्रमके(ऽ*)पि वास्तुना सह कुल्यवाप एक परस्पतिकाया पञ्च-
कुल्य-वापकस्योत्त(रे)ण

१७ जम्बून(द्या) पुर्व्वेण कुल्यवाप एक पूरणवृन्दिकहरो पाटक-पूर्व्वेण कुल्यवाप
एक इत्येव खिल-क्षेत्र-

१८ स्य वास्तुना सह पञ्च कुल्यवापा अप्रदा-धर्म्मेण भग(व*)ते श्वेतवराह-
स्वामिने शश्वत्कालभोग्या दत्ता (।*)

भीम श्रीशानवर्मक्षितिपतिशशिन सैन्यदुग्धोदसिन्धु-
र्लक्ष्मीसप्राप्तिहेतु सपदि विमथितो मन्दरीभूय येन ॥ ८ ॥
शौर्यसत्यव्रतधरो य प्रयागगतो घने ।
अम्भसीव करीषाग्नौ मग्न स पुष्पपूजित ॥ ९ ॥
श्री दामोदरगुप्तोऽभूत्तनय तस्य भूपते ।
येन दामोदरेणैव दैत्या इव हता द्विष ॥ १० ॥
यो मौखरे समितिषूद्धतहूणसैन्य-
वल्गत्घटा विघटयन्नुरुवारणानाम् ॥
सम्मूर्च्छित सुरवधूर्वरयन्ममेति ।
तत्पाणि पङ्कजसुखस्पर्शाद्विबुद्ध ॥ ११ ॥
गुणवद्द्विजकन्याना नानालङ्कारयौवनवतीनाम् ।
परिणायितवान्स नृप शत निसृष्टाग्रहाराणाम् ॥ १२ ॥
श्री महासेनगुप्तोऽभूत्तस्मा द्वीराग्रणी सुत ।
सर्ववीरसमाजेषु लेभे यो धुरि वीरताम् ॥ १३ ॥
श्रीमत्सुस्थितवर्मयुद्धविजयश्लाघापदाङ्क मुहु ।
यस्याद्यापि विबुद्धकुन्दकुमुदक्षुण्णाच्छहार तम् ॥
लौहित्यस्य तटेषु शीतलतलेपूत्फुल्लनागद्रुम-
च्छायासुप्तविबुद्धसिद्धमिथुनै स्फीत यशो गीयते ॥ १४ ॥
वसुदेवादिव तस्माच्छ्रीसेवनशोभितचरणयुग ।
श्रीमाधवगुप्तोऽभून्माधव इव विक्रमैकरस ॥ १५ ॥
नुस्मृतो धुरि रणे श्लाघावतामग्रणी ।
सौजन्यस्य निधानमर्थनिचयत्यागोद्धुराणा वर ॥
लक्ष्मीसत्यसरस्वतीकुलगृह धर्मस्य सेतुर्दृढ ।
पूज्यो नास्ति स भूतले सद्गुणै ॥ १६ ॥
चक्र पाणितलेन सोऽप्युदवहत्तस्यापि शार्ङ्ग धनु ।
नाशायासुहृदा सुखाय सुहृदा तस्याप्यसिर्नन्दक ॥
प्राप्ते विद्विषता वधे प्रतिहत् तेनाप ।
न्या प्रणेमुर्जना ॥ १७ ॥
आजौ मया विनिहिता बलिनो द्विषन्त ।
कृत्य न मेऽस्त्यपरमित्यवधार्य वीर ॥
श्रीहर्षदेवनिजसङ्गमवाञ्छया च ।
॥ १८ ॥
श्रीमान्वभुव दलितारिकरीन्द्रकुम्भ-

मुक्तारब्ध पटलपांसु मवद्दसाय ॥
आविरभसेन इति तत्तनयः शितीशः ।
चूडामणिर्द ॥ १९ ॥
मागत मरिध्वंसोत्सवमाप्तं मम ।
स्वाप्तं सर्वमनुग्यता पुर इति दत्ताया परां बिभ्रति ॥
आशीर्वादपरम्पराभिरसकृद् ॥
मामाम ॥ २ ॥
आजौ स्वेदस्फलेन ध्वजपटपिहितया मार्गगो यामवर्द्धं ।
यद्दुर्गं सुभ्यम भुक्ता सबल सिकति ॥
मत्तमातङ्गभातं ।
तद्वन्धाकृष्टसर्वाङ्गलपरिमलभ्रांतमत्तालिजालम् ॥ २१ ॥
आवद्रमीमविकट भ्रुकुटीकठोर—
सद्दाम
नवस्कममुत्थमर्म
गोष्ठीषु पेशलतया परिहासशील ॥ २२ ॥
सत्यमर्तृबता यस्य मुखोपमानतापषी
परिहास ॥ २३ ॥
न सकलरिपुबलम्बसहेतुनरीया
त्रिदिव बोरबातबातममवनितबधोऽस्यूर्जितस्वप्रतापः ।
युद्धे मत्तेभकुम्भस्थल
स्वेतातपत्रस्वमितवसुमतीमण्डलो लोकपालः ॥ २४ ॥
आजौ मत्तमतङ्गकुम्भदलनस्फीतस्फुरद्दोर्युगो
ध्वस्तानकरिपुप्रभाव यशोमण्डल ।
ग्यस्ताधोयनरेन्द्रमौलिशिखरव्यस्फारप्रतापानलो
लक्ष्मीवास्समराभिमानविमलप्रख्यातकीर्त्तिर्नृपः ॥ २५ ॥
येनवं शरदिन्दुबिम्बधवला प्रख्यातभूमण्डला
लक्ष्मीपङ्कजमत्कासया सुमहती कीर्त्तिश्चिरं कोपिता ।
माता सागरपारमद्भुततमा सापत्नवराङ्गहो
तेनेदं भवनोत्तमं क्षितिभुजा विष्णो कृतं कारितम् ॥ २६ ॥
तज्जतन्या महादेव्या भीमत्वा कारितो मठः ।
धार्मिकेभ्यः स्वयं दत्तः सुरलोकगृहोपमः ॥ २७ ॥
नवस्फटिकमसामसितसस्फारस्फुरच्छीकरं
मकरन्धितवलरसङ्गविस्मसत्यमिन्न नृत्यत्तिमि ।

(विष्णुगुप्त का मंगराव लेख)

राज्ञा खानितमद्भुत सुपयमा पेपीयमान जनै
स्तस्यैव प्रियभार्यया नरपते श्रीकोण देव्या सर ॥ २८ ॥
यावच्चन्द्रकला हरस्य शिरसि श्री शार्ङ्गिणो वक्षसि
ब्रह्मास्ये च मरस्वती कृत ।
भोगे भूर्भुजगाधिपस्य च तडिद्यावद् घनस्योदरे
तावत्कीर्तिमिहातनोति धवलामादित्यसेनो नृप ॥ २९ ॥
सूक्ष्म शिवेन गौडेन प्रशस्तिर्विकटाक्षरा ।
मिता सम्यग् धार्मिकेण सुधीमता ॥ ३० ॥

विष्णुगुप्त का मंगराव लेख

ओ महाराजाधिराजपरमेश्वरश्रीविष्णुगुप्तदेवप्रवर्द्धमानविजयराज्यसम्वत्सरे सप्तदशे सम्व(त्) १ १० ७ श्रावण शुदि २ चुन्दस्कीलातपोवनप्रतिष्ठित श्रीमित्रकेशवदेवप्रतिवद्धपुष्पपट्टे स्वसिद्धान्तभिरत अनेकशिवसिद्धायतन-तीर्थविगाहने पवित्रीकृत तनु कुट्टुकदेशीय अविमुक्तउज अगार ग्रामके सकल-कुटुम्बिना सकासादाचन्द्रार्कक्षिति समकालीन तैलस्य पलमेकमुपक्रीय भगवत श्री सुभद्रेश्वरदेवस्य प्रदीपार्थ प्रतिपादितवान् । एव योन्यथा करोति यदत्रापाय स्तनदवाप्नोतीति। लिखिता देवदत्तेन सक्षिप्ता क्रमचौरिका। उत्कीर्णा सूत्रधारेण कुलादित्येन धीमता ।

जीवितगुप्त द्वितीय का देव वरनार्क स्तम्भलेख

नम स्वस्ति शक्तित्रयोपात्तजयशब्देन महानौहास्त्यश्वपत्तिसम्भारदुर्निवा-राज्जय-स्कन्धावारात मोमति कोट्टक समीप वासक । **श्रीमाधवगुप्त** तस्य पुत्र तत्पादानुध्यातो परम भट्टारिकाया राज्ञा महादेव्या श्रीमत्यामुत्पन्न परम भावगत **श्रीआदित्यसेनदेव** तस्य पुत्र तत्पादानुध्यातो परमभट्टारिकाया राज्ञा महादेव्या **श्रीकोण** देव्यामुत्पन्न परम माहेश्वर परम भट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर **श्रीदेवगुप्तदेव** तस्य पुत्र तत्पादानुध्यातो परम भट्टारि- काया राज्ञा महादेव्या श्रीकमलादेव्या उत्पन्न परम माहेश्वर परम भट्टारक महाराजा-धिराज परमेश्वर **श्रीविष्णुगुप्तदेव** तस्यपुत्र तत्पादानुध्यातो परम भट्टारिकाया राज्ञा महादेव्या श्री इज्जादेव्यामुत्पन्न परम परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर श्री **जीवितगुप्तदेव** कुशलीनगर भुक्तो वालवी विषयैक वा ? वो पद्रलिक (क्षा) न्त शयाति वारुणिका ग्राम गोष्ठ नकुल तलवाटक दूत मीमाकर्मकमद्या टक राजपुत्र राजामात्य महाक्षपटतिक महादण्डनायक महाप्रतिहार महा सा

प्रमातस कुमारामात्य राजस्वामीयो परिक विक चौरापरधिक
दाण्डिक दण्डपाशिक क प्रणिकल्यामतकिपोरवाटक ग्राम
मभिकण पटिकर्न रसक तास्मत्पादप्रसादोपजीविन च प्रतिवासिनच
च ब्राह्मणोत्तर महत्तरक कुथीपुर. विज्ञापित श्रीवरुणवासि भट्टारक प्रतिबद्ध
मोचक सूर्य मिमण उपरिलिखित ग्रामाधि सयुक्त परमेश्वर श्री शाकादित्य
देवेन स्वशासनन भायच श्रीवरुणवासि भट्टारक क च परिवाटक
मोचक हंसमिमस्य समापतया मया कलाभ्याभिमिमच एव परमेश्वर श्रीसर्ववर्मन
मोचक न्रुपिमिच पतक एव परमेश्वर श्रीअवन्तिवर्मन पूर्वदत्तक मयसम्म
एवं महाराजाधिराज परमेश्वर शासनदानन मोचक सूर्यमिमस्यानुमोदित
तेन मुष्मते तदह किमपि एवं भविमान् अनुमामो-
दितमिति सर्व समज्ञापना इता पभु यदम मास्मायतनं तदनुवर्तन्
त्यस्त सोपार्ग सोपरिकरं सदा सापराधपश्च

गुप्त सम्राटों के समकालीन अधीनस्थ राजाओं के लेख

चन्द्रवर्मन का सुसानिया लेख

१ पुष्करणाधिपतेर्म्महाराज-श्रीसिंहवर्म्मण पुत्रस्य
२ महाराज-श्रीचन्द्रवर्म्मण कृति (।*)
३ चक्रस्वामिन दोसग्रगतिमृष्ट (॥*)

वैग्राम ताम्रपत्र-लेख

(तिथि गु० स० १२८)

१ स्वस्ति (॥*) पञ्चनगर्य्या भट्टारक-पादानुध्यात कुमारामात्य-कुलवृद्धिरेत-द्विषयाधिकरणञ्च
२ वायिग्रामिक-त्रिवृत(।*)-श्रीगोहाल्यो ब्राह्मणोत्तरान्सम्व्यवहारि-प्रमुखा-न्ग्राम-कुटुम्बिन कुशलमनु-
३ वर्ण्य बोधयन्ति (।*) विज्ञापयतोरत्रैव वास्तव्य-कुटुम्बि-भोयिल-भास्करा-वावयो पित्रा शिवनन्दि-
४ ना कारि(त)क('*) भगवतो गोविन्दस्वामिन देवकुलस्तदसावल्पवृत्तिक (।*) इह-विषये समुदय-
५ बाह्याप्रस्तम्ब-खिल-क्षेत्राणामकिञ्चित्प्रतिकराणा शश्वदाचन्द्रार्क्कतारक-भोज्याना- मक्षय-नीव्या
६ द्विदीनारिक्यकुल्यवाप-विक्रयो(ऽ*)नुवृत्तस्तदर्हथावयोस्सकाशात्षड्दी-नारानष्ट च रूप-कानायी-
७ (कृ)त्य भगवतो गोविन्दस्वामिनो देवकुले (ख)ण्ड-फुट्ट-प्रतिसंस्क(।*)र करणाय गन्ध-धूप-दीप-
८ सुमनसा (*) प्रवर्त्तनाय च त्रिवृतायां भोगिलस्य खिलक्षेत्र-कुल्यवाप-त्रय श्रीगोहाल्याश्चापि
९ तल-वाटकार्थ (*) स्थल-वास्तुनो द्रोणवापमेक भास्करस्यापि स्थलवास्तुनो द्रोणवापञ्च दातु-

१० मि(ति) (।*) यतो युष्माभिरेवमाम (*) पुस्तपाल-गुणचन्द्राकर्णात्मोर
यथारव्यया अवधृत

११ मस्यौद्ध-विषये समुदय-ब्याह्मणास्तम्ब-बिल-तपामा (*) समवदायनमार्क-
धारक-भौम्यानां हिरी-

१२ मारिक्यकुल्यवाप-विक्रया(ऽ*)नुवृत्त (।*) एवमियामतिकर-वित्तमय
विक्रये च म कश्चिद्विरोध

१३ विरोध उपचय एव भट्टारक-पादानां धर्म्मफल-षड्भागावाप्तिश्च तदीयता-
मिति (।*) एतयो

१४ गोपाल-भास्करयोस्तथा(था*)त्यन्तीनाराधस्य च स्वकालानीयमस्य भवतो
गोविन्दस्वामिनो

१५ देवकुलस्यार्थे गोपालस्य भिनुतायां विक्रयक-कुल्यवाप-त्रय तलवाटकार्त्थम्

१६ श्रीमोऽस्य (*) स्थान-वास्तुनो द्रोणवाप भास्करस्याप्यत्र स्वके-वास्तुनो
द्रोणवाप-

१७ मेव(*) कुल्यवाप-त्रयं स्थल-द्रोणवाप-द्वयञ्च अवधनीव्यास्ताम्र-पट्टेन
दत्तम् (।*) लिख

१८ कु१ स्थल-द्रो २ (।*) देवपूर्व स्वकर्म्माविरोधि-स्थाने दर्व्वी-कर्म्म-हस्तेनाष्टक-
नवक-नलाभ्या-

१९ मपविञ्छिद्य चिरकाल-स्थ(।*)यि-तुलाङ्गाराकिता चिह्नैश्चतुर्दिशो नियम्य
दास्यकालम-

२ नीवी-धर्म्मेण च शश्वत्कालमनुपालयितव्य (।*) वर्तमान-भविष्यैश्च संव्य-
वहार्यादि मिरेत

२१ ब्रह्मस्वमनुपालयितव्यमिति (॥*) उक्तञ्च भगव(ता*) वेदव्यास-
महात्मना (।*) स्व-दत्तां पर-दत्तां

२२ वा यो हरेत वसुन्धरा।
स विष्ठायां क्रिमिर्भूत्वा पितृभिस्सह पच्यते (॥*) १
षष्टि वर्ष-सह

२१ स्राणि स्वर्ग्गे मोदति भूमिदः (।*)
आक्षेप्ता चानुमन्ता च तान्येव नरके वसेत् (॥*) २
पूर्व्व

२४ दत्ता द्विजातिभ्यो यत्नाद्रक्ष युधिष्ठिर (।*)
मही( ) महिमतां श्रेष्ठ दानाच्छ्रेयो(ऽ*)नुपाल-

२५ नमिति (॥*) ३
सं १ (+*)१ (+*)८ माघ-दि १ (+*)९ (॥*)

पहाड़पुर का ताम्रपत्र-लेख

(तिथि गु० स० १५९)

१ स्वस्ति (।।*) पुण्ड्र(वर्द्ध)नादायुक्तका आर्य्यनगरश्रेष्ठि-पुरोगञ्चाधिष्ठाना-
धिकरणम् दक्षिणाशकवीथेय-नागरिट्ट-

२ माण्डलिक्-पलाशाट्टार्शिवक्-वटगोहाली-जम्बुदेवप्रावेश्यपृष्ठिमपोत्तकगोषाट -
पुञ्जक-मूलनागिरट्टप्रावेश्य-

३ नित्वगोहालीषु ब्राह्मणोत्तरान्महत्तरादि-कुटुम्बिन कुशलमनुवर्ण्यानुबोध -
यन्ति (।*) विज्ञापयत्यस्मान्ब्राह्मण-नाथ-

४ शर्म्मा एतद्भार्य्या रामी च (।*) युष्माकमिहाधिष्ठानाधिकरणे द्वि-दीनारि-
क्क्य-कुल्य-वापेन शश्वत्कालोपभोग्याक्षयनीवी-समुदयवाह्या-

५ प्रतिकर-खिलक्षेत्रवास्तु-विक्क्रयो(ऽ*)नुवृत्तस्तदर्हथानेनैव क्क्रमेणावयोस्स-
काशाद्दीनार-त्रयमुपसङ्गृह्यावयो (*) स्व-पुण्याप्या-

६ यनाय वटगोहाल्यामवास्याङ्काशिक-पञ्चस्तूपनिकायिकनिग्रन्थश्रमणाचार्य्य-
गुह-नन्दि-शिष्य-प्रशिष्याधिष्ठित-विहारे

७ भगवतामर्हतां गन्ध-धूप-सुमनो-दीपाद्यर्थन्तलवाटक-निमित्तञ्च अ(त*)एव
वट-गोहालीतो वास्तु-द्रोणवापमध्यर्द्धञ्ज-

८ म्बुदेवप्रावेश्य-पृष्ठिमपोत्तके त्क्षेत्र द्रोगवाप-चतुष्टय गोषाटपुञ्जाद्द्रोणवाप-
चतुष्टयम् मूलनागिरट्ट-

९ प्रावेश्य-नित्वगोहालीत अर्द्धत्रिक-द्रोणवापानित्येवमध्यर्द्धं क्षेत्र-कुल्यवापमक्षय-
नीव्या दातुम (ति) (।*) यत प्रथम-

१० पुस्तपालदिवाकरनन्दि-पुस्तपालधृतिविष्णु-विरोचन-रामदास-हरिदास शशि-
नन्दि-(सु)प्रभ-मनुद(त्ताना)मवधारण-

११ यावधृतम् अस्त्यस्मदधिष्ठानाधिकरणे द्वि-दीनारिक्क्य-कुल्यवापेन शश्वत्कालो-
लोपभोग्या-क्षयनीवी-समु(दय)वाह्याप्रतिकर-

१२ (खिल*)क्षेत्रवास्तु-विक्क्रयो(ऽ*)नुवृत्तस्तद्युष्मान्ब्राह्मण-नाथशर्म्मा एत-
द्भार्य्या रामी च पलाशाट्टार्शिवक-वटगोहाली-स्थ(ायि)-

१३ (काशि*)क-पञ्चस्तूपकुलनिकायिक आचार्य्य-निग्रन्थ-गुहनन्दि-शिष्य-
प्रशिष्याधिष्ठित-सद्विहारे अरहतां गन्ध-(धूप)ाद्युपयोगाय

१४ (तल-वा*)टक-निमित्तञ्च तत्रैव वटगोहाल्या वास्तु-द्रोणवापमध्यर्द्धं
क्षेत्रञ्जम्बुदेव-प्रावेश्य-पृष्ठिमपोत्तके द्रोणवाप-चतुष्टय

१५ गोषाटपुञ्जाद्द्रोणवाप-चतुष्टय मूलनागिरट्ट-प्रावेश्य-नित्वगोहालीतो द्रोणवाप-
द्वय-माढवा(प-द्व)याधिकमित्येवम-

६ स-कुलस्वामि-दुर्ल्लभ-सत्यचन्द्रार्ज्जुन-वप्प-कुण्डलिप्त-पुगागा। (*) प्रकृतयश्च

७ साधनिक-वातभोगेन विज्ञाप्ता (।*) इच्छाम्यह भवतान्सकाशा(त्)-क्षेत्र-खण्डमुप-

८ क्रीय ब्राह्मणस्य प्रतिपादयितु (।*) तदर्हंथ मत्तो मूल्य गृहीत्वा विषये विभ-

९ ज्य दातुमिति (।*) यत एतदभ्यर्थनमधिकृत्य (ा*)स्माभिरकात्ये भूत्वा पुस्तपाल-वि(न)-

१० यसेनावधारणया अवधृतमस्तीह-विषये प्राक्समुद्र-मर्य्यादा चतुर्द्दि-

११ नारिकय-कुल्यवापेन क्षेत्राणि विक्रीयमानकानि (।*) तथा वाप-क्षेत्र-खण्डल(ा *)

१२ कृत-कल्पना दृस्ति-मात्र-प्रवन्धेन ताम्रपट्ट-धर्म्मेण विक्रय्यमानका(*) (।*) तच्च

१३ परमभट्टारक-पादानामत्र धर्म्म-षड्भाग-लाभ (।*) तदेता प्रवृत्तिमधिगम्य न्यामा-

१४ धा स्व-पुण्य-कीर्त्ति सस्थापन-कृताभिलापस्य यथा सकल्पाभि तथा क्रय(याधृ)

१५ त्य साधनिक-वतभोगन द्वादश-दीनारानग्रतो दत्वा (।*) शिवचन्द्र-ह(स्ते-नाप्ट)-

१६ क-नवक-नलेनामपविञ्छ्य वातभोग-सकाशे(ऽ*)स्माभि र्व्विलाटया क्षेत्र-(कुल्य)-

१७ वाप-त्रय ताम्रपट्ट-धर्म्मेण विक्रीत(*) (।*) अनेन(ा*)पि वातभोगेन

१८ चन्द्रतारावक-स्थितिकाल-सभोग्य य(ा*)वत्परत्रानुग्रह-काक्षिणा भ(ा*)-रद्वाज-सगो-

१९ त्र-वाजसनेय-षडङ्गाध्यायिनस्य चन्द्रस्वामिनस्य मातापित्रोरनुग्रहा-

२० य मुदक-पूर्व्वेण प्रतिपादितमिति (।*) तदुपरिलिखितकागाम-सामन्त-राजभि(*) सम-

२१ धिगतशास्त्रभि भूमि-दानानुपालन-क्षेपानुमोदनेषु सम्य(ग् *)-दत्तान्यपि दानानि

२२ राजभिरनै प्रतिपादनीयानिति प्रत्यवगम्य भूमिदान सुतरामेव प्रतिपालनी-

२३ यमिति (॥*) सीमा-लिङ्गानि चात्र पूर्व्वेण हिमसेन-पाटके दक्षिणेण त्रिघटिका

२४ अपर-ताम्रपट्टश्च पश्चिमेण त्रिघट्टिकाया शीलकुण्डश्च उत्तरेण (ना)वाता-

२५ क्षेणी हिमसेन-पाटकश्च (॥*) भवति चात्र शोक (।*)
स्व दत्ता परदत्ताम्वा यो ह-

२५ स्वर्गे मोदति भूमिद (*) (।*)
आक्षेप्त (ा*) चानुमन्ता च त्यान्येव
२६ नरके वसेत् ।(।*) १
स्व-दत्ताम्पर-दत्ताम्वा यो हरेत वसु-
२७ न्धरा(म्*) (।*)
श्व-(वि)ष्ठाया(*) कृमिर्भूत्वा पितृभि(*) सह पच्य(ते) (॥*)२

संक्षोभ का खोह ताम्रपत्र-लेख

(तिथि गु० स० २०९)

१ सिद्ध नमो भगवते **वासुदेवाय** ॥ स्वस्ति (॥*)**नवोत्तरे**(ऽ*)ब्द-शत-
द्वये गुप्तनृप-र(ा*)ज्य-भुक्तौ
२ श्रीमति प्रवर्द्धमान-विजय-राज्ये **महाश्वयुज-स**(ं*)**वत्सरे** चैत्र-मास-शुक्ल-
३ पक्ष-त्रयोदश्य(ा*)मस्या सवत्सर-मास-दिवस-पूर्व्वायां [ ] (।*) चतुर्द्दश-
विद्यास्थान विदि-
४ त-परमार्थस्य कपिलस्यव महर्षे सर्व्व-तत्वज्ञस्य भरद्वाज-सगोत्रस्य नृपि-
५ पि-परिव्राजक-**सुशर्म्मण** कुलोत्पन्नेन महाराज-श्री**देवाढ्य**-पुत्रप्रनप्त्रा महारा-
६ ज-श्री**प्रभञ्जन**-प्रनप्त्रा महाराज-श्री**दामोदर**-नप्त्रा गोसहस्र-हस्त्यश्व-
हिरण्यानेक-
७ भूमि-प्रदस्य गुरुपितृमातृ-पूजा-तत्परस्यात्यन्त-देव-ब्राह्मण-भक्तस्यानेक-समर-
८ शत-विजयिन **साष्टादशाटवी-राज्याभ्यन्तर डभाला**-राज्यमन्वयागत समडि-
९ पालयिप्नोरनेक-गुण-विख्यात-यशसो महाराज-श्री**हस्तिन** सुतेन
१० वर्णाश्रम-धर्म्म-स्थापना-निरतेन परमभागवतेनात्यन्त-पितृ-भक्तेन स्व-व-
११ शामोदकरेण महाराज-श्री**सक्षोभेन** माता-पित्रोरात्मनश्च पुण्याभि-
१२ व्रिर्द्धये **छोड्डुगोमि**-विज्ञाप्त्या तमेव च स्वर्ग्ग-सोपान-पक्तिमारोपय-
१३ ता भगवत्या **पिष्टपुर्या** कारितक-देवकुले वलि-चरु-सत्रोपयो-
१४ गार्थ **खण्ड-स्फुटित-सस्कारार्थञ्च मणिनाग-पेठे ओपाणिग्राम**-
१५ स्यार्द्ध चोर-द्रोहक-वर्ज्ज ताम्र-शासनेनातिसृष्ट (।*)
तदस्मत्कुलोत्थौ म-
१६ त्पादपिण्डोपजीविभिर्व्वा कालान्तरेष्वपि न व्याघात कार्य्य (।*)
एवमाज्ञा-
१७ प्त यो(ऽ*)न्यथा कुर्यात्तमह देहान्तर-गतो(ऽ*)पि महतावध्यानेन निर्द्दहेय
(॥*)

१८ उक्त च भगवता परमर्षिणा वेदव्यासेन व्यासेन (।*)
पूर्व्व-दत्तां द्विजातिभ्यो
१९ यत्नाद्रक्ष युधिष्ठिर (।*)
महीम्महिमतां (*) श्रेष्ठ दानाच्छ्रे यो(ऽ*)नुपालनं (॥*)१
बहुभि
२ र्व्वसुधा भुक्ता राजभिस्सगरादिभि (।*)
यस्य यस्य यदा भूमिस्तस्य तस्य तदा
२१ फलं (॥*)२
षष्टि वर्ष-सहस्राणि स्वर्ग्गे मोदति भूमिद (।*)
आक्षेप्ता चानुमन्ता च तान्य
२२ व नरके वसेत् (॥*)३
भूमि-प्रदानान्न परं प्रदान
दानाद्विशिष्ट परिपालनञ्च (।*)
२३ सर्व्वे(ऽ*)तिसृष्टा(*) परिपाल्य भूमि(*)
नृपा नृगाद्यास्त्रिदिवं प्रपन्ना ॥४
लिखितञ्च
२४ जीवित-नाम्ना भुजंगदास-पुत्रस्वरीदासेनेति (।*)स्व-मुखाज्ञा (।*) सम-दि
२ (+*) ८ (॥*)

उत्तर-गुप्त की प्रशस्तियां

नरवर्मन की मन्दसोर प्रशस्ति

(तिथि मालव सम्वत् ४६१)

१ सिद्धम् (।*)
सहस्र-शिरसे तस्मै पुरुषायामितात्मने (।*)
चतुस्समुद्र-पर्य्यङ्कतोय-निद्रालवे नम (।।*) १
श्रीर्म्मालव-गणाम्नाते प्रशस्ते कृत-सञ्ज्ञिते (।*)
२ **एकषष्टयधिके प्राप्ते समा-शत-चतु**(ष्टय) (।।*) २
प्रावृट्काले शुभे प्राप्ते मनस्तुष्टिकरे नृणाम् (।*)
मघे प्रवृत्ते शक्रस्य कृष्णस्यानुमते तदा (।।*) ३
३ निष्पन्न-व्रीहि-यवसा काश-पुष्पैरलकृता (।*)
भामिरभ्यधिक भाति मेदिनी सस्य-मालिनी (।।*) ४
दिने आश्वोज-शुक्लस्य पचम्यामथ सत्कृते (।*)
४ ईदृक्कालवरे रम्ये प्रशासति वसुन्धराम् (।।*) ५
प्राक्पुण्योपचयाभ्यासात्सवर्द्धित-मनोरथे ।*)
जयवर्म्म-नरेन्द्रस्य पौत्रे देवेन्द्र-विक्रमे (।।*) ६
५ क्षितीशे **सिङ्घवर्म्मण**स्सिङ्घविक्रान्त-गामिनि (।*)
सत्पुत्रे श्रीर्म्महाराज-**नरवर्म्मणि** पार्थिवे (।।*) ७
तत्पालन-गुणोद्देशाद्धर्म्म-प्राप्त्यर्त्थ-विस्तर (।*)
६ पूर्व्व(ज)न्मान्तराभ्यासाद्बलादाक्षिप्त-मानस (।।*) ८
स्व-यश-सभार-विवर्द्धित-कुतोद्यम ।*)
मृगतृष्णाजल-स्वप्न-विद्युद्दीपशिखा-चलम् (।।*) ९
७ जीवलोकमिम ज्ञात्वा शरण्य शरणङ्गत (।*)
त्रिदशोदार-फलद स्वर्गस्त्री-चारु-पल्लवम् (।।*) १०
विमानानेक-विटप तोयदाबु-मधु-स्रवम् (।*)
८ **वासुदेव** जगद्वासमप्रमेयमज विभुम् (।।*) ११
मित्र-भृत्यार्त्त-सत्कर्त्ता स्व-कुलस्य (।*)थ चन्द्रमा (।*)
यस्य वित्त च प्राणाश्च देव-ब्राह्मण-सागता( ) (।।*) १२

* महाकारुणिक सत्यो बर्म्मार्ज्जित-महाधन (।*)
सत्पुत्रो वर्म्मपुत्रस्तु सत्तीनो(ऽ*)य जयस्य च (॥*) १९
दुहितुर्म्मसपूरायां (*)सत्पुत्रो जयमित्र(।*)मा( ) (।*)

१ .. .. ..

विश्ववर्मन का गंगधार लेख

(तिथि मालव सं ४८)

१ — — ᴗ — ᴗ ᴗ ᴗ — ᴗ ᴗ — ᴗ मस्य
विष्वोर्म्मूजसमुरपति-द्विप-हस्त (स)र्प (*) (।*)
— — ᴗ — ᴗ ᴗ ᴗ — ᴗ ᴗ — ᴗ — —
— — ᴗ

२ — ᴗ ᴗ ᴗ — ᴗ ᴗ — ᴗ — — (॥*) १
प्रख्यात-वीर्य्य-यशस(?) (क्षिति)पाधिपानां
वमोऽभूवो (ज*) गति वि(श्रुत-कीर्त्ति-माजाम्*) (।*)
— — ᴗ — ᴗ ᴗ ᴗ — ᴗ

३ ᴗ — ᴗ कान्त-
स्यीमान्बभूव नरवर्म्म-नृप प्रकाश ॥ २
मत्तस्सुरासुमुनि-गणा (प्रिय)मस्वार ( )
— — ᴗ — ᴗ ᴗ ᴗ — ᴗ ᴗ — ᴗ — — (।*)

४ (मात)न मृत्य-जनसम्प्रतिमेन लोके
मो(ऽ*)तोषयत्सुचरितश्च जगत्समग्र ॥ ३
हस्त्यश्व-साधन ᴗ — ᴗ ᴗ — ᴗ — —
— — ᴗ — ᴗ ᴗ

५ ᴗ कटक-मरीचमरमु ॥
मद्धाम-मूर्द्धसु मुक्त समुदीक्ष्य यस्य
शाखप्रभावस्वरि-गणा भयम (प-चेष्टा) (॥*) ४
(तस्यात्मज *) ᴗ ᴗ ᴗ — ᴗ

६ ᴗ *) महात्मा
बुद्धया बृहस्पति-समस्सकलेन्दु-वक्त्र ॥
श्रीराम्य-मुत इव राम-गभीरधाम्ना
रा — ᴗ — ᴗ ᴗ

७ ‿ — (भु*) वि विश्ववर्म्मा ॥ ५

धैर्य्येण मेरुमभिजाति-गुणेन वैण्य-

मिन्दु प्रभा-समुदयेन वलेन विष्णु (।*)

(स*)-

८ (व)र्त्तकानलमसह्यतमञ्च दीप्त्या

यो विक्क्रमेण च सुराधिपतिं विजिग्ये ॥ ६

व्यावृत्त-मार्ग्ग इव भा-

९ (नुरस*) ह्य-मर्त्ति-

र्य्यभ्भ्रोदयाधिकतरोज्वल-घोर-दीप्ति ॥

यश्शक्यते न रिपुभिर्ब्भय-विह्वलाक्षै-

रुद्वी-

१० (क्षितु क्ष*) णमपि प्प्रगृहीत-शस्त्र ॥ ७

निर्ब्भूषणैरविगतास्त्र-जलार्द्र-गण्डै-

र्व्विच्छिन्न-मण्डनतयोज्वल- नष्ट-

११ (शोभै*) ॥

यस्स्यारि-कामिनि-मुखाम्बुरुहैर्व्विलस्य

पूर्व्वं प्रताप-चकितै× क्रियते प्रणाम ॥ ८

रत्नोद्गम-द्युति-

१२ (विर*) (ञ्जित-कूल-तालै-

रुत्त्रस्त-नक्र-मकर-क्षत-(फे)न-मालै ॥ १

चण्डानिलोद्धत-तरङ्ग-समस्त-हस्तै-

१३ र्य्यस्स्या (र्णवै*) रपि वलानि नम× क्रियन्ते ॥ ९

भूरुद्धित-द्रुम-विकम्पित-शैल-कील-

वित्रस्त-विद्रुत-मृग-द्विज-शून्य-गु-

१४ (ल्मा*) (।*)

यस्स्योन्नत-प्रविष (मी) क्रित-राजमार्ग्गा

स्सैण्य-प्रयाण-समये विनिमज्जतीव ॥ १०

प्रत्यस्त-मौलि-

१५ (म*) णि-रश्मि-नख-प्रभान्धै-

रभ्युद्यताञ्जलितया शवलाग्र-गण्डै ॥

विद्याधरै प्प्रियतमा-भुज-पाश-व-

१६ (ब्र*)

(र्य्यं*)स्यारराहिवि मया(।)सि नमऽ क्रियन्तौ ॥ ११
मग्रे(ऽ*)पि या वयसि सम्परिवर्त्तमान
बयास्त्रानुसार-परि

१७ (वर्द्धित*)-पुण्य-बुद्धि ॥
सद्धर्म्म-मार्य्यमिव राजसु दर्शयिष्य-
मुसा-विधि भरतवज्जगत× करोति ॥ १२
तस्मिन्प्र

१८ (शास*)ति महीमुपति-प्रवीरे
स्वर्गं यथा सुरपताविव प्रमाथे ॥
मानूवधर्म्म-निरतो व्यसनान्वितो

१९ (वा*)
(लोके*) क्वचन जनसुख-र्जितो वा ॥ १३
पातेषु वसु(सु) निवेशेषु सतेषु सौर्य्य
ध्वातीत-लौत्तरपदेष्विह वत्स-

२ (रेषु*) ॥
शुक्ले ययोदश-दिने भुवि कार्त्तिकस्य
मासस्य सर्व्वजन-चित्त-सुखावहस्य ॥ १४
नीलोत्पल-प्र

२१ (सूत-रे*)णुवनाम्बु-कीर्ण्णे
बन्धूक-बाण-कुसुमोज्वल-काननान्ते ॥
निद्रा-व्यपाय-समये मधुसूदनस्य
का-

२२ (ले प्रबु*)द्ध-कुमुदाकर-शुद्ध-तारे ॥ १५
वापी-तडाग-सुरसद्म-सभोदुपान
नानाविधोपवन-सङ्क्रम-दीर्घिक(।)

२३ (भि*) ॥
सिष्टामिवाभरण-जातिभिरङ्गनां स्वां
यो धर्म्मरत्न-पुरं समलङ्करकार ॥ १६
धाजन्मितीवमिव चमुस्वा

२४ (र-सृति*)
र्ह्येन-मीमांसि-सुस्व(।)न्वन-साधु-भक्त ॥
शास्त्रे स्तुते च विनय व्यवहार-हीने
यो(ऽ*)पक्षपात रहितो नित्य(श्री)

२५ (स्व-चिन्त*)म् ॥ १७
सर्व्वस्य जीवितमनित्यमसारवच्च
दोला-चलामनुविचिन्त्य तथा विभूतिम् ॥
न्यायाग(ते*)-
२६ (न वि*)भवेन पराञ्च भक्तिं
विख्यापयन्नुपरि चक्र-गदा-धरस्य ॥ १८
पीन-व्यायत-वृत्त-लम्बि-सुभुज×खड्ग-व्र(णै)-
२७ (रङ्कि*)त ॥
कर्ण्णान्त-प्रतिमर्प्पमान-नयन श्यामावदातच्छवि ॥
दर्प्पाविष्कितसोर-शत्रु-मथनो- दुष्टाश्व-
२८ (यन्ता*) वली ॥
भक्त्या चासुहृदाञ्च वान्धव-समो धर्म्मार्त्थ-कामोदित ॥ १९
प्रज्ञा-शौर्य्य-कुलोद्गतो दिशि
२९ (दिशि*) प्रख्यात-वीर्य्यो वशी ।
पुत्रे विष्णुभटे तथा हरिभटे सम्बद्ध-वङ्श-क्रिय ॥
एत-
३० (त्पाप*)-पथावरोधि विपुलश्री-वल्लभेरात्मजै ॥
विष्णो स्थानमकारयद्भगव-
३१ (तश्श्री*)मान्मयूराक्षक ॥ २०
कैलास-तुङ्ग-शिखर-प्रतिमस्य यस्य
दृष्ट्वाक्रितिं प्र-
३२ (मुदितं*)र्व्वदनारविन्दि ॥
विद्याधरा प्प्रियतमा-सहिता सु-शोभ-
मादर्शि-विम्ब-
३३ (मिव*) यान्त्यवलोकयन्त ॥२१
यान्दृष्ट्वा सुर-सुन्दरी-कर-तल-व्याघृष्ट-पृष्ठ-क्षणम् ॥
प्रत्या-
३४ (वर्त्त*)न-शङ्किनो रथ-हयानाक्षिप्य चञ्चत्सटान् ॥
पुण्योदर्क-मति-प्रभाव-मुनिभिस्स-
३५ (स्तू*)यमानो(ऽ*)म्वरे ॥
सरज्याञ्जलि-कूट्टलभ्नत-शिरा भीत प्रयास्यङ्शुमान् ॥
मातॄणाञ्च

३६ (प्रभु*)चित-मनात्यर्थ-मिह्लाविनीनाम् ॥
तन्वोन्मृत-प्रबल-पवनोद्वर्तिताम्भोनिधीनाम् ॥
३७ — — — — ◡ ◡ मतमिदं शाकिनी-संप्रकीर्णम् ॥
वेस्मात्स्पूर्म्म नृपति-सचिवो(ऽ—)कारयत्पुण्य-हेतो ॥ २३
पाताके ◡ ◡ —
३८ ◡ — ◡ रतिभिर्म्[व]र्त्त भुवङ्गो(प*)मे ॥
शीत-स्वादु-विशुद्ध भूरि-सलिल सोपानि-मालोज्वलम् ॥
द — — ◡ ◡
३९ — ◡ — ◡ गहनं क्षीरोदधि-स्पर्द्धिनम् ॥
कपमर्धैनमकारयद्गुण-निधिः श्रीमाम्मपूरत्तकः ॥२४
मावभ्म — ◡ ◡ ◡
४० ◡ ◡ — सागरा रत्नवन्तो
नाना-मृस्म-द्रुम-वनवती यावदुर्व्वी स(स)ला ॥
यावच्चेन्दुर्ग्रह-गन-चित व्योम भा(सीक*)
४१ (रोति*)
(ता—)वत्कीर्त्तिर्भवतु विपुला श्रीमपूराककस्येविति (॥*) २५
सिद्धिरस्तु (॥*)

यशोधर्मन का मन्दसोर शिलालेख

तिथि वि सं ५८९

१ सिद्धम् (॥*)
स जयति जगतां पतिः पिनाकी
स्मित-रव-गीतिषु यस्य दन्त-कान्तिः ।
द्युतिरिव तडितां निशि स्फुरन्ती
तिरयति च स्फुटयत्यदश्च विश्वम् ॥ १
स्वयम्भूर्भूतानां स्थिति-लय (समु*)
२ त्पत्ति-विधिषु
प्रयुक्तो येनाज्ञां वहति भुवनानां विधृतये ।
पितृत्वं चानीतो जगति गरिमाणं गमयता
स शम्भुर्भूयांसि प्रतिदिशतु भद्राणि भव(ताम्*)॥ २
फण-मणि-गुरुभार (क्रान्त)
३ त्ति-दूरानतस्य
स्थगयति रुचमिन्दोर्म्मण्डल यस्य मूर्त्तम् (।*)
स शिरसि विनिबध्नन्नन्ध्रिमालीमहिमाला

सृजतु भव-सृजो व क्लेश-भङ्ग भुजङ्ग ॥ ३
षष्ट्या सहस्रै सगरात्मजानां
खात (*)
४ ख-तुल्या रुचमादधान ।
अस्योदपानाधिपतेश्चिराय
यशान्सि पायात्पयसा विधाता ॥ ४
अथ जयति जनेन्द्र श्री-यशोधर्म्म-नामा
प्रमद-वनमिवान्त शत्रु-सैन्य विगाह्य (।*)
व्रण-
५ किसलय-भङ्गैर्यो(ऽ*)ङ्गभूषा विधत्ते
तरुण-तरु-लतावद्वीर-कीर्त्तीर्व्विनाम्य ॥ ५
आजौ जिती विजयते जगतीम्पुनश्च
श्रीविष्णुवर्द्धन-नराधिपति स एव ।
प्रख्यात औलिकर-लाञ्छन आत्म-
६ वङ्शा
येनोदितोदित-पद गमितो गरीय ॥ ६
प्राचो नृपान्सुबृहतश्च बहूनुदीच
साम्ना युधा च वशगान्प्रविधाय येन (।*)
नामापर जगति कान्तमदो दुराप
राजधिराज-परमे-
७ श्वर इत्युदूढम् ॥ ७
स्निग्ध-श्यामाम्बुदाभै स्थगित-दिनकृतो यज्वनामाज्य-धूम्रै-
रम्भोमेध्य मघोनावधिषु विदधता गाढ-सम्पन्न-सस्या ।
सहर्षाद्वाणिनीना कर-रभस-हृतो-
८ द्यानचूताङ्कुराग्रा
राजन्वन्तो रमन्ते भुज-विजित-भुवा भूरयो येन देशा ॥ ८
यस्योत्केतुभिरुन्मद-द्विप-कर-व्याविद्ध-लोध्र-द्रुमै-
रुद्धूतेन वनाध्वनि ध्वनि-नदद्विन्ध्याद्रि-रन्ध्रैर्ब्बलै ।(*)
वाले-
९ य-च्छवि-धूमरेण रजसा मन्दाङशु सलक्ष्यते
पर्य्यावृत्त-शिखण्डि-चन्द्रक इव ध्याम रवेर्मण्डलम् ॥ ९
तस्य प्रभोर्व्वङ्शकृता नृपाणा
पादाश्रयाद्विश्रुत-पुण्य-कीर्त्ति ।
भृत्य स्व-नैभृत्य-जिता-

१ रि-पटक

मासीद्गमीयान्किल पष्ठिवत्त ॥ १
हिमवत इव पाङ्गसुङ्ग-गम प्रवाह
शशमृत इव रेवा-वारि-राशि प्रपीभाम् (।*)
परममिममणीय सुद्धिमामम्बबायो
मत उदित-मरि
म्मस्वामते गममागाम् ॥ ११

११ तस्यानुकूल कुमयात्कलमा
स्तुत प्रसूतो मशसो प्रसूति ।
हरेरिवाद्य मधिनं वराहं
वराहवास ममुवाहरन्ति ॥ १२
सुकृति-विपयि-तुङ्ग कमूल

१२ वराया
स्थितिमपमतमङ्गा स्थेमतीमावबानम् (।*)
मृस-धिवरमिमाहस्तवुकं स्वात्म-मूल्या
रविरिव रविकीर्ति सुप्रकाशं व्यवत ॥ १३
बिभ्रता शुभमभ्यधि स्मार्त धर्मोचितं सताम् (।*)
न विसंम्वा

१३ दिता मन कस्यापि कुलीनता ॥ १४
कुल-श्रीरीमिति-व्यान्तान्हविर्मुव इवाम्बराम् (।*)
मानुपुष्पा तत साम्वी तनयास्वीनवीयनत् ॥ १५
मगवद्दोष इत्यासीत्प्रथम कार्म्यधर्मसु ।
आत्म-

१४ म्बर्ग बान्धवानामन्धकानामिवोद्धव ॥ १६
बहु-नय-विधि-वेधा माङ्गरे(।*)प्यर्थ-मार्गे
विदुर इव विदूर प्रेक्षया प्रेक्षमाण ।
वचन-रचन-बन्धे संस्कृत-माकृते प
कविमिवदि

१५ त-राज गीयते गीरमिश ॥ १७
प्रणिधि दृगनुजन्मा यस्य बौद्धम बाक्या
म निशि तनु वनीयो बास्तवृष्टं वरिम्याम् (।*)
परमृषमि बघायो(।*)नन्तर तस्य धामू
स्त मवममपवतो नाम वि(म्न)न्मयानाम् ॥ १८

१६ विन्ध्यस्यावन्ध्य-कर्म्मा शिखर-तट-पतत्पाण्डु-रेवाम्बुराशे-
र्गो-लाङ्गूले सहेल-प्लुति-नमित-तरो पारियात्रस्य चाद्रे ।
आ सिन्धोरन्तराल निज-शुचि-सचिवाद्धया-
१७ मितानेक-देश
राजस्थानीय-वृत्या सुरगुरुरिव यो वर्ण्णिना भूतये(ऽ*)पात् ॥ १९
विहित-सकल-वर्ण्णासङ्कर शान्त-डिम्ब
कृत इव कृतमेतद्येन राज्य निराधि ।
स धुरमयमिदानी
१८ दोषकुम्भस्य सूनु-
र्गुरु वहति तदूढा धर्म्मतो धर्म्मदोष ॥ २०
स्व-सुखमनभिवाच्छन्दुर्गमे(ऽ*)द्ध्वन्यसङ्गा
धुरमतिगुरुभारा यो दधद्भर्त्तुरर्थे ।
वहति नृपति-वेष केवल लक्ष्म-मात्र
१९ वलिनमिव विलम्ब कम्बल वाहुलेय ॥ २१
उपहित-हित-रक्षामण्डनो जाति-रत्नै-
र्भुज इव पृथुलासस्तस्य दक्ष कनीयान् (।*)
महदिदमुदपान खानयामास बिभ्र-
२० च्छ्रुति-हृदय-नितान्तानन्दि निर्द्दोष-नामा ॥ २२
सुखाश्रेय-च्छाय परिणति-हित-स्वादु-फलद
गजेन्द्रेणारुग्ण द्रुममिव कृतान्तेन बलिना ।
पितृव्य प्रोद्दिश्य प्रियमभयदत्त पृ-
२१ थु-धिया
प्रयीयस्तेनेद कुशलमिह कर्म्मोपरचित ॥ २३
पञ्चसु शतेषु शरदा यातेष्वेकान्ननवति-सहितेषु ।
मालव-गण-स्थिति-वशात्काल-ज्ञानाय लिखितेषु ॥ २४
य-
२२ स्मिन्काले कल-मृदु-गिरा कोकिलाना प्रलापा
भिन्दन्तीव स्मर-शर-निभा प्रोषिताना मनासि ।
भृङ्गालीना ध्वनिरनुवन भार-मन्द्रश्च यस्मि-
न्नाधूत-ज्य धनुरिव नदच्छ्रूयते पुष्प-
केतो ॥ २५ ।
२३ प्रियतम-कुपिताना कम्पयन्वद्धराग
किसलयमिव मुग्ध मानस मानिनीना (।*)
उपनयति नभस्वान्मान-भङ्गाय यस्मि-

न्मुकुम-समय-मासे तत्र निर्म्मापितो(ऽ*)यम् ॥ २६
२४ यावत्तुङ्गरत्नाम्बिरल-समुदय सङ्ग-कान्त तरङ्ग-
पालिङ्गभिन्दु-बिम्बं गुरुमिरिव मुख सभिमत मुहूत्ताम् (।*)
विभ्रत्सीमान्त-लेखा-वलय-परिगति मुण्डमालामिवायं
सत्कूपस्तावदा
२५ स्तामसृत-सम-रस-स्वच्छ-विष्यन्दिताम्बु ॥ २७
श्रीमा यशो दक्षिण सत्यसन्धो
ह ीमाम्बूरो मृदु-सेवी कृतज्ञ ।
मदोत्साह स्वामि-कार्य्योपकारी
निर्द्दोषो(ऽ*)यं पातु धर्म्मं चिराय ॥ २८
उत्कीर्ण्णा गोविन्देन ॥

यशोवर्मन का नालन्दा लेख

१ संसारस्थितय (ब)न्धनात्कृतमतिर्मोक्षाय यो देहिनां कारुण्यात्प्रशमं शरीरमपि
यो दत्वा तुतोषार्थिन (।) सेन्द्रर्न्नं स्वशिरःकिरीटमकरीधृष्टांघ्रिम
२ पद्म सुरैस्तस्मै सर्व्वपदार्थतत्वविदुषे बु(बु) द्धाय नित्यं नम ॥१॥ सर्व्वेषां
मूर्ध्नि दत्वा पदमवनिभृतामुद्धृतो भूरिधामा निर्भिन्नाशेषु प्रतापप्रशमित
निखिलारातिभो-
३ दान्धकार (।) ख्यातो यो लोकपाल सकलवसुमतीपद्मिनीभो (भो) गहेतु
श्रीमान्भास्वानिवोच्चैस्तपति दिशि दिशि श्रीयशोवर्म्मदेव ॥२॥ तस्यासी
त्परमप्रसाद
४ हित श्रीमामृताराध्य पुत्रो मार्गपते प्रतीत-विविनोमीषीपतेर्मन्त्रिण (।)
मालादो भुविमन्वनो यो य (श) स्सुमत्यासुधीर्नाम्ना-परिपूरये-
५ कनातुरो धीरो विधुराग्रय ॥३॥ यात्राभूमित-भरिसूप्रभिमन्द्रामाम्नु(न्नु)
पानीलस्तम्भादप्युङ्गकरीतकुम्भवहनमाप्तमिपाम्भूमुखाम् । नालन्दा ह
६ सतीव सर्व्वनगरी शुभ्राभ्रगौरस्फुरच्चैत्यांशुप्रकरैस्सदागमकलाविख्यात
विद्वज्जना ॥४॥
यस्यामम्बु(म्बु)धरावलेहिशिखरश्रेणी वि
७ हारावली मालेवोर्ध्वविराजिनी विरचिता धात्रा मनोज्ञा भुव (।) नानारत्न
मयूखजालखचितप्रासादेवालया सद्विद्याधरसङ्घ
८ रम्यवसतिर्धत्ते सुमेरो श्रियम् ॥५॥ अनाम (श)पराक्रमप्रमथिता शिला
शिलातिविद्विषो, या(या)तोदितमहानृपेण सकलम्भुक्त्वा च भूमण्डलम् (।)

९ प्रासाद सुमहानयम्भगवत शौद्धोदनेग्द्भुत, कैलासाभिभवेच्छयेव धवलो मन्ये समुत्थापित ॥६॥ अपि च ॥ न्यक्कुर्व्वन्निन्दुकान्तिन्तुहिनग-
१० रिशिरश्रेणिशोभान्निरस्यन्, शुभ्रामाकाशगङ्गान्तदनु मलिनयन्मूकयन्वादिसिन्धून्। मन्ये जेतव्यशून्ये भुवन इह वृथा भ्रान्तिरित्याक-
११ लय्य भ्रान्त्वा क्षोणीमशेषाज्जितविपुलयशस्तम्भ उच्चैस्थितो वा ॥७॥ अत्रादायि निवेद्यमाज्यदधिमद्दीपस्तथा भासुरश्चातुर्जात-करेणुमिश्रमगल-
१२ न्तोय सुधाशीतल । साध्वी चाक्षय-नीविका भगवते वु(बु)द्धाय शुद्धात्मने **मालादेन** यथोक्तवशयशसा तेनाति-भक्त्या स्वय ॥८॥ आदेशात्स्फीतशील-श्रुतधवलधि-
१३ यो भिक्षुनङ्घस्य भूयो दत्तन्तेनैव सम्यग्व (ग्ब)हुघृतदधिभिर्व्यञ्जनैर्युक्तमं (म) घ्र । भिक्षुभ्यस्तच्चतुर्भ्यो(ब)हुसुरभि चतुर्जातकामोदि नित्य तोय स(त्रे) विभक्त पुनरपि
१४ विमल भिक्षुसङ्घाय दत्तम् ॥९॥ तेनैवाद्भुतकर्म्मणा निजमिह क्रीत्वा(र्य)-सङ्घान्तिकान्मुक्त्वा **चीवरिका** प्रदाय विधिना सामान्यमेकन्तथा । कालम्प्रेरयितु सुखे-
१५ न लयनन्दत्त स्वदेशम्विना तेभ्यो नर्द्दरिकावधेश्च परत शाक्यात्मजेभ्य पुन ॥ १० ॥ दान यदेतदमलङ्गगुण शालि-भिक्षुपूर्ण्णेन्द्रमेनवचनप्रतिवो (बो)-धितेन । तेन प्रतीत-
१६ यशसा भुवि निर्म्मलाया भ्रात्रा व्यधायि शरदिन्दुनिभाननाया ॥ ११ ॥ पित्रोर्भ्रातु कलत्रस्वमृसुतसुहृदान्तस्य वर्म्मैकधाम्नो दत्त दान यदेतत्सकलमतिरसेनापुरा-
१७ रोग्यहेतो । सर्व्वेषाञ्जन्मभाजा भवभयजलधे पारसतारणार्थ श्रीमत्सम्वो-(म्बो)धिकल्पद्रुमविपुलफलप्राप्तये चानुमोद्यम् ॥ १२ ॥ चन्द्रो यावच्चकास्ति स्फुरदुरुकिरणे लो-
१८ कदीपश्च भास्वान् स्था यावच्च धात्री सजलधिवलया द्यौश्च दत्तावकाशा । यावच्चैते महान्तो भुवनभरधुरान्धारयन्तो महीध्रास्तावच्चन्द्रावदाता धवलयतु दिशाम्म-
१९ ण्डल कीर्तिरेषा ॥ १३ ॥ यो दानस्यास्य कश्चित्कृतजगदवधेरन्तराय विद ध्यात्साक्षाद्वज्रासनस्थो जिन इह भगवानन्तरस्थ सदास्ते । **वा(बा)-लादित्येन** राज्ञा प्रदलितरि-
२० पुणा स्थापितश्चैष शास्ता पञ्चानन्त(र्य)-कर्तुर्गतिमतिविषमान्धर्म्महीन स यायात् ॥ १४ ॥ इत्येव शील-चन्द्रप्रथितकरणिकस्वामिदत्तावलङ्घ्या सङ्घाज्ञा मूर्ध्नि कृत्वा श्रुतलव-

२१ विमवाष्पमासोध्य मार । हुवाभवामुदारां त्वग्निमकुस्तामप्रपञ्चो
प्रयास्ति गाम्भसा किम पगु सिवरितकलावाप्तिमुक्त करेव ॥ १५ ॥

यशोधर्मन का मन्दसोर प्रशस्ति

१ वेपन्ते यस्य भीम-स्तनित-भय-समद्भ्रान्त-दैत्या दिगन्ता
शृङ्गाघात सुमेरोर्विघटित-दृषदः कन्दरा यः करोति ।
उक्षाण त दधान क्षितिधर-तनया-दत्त (पञ्चाङ्गु)लाङ्कं
द्राघिष्ठ शूलपाणेः क्षपयतु भवतां शत्रु-तेजांसि केतुः ॥ १
२ आविर्भूतावलेपैरविनय-पटुभिर्ल्लङ्घिताचार (मा)र्ग्गे
र्म्मोहादैदंयुगीनैरपशुभ-रतिभिः पीड्यमाना नरेन्द्रैः ।
यस्य क्ष्मा शार्ङ्गपाणेरिव कठिन-धनुर्ज्या-किणा(ङ्क) प्रकोष्ठ( )
बाहु लोकोपकार-व्रत-सफल-परिस्पन्द-धीरं प्रपन्ना ॥ २
३ निन्दाचारेषु यो(ऽ॰)स्मिन्विनय-मुषि युगे कल्पना-मात्र-वृत्या
राजस्वन्येषु पांशुष्विव कुसुम-बलिर्न्नावभासे प्रयुक्तः ।
स श्रेयो-धाम्नि सम्राडिति मनु-भरतालर्क (मान्धा) तृ-कल्पे
कल्याणे हेम्नि भास्वान्मणिरिव सुतरां भ्राजते यत्र शब्दः ॥ ३
४ ये भुक्ता गुप्त-नाथैर्न्न सकल-वसुधाक्रान्ति दृष्ट प्रताप
र्न्नाज्ञा हूणाधिपानां( ) क्षितिपति-मुकुटाध्यासिनी यान्प्रविष्टा ।
देशांस्तान्धन्व-शैल-द्रुम-सरित-परिक्षीरबाहूपगूढा-
न्वीर्य्यावस्कन्न-राज्ञः स्व-गृह-परिसरावज्ञया यो भुनक्ति ॥ ४
५ आ लौहित्योपकण्ठात्तलवन-गह(नो)पत्यकादा महेन्द्रा-
दा गङ्गाश्लिष्ट-सानोस्तुहिनशिखरिणः पश्चिमादा पयोधेः ।
सामन्तैर्यस्य बाहु-द्रविण-हृत-म(दैः) पादयोरानमद्भि
श्चूडा रत्नांशु राजि-व्यतिकर-शबला भूमि-भागाः क्रियन्ते ॥ ५
६ स्थाणोरन्यत्र येन प्रणति-कृपणतां प्रापितं नोत्तमाङ्गं
यस्याश्लिष्टो भुजाभ्यां वहति हिमगिरिर्दुर्ग-शब्दाभिमान(म्) ।
नीचैस्तेनापि यस्य प्रणति-भुजबलावर्ज्जन-क्लिष्ट-मूर्ध्ना
(चू)डा-पुष्पोपहारैर्म्मिहिरकुल-नृपेणार्च्चित( ) पाद-युग्मं ॥ ६
७ (गा–)मेवोन्मातुमूर्ध्वं विगणयितुमिव ज्योतिषां चक्रवालं
निर्देष्टुं मार्गमुच्चैर्दिव इव (सु)कृतोपार्ज्जितायाः स्व-कीर्त्तेः ।
तेनाकल्पान्त-कालावधिरवनिभुजा श्रीयशोधर्म्मणायं
स्तम्भः स्तम्भाभिराम-स्थिर-भुज-परिघेणोच्छ्रितिं नायितो(ऽ)त्र ॥ ७
८ (श्ला)घ्ये जन्मास्य वंशे चरितमघहरं दृश्यते कान्तमस्मि

न्धर्म्मंस्थाय निकेनश्चलति नियमिन नामुना लोकवृत्तम् (।*)
इत्युत्कर्षं गुणाना लिगितुमिव यशोधर्म्मणश्चन्द्र-बिम्बे
रागादुत्क्षिप्त उच्चैर्भुज इव रुनिमान्य पृथिव्या विभाति ॥ ८
९ इति तुष्ट्रूपया तम्य नृपते पुण्यकर्म्मण ।
वासुलेनोपरचिता श्लोका ककरुम्य मूनुना ॥ ९
उत्कीर्ण्णा गोविन्देन ॥

हूण राजा तोरमाण का एरण लेख

तिथि शासन काल १

१ सिद्धम्
जयति धरण्युद्धरणे घन-घोणाघात-घूर्ण्णित-महीध्र (।*)
देवो वराहमूर्त्तिस्त्रैलोक्य-महागृह-स्तम्भ (॥*) १
वर्षे प्रथमे पृथिवी(म्)
२ पृथु-कीर्त्तौ पृथु-द्युतौ (।*)
महाराजाधिराज-श्रीतोरमाणे प्रशासति । (।*) २
फाल्गुन-दिवसे दशमे इत्येव राज्य-वर्ष-मास-दिनै (।*)
एतस्या
३ पूर्व्वायाम् । स्व-लक्षणैर्युक्त-पूर्व्वायाम् । (।*) ३
स्वकर्म्माभिरतस्य क्रतुयाजिनो(ऽ*)धीत-स्वाध्यायस्य विप्रर्षेर्म्मैत्रायणीय-
वृषभस्येन्द्र-विष्णो प्रपौत्रस्य
४ पितुर्गुणानुकारिणो वरुणविष्णो पौत्रस्य पितरमनुजातस्य स्ववंश-वृद्धि-
हेतोर्हरिविष्णो पुत्रस्यात्यन्त-भगवद्भक्तस्य विधातुरिच्छया ।
५ स्वयंवरयेव राजलक्ष्म्याधिगतस्य चतुःसमुद्र-पर्यन्त-प्रथितयशस अक्षीण-मान-
(ध)नस्यानेक-शत्रु-समर-जिष्णो महार (ा*)ज-मातृविष्णो
६ स्वर्गतस्य भ्रात्रानुजेन तदनुविधायिना तत्प्रसाद-परिगृहीतेन धन्यविष्णुना
तेनैव (स)हाविभक्त-पुण्यक्रियेण मातापित्री
७ पुण्याप्यायनार्थमेप भगवतो वराहमूर्त्तेर्ज्जगत्परायणस्य नारायणस्य शिला-
प्रा(साद) स्व-विष(ये) (ऽ–)स्मिन्नैरिकिणे कारित । (।*)
८ स्वस्त्यस्तु गो-ब्राह्मण-पुरोगाभ्य सर्व-प्रजा(भ्य इ)ति ।

तोरमाण का कुरा प्रशस्ति

१ (१*) (राजाधि*)राज-महाराज-तोरमाण-षा(हि)-जऊ(व्लस्याभिवर्ध-)
(मान- राज्ये)* * (सवत्सरे*)

२ * * * *म मासफिर-मास-शुक्ल-द्वितीयायाम् चास्य (भग?)* गय(त*)
* * * * *

३ (चरे च) चर*सुचि-स्वाध्यायानाध्ययन-ध्यान-चिताभूमौ प्रविष्ट) * * *
* * * * * (त*)

४ स्वर्गे भगवतो बुद्धस्य देवातिदेवस्य सर्वपापपरिक्षीण-सर्वपुण्यसमुद्गत(स्य)

५ दीप-स(*)सारार्णव(स्य*) सत्वानां तारयितु दशबल-बलिन(*)
चतुर्वशारद्य चतलप्रतिम (भिदा)

६ अष्टादशावेणीकाद्भुत-धर्म-समन्वागतस्य सर्वसत्ववत्सल-महाकारुणिकस्य बु

७ द्धप्रमुख चातुर्दिश भिक्षु-संघ देयधर्मो(ऽ*)य(*)विहार(*) प्रतिष्ठापन
महावीर-पति प्रशस्ता-

८ दारित-नामधेय-मित्रवृद्धि राहु-जयवृद्धि मनक-विहार-स्वामिनो सपुत्रण
(।*) यदत्र पुण्य तद्भवतु

९ (मा)तापित्रो(*) आचार्यक-पोषक(या*) मित्रस्य अंगुलिकस्य सर्वेषि
तारो भद्रे प्राप्तपर्यवसतास्तु तथा विहार-स्वामिनो

१ रोट-सिद्धवृद्धि सर्वेषां भ्रातराणां भगिनीनां पत्नीनां पुत्राणां दुहितृणां महा
राज-तोरमाण-शाहू-जऊवल: स

११ र्वेषां देवीनां राजपुत्राणां राजदुहितानां च सर्व-सत्वानां अनुत्तर-ज्ञानावाप्तय
(।*) मयं पुन(*) विहारस्मो-

१२ पकरण चातुर्दिश भिक्षुसंघ परिग्रहे आचा(र्या*) (म)हीश(सकानां)
(।*) (शासक-पु) * * त्रण* (आचार्य)

१३

हूण नरेश मिहिरकुल का ग्वालियर शिला-लेख

तिथि शासन काल १५

१ स्वस्ति
(ज*) (य)ति जलज-बल-ध्वान्तमुत्सारयन्स्व
किरण-निवह-भासव्योम विद्योतयन्बः (।)
उ(दय*) (गिरि)-तटाग्र(*) मण्डयन् यस्तुरंग
चकित-गमन-खेद भ्रान्त-चंचत्सटान्त । १
उदय (गिरि)

२ ◡ — — प्रस्त चक्रो(ऽ*)त्ति-हर्ता
भुवन-भवन-दीप शर्वरी-नाश-हेतु (।*)
तपित-कनक-वर्णेरंशुभि⁀पङ्कजान(।*)

मभिनव-रमणीय यो विधत्ते स वो(*ऽ)व्यात् । २
श्री-तोर(माण इ*)ति य प्रथितो
३ (भूचक्र*)प प्रभूत-गुण (।*)
सत्यप्रदान-शौर्य्याद्येन मही न्यायत( ) शास्ता (॥*) ३
तस्योदित-कुल-कीर्त्ते पुत्रो(ऽ*)तुल-विक्रम पति पृथ्व्या (।*)
मिहिरकुलेतिख्यातो(ऽ*)भङ्गो य पशुपतिम * * * (॥*) ४
४ (तस्मिन्रा*)जनि शासति पृथ्वी पृथु-विमल-लोचने(ऽ*)र्त्तिहरे (।*)
अभिवर्द्धमान-राज्ये पचदशाब्दे नृप-नृपस्य । (।*) ५
शशिरश्मिहास-विकसित-कुमुदोत्पल-गन्ध-शीतलामोदे (।*)
कार्त्तिक-मासे प्राप्त गगन-
५ (पतौ*) (नि*)र्म्मले भाति । (।*) ६
द्विज-गण-मुख्यैरभिसस्तुते च पुण्याह-नाद-घोषेण (।*)
तिथि-नक्षत्र-मुहूर्त्ते सप्राप्ते सुप्रशस्त-(दिने) । (।*) ७
मातृतुलस्य तु पौत्र पुत्रश्च तथैव मातृदासस्य (।*)
नाम्ना च मातृचेट पर्व्व-
६ (त-दुर्ग*)(ानु)वास्तव्य (॥*) ८
नानाधातु-विचित्रे गोपाह्वय-नाम्नि भूधरे रम्ये (।*)
कारितवान्शैलमय भानो प्रासाद-वर-मुख्यम् । (।*) ९
पुण्याभिवृद्धिहेतोर्म्मातापित्रोस्तथात्मनश्चैव (।*)
वसता(*) च गिरिवरे(ऽ*)स्मि(न्*) राज्ञ
७ * * * (पा?)देन (॥*) १०
ये कारयन्ति भानोश्चन्द्राशु-सम-प्रभ गृह-प्रवर (।*)
तेषा वास स्वर्गे यावत्कल्प-क्षयो भवति ॥ ११
भक्त्या रवेर्विरचित सद्धर्म्म-ख्यापन सुकीर्त्तिमय (।*)
नाम्ना च केशवेतिप्रथितेन च ।
८ * * * (दि?)त्येन (॥*) १२
यावच्छर्व्व-जटा-कलाप-गहने विद्योतते चन्द्रमा
दिव्यस्त्री-चरणैर्व्विभूषित-तटो यावच्च मेरुर्नग (।*)
यावच्चोरसि नीलनीरद-निभे विष्णुर्व्विभर्त्युज्ज्वला
श्रीस्तावद्गिरि-मूर्ध्नि तिष्ठति
(शिला-प्रा*)साद-मुख्यो रमे (॥*) १३

मौखरि राजा ईशानवमन का हरहा शिलालेख

तिथि मालव सम्वत् ६११

१ लोकाविष्कृतिसंक्षयस्थितिकृतां य कारणं वेधसाम् ध्वस्तध्वान्तचया परास्त रजसो ध्यायन्ति यं योगिनः । यस्यार्द्धस्थितयोषितोपि हृदयं नास्यापि चेतोमुषा भूतात्मा त्रिपुरान्तकः स

२ जयति जयः प्रवृत्तिर्भव ॥ (१) आशीविषो फणिन फणोपलरुचा सन्ध्ये दधानः स्वयं सुधांशोर्विधनमना कपिलमयूखाला कपालावलीम् (।) तन्वीं ध्यानमुदं मृगाकृतिमृतो बिभ्रत्कलां मौलिना विस्मारत्व

३ कविद्विय स्फुरदहि स्थेयः पदं वो वपु ॥ (२) सुवधत क्षेम नृपोसवपतिर्व वस्वताधन्मुक्तवितम् । तत्प्रसूता दुरितवृतिरधो मुखरा क्षितीशाः अतारव ॥ (३) तेष्वादी हरिवर्म्मणो जनिमुखो मूर्तिर्म्

४ वो मूतये (।) ज्वालाधेयविपन्तराम्यशासा स्वभारिसपत्तिया । सक्षाप्तं हुतमुक्कमाकपिहित वक्त्रं समीक्ष्यारिभिर्यो भीतैः प्रयास्तस्ततस्च भुवने ज्वालामुखाख्यां गत ॥४॥ लोकस्थितीनां स्थितये स्थि

५ तस्य मनोरिवाचारविकक्रमार्ग । अगाहिरे यस्य जयन्ति रम्याः सत्कीर्तयः कीर्तयितव्यनाम्नः (५) तस्मात्पयोधेरिव शीतरश्मिरादित्यवर्म्मा नृपतिर्बभूव । यथाभिमाचारविधि- प्रणीतैर्वं प्राप्य

६ साफल्यमियाय वाचा ॥ (६)
हुतभुजि मखसम्पादक्षिति ध्यान्तनीमम्
बिभर्ति पवनजन्मभ्रान्तिविक्षेपभूयः ।
मलरयति समन्ताद्धूम्रवृत्तमध्यम्
शिखिकुलमुक्तमाशङ्कि यस्य

७ प्रसक्तम् ॥ (७)
तेनापीश्वरवर्म्मतः क्षितिपतेः अनन्प्रभावास्तय (।) जन्माकारि कृतात्मनः
वक्त्रगुणेष्वाहृतवृत्तीपः । यस्योर्जस्वलकलिस्वभावचरितस्याचारमार्गं नृपा यत्नेनापि भयाति

८ तुल्ययशसो नाद्यन्तुगन्तुं क्षमा ॥ (८)
मौर्या धौर्य विशालं सुहृदमकुठिनेनोमध्वाकुलेन त्यागं पात्रेन वित्तप्रभवमपि क्षमा मौनम संयमन । वाचं सत्येन चेष्टां श्रुतिपथविधिना प्रथमे

९ णोत्तमर्द्धिम्

यो वन्य नैव खेद व्रजति कलिमयध्वान्तमग्नेपि लोके (९) यस्येज्यास्वनिश यथाविधि हुतज्योतिर्ज्वलज्जन्मना मेनाञ्जनभङ्गमेचकरुचा दिक्चक्रवाले तते । आयाता नव-

१० वारिभारविनमन्मेघावली प्रावृडि-

त्युन्मादोद्धतचेतस शिखिगणा वाचालतामाययु ॥ १० ॥

तस्मात्सूर्य्य इवोदयाद्रिशिरसोधातुर्म्मरुत्वानिव क्षीरोदादिव तर्जितेन्दुकिरण कान्तप्रभ कौस्तुभ (।)

११ भूतानामुदपद्यत स्थितकर स्येष्ठ महिम्न पदम् राजन्राजकमण्डलाम्वरशशी **श्रीशानवर्म्मा** नृप ॥ (११) लोकानामुपकारिणारिकुमुदव्यालुप्तकान्ति-श्रिया (।) मित्रास्याम्वुरुहाकरद्युतिकृता भूरि-

१२ प्रतापत्विषा ॥

येनाच्छादितसत्पथ कलियुगध्वान्तावमग्नञ्जगत्सूर्येणेव समुद्यता कृतमिद भूय प्रवृतक्रियम् ॥ (१२) जित्वान्ध्राधिपति सहस्रगणितत्रेधाक्षरद्वारणम् व्यावल्गन्नियुताति-

१३ सख्यतुरगान्भङ्क्त्वा रणे **शूलिकाम्** (।) कृत्वा चायतिमौचितस्थलभुवो **गौडान्**समुद्राश्रया-नध्यासिष्ट नतक्षितीशचरण सिंहासन यो जिती ॥ १३ ॥

प्रस्थानेषु वलार्णवाभिगमनक्षोभस्फुटद्भूतल-

१४ प्रोद्भूतस्थगितार्क्कमण्डलरुचा दिग्व्यापिना रेणुना । यस्यामूढदिनादिमध्य-विरतौ लोकेन्धकारीकृते (।) व्यक्ति नाडिकयैव यान्ति जयिनी यामास्त्रियामास्विव ॥ १४ ॥ प्रविशती कलिमारुतघट्टिता

१५ क्षितिरलक्ष्यरसातलवारिधौ ।
गुणशतैरववध्य समन्तत
स्फुटितनौरिव येन बलाद्धृता ॥ १५ ॥

ज्याघातव्रणरूढिकर्क्कशभुजा व्याकृष्टशार्ङ्गच्युता-
न्यस्यावाप्य पतत्रिणो रणमखे प्राणानमुञ्च

१६ न्द्विष ।
यस्मिन्शासति च क्षितिं क्षितिपतौ जातेव भूयस्त्रयी (।)
तेन ध्वस्तकलिप्रवृत्तितिमिरा **श्रीसूर्य्यवर्म्मा**जनि ॥ १६ ॥
यो बालेन्दुकसान्ति कृत्स्नभुवनप्रेयो दधद्यौवनम्, शान्त शास्त्रविचारणा—

१७ हितमना पारङ्कलानाङ्गत ।
लक्ष्मीकीर्त्तिसरस्वतीप्रभृतयो य स्पर्धयेवाश्रिता, लोके कामितकामिभावरसिक कान्ताजनो भूयसा ॥ १७ ॥

–स्थापनप्रवृत्तचक्र एकचक्ररथइव प्रजानामार्तिहर परमादित्यभक्त परमभट्टारक-महाराजाधिराज श्री प्रभाकर वर्धनस्तस्य पुत्रस्तत्पादानुध्यात स्मितश प्रतानवि-च्छुरितमकलभुवनमण्डल परिगृहीतधनदवरुणेन्द्रप्रभृतिलोकपालतेजा सत्पथो-पार्जितानेकद्रविणभूमिप्रदानसम्प्रीणितार्थिहृदयोतिशयितपूर्वराजचरितो देव्याममल-यशोमत्या श्रीयशोमत्यामुत्पन्न परमसौगत सुगत इव परहितैकरत परमभट्टारक-महाराजाधिराजश्रीराज्यवर्धन ।

राजानो युधि दुष्टवाजिन इव श्रीदेवगुप्तादय
कृत्वा येन कशाप्रहारविमुखा सर्वे सम सयता ।
उत्खाय द्विषतो विजित्य वसुधा कृत्वा प्रजाना प्रिय
प्राणानुज्झितवानरातिभवने सत्यानुरोधेन य ॥१॥

तस्यानुजस्तत्पादानुध्यात परममाहेश्वरो महेश्वर इव सर्वसत्वानुकम्पी परमभट्टारकमहाराजाधिराजश्रीहर्ष अहिच्छत्राभुक्ता वङ्गदीयवैषयिकपश्चि-मपथकसम्बद्धमर्कटसागरे समुपगतान्महासामन्तमहाराजदौस्साधसाधनिक प्रमाता-रराजस्थानीय कुमारामात्योपरिकविषयपतिभटचाटसेवकादीन्प्रतिवासिजानपदाश्च समाज्ञापयति––

विदितमस्तु यथायमुपरिलिखितग्राम स्वसीमापर्यन्त सोद्रङ्ग सर्वराज-कुलाभाव्यप्रत्यासमेत सर्वपरिहृतपरिहारो विषयादुद्धृतपिण्ड पुत्रपौत्रानुगश्चन्द्रा-र्कक्षितिसमकालीनो भूमिच्छिद्रन्यायेन मया पितु परमभट्टारक महाराजाधिराज श्री प्रभाकरवर्धनदेवस्य मातुर्भट्टारिकामहादेवी राज्ञा श्रीयशोमतीदेव्या ज्येष्ठभ्रातृपरम भट्टारकमहाराजाधिराजश्रीराज्यवर्धनदेव पादाना च पुण्ययशोभिवृद्धये भरद्वाजस-गोत्रबह्वृचच्छन्दोगसब्रह्मचारिभट्टवाल चन्द्रभद्रस्वामिभ्या प्रतिग्रहधर्मणाग्रहार-त्वेन प्रतिपादितो विदित्वाभवद्भि, समनुमन्तव्य प्रतिवासिजानपदैरप्याज्ञा-श्रवणविधेयैर्भूत्वा यथासमुचिततुल्यमेयभागभोग करहिरण्यादिप्रत्याया स्तयोरे-वोपनेया सेवोपस्थान च करणीयमित्यपि च ।

अस्मत्कुलक्रममुदारमुदाहरद्भि––
रन्यैश्च दानमिदमभ्यनुमोदनीयम् ।
लक्ष्म्यास्तडित्सलिलबुद्बुदचञ्चलाया
दान फल परयश परिपालन च ॥ १ ॥
कर्मणा मनसा वाचा कर्तव्य प्राणिभिर्हितम् ।
हर्षेणैतत्समाख्यात धर्मार्जनमनुत्तमम् ॥ २२ ॥

दूतकोऽत्र महाप्रमातारमहासामन्तश्रीस्कन्दगुप्त । महाक्षपटलाधिकार-णाधिकृतमहासामन्तमहाराजभानुसमादेशादुत्कीर्णमीश्वरेणेदमिति । सवत् २०२ कार्तिक वदि १ । स्वहस्तो मम महाराजाधिराजश्रीहर्षस्य ।

शशाङ्क कालीन ताम्रपत्र

(मु स १)

१ ओं स्वस्ति । चतुर्ज्जलधिसलिलवीचीमेखलानिलीनायां सद्वीपा—
२ नगरपत्तनवत्यां वसुन्धरायां गौप्ताब्दे वर्षशतत्रय वर्त्तमान
३ महाराजाधिराजश्रीशशाङ्क राज्ये शासति जयभटस—
४ विनि (*) मृतभगीरथावतारिताया हिमगिरेरुपरि
५ पतना (द*) नक शिलासंहातविभिन्नबहि—पातालान्तर्ज्जलौघ
६ सुरसरित इव विविधतरुवरकुसुमसम्भ्रमोपयता—
७ न्तर्विनिपतितजलाशयायां स(ा)भिमासरित कुसा(य) कपाल
८ जयभट्टोड्डपारमहाराजमहासामन्त श्रीमाधवराजस्य प्रियतनया
महाराज (ा) मलोभीतस्तस्यापि प्रियसून स्वगुण(म) रीचिनिकर—
१ मनोचितसिकोमूनकुमकुमतो सिकोसनीकोत्पल—
११ प्रतिस्पर्द्धि(नी) शङ्कमारातिविसितनिपसपप्रतिहृतरिपु
१२ मलो चतनागायहपवनीपकोपभुज्यमानविभव स्वमु—
१३ जपरिचयुजसोत्ताज्जितनृपश्री (*) कमलविभवधर—
१४ तनुज्यपक्ष (स*) कमराजमृतश्रीर्वर्मगुणान्वितो महावृषभपर्य्यङ्क
१५ कसुभोपधानविन्यस्तबाहोर्व्वामिचन्द्रोद्योतितजटाकलापकवे—
१६ यस्य भगवतस्त्स्यत्युत्पत्तिप्रलयसृष्टिसंहारकारणस्य
१७ भुभुवनगुरो—पादभक्त परमब्रह्मण्यो महाराजमहासा—
१८ मन्तश्रीमाधवराज कुशली कृष्णगिरि विषयसंबद्धमवक—
१ मकमग्राम वर्त्तमानभविष्यकुमारामात्यो—परिकृतवायुक्तकानभ्यास्य
२ यथार्हं पूजयति मानयति च (।*)
विदितमस्तु भवतामयं ग्रामा—
२१ स्माभिरस्य मातापित्रोरात्मनश्च पुण्याभिवृद्धये छलितवारापुर—
२२ स्वरेनावस्त्रायचनमकाशीनासयनीये भरद्वाजसगोत्रायाग्नि—
२३ स्वामिहस्ताग्यप्रवराय छन्दस्वामिन सूर्योशराम प्रतिपादित( )
२४ चन्द्रार्क स्मृतिनाशस्त । बहुभिर्व्वसुधादत्ता राजभिस्सगरादिभि
२५ यस्य यस्य यदा भूमिस्तस्य तस्य तदा फलं ।। षष्टिं वर्षसहस्रा—
२६ णि स्वर्गे मोदनि भूमिद (।*) आक्षेप्ता चानुमन्ता च तान्येव नरके
२७ वसे (त) ।। स्वदत्ता परदत्ताम्बा यो हरेत वसुन्धरा (म्।) स विष्ठायां
२८ (कृमि)र्भूत्वा पितृभिस्सह पच्यते ।।

(शशाङ्क कालीन ताम्रपत्र लेख)

२९ (ति) पार्थिव (।) ॥ स्वदाना (त्) फलमानन्त्य
परद (त्तानुपालने) ॥

३०

३१ —(प्र) यच्छति ॥

पुलेकेशी द्वितीय का अपहोल लेख

शका ५५६(=६३४ ई)

जयति भगवाञ्जिनेन्द्रो वीतजरामरणजन्मनो यस्य ।
ज्ञानसमुद्रान्तर्गतमाखिलं जगदन्तरीपमिव ॥ १ ॥
तदनु चिरमपरिमेय श्चलुक्यकुलविपुलजलनिधिर्जयति ।
पृथिवीमौलिलला्मना य प्रभव पुरुषरत्नानाम् ॥ २ ॥
शूरैर्विदुषु च विभजन्दान मान च युगपदेकत्र ।
अविहितयाथात्म्यो जयति च सत्याश्रय सुचिरम् ॥ ३ ॥
पृथिवीवल्लभशब्दो येषामन्वथता चिर यात ।
तद्वशेषु जिगीषुषु तेषु वहुष्वप्यतीतेषु ॥ ४ ॥
नानाहेतिशताभिघातपतितभ्रान्ताश्वपत्तिद्विपे
नृत्यद्भीमकवन्धखड्गकिरणज्वाला सहस्रे रणे ।
लक्ष्मीर्भावितचापलापि च कृता शौर्येण येनात्मसा—
द्राजासीज्जयसिंहवल्लभ इति ख्यातश्चलुक्यान्वय ॥ ५ ॥
तदात्मजोऽभूद्रणरागनामा
दिव्यानुभावो जगदेकनाथ ।
अमानुषत्व किल यस्य लोक
सुप्तस्य जानाति वपु प्रकर्षात् ॥ ६ ॥
तस्याभवत्तनूज पोलेकेशी य श्रितेन्दुकान्तिरपि ।
श्रीवल्लभोप्ययासीद्वातापिपुरीवधूवरताम् ॥ ७ ॥
यत्त्रिवर्गपदवीमल क्षितौ
नानुगन्तुमधुनापि राजकम् ।
भूश्च येन हयमेधयाजिना
प्रापितावभृथमज्जन बभौ ॥ ८ ॥

लब्ध्वा काल भुवमुपगते जेतुमाप्यायिकाख्ये
गोविन्दे च द्विरदनिकरैरुत्तरां भैमरथ्या ।
यस्यानीकैर्युधि भयरसज्ञत्वमेक प्रयात
स्तत्रावाप्त फलमुपकृतस्यापरेणापि मद्य ॥ १७ ॥

वरदातुङ्गरङ्गतरङ्गविलसद्ध्वसावलीमेखला
वनवासीमवमृद्नत सुरपुरप्रस्पर्धिनी सम्पदा ।
महता यस्य वलार्णवेन परित मञ्छदितोर्वीतल
स्थलदुर्ग जलदुर्गतामिव गत तत्तत्क्षणे पश्यताम् ॥ १८ ॥

गङ्गालुपेन्द्रा व्यसनानि सप्त
हित्वापुरोपार्जितसम्पदोऽपि ।
यस्यानुभावोपनता सदास—
न्नासन्नसेवामृतपानशौण्डा ॥ १९ ॥

कोङ्कणेषु यदादिष्टचण्डदण्डाम्बुवीचिभि
उदस्तास्तरसा मौर्यपल्वलाम्बुसमृद्धय ॥ २० ॥

अपर जलधेर्लक्ष्मी यस्मिन्पुरी पुरभित्प्रभे
मदगजघटाकारैर्नावा शतैरवमृन्दति ।
जलदपटलानीकाकीर्णन्नवोत्पलमेचक
जलनिधिरिव व्योम व्योम्न समोऽभवदम्बुधि ॥ २१ ॥

प्रतापोपनता यस्य लाटमालवगुर्जरा ।
दण्डोपनतसामन्तचर्याचार्या इवाभवन् ॥ २२ ॥

अपरिमितविभूतिस्फीतसामन्त सेना—
मुकुटमणिमयूखाक्रान्तपादारविन्द ॥
युधिपतितगजेन्द्रानीक बीभत्सभूतो
भयविगलितहर्षो येन चाकारि हर्ष ॥ २३ ॥

भुवगुरुभिरनीकै शासती यस्य रेवा—
विविधपुलिनशोभावन्ध्यविन्ध्योपकण्ठ ।
अधिकतरमराजत्स्वेन तेजोमहिम्ना
शिखरिभिरिभवर्ज्यो वर्ष्मणा स्पर्द्धयेव ॥ २४ ॥

विधिवदुपचिताभि शक्तिभि शक्रकल्प—
स्तिसृभिरपि गुणौघै स्वैश्च माहाकुलाद्यै, ।
अगमदधिपतित्व यो महाराष्ट्रकाणां
नवनवतिसहस्रग्रामभाजा त्रयाणाम् ॥ २५ ॥

गूढ़िका स्वमुगस्तिवगतुङ्गा
विहितान्यक्षितिपाक्रमानभङ्गा ।
भमवसुपपातमीतिकिङ्गा
मदनोऽेम सकोसला कलिङ्गा ॥ २६ ॥

पिष्टं पिष्टपुरं यन वात बुसमदुर्गमम् ।
चित्रं यस्य कर्लेर्वृत्त वार्त बुसमदुर्मगम् ॥ २७ ॥

मत्तद्वारणघटास्थगितान्तरालं
नानायुधक्षतनरक्षतजाङ्गरागम् ।
आसीज्जलं यदवमर्दितमभ्रगम
कौनालमम्बरमिवाज्जितसान्ध्यरागम् ॥ २८ ॥

उद्धूतामलचामरध्वजशतच्छत्रान्धकारबल
शौर्योत्साहरसोद्धतारिमथनमौलादिभिः षड्विधः ।
आक्रान्तात्मबलोन्नतिं बलरजः सम्छन्नकाञ्चीपुर—
प्राकारान्तरितप्रतापममरोद्यः पल्लवानां पतिम् ॥ २९ ॥

कावेरी द्रुतशफरीविलासनेत्रा
चोलानां सपदि जयोद्यतस्य यस्य ।
प्रश्च्योतन्मदगजसेतुरुद्धनीरा
संस्पर्शं परिहरति स्म रत्नराशेः ॥ ३० ॥

चोलकेरलपाण्ड्यानां योऽभूतत्र महर्द्धये ।
पल्लवानीकनीहारतुहिनेतरदीधितिः ॥ ३१ ॥

उत्साहप्रभुमन्त्रशक्तिसहिते यस्मिन्समस्ता दिशो
जित्वा भूमिपतीन्विसृज्य महितानाराध्य देवद्विजान् ।
वातापीं नगरीं प्रविश्य नगरीमेकामिवोर्वीमिमां
चञ्चन्नीरधिनीलनीरपरिखां सत्याश्रये शासति ॥ ३२ ॥

त्रिंशत्सु त्रिसहस्रेषु भारतादाहवादितः ।
सप्ताब्दशतयुक्तेषु गतेष्वब्देषु पञ्चसु ॥ ३३ ॥

पञ्चाशत्सु कलौ काले षट्सु पञ्चशतासु च ।
समासु समतीतासु शकानामपि भूभुजाम् ॥ ३४ ॥

तस्याम्बुधित्रयनिवारितशासनस्य
सत्याश्रयस्य परमाप्तवता प्रसादम् ।
शैलं जिनेन्द्रभवनं भवनं महिम्ना
निर्मापितं मतिमता रविकीर्तिनेदम् ॥ ३५ ॥

प्रशस्तेर्वसतेश्चास्या जिनस्य त्रिजगद्गुरो ।
कर्ता कारयिता चापि **रविकीर्ति** कृती स्वयम् ॥ ३६

येनायोजि नवेश्मस्थिरमर्थविधौ विवेकिना जिनवेश्म ।
स विजयतां **रविकीर्ति** कविताश्रित--
कालिदासभारविकीर्ति ॥ ३७ ॥

दक्षिण-पश्चिम भारत की प्रशस्तियां

प्रभावती गुप्ता का पूना ताम्रपत्र

a वाकाटक-ललामस्य
b (क्र)म प्राप्त-नृपश्रिय[*] (।)
c जनन्या युवराजस्य
d शासन रिपु-शास(न) [*] (॥[1])

१ सिद्धम् (॥*) जित भगवता (।*) स्वस्ति नन्दिवर्द्धनादासीद्गुप्ता
दि(रा)(म)ह(राज)

२ श्रीघटोत्कचस्तस्य सत्पुत्रो महाराज-श्रीचन्द्रगुप्तस्तस्य सत्पुत्रो-

३ (ऽ*)नकाश्वमेध-याजी लिच्छवि-दौहित्रो महादेव्यां कुमारदेव्यामुत्पन्नो

४ महाराजाधिराज-श्रीसमुद्रगुप्तस्तत्सत्पुत्रस्तत्पाद-परिगृहीत

५ पृथिव्यामप्रतिरथस्सर्व-राजोच्छेत्ता चतुरुदधि-सलिलास्वादित

६ यशा नेक-गो-हिरण्य कोटी-सहस्र प्रद परम-भागवता महाधि

७ राजाधिराज-श्रीचन्द्रगुप्तस्तस्य दुहिता धारण-सगोत्रा नाग-कुल-सम्भू

८ तायां (*) श्री-महादेव्यां (*) कुबेरनागायामुत्पन्नोभय-कुलालङ्कार-भूता-

त्यन्त-भगवद्भक्ता

वाकाटकानां महाराज-श्रीरुद्रसेनस्याग्रमहिषी युवराज

९ श्रीदिवाकरसेन-जननी श्री-प्रभावतिगुप्ता सुप्रतिष्ठाहारे

११ विलवणकस्य पूर्व-पार्श्वे शीर्षग्रामस्य दक्षिण-पार्श्वे कदालिवाटकस्यापर-पार्श्वे

१२ सिदिविवरकस्योत्तर-पार्श्वे दङ्गुणग्रामे ब्राह्मणाधान्ग्राम-कुटुम्बिन—कुशल

१३ मुक्त्वा समाज्ञापयति (।*) विदितमस्तु वो यथा ग्रामो(ऽ*)स्माभि स्व-

पुण्या-प्यायना (र्थं)

१४ कार्तिक-शुक्ल-द्वादश्यां (*) भगवत्पाद-मूले निवेद्य भगवद्भक्ताचार्य

चनालस्वामिन (ऽ*)पूर्व्व

१५ दत्त्वा उदक-पूर्व्वमतिसृष्टो यतो यथोचितवास्योचिता सर्व्वा×

कर्तव्या (*) पूर्व्व

१६ राज्यानुमता( )श्चात चातुर्विद्याग्रहार-परीहारान्वितरामन्नपालाद-ल

प्रावेश्यः

---

१ प्रशस्ति के मुहर की पंक्तियां

१७ अ-चारासन-चर्म्माङ्गार-क्लिण्व-क्रेणि-खानक ( ) अ-पा (र*) म्पर (*) अ-(पशु) मेध्य अ-पुष्प-क्षीरमन्दोह

१८ स-निधिस्सोपनिधिस्म-क्रृप्तोपक्लृप्त (।*) नदेष भविष्यद्राजिभिस्मरक्षितव्य (*) परिवर्द्ध-

१९ यितव्यश्च (।*) यश्चास्मच्छासनमगणयमानस्वल्पामप्यबाधा कुर्य्यात्कारयेत वा

२० तस्य ब्राह्मणरावेदितस्य स-दण्ड-निग्रह कुर्य्याम (।*) व्यास-गितश्चात्र श्लोको भवति (।*)

२१ स्व-दत्ताम्पर-दत्ता वा यो हरेत वसुन्धरा (।)
गवा (*) शत-सहस्रस्य हन्तुर्हरति दुष्कृतम् (।*)७

२२ सवत्सरे च त्रयोदशमे लिखितमिद (*) शासनम (।*) चक्रदासेनोत्क-ट्टितम् (।।*)

प्रवरसेन द्वितीय कालीन रिथपुर लेख

१ जित (*) भगवता ।। रामगिरिस्वामिन⁀पादमूलाद्गुप्तानामादि-

२ राजो महाराज-श्रीघटोत्कचस्तस्य पुत्रो महाराज-श्रीचन्द्र-

३ गुप्त तस्य पुत्रस्तत्पाद-परिगृहीत-लिच्छवि-दौहित्रो

४ महादेव्या (*) कुमारदेव्यामुत्पन्नो महाराज-श्रीसमुद्रगुप्तस्तस्य पुत्र-

५ स्तत्पादानुद्धयातो न्यायागतानेकगो-हिरण्यकोटिसहस्र-प्रदस्सर्व्व-राजो-

६ च्छेता पृथिव्यामप्रतिरथ⁀परमभागवतो महादेव्या (*) दत्तदेव्यामु-

७ त्पनो महाराजाधिराज-श्रीचन्द्रगुप्तस्तस्य दुहिता धारण-सगोत्रा

८ नागकुलोत्पन्नाया (*) कुबेरानागदेव्यामुत्पन्ना उभय-कुलाल-

९ ङ्कारभुता वाकाटकाना (*) महाराज-श्रीरुद्रसेनस्याग्रमहिषी

१० वाकाटकानाम्महाराज-श्री-दामोदरसेन-प्रवरसेन-जननी भगव-

११ त्पादानुद्धयाता साग्र-वर्ष-शत (ा*) दीव-पुत्र-पौत्रा श्र (ी*)-महादेवी प्रभावती-

१२ गुप्ता कौशिकमार्ग्गं अश्वत्थनगरे मन्नहन-पुरेग-ग्र (ा*) म-महत्तरा (*) श्च

१३ कुशलमुक्त्वा सम (ा*) ज्ञापय (ि*) त (।*) ऐहिकामुत्रिकमस्मिन्नगरे स्वपुण्याप्यायनात्थ

१४ पराशर-सगोत्राणा (*) तैत्तिरीय-ब्राह्मणानामप्य (त्र*) पुत्रापुत्राणा ( )

१५ अभ्यन्तर-पुर-निवेशने (न*) मह कर्षक-निवेशनानि च चत्वार

१६ मुक्ताकामोम-शतमुन्कपूर्व (*) घासनतो घतिबद्ध (।*) उचितोतचाम्म
१७ पूर्वराजानुमतान्पातुर्वेद-ग्राम-मर्य्यादा (परिहारा*) न्नितरामस्तथथा
१८ अ-करदामी अ मट च्छ (।*) म प्रावेस्य (*) अ-पुष्प-क्षीर-सन्दोह (*) अ
    चारा
१९ सन-वर्म्माङ्गार (*) अ-लवण-क्लिन्न क्रेणि-ख (।*) नक ( ) सर्व्व-विस्ति
    परिहारा
२० परिहृत (*) सनिधानं सोपनिधान स-क्लृप्तोपक्लृप्तमाचन्द्रा
२१ दित्य-कालीम (*) पुत्र-पौत्रानुगामी (।*) भुञ्जता (*) न केनचिद्व्या-
    घात
२२ —कर्त्तव्य ( ) सर्व्व-क्रियाभिस्संरक्षितव्य परिवर्द्धयितव्यश्च (।*)
    यश्चास्मा
२३ च्छासनमगणयमान स्वल्पामपि परिबाधा (*) कुर्य्यात्कारयेत वा तस्य
२४ ब्राह्मणराबेदितस्य स-दण्ड-निग्रह करिष्यामः (।*) अस्मि (*) श्च धर्म्माकर
२५ करणे अतीतानेक-राज-दत्ता-सञ्चिन्त्य (*) तन-परिपालन पुण्यानुकीर्तन
२६ परिहारार्थ न कीर्त्तयाम ( ) (।*) स्वकुलाभियोग-पराक्रमोपजि
२७ तान्वर्तमानानाज्ञापयाम (।*) व्यास-गीतबन्धात्र श्लोक प्रमाण (।*)
२८ स्वदत्ता (*) परदत्तां वा यो हरेत वसुन्धराम् (।)
    गवां शत-सहस्रस्य
२९ हन्तु पिबति दुष्कृतमिति ॥ १
    वाकाटकाना (*) महाराज-श्रीप्रवर
१ सेनस्य राज्य-प्रवासत सम्वत्सरे एकुनविंशतिमे कार्त्तिक-मा
११ स-शुक्ल-पक्ष-द्वादश्या (*) (।*) दूतक देवनन्दस्वामी (।) लीखिता
१२ प्रभुसिंहेन (॥*)

प्रवरसेन द्वितीय का यमक प्रशस्ति

a वाकाटक-ललामस्य
b क्रम-प्राप्त-नृप-श्रिय (।)
c राज्ञ प्रवरसेनस्य
d शासन रिपु-शासन (॥)

१ दृष्ट (॥*) स्वस्ति (॥*) प्रवरपुरादग्निष्टोमाप्तोर्य्यामोक्थ्य-षोडश्या-
    तिरात्र
२ वाजपेय-बृहस्पतिसव-सायस्क-चतुरश्वमेधयाजिन

---

१ प्रशस्ति की मुहर की पंक्तियाँ

३ वि(ष्णुवृ)द्ध-सगोत्रस्य सम्रा(ट)-वाकाटकाना महाराजश्री-प्रवरसेनस्य
४ सूनो सूनो अत्यन्त-(स्वा)(मिमहाभैरव-भक्तस्य अ(*)स-भार-सन्निवेशि-
५ त-शिवलि(ङ्गो)द्वहन-शिव-सुपरितुष्ट-समुत्पादि(त)-राजव(*)शा-
६ नाम्पराक्रमाधिगत-भागीरथ्यामल-जल-मूर्द्धाभिषिक्तानान्दशा-
७ श्वमेधावभृथ-स्नातानाम्भारशिवाना महाराज-श्रीभवनाग-दौ-
८ हित्रस्य गौतमीपुत्रस्य पुत्रस्य वाकाटकाना महाराज श्रीरुद्रसे-
९ नस्य सूनोरत्यन्त-माहेश्वरस्य सत्यार्ज्जव-कारुण्य-शौर्य-विक्रम-न-
१० य-विनय-माहात्म्याधिमत्त्व-पात्रागत-भक्तीत्व-धर्म्मविजयित्व-
११ मनोनैर्म्मल्यादि-(गुणै)स्समुपेतस्य वर्ष-शतमभिवर्द्धमान-कोश-
१२ दण्ड-साधन-सन्तान-पुत्र-पौत्रिण युधिष्ठिर-वृत्तेर्व्वाकाटका-
१३ ना महराज-श्रीपृथिवीषेणस्य सूनोर्भगवतश्चक्रपाणे प्रसा-
१४ दापार्ज्जित-श्री-समुदयस्य वाकाटकाना महाराज-श्रीरुद्रसेन-
१५ सूनोर्म्महाराजाधिराज-श्रीदेवगुप्त-सुताया प्रभाव-
१६ तिगुप्तायामुत्पन्नस्य शम्भो प्रसाद-धृति-कार्तयुगस्य
१७ वाकाटकानाम्परममाहेश्वर-महाराज-श्रीप्रवरसेनस्य वचना(द्*)
१८ भोजकट-राज्ये मधुनदि-तटे चर्म्माङ्क-नाम ग(ा*)म राजमानिक-भूमी-
१९ सहस्रैरष्टाभि ८००० शत्रुघ्नराज-पुत्र-कोण्डराजविज्ञाप्तया नाना-गो-
२० त्र-चरणेभ्यो ब्राह्मणेभ्य सहस्राय दत्त (॥*)
२१ यतो(ऽ*)स्मत्सन्तका(*)सर्व्वाद्ध्यक्षाधियोग-नियुक्ता आज्ञा-सञ्च(ा*)-
रि-कुलपुत्राधिकृता
२२ भटाच्छात्राश्च विश्रुत-पूर्व्वयाज्ञयाज्ञापयितव्या विदितमस्तु वो यथे,
२३ हास्माकम्मनो-धर्म्मायुर्ब्बल-विजयैश्वर्य्य-विवृद्धये इहामुत्र-हिता-
२४ र्त्थमात्मानुग्रहाय वैजेके धर्म्मस्थाने अपूर्व्वदत्या उदकपूर्व्व-
२५ मतिसृष्ट (।*) अथास्योचिता पूर्व्व-राजानुमता चातुर्व्वैद्य-ग्राम-म-
२६ र्य्यादान्वितरामस्तद्यथा अकरदायी अ-भट-च्छात्र-प्रावेश्य(*)
२७ अ-पारम्पर-गो-वलिवर्द्द(ः*) अ-पुष्प-क्षीर-सन्दोह अ-च(ा*)रा-
२८ सन-चर्म्माङ्गार(*) अ-लवण-क्लिन्न-क्रेणि-खनक(*) सर्व्व-वेष्टि-परि-
२९ हार-परीहृत स-निधिस्सोपनिधि स-क्लिप्तोपक्लिप्त
३० आ-चन्द्रादित्य-कालीय पुत्र-पौत्र(ा*)नुगामक (।*) भु( )जता न के-
३१ नचि(द्*) व्याघात कर्त्तव्यस्सर्व्व-क्रियाभिस्स(*)रक्षितव्य परिवर्द्धयि-
३२ तवश्च (।*) यश्चाय शासनमगणयमानो स्वल्प(ा*)मपि(*)रिबाधा( )
३३ (ङ्क)र्य्यात्कारयिता वा तस्य ब्राह्मणैर्व्वेदितस्य स-दण्ड-निग्रह कुर्य्या-
३४ म (।*) अस्मि(*)श्च धर्म्माधिकरणे अतितानेक-राज-दत्त-सञ्चिन्तन-

२१ प्रश-नयाम्ग्रा( ) शाता [गिताशिरि (॥*)

हरिषेण का अजन्ता गुहा-लेख

१ उदीर्ण-जात्‌मग प्रावराद्रि-
निर्व्वापणो — ◡ ◡ — ◡ — — (।*)
◡ — ◡ — (वृक्षग ?) निप्रणम्य
पूर्व्वां प्रवक्ष्ये क्षितिपानुपूर्व्वी(म्) (॥*)१
२ महाविमर्दैष्वभिवृद्ध-शक्ति
क्रुद्धस्सुरैरप्यनिवार्य्य-(शक्ति ?) (।*)
(अन्यप्रसाधा ?)न्य-दात-शक्ति
द्विज प्रकाशो भुवि विन्ध्यश(क्ति.) (॥*)२
३ पुरन्दरोपेन्द्र-सम-प्रभाव
स्वबाहुवीर्य्या(र्जि)त-(सर्व्वलोक —) (।*)
◡ — ◡ — — ◡ (यशो)नुकाना
बभूव वाकाटक-वंश-के(तु *) (॥*)३
४ रणे (स्व)हस्युत्थित-रेणु-जाल-
माच्छादितारा) ◡ ◡ — ◡ — — (।*)
(प्रनष्टमारानपिलो ?)नरानी-
न्कृत्वाभिवाद-प्रवणा('श्चकार (॥*)४
५ (विनि)(जि)तारि(स्सुर)राजकार्य्य-
श्चकार पुण्येषु पर प्रय(त्नम्*) (।*)
◡ — ◡ — — ◡ ◡ — ◡ — —
◡ — ◡ — — ◡ ◡ — ◡ — —(॥*)५
(अरि*)-नरेन्द्र-मौलि-विन्यस्त-मणि-किरणलीढ-(क्रमाम्बुज *) (।*)
६ प्रवरसेनस्तस्य पुत्रो(ऽ*)भूद्विकसन्नवेन्दीवरेक्षण (॥*)६
रविमयूख-द * * * * * * * * * * * * * * (।*)
(सर्व्वसेन) प्रवरसेनस्य जित-सर्व्वसेनस्तुनो(ऽ*)भवत् (॥*)७
७ (तस्य) पुत्र पार्त्थिवेन्द्रस्य प्रश(शा)स धर्म्मेण मेदिनी(म्*) (।*)
कुन्तलेन्द्र( ) नि(जित्य-श्री ?)-(पृ)थिवी(षेणो) (नयवस्तिदा ?) (॥*)८
प्रवरसे(नस्त)स्य पुत्रो(ऽ*)भू-
त्प्रवरोर्ज्जितोदार-शासन-
प्रवर-

अथ तस्य सुतो वभू-
१४ (व राजा ?)
◡ ◡ — — ◡ ◡ — ◡́ — ◡ (नीति ?) (।*)
हरि-राम-हर-स्मरे(न्दु?)-कान्ति-
हरिषेणो हरि-विक्रम-प्रताप (॥*)१७
स कुन्तलावन्ति-कलिङ्ग-कोसल-
त्रिकूट-लाटान्ध्र
१५ ◡ — ◡ — ◡ — ◡ —
◡ — ◡ — — ◡ ◡ — ◡ नैर्वृता-
नपि स्वनिर्देश ◡ — ◡ — ◡ — (॥*)१८
प्रथितो भुवि हस्तिभोज-सूनु-
स्सचिवस्तस्य महीपतेर्ब्बभूव (।*)
सकल-क्षिति
१६ — ◡ — ◡ — —
◡ ◡ — — ◡ ◡ — ◡ — — (॥*)१९
— — ◡ जेष्ठ स्थिर-धीर-चेता-
स्त्याग-क्षमौदार्य्य-गुणैरुपेत(*) (।*)
धर्म्मेण धर्म्मप्रवणश्शशास
देश यश◠पुण्यगुणाशु-
१७ (दीप्तम् ?) (॥*) २०
◡ ◡ — ◡ ◡ — ◡ — ◡ — —
प्रति पुण्योपचय पर चकार (।*)
यत ऊर्द्ध्वमदस्सहायधर्म्मा
(परितो लोकगुरो) चकार कारा(न्? (॥*)२१
आयुर्व्वयो-वित्त-सखाणि
१८ ◡ — ◡ — — ◡ ◡ — ◡ लानि (।*)
उ(द्दिश्य*) मातापितरावुदार
न्यवीविशद्वेश्म यतीन्द्र-(सेव्यम्) (॥*)२२
सजलाम्बुद (वृन्द-सस्थि ?)ताग्रे
भुजगेन्द्राद्ध्युषिते महीधरेन्द्रे (।*)
१९ ◡ ◡ — ◡ ◡ — ◡ — ◡ — —
◡ ◡ — श्रीपतिना शरा निकुञ्जे (॥—)२३
गवाक्ष-निर्य्यूह-सुवीथि-वेदिका-

— — — म्न-मनश्शिलाल-कपिलैय्यावित्करंभास्व (स्क?) र (।*)
तावच्छे

२६ ◡ ◡ — ◡ — ◡ ◡ ◡ — — — ◡ — स्सेव्यता-
मन्तर्म्मण्डप (ल९)-रत्न (मे) तदमल रत्नत्र (योद्धा) वित (*) (॥*) ३१
विविध-लयन-सानुस्सेव्यमानो महद्भि-
र्गिरेरय-

२७ ◡ ◡ ◡ — — — ◡ — — ◡ — द्वच (।*)
जगदपि च ममस्तव्यस्त-दोष-प्रहाणा-
(द्वि*) शतु पदमशोक निर्ज्वर शान्तमार्य ( ) (॥*) ३२

पल्लव नरेश शिवस्कन्ध वर्मन का ताम्रपत्र+

(वर्ष १०)

१ (सिद्ध* ॥) (का*) चीपुराती युवमहाराजो १
२ भारदाय-सगोत्तो पलवान
३ सिवख ( ) दवम्मो धञ्ञकडे २
४ वापत आनपयति (।*)
५ अम्हेहि दानि अम्ह-वेजयिके
६ (ध) मायु-वल-वधनिके य
७ बम्हनान अगिवेस-सगोत्तस ३
८ पुवकोटुजस अगीवेस-सगोत्तस
९ गोनदिजस अधापतीय गामो
१० (विरिप) र अम्हेहि उदकादि
११ मपदतो (।*) एतस गामस ४
१२ विरिपरस सव-वम्हदेय-
१३ प (रिहा) रो वितराम (।*) अ-लोन-
१४ अ-रठ-स (वि) नायिक अ-परपरा-वली-
१५ अ-मड-पपेस अ-कूर-चोलक- ५
१६ विनासि-खट (।*)-मसाम (।*) एते
१७ अनेहि च सव-वम्ह-
१८ देय-मजादाय
१९ सव-परिहारेहि परिहारितो (।*) ६
२० परिहरय परिहरापेय च (।*)

+यह लेख आठ ताम्रपत्रों पर उत्की

२१ भो अम्ह-सासन अतिछि-
२२ तूनपीसा बाधा करेज्या (वा)
२३ (त) कारापेज्जा वा तस अम्हो ७
२४ सारीर( ) सासन करेजामो (।*)
२५ स( )बछरं बसमं १ गिम्हा
२६ पखो छठो ६ दिवस पंचमि (।*)
२७ आनती सयत्ति वता ८
२८ पट्टिका (॥*)

शिवस्कन्दवमन का हीरहडगल्लि ताम्र-पत्र-लेख

(चौथी शताब्दि)

सिद्धम्
१ कांचिपुरा अगिगट्ठोम वाजपेयस्समेधयाजी धम्ममहा
२ राजाधिराजो भारद्दायो पल्लवान सिवखंदवमो
३ अम्ह विसय सबत्थ राजकुमार-सेनापति
४ रट्ठिक-माडवि (क)-देसाधिकतादीके गामागाममोजके
५ वल्लवे गोवल्लवे अमच्चे अरखाधिकते गुमिके तूथिके
६ नेथिके अन्न वि च अम्ह-पेस (ण)-प्पयुत्तसंचरन्तक
७ भडमनुसाप (कठ सो) (।) परिहारं वितराम एत्थ दानि
८ (अ) पिट्टी-मतखाण चिरलेरेककादुर्क-मोअम-बम्हणानां अप्प
९ न कुल गोतस धमायु-बल-यसो-वधनिके विजय-वेजयीके
१ च कातून अप्पनिहत-सासनस्स अनेक-हिरंगेमोकाडी
११ गोहलसतसहस्स-प्पदायिनो महाराज बप्पसामीहि
१२ बाडव चिरलरेककोडुके पुब्बदत्तं (।) गोनन्दजस पतीभागो
१३ आतेय-सगोतस अगिसमजस्य पतीभागा
१४ माडरस पतीभागा बे वामसकस अगिसम्मस पती
१५ भागो हारित-सगोतस रुद्रसमस पतीभागा
१६ भारदाय-सगोतस कुमारसमस पतिभागा कोसिक-
१७ सगोतस कुमारनदि-कुमारसम-कोट्टसम-सतिसम च
१८ चतुण्हं मासुकाप वनारि पतीभागा कस्सव-सगोत
१९ स्स-नंदिस पतीभागा भारदायस अंदकोडिस
२ पतीभागा वे अवदम पतीभागो वत्सम

२१ (प) त्तीभागो दत्तजस पतीभागा वे नदिजस
२२ पतीभागा वत्स-सगोतस रुदसमस, पती-
२३ भागो दामजस पतीभागो सालसमजस पति-
२४ भागो × × × × ×
२५ परिमितस पतीभागो नागनदिस पतीभागो गोलिस
२६ पतिभागो खदसमस पतिभागो सामिजस पतिभागो
२७ एतेसि वम्हणाण अगिममज-पमुखाण साताहनि-रट्ठे
२८ गामे चिल्लरेककोडुके दखिण-सीम पुव्वदन (।)
२९ अम्हेहि वि आ-चन्द-तार-कालीक-कातूण उदकादि सप
३० दतो एत वम्हणाण चिलेरेककोडुक-वाडक (।)
३१ अ-कूर-योल्लक-विनेसी-खट्टा-वाम अ-दूव-दधि-गहण
३२ अ-रट्ठस विनयिक अ-लोण (गु) ल-च्छोम अ-कर-वेट्ठी-
३३ को ( ) जल्ल अ-पारपर-वलिवद्द-गहण अ-तण-कट्ठ-गह-
३४ ण अ-हरितम-साक-पुफ-गहण एवामादीकेहि अटठा-
३५ रस-जाति-परिहारेहि विसयवासिहि अपि-
३६ ट्टी-वासीहि चिल्लेरेककोडुक-वासीहि च परिहरितव
३७ हरिहापेतव्व च त्ति (।) अपि च आपिट्टीय अगिसमज
३८ पमुखाण वम्हणाण खलस निवतण घरस्य निवत-
३९ ण अद्धिका चात्तारि कोकिला वे ति (।) एव नातूण
४० अय कोचि वल्लभ-मदेन पिला वाघा करेय्य कारवेज्जा
४१ वातस खु अम्हे निगह-वारण करेय्याम ति (।) भूयो च
४२ वीरस-सत-सहस्सातिरेक-समकाले अम्ह पल्लव-
४३ कुल-महते भविस्स भडे अम्ने न चो
४४ वसुधाधिपतये अभत्थेमि जो सक-काले उपरि
४५ लिखित मेजाताये अणुवट्ठावेति तस
४६ वो सम्मो ति (।) यो चसि विग्घे वट्ठेज
५० स च खु पञ्च-महापातक-सजुतो नराधमो
५१ होज ति (।) दत्ता पट्टिका वास-सतसहस्साय
५२ सव वास दिव (।) सचमाणत (।)
५३ कोलिवाल-भोजकस रहसाधिकत-भट्टिस-
५४ म्मस सहत्थ लिखितेण पट्टिका कड त्ति (।)
५५ स्वस्ति गो-ब्र (।) ह्मण-लेखक-वाचक-श्रोतृभ्य इति (।।)

ब्रह्म-सिद्धिर्य्यदि नृपाधीना किमत$\smile$पर दु×खमित्यत (॥) १२
५ कुश-समिद्दृषत्स्रुगाज्य-चरु-ग्रहणादि-दक्षेन पाणिना (।*)
उद्ववहृ दीप्तिमच्छस्त्र विजिगीपमाणो वसुन्धराम् ॥ १३
यो(ऽ-)न्तपालान्पल्लवेन्द्राणां सहसा विनिर्ज्जित्य सयुगे (।*)
अद्धयवास दुर्गमामटवी श्रीपर्व्वत-द्वार-सश्रिताम् ॥ १४
आददे करान्वृहद्वाण-प्रमुखाद्वहून्राजमण्डलात् (।*)
एवमेभि$\smile$पल्लवेन्द्राणा भृकुटी-समुत्पत्ति-कारणै ॥ १५
६ स्वप्रतिज्ञा-पारणोत्थान-लघुभि×कृतार्थैश्च चेष्टितै (।*)
भूपणैरिवावभौ वलवद्यात्रा-समुत्थापनेन च ॥ १६
अभियुयुक्षयागतेषु भृश काञ्ची-नरेन्द्रेष्वरातिषु (।*)
विषम-(दे)श-प्रयाण-सवेश-रजनीष्वस्कन्द-भूमिषु ॥ १७
प्राप्य सेना-सागर तेषा प्राहृन्वली श्येनवत्तदा (।*)
आपदन्तान्वारयामास भुज-खड्गमात्र-(व्य)पाश्रय ॥ १८
७ पल्लवेन्द्रा यस्य शक्तिमिमा लब्ध्वा प्रतापान्वयावपि (।*)
नास्य हानिश्श्रेयमीत्युक्त्वा यम्मित्रमेवाशु वव्रिरे ॥ १९
सश्रितस्तदा महीपालानाराध्य युद्धेषु विक्रमै (।*)
प्राप पट्ट-वन्ध-सपूजा कर-पल्लवै$\smile$पल्लवैर्द्धृताम् ॥ २०
भङ्गुरोर्म्मि-वलितैर्नृत्यदपरार्णवाम्भ ×कृतावधिम् (।*)
प्रेहरान्तामनन्य-सचरण-समय-स्थिता भूमिमेव च ॥ २१
८ विवुव-सघ-मौलि-समृष्ट-चरणारविन्दष्षडानन (।*)
यमभिषिक्तवाननुध्याय सेनापति मातृभिस्सह ॥ २२
तस्य पुत्र×कङ्गवर्म्मोग्र-समरो(द्धु)र-प्रा( )शु-चेष्टित (।*)
प्रणत-सर्व्व-मण्डलोत्क्रिष्ट -सित-चामरो(द्धू)त-शेखर ॥ २३
त(त्सु)त ×कदम्ब-भूमिवधू-रुचितैकनाथो भगीरथ (।*)
सगर-मुख्य(स्स्व)य कदम्बकुल-प्र(च्छन्न)-ज(न्मा) जनाधिप (॥*) २४
९ अथ नृप-महितस्य तस्य पुत्र
प्रथित-यशा रघु-पार्थिव पृथु-श्री (।*)
पृथुरिव पृथिवीम्प्रसह्य यो(ऽ*)रीन्
अकृत पराक्रमतस्स्वव( )श-भोज्याम् ॥ २५
प्रतिभय-समरेष्वराति-शस्त्रो-
ल्लिखित-मुखो(ऽ*)भिमुख-द्विपा प्रहर्त्ता (।*)
श्रुतिपथ-निपुण×कवि प्रदाता

विविध-कला-कुशल ⌒ प्रजा-प्रियश्च ॥ २६

१ भ्रातास्य चारु-मधुरत्व-गभीर-भावो
मोक्ष-त्रिवर्ग-पटरम्य-वरस्तस्य (।)
मार्गीरपिर्भरपतिर्मगराज-शील
काकुस्थ इत्यवनि-मण्डल-गुप्त-कीर्ति ॥ २७
न्यायोभिरसह विग्रहो(ऽ*)र्षिपु यया सम्यक्प्रजा-पालनम्
दीनाम्भुद्धरणं प्रधान-वसुभिर्मुक्ताद्विजाभ्यर्हणम् (।*)
११ यस्याकुल-भूषणस्य नृपते' प्रश्नोत्तर भूषणम्
तम्भूपा × ... मेनिरे गुरु-सत्तं काकुस्थमभ्यागतम् ॥ २८
धर्म्माभिकमस्था इव मृगगणा नृपस(।*)मि प्रविश्य
च्छाया-सेवा-मुदित-मनसो निर्वृतिं प्राप्नुवन्ति (।*)
तद्वच्छाया-विहृत-मतयो बान्धवास्तानुबन्धा
प्रापुरसम्मर्ग्यथित-मनसो यस्य भू(मिं) प्रविश्य ॥ २९
१२ नानाविध-द्रविण-सार-समन्वयपु
मत्त-द्विपेन्द्र-मद-वासित-गोपुरेष (।*)
संगीत-वल्गु-निनदेषु गृहेषु यस्य
लक्ष्म्या कृता धृतिमती सुचिरं च रेमे ॥ ३
मुक्तादि-गर्जित-कुमाम्बुरह-स्वकानि
स्तनादर-प्रणय-सम्भ्रम-केसराणि (।*)
श्रीमन्त्यनक-नृपपटपद-सेवितानि
यो(ऽ*)योत्पद्दिहुतु-दीधितिमिर्न पाकर्क ॥ ३१
१३ मन्त्रैवमम्यग्रमतीनवेक्ष्य
शक्तिप्रयोगेनमयाममस्वम् (।*)
येरैर्नृण पञ्चभिरप्यमात्यधा
न्मामम-चूडामणय प्रणमु ॥ ३
मथिह् भगवतो भवस्यादिदेवस्य सिद्धायतनम् सिद्ध-गान्धर्व-रक्षो-गणसेवितो
विविध-नियम-होम-दीक्षा-न र्वा(ग्र)च(*) स्तापस स्तूयमान सदा यत्र
वाहसूम (।*)
१४ गुरुभिरभिरतमीतवरुणम-निरभयम प्रभुभिस्तातकल्पैर्विधिवदुपास्यविनो
हरमुपलक्ष्योदर्यामाभस भूपति कारयामास काकुस्थवर्म्मा तडागम(इद्)
(॥) ३३
नार्गीरसम्य ततय(स्य) विशाल-कील
(प)टु-समालोन-विस(जित)-पासमूर्त (।*)

श्रीशान्तिवर्म्म-नृपतेर्व्वर-शासनस्य
कुब्जस्स्वकाव्यमिदमश्म-तले लिलेख ॥ ३४

१५ नमो भगवते स्थानकुन्दूर-वासिने महादेवाय (।*)
नन्दतु सर्व्व-समन्तागतो(ऽ*)यमधिवास (।*)
स्वस्ति प्रजाभ्य इति (॥)

पश्चिमी गंग लेख-

माधव का पेनूकोण्डा ताम्रपत्र अभिलेख

प्रथम-पत्र

ओम् स्वस्ति

१ जितम्भगवता गत-घन-गगनाभेन पद्मनाभेन (॥*)
श्रीमज्जाह्नवेय-कुलामल-व्योम-मा

२ सन-भास्करस्य स्व-भुज-जव-जप-जनित-सुजन—
जनपदस्य दारुणारि-गण-विचारण-रणोप-

३ लब्ध-व्रण-भूपणस्य काण्वायन सगोत्रस्त्र श्रीमत्कोङ्कणिवर्म धर्म्म महाधि-
राजस्य पु-

४ त्रस्य पितरन्वागत-गुणस्य नाना-शास्त्रार्थ—
सद्भावाधिगम-प्रणीत-(म)ति-विशेषस्य नीतिशास्त्र-

५ स्य वक्तृ-प्रयोक्तृ-कुशलस्य सम्यक्यजापालनमात्रधिगतराज्य-प्रयोजनस्य
श्रीमत्मा-

दूसरा पत्र प्रथम भाग

६ **धव-महाधिराजस्य** तस्य पुत्रस्य अनेक-युद्धोपलब्ध-व्रण-विभूपित-शरीरस्य
नाना—

७ शास्त्रेतिहाम-पुराण-तत्वज्ञस्य श्री-पल्लव-कुलेन्द्रेण **सिंहवर्म्म**-महाराजेन
यथार्हम—

८ भिषिक्तस्य **गंग-राजस्य** आय्यवर्म्मण पुत्रेण पितृ-पैतामहा-गुण-सयुक्तेन देव-

९ द्विजाति-गुरु-पूजन तत्परेण धर्म्माभ्यास-कृत-मत्तिना स्व-वाहु-वीर्य्यार्ज्जित-
राज्य-विभवेन

१० गांगेय-वंश-ध्वजेन स्व-वंश-क्रमागत-राज्य-प्रणीतेन पल्लवाना श्री**सकन्दवर्म्म**-
महा—

द्वितीय भाग

११ राजेन यथार्हमभिषिक्तेन गंगानाम्**माधव**-महाधिराजेन श्री-सिंहवर्म्मणो
व्राह्म-

१२ माम मस्त-समोभाव वैतिरिय मरनाम
   कुमारधर्म्मेण यम-नियम-तप (*)
१३ स्वाद्ध्याय-ध्यान-धारणाध्यनाध्यापन-तापनुमह-सामत्थ्यमि म (r*) दान
   प्रतिग्रहा
१४ म चन-मास्याम् तिथौ पौर्णमास्याम् पवमि-विषम पवमि-महातटाकापस्तात
   कर्म्मटच-स
१५ मे चपष्टि-केदारा स्वर्विमृत्तस्तक-वापा महत्य क्षमेपाञ्च प्रवत्ता (।*)

तृतीय पत्र

१६ यो(ऽ*) स्य हर्ता स पंचमहापातक-संयुक्तो भवति ॥ अपि चात्र मनु-गीता
   श्लोका (।*)
१७ बहुभिर्व्वसुधा भुक्ता राजभिस्सगरादिभि (।*) यस्य यस्य यदा भूमिस्तस्य
   तस्य तदा फलम् (।f*) ।
१८ स्वदत्तां समुद्दत्तायत्नाद्× यमम्यार्त्थ-पालनम् (।*)
   दानं वा पालनं वेति दानाच्छ्रेयो (ऽ*) नुपालनम् (॥*)
१९ स्व-दत्ताम्पर-दत्तां वा यो हरेत वसुन्धराम् (।*)
   षष्टिं वर्ष-सहस्त्राणि घोरे तमसि वर्तते (॥*)
२० इति सुवर्ण्ण कार्म्म-पुत्रेण अपापेन लिखितेयन्ता
   म्र-पट्टिका (।*) ।

मलसी नरेश द्रोणसिंह का मोहोल प्रशस्ति

(गु स १८३)

१ स्वस्ति (॥*) वलभीत परमभट्टारक-पादानुध्यातो महाराज-द्रोणसिंह
   ×कुशली स-विषय सम्मीनवास्मसम्नकायुक्तक-विनियुक्तक-मह
२ त्तर-चाट्भिक-भुवस्थानाधिकरण चाट-भटादीं(*श्च समाज्ञापयत्यस्तु वो
   विदितं यथा मया विजयायुर्द्धर्म्म फल-यशोविषय-विद्ध
३ ये नौ वर्षसहस्राय-सर्व्वकस्याणाभिप्राय-मपतत्य च हुस्तवमाहत्या श्री-मच
   चत्या⁀पाण्डुराज्याया मातापित्रो⁀पुण्याप्यायन-नि
४ मित्तमात्मनश्च पुण्याभिवृद्धय आ-चन्द्रार्क्कार्ण्णव-क्षितिस्थिति-सरित्पर्व्वत
   समकालीनं बलि-चरु-वैश्वदेवाग्निहोत्र क्रियाणा समुत्सर्प्पणार्त्थं ( )
५ त्रिर्तमकालो गन्ध-धूप-दीप-तल्प-माल्योपयोज्य देवकुलस्य च पतित
   विशीर्ण्ण-प्रतिसंस्कारणार्त्थं मयोपयोज्यस्माहृत्या

६ देयस्सहान्यैश्चादानै (र) चाट-भट-प्रावेश्य ब्रह्मदेय-स्थित्त्या उदकातिसर्गेण निसृष्ट (।*)
यतो (ऽ*) स्योपचित-न्यायत (*) भुजेत कृशत प्रदिशत-
७ ×कर्षापयतो वा न केनचित्स्वल्पा वाधा विचारणा वा कार्य्या (।*) यश्चा-
छिद्यमान-मनुमोदोयुरसौ महापातकैस्सोपपातकैश्च
८ मयुक्ता (ऽ*) स्मद्वशागामि-राजभिरन्यैश्च सामान्य भूमिदायमवेत्य (I*)
स्मद्दायो (ऽ*) नु-मन्तव्यो (ऽ*) पि चात्र व्यास-कृता. श्लोका भवन्ति (।*)
९ षष्टि वर्ष-सहस्राणि स्वर्गे मोदित भूमिद (।*)
आच्छेत्ता चानुमन्ता च। तान्येव नरके वशेत् (॥*) १
स्वदत्ता पर-दत्ता (*) वा यो हरेत वसुन्धरा (।*)
१० गवा शत-सहस्रस्य हन्तु (*) प्राप्नोति किल्विष (॥*) २
वहुभिर्व्वसुधा भुक्ता राजिभि शगरादिभि (*) (।*)
यस्य यस्य यदा भूमि तस्य तस्य तदा (I*) फल (॥*) ३
११ भिरुवक (*) देवि-कर्म्मान्तिक (।*) स १०० (+*) ८० (+*) ३
श्रावण-शुद्ध १० (+*) (।*) स्वयमाज्ञा (।*) लिखित षष्ठिदत्त-पुत्रेण
कुम (I*) रिल-क्षत्रिकेन (॥*)

धरसेन का वलभी ताम्रपत्र

(गु० स० २६९)

स्वस्ति। विजयस्कन्धावाराद्भद्रपत्तन वासकात्प्रसभप्रण चतामित्राणा मैत्रकाणामतुलसपत्न मण्डला भोगससक्तमप्रहारशतलब्धप्रताप प्रतापोपनतदान-मानार्जवोपार्जितानुरागानुरक्त मौलभृत श्रेणि बलावाप्तराज्य-श्री परममाहेश्वर **श्रीसेनापतिभटार्क**

तस्य सुतस्तत्पादरजोरुणावनपवित्री कृतशिरा शिरोवनतशत्रुचुडामणिप्रभा-विच्छुरितपादनखपङ्क्तिदीधितिर्दीनानाथकृपणजनोपजीव्यमानविभव परममा-हेश्वर श्रीसेनापति **धरसेन**

तस्यानुजस्तत्पादप्रणामप्रशस्ततरविमलमणिर्मन्वादिप्रणीतविधिविधानधर्मा— धर्मराज इव विनयव्यवस्थापद्धतिरखिलभुवनमण्डलाभोगैकस्वामिना परमस्वामिना स्वयमुपहितराज्याभिषेको महाविश्राणनावपूतराजश्री परसमाहेश्वरो महाराज **श्रीद्रोणसिंह,**

सिंह इव तस्यानुज स्वभुजवलपराक्रमेण परगजघटानीकानामेकविजयी शरणैषिणा शरणमवबोद्धा शास्त्रार्थतत्त्वाना कल्पतरुरिव सुहृत्प्रणयिना यथा-भिलाषितकामफलभोगद परमभागवतो महाराज **श्रीध्रुवसेन,**

तस्यानुजस्तत्पादारविन्दप्रणतिविधौताशेषकल्मषः सुविशुद्धस्वचरितोदकप्रक्षालि-
ताशेषकलिकलङ्कः प्रसभनिर्जितारातिपक्षप्रथितमहिमापरमादित्यभक्त श्रीमहा
राजधरपट्टः,

तस्य सुतस्तत्पादसपर्यावाप्तपुण्योदयः शैशवात्प्रभृति खड्गद्वितीयबाहुरेव
समदपरगजघटास्फोटनप्रकाशितसत्त्वनिकषस्तत्प्रभावप्रणतारातिचूडारत्नप्रभासं-
सक्तसव्यपादनखरश्मिसंहतिः सकलस्मृतिप्रणीतमार्गसम्यक्परिपालनप्रजाहृदय
रञ्जनादन्वर्थराजशब्दो रूपकान्तिस्थैर्यधैर्यबुद्धिसम्पद्भिः स्मरशशाङ्काद्रिराजोदधि
त्रिदशगुरुधनेशानतिशयानः शरणागताभयप्रदानपरतया तृणवदपास्ताशेषस्वकार्य
फलः प्रार्थनाधिकार्थप्रदानानन्दितविद्वत्सुहृत्प्रणयिहृदयः पादचारीव सकलभुवन-
मण्डलाभोगप्रमोदः परममाहेश्वरो महाराज श्रीगुहसेनः,

तस्य सुतस्तत्पादनखमयूखसन्तानविसृतजाह्नवी—जलौघप्रक्षालिताशेष
कल्मषः प्रणयिशतसहस्रोपजीव्यमानभोगसम्पद्रूपलोभादिवाश्रितः सरभसमाभिगा-
मिकैर्गुणैः सहजशक्तिशिक्षाविशेषविस्मापिताखिलधनुर्धरः प्रथमनरपतिसमति-
सृष्टानामनुपालयिता धर्मदायानामपाकर्ता प्रजोपघातकारिणामुपप्लवानां दर्शयिता
श्रीसरस्वत्योरेकाधिवासस्य संहतारातिपक्षलक्ष्मीपरिभोगदक्षविक्रमो विक्रमोपसं
प्राप्तविमलपार्थिवश्रीः परममाहेश्वरो महासामन्तमहाराजश्रीधरसेनः कुशली सर्वा-
नेव स्वानायुक्तकद्राङ्गिकमहत्तरचाटभट शौल्किक ध्रुवाधिकरणिकविषयपतिराज
स्थानीयोपरिककुमारामात्यहस्त्यश्वारोहादीनन्यांश्च यथासम्बध्यमानकान्समाज्ञा
पयति।

अस्तु वस्संविदितं यथा मया मातापित्रोः पुण्याप्यायनायात्मनश्चैहिकामुष्मिक-
यथाभिलषितफलावाप्तये वलभ्यामाचार्यभदन्तस्थिरमतिकारित श्रीबप्पपादीय-
विहारे भगवतां बुद्धानां पुष्पधूपगन्धदीपतैलादिक्रियोत्सर्पणार्थं नानादिगभ्यागता-
र्यभिक्षुसङ्घस्य च चीवरपिण्डपातग्लानभैषज्याद्यर्थं विहारस्य च खण्डस्फुटितविशीर्ण
प्रतिसंस्करणार्थं हस्तवप्राहरण्यां महेश्वरदासेनकग्रामोदाररत्नस्थल्यां च देवभद्रि
पल्लिकाग्राम सोद्रङ्गौ सोपरिकरौ सवातभूतप्रत्यायौ सधान्यभागभोगहिरण्यादेयौ
सोत्पद्यमानविष्टिकौ सदशापराधौ समस्तराजकीयानामहस्तप्रक्षेपणीयौ भूमिच्छि
द्रन्यायेनाचन्द्रार्कार्णवसरित्क्षितिस्थितिपर्वत समकालीनौ उदकातिसर्गेण देयौ
नियुक्तौ। यत उचितया देवविहारस्थित्या भुञ्जतः कृषतः कर्षयतः प्रतिदिशतो वा
न कैश्चिद्व्यासेधे वर्त्तितव्यमागामिभद्रनृपतिभिरस्मद्वंशजैरन्यैर्वानित्यान्यैश्वर्या-
ण्यस्थिरं मानुष्यं सामान्यं च भूमिदानफलमवगच्छद्भिरयमस्मद्दायोऽनुमन्तव्य
परिपालयितव्यश्च यश्चैनमाच्छिन्द्यादाच्छिद्यमानं वानुमोदेत स पञ्चभिर्महापा
तकैस्सोपपातकैः संयुक्तः स्यादित्युक्तं च भगवता वेदव्यासेन व्यासेन।

षष्टि वर्षसहस्राणि स्वर्गे मोदति भूमिद ।
आच्छेत्ता चानुमन्ता च तान्येव नरके वसेत् ॥ १ ॥
वहुभिर्वसुधा भुक्ता राजभि सगरादिभि ।
यस्य यस्य यदा भूमिस्तस्य तस्य तदा फलम् ॥ २ ॥
अतोदकेष्वरण्येषु शुष्ककोटरवासिन ।
कृष्णसर्पा हि जायन्ते धर्मदायापहारका ॥ ३ ॥
स्वदत्ता परदत्ता वा यो हरेत वसुन्धरा ।
गवा शतसहस्रस्य हन्तु प्राप्नोति किल्बिषम् ॥ ४ ॥
यानीह दारिद्रयभयान्नरेन्द्रै—
धनानि धर्मायतनीकृतानि ।
निर्माल्यवान्तप्रतिमानि तानि
को नाम साधु पुनराददीत ॥ ५ ॥
लक्ष्मीनिकेत यदपाश्रयेण
प्राप्तोनु कोऽभिमत नृपार्थं ।
तान्येव पुण्यानि विवर्धयेथा
न हापनीयो ह्यु पकारिपक्ष ॥ ६॥
स्वहस्तो मम महाराजश्रीधरसेनस्य । दूतक सामन्तशीलादित्य । लिखित सन्धिविग्रहाधिकारणाधिकृतदिविरपतिस्कन्दभटेन । स० २६९ चैत्र व० २ ।

वाकाटक नरेश [विदर्भ शासक] द्वितीय विन्ध्यशक्ति का वसिम ताम्रपत्र

सिद्धम् (॥*)
१ वत्सगुल्माद्धर्म्ममहाराजस्य (१) ग्निष्टोम (१) प्तोर्य्याम-वाजपेय-ज्यो (ति)-
२ (स्टो) म-वृहस्पतिसव-साद्यस्क्र चतुरश्वमेध-याजिनस्सम्राज (*) वृ-
३ ष्णिवृद्ध-सगोत्रस्य हारिती-पुत्रस्य श्र (ी)-प्रवरसेन-पौत्रस्य
४ धर्म्ममहार (ा*) जस्य श्री-सर्व्वसेन-पुत्रस्य धर्म्ममह (ा) राजस्य
५ वाकाटकाना (म्) श्रि-विन्ध्यशक्तेर्व्वचनात् नान्दीकडस उत्तर-म (ग्गे)
६ भाकुालक्खोप्पकाब्भामे आकाशपद्देसु अ (म्ह)-सन्तका साव्वा (द्धक्ख-नि*)-
योग-नि- २
७ युत्ता आणत्ति-भडा सेसाय-साञ्चरन्त-रलपुत्ता भाणितव्वा (।*) आम्हेहि
८ दाणि आपुणो विजय-वेजयिके आयु-वल-वद्धणिके (स्व) स्ति-
९ शान्ति-वाचने इहामुत्तिके धाम्मत्याणे एत्थग्गामे आधिव्वणिक-वर-

१ नस्स मायक । भारूद्वायन-सगोतसि (षि)तुग्मेसि कापिञ्यक-
११ सगोतसि । सग्मेसि । धाविष्ठायन-सगोतसि । भाट्टिदेवज्मेसि
१२ कोसि(क)-सगोतेसि । देसुमसि । कोसिक-सगोतसि । वेनहुज्मसि ।
१३ कोसीक-सगोतेसि । विभिज्मेसि । स्वाति-सगोतसि पितु-
१४ यसि मारून्दायण -सगोतेसि चाम्यमेसि कोसिक-सगोतेसि चेट्ठज्म
१५ सि । पतेहि दोहि मारून्दायन-सगोतेसि बुधजेसि कोसिक-सगोतेसि
१६ माहिसज्मेसि । कोसिक-सगोतेसि । सिवज्मसि । कौसिक-सगोतेसि
१७ हरिम्मसिति एतावताम्हणाण भागा ति(ण्णि) २ कोसिक-सगोते(सि)
१८ रेवतिजेसि । मासो । चउत्थोति आपन्दाविन्ध-कामको अपुम्न-व
१९ सिय वत्ता ।(।*) पुम्न रामापुमते मसे चातुम्मेज्ज-ग्गाम-मज्मीत(ा)-परि
हारे चित-
२ राम (।*) तजवा अरट्ठ-संविनयिक । अ-समन (क्के)म्म-वासक ।
अ-हिरम्न-धा(न्न)
२१ प्पभाय-प्परेम । अ-पुप्फ-क्खीर-म्माहीन । अ-धारम्मर-गो-बलिवर्द
२२ अ-चार-तिहिक । अ-चम्मझूलक । अ-मह-प्पावेस । अ-खट्टा-चोरल्क-वेन
२३ सिक । अ-करद । अ-वाह । स-निधि । सौपनिधि । स-कुप्पात्त ।
२४ स-मम्ब-महाकरप । साम्मजाति-परिहार-परिहितम्ब (।*) अतो उपरि-लि-
२५ खित । सासन-वावम्ममाण करेता रक्खथ रक्खापेथय परिहरथ
२६ परिहरापेथय (।*) जो बु (आ)बाधं करेज्ज कताम्न (म)गुप(म?)ण्ण(सि)
२७ तिस्स (ए)तेहि । उपरिलिखितेहि । बाम्हणहि । परिम्नपिते स (व)ण
२८ निग्गह करेज्जामत्ति (।*) साम्मच्छरं १ (+*)७ हेमन्त-पक्ख पढम
२९ (दि)व(स) (।) म-मुहाम्नाति (।*) कौसिठमिर्म सासन सेमपठिषा
१ मप्पुन इति ॥ सिधिरस्तु ॥

१ यह प्रमाणि चार नामपत्रों पर नहीं है।

पूर्व-मध्यकालीन अभिलेख

गुर्जर प्रतिहार राजा बाउक की जोधपुर प्रशस्ति

ओ नमो विष्णवे ।

यस्मिन् विशन्ति भूतानि यतस्सर्ग्गस्थिती मते
स व पायाद धृषिकेशोनिर्ग्गुणस्सगुणश्च य । १ ।
गुणा पूर्व्वं पुरुषाना कीर्त्यन्ते तेन पण्डिते
गुण कीर्त्तिरनश्यन्ती स्वर्ग्ग वाम करी यत । २ ।
अत श्री वाउको धीमा स्व प्रतिहार वशजाम्
प्रशस्तौ लेख या मास श्री यशोविक्क्रमान्वितान् । ३ ।
स्व भ्राता रामभद्रस्य प्रतिहार्यं कृत यत ।
श्री प्रत्तिहार वसोयमतश्चोन्नतिमान्पुयात् । ४ ।
विप्र श्री हरिचन्द्राख्य पत्नि भद्रा च क्षत्रिया
ताम्यान्तु य सुता जाता प्रतिहाराश्च तान्विदु । ५ ।
वभूव रोहिल्लद्ध्यको वेद शास्त्रार्थ्थ पारग
द्विज श्री हरिचन्द्राख्य प्रजापत्ति समोगुरु । ६ ।
तेन श्री हरिचन्द्रेण परिणिता द्विजात्मजा
द्वितिया क्षत्रिया भद्रा महाकुल गुणान्विता । ७ ।
प्रतिहारा द्विजा भूता ब्राह्मण्या ये भवन्त्सुता
राज्ञी भद्रा च यान्त्सुते ते भूता मधुपायिन । ८ ।
चत्वार श्चात्मजास्तस्या जाता भूधरणक्षमा
श्री मान् भोगभट कक्को रजिलो दद्द एव च ।। ९ ।
माण्डव्यपुर दुर्गेस्मिन्नेभिन्निज भुजार्जिते
प्राकार कारितस्तुगो विद्विशा भीति वर्द्धन । १० ।
अमीशा रज्जिलाजात श्रीमान् नरभट सुत
पेल्लापेल्लीति नामाभूद्दितीया तस्य विक्क्रमै । ११ ।
तस्मान् नरभटाजात श्रीमान् नागभट सुत
राजधानिस्थिर यस्य महन् मेडन्तक पुरम् । १२
राज्ञ्या श्री जज्जिका देव्यास्ततो जातौ महागुणम्
द्वी सुतौ तात भोजाख्यौ मौन्द्रयौ रिपु मर्द्दनौ । १३

तातेन तेन काकस्य विद्यत्कर्पक जीवितम्
कृत्वा राज्य स्वोभ्रातु श्री मौवस्य समर्पितम् । १४
स्वयञ्च संस्थित तात धाद्धं धर्म्म समाचरन्
माण्डव्यस्याश्रम पुण्य मही निर्झर शोभिते । १५
श्री मयोबर्द्धनस्तस्मात् पुत्रो विख्यात पौरुष
भूतो निजभुज ख्याति समस्तावृत कण्टक । १६
तस्माच्च चडक श्रीमान पुत्रो भूत पृथुविक्रम
तेजस्वी त्याग शौर्य्यञ्च विद्विर्या भुवि दुर्द्धर । १७
तत श्री शिलुको जात पुत्रो दुर्व्वारविक्रम
यन सीमाकृता नित्या स्त्रवणि वल्ल देशयो । १८
भट्टिक देवराज मो वेल्ला मण्डल पालक
निपात्य तत्क्षण भूमौ प्राप्तवानच्छत्रचिन्हकम् । १९
पुष्करिणी कारिता यन त्रतो तीर्थे च पत्तनम्
सिद्धेश्वरो महादेव कारितस्तूंग मन्दिर । २
तत श्री झोतकाज्जात श्रीमान् झोटो नर सुत
येन राज्य सुख भुक्त्वा भागीरथ्यां कृता गति । २१
बभूव सत्त्ववान् तस्माद् भिल्लादित्यस्तपोमति
भूमा राज्य कृतं यन पुन पुत्राय वत्तवान् । २२
गया द्वार ततो गत्वा वर्षाष्य ष्टावश स्थित
अन्ते चानशनं कृत्वा स्वर्ग लोक समागत । २३
ततोपि श्री मूत कक्क पुत्रो जातो महामति
यशो मुद्‌गगिरौ लब्ध ये न गौड़ समं रण । २४
ख्यातो व्याकरण तर्को ज्योति शास्त्रं कलान्वितम्
सर्व्व भापा कवित्व च विज्ञात सुविलक्षणम् । २५
भट्टि देव मिश्रुभाया तस्मात् कक्क भूपते
श्रीमत् पडिन्या महाराज्ञा जात श्री बाउक सुत इति । २६
नन्दावर्त महत्वा रिपु बलमतुलं मूलकुप प्रयातं
दृष्ट्वा मन्मा स्वपक्षं द्विज नृप कुलजां सत्प्रतिहार भूपां
विन् भूतलेन तस्मिन् प्रकटित यशसो श्रीमता बाउकेन
स्फूर्जन हत्वा मयूर तदनु नर मृषा घातिता हेलिनव । २७
कस्मात्पस्य्यममन स सचिव अनुज स्वयमराजमु तत्र
केनकेनातिभीते दशदिशि तु यके स्तम्भ्य चात्मान मेक
यैनाम्मिकावाय पृष्ठ क्षिति यन चरनतानि दृत्वेन सम्

तातेन तेन लोकस्य विमुक्तवस जीवितम्
भुक्त्वा राज्यं लघोर्भ्रातु श्री भोजस्य समर्पितम् । १४
स्वर्गङ्गम स स्थित तात धूर्जं कर्म्म समाचरत्
माण्डव्यस्याश्रम पुण्य नदी निर्झर शोभिते । १५
श्री यशोवर्द्धनस्तस्मात् पुत्रा विख्यात पौरुष
भूतो निजभुज ख्याति समस्तोद्धृत कण्टक । १६
तस्माच्च चन्दक श्रीमान् पुत्रो भूत पृथुविक्रमा
तेजस्वी त्याग शीलश्च विद्विषां मधि दुर्द्धर । १७
तत श्री शिलुको जात पुत्रो दुर्व्वारविक्रम
यन सीमाकृता नित्या स्त्रवणि वल्ल देशयो । १८
भट्टिक देवराज यो बल्ला मण्डल पालक
निपात्य तत्क्षणं भूमौ प्राप्तवानच्छत्रचिन्हकम् । १९
पुष्करिणी कारिता यन भतो तीर्थे च पत्तनम्
शिवस्वरो महादेव कारितस्तुंग मन्दिर । २
तत श्री झोलकाज्जात श्रीमान् झोटो नर सुत
येन राज्य सुखं भुक्त्वा भागीरथ्यां कृता मति । २१
प्रभुत सत्यवान् तस्माद् भिल्लादित्यस्तपोमति
भूना राज्यं कृतं यन पुत्र पुत्राय बलवान् । २२
गंगा द्वार ततो गत्वा वर्षाण्य ष्टादश स्थित
अन्ते चानशनं कृत्वा स्वर्ग लोक समागत । २३
ततोपि श्री मुत ककः पुत्रो जातो महामति
यशो मुद्गगिरौ लब्ध ये न गौड़ सम रण । २४
छंदो व्याकरण तर्को ज्योति शास्त्रं कलान्वितम्
सर्व्व भाषा कवित्वं च विज्ञात धुविलक्षणम् । २५
भट्टि वंश विशुद्धाया तस्मात् कक्क भूपते
श्रीमद् पद्मिन्या महाराज्ञा जात श्री बाउक सुत इति । २६
नन्दावर्त्त प्रहृत्वा रिपु बलमतुलं भूबकुप प्रयात
दृष्टवा भग्ना स्वपक्ष त्रिप नृप कुलजा सप्रतिहार भूपां
विग मृतकेन तस्मिन् प्रकटित यशसो श्रीमता बाउकेन
स्फूर्जंन हत्वा मयूरं तदनु नर मृगा घातिता हेतिनव । २७
कस्याप्यस्यप्रभग्ना स सचिव मणुजं स्वमूराजमु तथ
केनकेनातिभीते वसविधि तु बक स्तम्भ चाम्मान मेकं
वर्माम्भुक्तवाश्च पृष्ठ क्षिति मन चरलनानि हस्तैन सम्

द्त्वाभित्वा श्मशान कृतमति भयद वाउकान्येन तस्मिन् । २८
नव मण्डल नव निचये भग्ने हत्वा मयूरमतिगहने
तदनु भृतासि तरगा श्री मद् वाउक नृसिंघेन । २९
सार्द्धार्द्धं' प्रगलद्भिरवन सुपिरैर्व्वा हृत्पादाना
करेन्मैश्चोपरि, लम्बि वितर्विरचितम्
शपव गृह फेत्कार सत्वा कुलम्
यच्छि, वाउक मण्डलाग्र रचित प्रागछत्रु मघाकुले
तत्सस्मृत्य न कम्य सप्रति भवेत् त्रामोद्गमश्चेतसि । ३०
ननु समर धराया वाउके नृत्यमाने
शव तनु सकलान्श्रेष्वेव विन्यस्त पादे
सममिव हि गतास्ते तिष्ठतिष्ठेति गीताद्
भय गत नृ कुरगाश्चित्रमेतदासीत् । ३१
स ८९४—चैत्र सुदि ५
उत्कीर्णा च हेमकार विश्नु रवि सुनुना कृष्णेश्वरेण ।

गुर्जर प्रतिहार भोज की ग्वालियर प्रशस्ति

१ ओ नमो विष्णवे ॥
शेषाहि-तल्प-धवलाधार-भाग-भासि-वक्ष -स्थल-वोल्लसित-कौस्तुभकान्तिशोण
श्याम वपु ( ) शशि-विरोचन-विम्व (बिम्ब) चुम्वि (म्बि)
व्योम-प्रकाशम-वतान् नरक-द्विषो व ॥ १ ॥
आत्म-आराम-फलद् उपार्ज्य विजर देवेन दैत्य-द्विपा
ज्योतिर-व्विजम्-अकृत्रिमे
२ गुरावन्त (f) क्षेत्रे यद्-उपा-पुरा ।
श्रेय -कन्द-वपुस् = ततस् = समभवद् = भास्वान् = अतश = चा पिरे
मन्व्-इक्ष्वाकु-ककुस्थ-मूल-पृथव
क्ष्मापाल—कल्प-द्रुमा ॥ २ ॥
तेषा वशे सुजन्मा क्रम-निहित-पदे धाम्नि वज्रेषु-घोर
राम पौलस्त्य्-हिन्त्र क्षत-विहति-समित-कर्म्म चक्रे पलाशै ।
श्लाघ्य—
३ स—तस्यानुजो—सौमधव-मद-मुषो मेघनादस्य सख्ये
सौमित्रिस तीव्र-दण्ड प्रतिहरण-विधेरय प्रतीहार आसीत् ॥ ३ ॥
तद वन्शे प्रतिहार-केतन-भृति त्रैलोक्य-रक्षास्पदे

(प्रतिहार भोज की ग्वालियर प्रशस्ति)
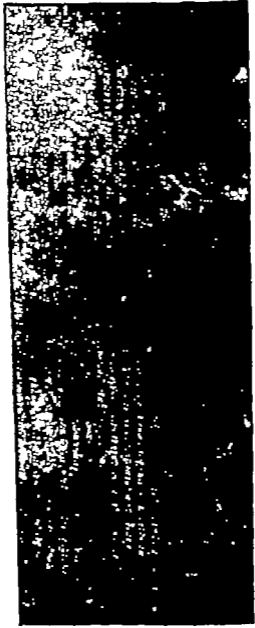
आविर्व्वभूव भुवि विश्वजनीन-वृत्ते ॥ ११ ॥
तज्-जन्मा राम—
९ नामा प्रवर-हरि-वल-न्यस्त-भूभृत-प्रवन्धैर्
आवध्नन्-वाहिनीना-प्रसभम् अधिपतीन्-उद्धत-क्रूर-सत्वान् ।
पाप-आचार-अन्तराय-प्रमथन-रुचिर सङ्गत कीर्ति-दारै
र्त्राता धर्म्मस्य तैस-समुचित चरितै पूर्व्ववन् निर्व्वभासे ॥ १२ ॥
अनन्य-साधन-आधीन-प्रताप-आक्रान्त-दि
१० रामुख ।
उपायैस् सम्पदा स्वामी य स-व्रीडम्-उपास्यत ॥ १३ ॥
अर्थिभि-र्व्विनियुक्ताना सम्पदा जन्म केवल ।
यस्याभूतकृतिन प्रीत्यैन्-आत्म-एच्छा-विनियोगत ॥ १४ ॥
जगद्-वितृष्णु स विशुद्ध-सत्व
प्रजापतित्व विनियोक्तुकाम ।
सुत रहस्य-व्रत-सुप्रसन्नात् ==
सूर्याद्-अवा-
११ -पन-मिहिराभिधान ॥ १५ ॥
उपरोध-ऐक-सरुद्ध-विन्ध्य-वृद्धेरगस्त्यत
आक्रम्य भूभृता भोक्ता य प्रभुर्-भोज इत्य-अभात् ॥ १६ ॥
यशस्वी शान्त-आत्मा जगद् अहित-विच्छेद-निपुण
-परिष्वक्तो लक्ष्म्या न च मद कलङ्केन कलित ।
वभूव प्रेम-आर्द्रो गुणिषु विपय सुनृत-
१२ गिराम्-
असौ रामो वाग्रे स्व-कृति-गणनायाम् इह विधे ॥ १७ ॥
यस्य आभूत् कुल भूमि-भृत्-प्रमथन-
व्यस्त-आत्य-मैत्य-आम्वुधेर-
व्यूढा च स्फुटित-आत्रि-लाज-निवहान्-हुत्वा प्रताप-आनले ।
गुप्ता वृद्ध-गुरौ अनन्य गतिमि शान्तैस्-सुख-ओद्भासिभिर-
द-धर्म्म, आपत्य-यश प्रभूतिर्-अपरा लक्ष्मी पुनर्भू—
१३ र्-न्नया ॥ १८ ॥
प्रीतै पीलनया तपोवन-कुलै स्नेहाद्-गुरूणा गणैर-
भक्त्या भत्य-जनेन नीति-निपुणैर-वृन्दैर्-अरीणा पुन ।
विश्वैन्-आपि यदीयम्-आयुरमित कर्तु स्व-जिव-एपिणा

२ ति(त्ति)मिरमुद्यतमण्डलाग्रो द्ध्व (ध्व) स्ति नयन (यन्न) भिमुखो रण-
शर्व्वरीपु (।) भूपशु (परशु) चिर्विधुरिवास्त(प्त) दिगतकीर्त्ति-

३ **गोविंदराज** इति राजसु राजसिंघ(ह) ॥ २ ॥
दृष्ट्वा चमून (म) भिमुखी सुभट्टाट (टाट्ट) हासामुना(न्ना) मित सपदि
येन रणे-

४ पु नित्य (।) दष्टाधरेण दधता भ्रुकुटि ललाटे खङ्ग कुलश्ञ्च हृदयञ्च
निजञ्च श (स) त्व (त्वम्) ॥३ ॥
खड्ग कराग्रा (ग्रा) न्मुखत-

५ श्च शोभा मानो मनस्तस (स्स)मवेष यस्य(।)महाद्दवे नाम निशम्य सद्यस्त्रय
रिपूणा विगलत्यकाण्ढे ॥ ४ ॥ त-

६ स्यातमजो जगति विश्रुतदीर्घकीर्तिरार्त्तार्त्तिहारिहरि-विक्रम(धाम) धारी (।)
भूपस्त्रिविष्टपकृता(नृपा) नुकृति (ति) कृत-

७ इ **श्रीकर्क्कराज** इति शोत्रमणिर्वि (र्ब)भूव ॥ ५ ॥
तस्यो(स्य)प्राभिन(प्रभिन्न)-ककट (कण्ट) च्य(च्यु)तदानि (न) दतिद-
तप्राहाररुधि-

८ रोलि(ल्लि) खितश (तास) पीठ( ) क्ष्माप ( ) क्षितौ क्षपितशत्रुरभूत(त्त)
नूज **सद्राष्ट्रकुटकनकाट्ट (द्रि) रिवेंद्रराज** ( ) ॥ ६ ॥

९ तस्योपार्जितमहसस्तनयश्चतुरुदधिवलयमालिन्या( )
भोक्ता भुव शतक्रतुसदृश **श्रीव(व)-**

१० **तिदुर्ग**राजोभूत् ॥ ७ ॥ **काञ्चीजशकेरलनराधिपचोर (ल) पाण्ड्यश्रीहर्ष-**
वज्रटविभेदविधानदक्ष (क्षम्) (।)
कर्णाटक प(ब) लमचित्यम-

११ जेयमन्यै(मन्यै) भृ (र्भृ) त्यै (त्यै) कियद्भिरपि य सहसा जिगाय (य)
॥ ८ ॥ आ(अ)भ्रविभ-गगृहीतनिशातशस्त्र(स्त्र) मश्रातमप्रतिह-

१२ ताज्ञमपेतयत्न (त्नम्' (।) यो वल (ल्ल) भ श(स)पदि दण्ड (ब) लेन
जित्वा राजाधिराजप(र) मेश्वरतइमवाप (॥ ९ ॥ आ सेतोर्व्विपुलो-

१३ पलावलिलस (ल्लो) लोर्म्मिमालाजलादाप्रालेयकलकिता-
मलशिलाजालुत्तुपाराचलात् (।) आ पूर्वाप-

१४ खारिराशिपुलिना(न) प्रातप्रसिधा (द्धा) वद्येर्नेय जगति(ती) श्व(स्व)
विक्रमव (ब) लेनैकातपत्रीकृत (ता) ॥१० ॥ तस्मिदि (स्मिन्दि)-

१५ व प्रयाते वल्लभराजे क्षतप्रजावा (बा) ध
श्रीकर्क्कराजसुनुर्म्महीपति **कृष्णराजोभूत** (। ११ ॥
यस्य

३० यस्य प्रवद्धोपरि श्व(स्त्र) येन प्रति त तथापि न कृत चेतोन्यथा भ्रात
(रम्) ॥ ३१ ॥ सामाद्यैरपि वल्लभो न हि यदा स (धि) व्य-
३१ घात तदा(त्त तदा) चा (भ्रा)तुर्द्दत (त्त) रणो विजित्य तस्मा पश्चात (त्त)
तो भूपते (तीन्) (।) प्राच्योदीच्यपराच्ययाम्यविल्ल (ल) सत्पलिव्वजैं-
३२ र्भूषित चिह्नैर्य परमेश्वरत्वमखिल लेभे महेन्द्रो(न्द्रो) विभु ॥ २२ ॥
शशधरकरनिकरनिभ यस्य यश सुरन-
३३ गाग्रसानुस्थै(।) परिगीयतेनुरक्तैर्व्विद्याधरसुदरी(नि) व हैं (॥ २३ ॥)
हृष्टोन्वह् योर्थिजनाय सर्व्वं सर्व्वस्वमानदितव (ब)-
३४ धुवर्गं (।) प्रादात्पुरुष्टो हरति स्म वेग (गात्) प्राणा (न्) यमस्यावि (पि)
नितातविर्यं(वीर्य) ॥ २४ ॥ तेनेदमनिलविद्युच (च्च) च्चलमव-
३५ लोक्य जीवितमसार (रम्) (।) क्षितिदान-परमपुण्य प्रवर्त्तिती ब्र(ब्र)
ह्मदायोय(यम्) ॥ २५ ॥ स च परमभट्टारकमहा-
३६ राजाधिराजपरमेश्वरपरमभट्टारकश्रीमद (द्) अकालवर्षदेवपादानुध्यात-
परमभट्टारक-
३७ महाराजाधिराजपरमेश्वरश्रीधारावर्षश्रीध्रुवराजनाम (।) श्री निरुपमदेव
( ) कुशली सर्वानेव य- ।
३८ था (स) व(व) ध्यमानक (कान्) राष्टपतिविषयपतिग्रामकूटायुक्तका (क)
नियुक्तकाधिकारिकमहत्तरादी (न्) समा-
३९ दिशत्यस्तु व सविदित यथा श्रीनीरानदीसगमसमावासितेन मया मातापित्रो-
रात्मन श्चैहिका-
४० मुस्मि(ष्मि) कपुरायश‍ोभिवृध(द्ध) ये करहाडवास्तव्यतच्चातुर्व्विद्य -
सामान्यगार्ग्गसगोत्रव (ब)—
४१ हृवृच (ह्वृच) सब्र (ब) ह्मचारिणो दुग्ग(र्ग) भटपुत्राय सागोपागवेदार्थ-
तत्वविदुषे वासुदेव-भट्टा
४२ य श्रीमालविषयातर्गतलघुवि(र्वि) गनामा ग्राम तस्य चाघाट्ट(ट)
नाणि (।) पूर्व्वत श्रीमालपतन(त्तन) द-
४३ क्षिणात(तो) लमणगिरि( ) पश्चिमत वृ(वृ)हद्विगकग्राम उत्तरत नीरा
नाम नदी (।) एवमय चतुराघा-
४४ टनोपलक्षिती ग्राम ( ) सोद्रग ( ) स (सो) परी(रि)करस (स्म) दण्ड-
दशापराधस (स्म) भूतोपा(तवा) तप्रत्यायसो(स्सो) त्पद्यमा-
४५ नविष्टिक( ) सधान्यहिर(र)न्या)(ण्या) देयो अ (योऽ) चारभटप्रवेश्य
सर्व्वराजकीयानामहस्तप्रक्षेपणी-

६२ तञ्च (।) अतिविमल (म) नोभिरात्मनोनैर्ण्णं (नं) हि पुरुषं—परकीर्त्तयो विलोला (॥ ३२ ॥) श्रीनाग-

६३ (ष) ण्णकदूतक लिखित श्रीगौडमुतेन श्रीमाव (म) तेन ॥

प्रथम अमोघवर्ष का संजान ताम्रपत्र-लेख

(श का ७९३)

१ ओं (॥*) म वोव्याद्वेधसा धाम यन्नाभिकमल कृत ।
हरञ्च यस्य कान्तेन्दुकलया कमलकृत ॥ १ ॥
अनन्तभोगस्थितिरत्रपातु व प्रतापशील्प्रभवोदयाचल (।*)

२ गुराष्ट्रकूटोच्छ्रितवशपूर्व्वज स वीरनारायण एव यो विभु । (२*)
तदीय वीर्य्यायितपादवान्वये क्रमेण वार्द्धाविव रत्नसचय (।*)
वभूव गोविन्दमहीप्रतिर्भुव

३ प्रमाधनो पृच्छकराजन ॥ ३ ॥ वभार य कौस्तुभरत्नविस्फुरद्गभस्ति-विस्तीर्ण्णमुरस्थल तत (।) प्रभातभानुप्रभवप्रभातत हिरण्मय मे टिवाभि तस्तट ॥ ४ ॥ मनासि

४ यत्रासमयानि सन्तत वचामि यत्कीर्तिविकीर्त्तनान्यपि । शिरासि यत्पादन-तानि वैरिणा यशासि यत्तेजसि नेगुरन्यत ॥ ५ ॥ धनुस्समुत्सारितभूभृता मही प्रसारिता

५ येन पृथुप्रभाविना । महौजसा वैरतमो निराकृत प्रतापशीलेन स कक्कराट् प्रभु ॥ ६ ॥ इन्द्रराजस्ततोगृह्वात् यश्चालुक्यनृपात्मजा (।*) राक्षसेन विवाहेन रणे स्वे-

६ टकमण्डपे ॥ ७ ॥ ततोभवद्दन्तिघटाभिमर्द्दनो हिमाचलादास्थिसेतुसीमत (।*) खलीकृतोदृत्तमहीपमण्डल कुलाग्रणीर्यो भुवि दन्तिदुर्ग्गराट् ॥ ८ ॥ हिरण्य-

७ गर्भ राजन्यैरुज्जयन्त्या यदासित (।*) प्रतिहारीकृत येन गुर्जरेशादिराजकम् ॥ ९ ॥ स्वयवरीभूतरणागणे ततस्पनिर्व्यपेक्ष शुभतुगवल्लभ (।*) चकर्प चालुक्यकुल श्री-

८ य वलाद्विलोलपालिध्वजमालभारिणा ॥ १० ॥ अपोध्यसिवासनचामरोजित-स्सितातपत्रोप्रतिपक्षराज्यभाक् (।*)
अकालवर्षो हतभूपराजको वभूव राज-

९ र्षिरशेषपुण्यकृत् ॥ ११ ॥ तत प्रभूतवर्षोभूद्धाराव स्त-तश्शरैर्द्धारावर्षा-यित येन सग्रामभुवि भूभुजा ॥ १२ ॥
यूद्धेषु यस्य करवालनिकृत्तशत्रुमूर्ध्नाङ्कवीण्णरुचिरास-पवान-

२४ न्मालया विलम्य निजसेवकं स्वयमन्वभुजद्विक्रम ॥ २४ ॥ प्रत्यावृत्त प्रातिराज्य विधेय कृत्वा रेवामुनर विन्ध्यपादे (।*) कुर्व्वन्धर्म्मान्कीर्त्तनं पुण्य(वृ)न्दैरध्यष्टात्तान्मो-
२५ चिता राजधानी ॥ २५ ॥ मण्डलेशमहाराज-सर्व्वस्व यदभूद्भुव । महाराज-सर्व्वस्वामी भावी तस्य सुतोजनि ॥ २६ ॥ यज्जन्मकाले देवन्नैरादिष्ठ (ष्ट) त्रिपहो भुव (।*) भोक्तेति हि-
२६ मवत्सेतुपर्यान्ताम्वुधिमेखला ॥ २७ ॥
योद्धारोमोघवर्षेण वद्धा यो व युधि द्विप (।*)
मुक्ता ये विकृतास्तेषा भस्मतश्शृखलोद्धृति ॥ २८ ॥ तत प्रभूतवर्षस्स-
न्स्वसपूर्णम-
२७ नोरथ (।*) जगतुगस्स मेरुर्व्वा भूभृतामुपरि स्थित ॥ २९ ॥ उद (ति) ष्ठदवष्टम्भ भक्तु द्रविल-
भूभृता(।*)स जागरणचिन्तास्यमन्त्रणभ्रान्तचेतसा ॥३०॥ प्रस्थानेन हि के-
२८ वल प्रचलति स्वच्छादिताच्छादिता धात्री विक्रम साधनैस्सकलुष विद्वेषिणा द्वेपिणा(।*) लक्ष्मीरप्पुरसो लतेव पवनप्रायासिता यासिता धूलिर्न्नैव दिशो-
२९ शमद्रिपुयशस्सन्तानक तानक ॥ ३१ ॥
त्रस्यत्केरलपाड्यचौलिकनृपस्सपल्लव पल्लव प्रम्लानि गमयन्कलिंगमगध-प्रायासको यासक (।*) गर्ज्जद्गुर्ज्जरमौशौ—
३० शौर्यविलयो लकारयन्नुद्योगस्तदनिन्वशासनमतस्सद्विक्रमो विक्रम ॥ ३२ ॥ निकृति विकृतगगाश्शृखलीवद्धनिष्ठा मृतिमयूरनुकूला मण्डलेशा स्वभृ-
३१ त्या (।*) विरजसमहितेनुर्यस्य वाट्यालिभूमि परिवृति विष्ट्या वेगिनाथा-दयोपि ॥३३॥ राजामात्यवराविव स्वहितकार्यालस्यनष्टौ हठाद्दण्डेनैवनि-
३२ यस्य मूकवधिरावानीय हेलापुरे (।*)
लकातच्छिल तत्प्रभुप्रतिकृती का (ञ्ची) (ञ्ची) सुरेशौ तत कीर्त्तिस्तम्भ-निभौ शिवायतनके येनेह सस्थापितौ ॥ ३८ ॥ या-
३३ स्या कीर्तिस्तृलोक्यान्निजभुवनभर भर्त्तुमासीत्समर्थ । पुत्रश्चास्माकमेकस्स-फलमिति कृत ज्जन्म धर्म्मैरनेकै (।*) किं कर्त्तु स्थेयमस्मिन्निति विम-
३४ लयश पुण्यशोपानमार्ग्गं स्वर्गप्रीत्तुगसौध प्रतिरदनुपम कीर्त्तिम्ने (मे) वानुयात्त (त) ॥ ३४ ॥
वन्धूना वन्धुणामुचितनिजकुले पूर्व्वजाना प्रजाना जाता-
३५ ना वल्लभाना भुवनभरितसत्कीर्त्तिमूर्त्तिस्यता (।*) भ्रातु कीर्त्ति सलोका कलिकलुषमयो हतुमतो रिपूणा श्रीमान्सिहासनस्थो वुधनुतचरितोमोघव-
३६ र्ष प्रशस्ति ॥ ३६ ॥ भ्रातुनभ्रान्विजेतु रणशिरसि परान्भ्रायकेभ्य प्र(।)

५१ कपोतपरिरक्षार्त्थं दधीचोर्त्थिने । तेष्वेकैकमतप्पयन्किल महालक्ष्म्यै स्वावामा-
गुलि लोकोपद्रवशान्तये स्म दिशति श्रीवीरनारायण ॥ ४७ ॥ हत्वा भ्रातर-
५२ मेव राज्यमहरद्देवीं च दीनस्ततो लक्ष कोटिमलेखयन्किल कलौ दाता स
गुप्तान्वय (।*) येनात्याजि तनु स्वराज्य-मसकृद्वाह्यार्त्थकै का कथा (।) ही-
५३ प्तस्योन्नतिराष्ट्रकूटतिलको दादेति कीर्त्यावपि ॥ ४८ ॥ स्वभुजभुजसनि-
स्त्रिशोग्रदष्ट्राग्रदष्टप्रवल (वल) रिपुसमूहेमोघवर्षे भधीशे । (।) न दध-
५४ ति पदमीतिव्याधिदुष्कालकाले (।) हिमशिशिरवसन्तग्रीष्मवर्षाशरत्सु ॥ ४९ ॥
॥ ४९ ॥ चतुरम्तसुद्रपर्यन्ति समुद्र यत्प्रमाधित (।*) भग्ना समस्तभूपाल-
मुद्रा ग-
५५ रुडमुद्रया ॥ ५० ॥ राजन्द्रास्ते वन्दनीस्तु पूर्व्वे येपान्धर्म्मा—पालानीयोस्म-
दादै (।*) ध्वस्ता दुष्टा वर्त्तमानास्सधर्म्मं प्रात्थ्र्या ये ते भविन पार्थिवेन्द्रा
॥ ५१ ॥ भुक्त क-
५६ श्चिक्रमेणापरेभ्यो दत्त चान्यैस्त्यक्तमेवापरैर्य्यत् (।*) कस्थानित्ये तत्र राज्य
महद्भि कीर्त्या धर्म्म केवल पालनीय ॥ ५२ ॥ तेनेदमनिलविद्युचञ्चल-
मवलो-
५७ क्य जीवितमसार । (।) क्षितिदानपरमपुराय प्रवर्त्तितो ब्रह्मदायोय ॥ ५३ ॥
सच परमभट्टारकमहाराजाधिराजपरमेश्वर श्रीजगतुगदेवपादानुध्यातपर-
५८ मभट्टारकमहाराजाधिराजपरमेश्वरश्रीपृथ्वीवल्लभ-श्रीमदमोघवर्ष-श्रीवल्लभ
नरेन्द्रदेव कुशली सर्व्वानेव यथासम्बन्ध्यमानकान्राष्ट्रपतिविषयपति-
५९ ग्रामकूटयुक्तकनियुक्ताधिकारिकमहत्तरादी समादिशत्यस्तु (॥) वस्सविदित
यथा मान्यखेटराजवान्यातस्थितेन मया मातापित्रोरात्मन (क) श्चैहिकामु-
६० त्रिकपुण्ययशोभिवृद्धये ॥ ७ ॥ करहडविनिर्गतभरद्वामाग्निवेश्याना आगिरस-
पारुहस्पत्याना भारद्वानाजेसब्रह्मचारिणे साविकूवारक्र-
६१ मइतपौत्राय । गोलसअमिपुत्राय । नरसिघदीक्षित । पुनरपि तस्मै विषय-
विनिर्गता तस्मै गोत्रे च भट्टपौत्राय । गोविन्दभट्ट-
६२ पुत्राय । रच्छादित्यक्रम इत । तस्मि देपे ।
वड्डमुखसब्रह्मचारिणे दावडिगहियमहायसपौत्राय । विष्णुभट्ट पुत्राय ।
तिविक्रम-
६३ पडगमि । पुनरपि तस्मि देपे वच्छगोत्रसब्रह्मचारिणे । हरिभट्टपौत्राय ।
गोवादित्यभट्टपुत्राय । केसवगहियमाहाय ।
६४ चतुका ना वहनृचसखाना । पव चतुक ब्राह्मणाना ग्रामो दत्त सजाणसमीप-
वर्तिन चतुर्विशतिग्राममध्ये । ररिवल्लिकानामग्राम तस्य चाघाट-
६५ नानि पूर्व्वत कल्लुवी समुद्रगामिनी नदी । दक्षिणत उप्पलहत्यक भट्ट-

५१ कपोतपरिरक्षार्त्थं दधीचोर्त्थिने । तेप्येकैकमतप्पयन्किल महालक्ष्म्यै स्वावामा-
गुलि लोकोपद्रवशान्तये स्म दिशति श्रीवीरनारायण ॥ ४७ ॥ हत्वा भ्रातर-
५२ **मेव राज्यमहरद्देवीं च दीनस्ततो लक्ष कोटिमलेखयन्किल कलौ दाता स**
गुप्तान्वय॰(।*) येनात्याजि तनु स्वराज्य-मसकृद्वाह्यार्त्थकै का कथा (।) ह्री-
५३ प्तस्योन्नतिराष्ट्रकूटतिलको दादेति कीर्त्यविपि ॥ ४८ ॥ स्वभुजभुजसनि-
स्त्रिशोग्रदप्ष्ट्राग्रदष्टप्रवल (वल) रिपुसमूहेमोघवर्षे भधीशे । (।) न दव-
५४ ति पदमीतिव्याविदुष्कालकाले (।) हिमशिशिरवसन्तग्रीष्मवर्पाशरत्सु ॥ ४९ ॥
॥ ४९ ॥ चतुरप्तसुद्रपर्यान्त समुद्र यत्प्रमाधित (।*) भग्ना समस्तभूपाल-
मुद्रा ग-
५५ रुऽमुद्रया ॥ ५० ॥ राजन्द्रास्ते वन्दनीस्तु पूर्व्वे ग्रेपान्धर्म्मा—पालानीयोस्म-
दादै (।*) ध्वस्ता दुष्टा वर्त्तमानास्सधर्म्मं प्रार्त्थ्या ये ते भविन पार्थिवेन्द्रा
॥ ५१ ॥ मुक्त क-
५६ श्चिक्रमेणापरेभ्यो दत्त चान्यैस्त्यक्तमेवापरैर्य्यत् (।*) कस्थानित्ये तत्र राज्य
महद्भि कीर्त्यो धर्म्मं केवल पालनीय ॥ ५२ ॥ तेनेदमनिलविद्युचञ्चल-
मवलो-
५७ क्य जीवितमसार । (।) क्षितिदानपरमपुराय प्रवर्त्तितो ब्रह्मदायोय ॥ ५३ ॥
सच परमभट्टारकमहाराजाविराजपरमेश्वर श्रीजगतुगदेवपादानुध्यातपर-
५८ मभट्टारकमहाराजाधिराजपरमेश्वरश्रीपृथ्वीवल्लभ-**श्रीमदमोघवर्ष-श्रीवल्लभ**
नरेन्द्रदेव कुशली सर्व्वानेव यथासम्वन्व्यमानकान्राष्ट्रपतिविपयपति-
५९ ग्रामकूटयुक्तकनियुक्ताधिकारिकमहत्तरादी समादिशत्यस्तु (॥) वम्सविदित
यथा मान्यखेटराजधान्यातस्थितेन मया मातापित्रोरात्मन (क) श्चैहिकामु-
६० त्रिकपुण्ययशोभिवृद्धये ॥ ७ ॥ करहऽविनिर्गतभरद्वामाग्निवेश्याना आगिरस-
पारूहस्पत्याना भारद्वानाजेसब्रह्मचारिणे साविकूवारक्र-
६१ मइतपौत्राय । गोलसऽगमिपुत्राय । नरसिघदीक्षित । पुनरपि तस्मै विपय-
विनिर्गता तस्मै गोत्रे च भट्टपौत्राय । गोविन्दभट्ट-
६२ पुत्राय । रञ्छादित्यक्रम इत । तस्मि देपे ।
वड्डमुखमब्रह्मचारिणे दावडिगहियसहायसपौत्राय । विष्णुभट्ट पुत्राय ।
तिविक्रम-
६३ पडगमि । पुनरपि तस्मि देपे वञ्छगोत्रसब्रह्मचारिणे । हरिभट्टपौत्राय ।
गोवादित्यभट्टपुत्राय । केसवगहियमाहाय ।
६४ चतुका ना वह्वृचमखाना । पव चतुक ब्राह्मणाना ग्रामो दत्त मजाणसमीप-
वर्त्तिन॰ चतुर्विशतिग्राममध्ये । ररिवल्लिकानामग्राम॰ तस्य चाघाट-
६५ नानि पूर्व्वत कल्लुवी समुद्रगामिनी नदी । दक्षिणत उप्पलहत्यक भट्ट-

पाल नरेश धर्मपालदेव का ताम्रपत्र-लेख

खालीमपुर (८वीं सदी)

ओं स्वस्ति । सर्व्वज्ञाताम् श्रियम्-इव स्थिरम-आस्थितस्य वज्रासनस्य वहु-मार-कुल-औपलम्भा । देव्या महा-करुणया परिपालितानि रक्षन्तु वो दश वलानि दिशौ जयन्ति ॥ १ ॥

श्रिय इव सुभाशाया सम्भवो वारिराशिश=शशधर-इवभासो विश्वम्-आर्ह्लादयन्त्या । प्रकृतिर्-अवनियानाम् सन्ततेर्-उत्तमाया अजनि दयित-विष्णु सर्व्वविद्य-आवदात ॥ २ ॥

आसीद-आ सागराद=उर्व्वीम् गुर्व्वीभि कृती मजयन ।
खडिन-आराति श्लाय श्री-व -तत ॥ ३ ॥
मात्स्य-न्यायम्-अपोहितुम् प्रकृतिभिर-लक्ष्म्या करन्-ग्राहित
श्री गोपाल इति क्षितीश-शिरसाम् चूडामणिस्-तत्-सुता ।
यस्य आनुक्रियते सनातन-यशो-राशिर-दिशाम्-आशयेतिम्ना यदि पौमास-रजनी ज्योत्स्न-आतिभार-श्रिया ॥ ४ ॥

शीताशोर-इव रोहिणी हुत- भुज स्वाह् एव तेजो निधे शर्वाण्-ईव शिवस्य गुह्यक-पतेर्-भद्रेव तस्य विनोद-भूर्-भुर लक्ष्मीर्-इव क्षमा पते ॥ ५ ॥

ताभ्याम् **श्री धर्म्मपाल** समजनि सुजनस्तू आवदान स्वामी भूमि-पतीनाम्-अखिल-वसुमती मडल शासद्-एक । चत्वारस-तीर मज्जत्-करि-गण-चरण न्यस्त मुद्रा समुद्रा यात्राम् यस्य क्षमन्ते न भुवन परिखा विश्वग्-आशा जिगीषो ॥ ६ ॥

यस्मिन्-उद्दाम-लीला—चलित वल-भरे दिग-जनाय प्रवृत्ते यान्त्या-इश्व-म्भरायां चलित-गिरि तिरश्चीनताम् तद्-वशेन ।
भार-आभुग्न् ज्जन्मणि विधुर शिरश-वक्र महायकार्यम् शेष-भोदस्त दोण्णा त्वरिततरम्-अवो-धम्-तम् एव आनुयातम् ॥ ७ ॥

यत-प्रस्थाने प्रचलित-वल-आस्फालनाद-उल्लर्लाम्बर-धूली पू पिहित सकल व्योमभिर भूतधात्रया । सम्प्राप्नाया परम-तनुता चक्रवाल फणानाम् मग्न् ओन्मीलन्मणि फणिपतेर-लाघवाद-उल्ललास ॥ ८ ॥

विरुद्ध-विषय-क्षोभाद्-यस्य-कोप् - आग्निर औवंवत् । अनिर्वृति प्रजज्वाल चतुर- अम्भोधिवारित ॥ ९ ॥

ये-भूवन-पृथु-राम- राघव-नल-प्राया धरित्रीभुजम - तान-एकत्र दिदृक्षुण-

आर्धश्रोतिकया आम्रयानकोल्वैयानिकण-गत ततोपि दक्षिणेन कालि-कास्वभ्र । अतो-पि निमृत्य श्रीफ ़ भिपुकम् यावन् =पश्चिमेन ततो-पि विल्व-गोर्धश्रोतिकया ग गिनिकाम् प्रविष्टा । पालितके सीमा दक्षिणेन काणा द्वीपिका । पूर्व्वेण कोण्ठिया स्रोत उत्तरेण ग गिनिका । पश्चिमेण जेनन्दायिका एतद-ग्राम मपारोण परकर्म्मकृद्वीप । स्यालीक्कटविपय सम्वद्य आम्रपण्डिका मण्डल्-आन्त पाति गोपिप्पली ग्रामस्य सीमा । पूर्व्वेण उद्रग्राम-मण्डल पश्चिम सीमा । दक्षिणेन जोल्क पश्चिमेन वेसानिक-आस्या खाटिका । उत्तरेण ओद्र ग्राम-मण्डल-सीमा कवस्यितो गो-मार्ग । एपु चतुरुपु ग्रामेपु समुपगतान सर्व्वान-एव-राज-राजनक-राजपुत्र-राजामात्य-सेनापति विषयपति-भोगपति षष्ठाधिकृत-दण्डशक्ति-दाण्डपाशिक चौरोद्धरणिक दोस्साधसाधनिक-वूत-खोल-गमागमिक आभित्वरमाण-हस्त्यश्वगोमहिष्यजा-विकाध्यक्ष नौकाध्यक्ष-वलाध्यक्ष-तरिक शौल्कि-गौल्मिक तदायुक्तक-विनियुक्तआदि राजपादोपजीविनो न्याश च आकीर्त्तितान् चाटभट जातीयान् ययाकाल आध्यासिनो जेष्ठ कायस्थ महामहत्तर-महत्तर दाशग्रामि आदि-विपयव्यवहारिण स-करणात् प्रतिवामिन क्षेत्रकराश्-च ब्राह्मण-मानना पूर्व्वक यथार्हम् मानयति वोधपति समाज्ञापयति च । मतम्-अस्तु भवताम् । महासामन्ताधिपति-श्री-नारायणवर्म्मणा दूतक-युवराज-श्री त्रिभुवनपाल-मुखेन वयम्-एवम् विज्ञापिता यथा अस्माभिर-म्मातापित्रोर-आत्मनश्-च पुण्य-आभिवृद्धये शुभस्थल्यान् देव कुलण कारितत-तत्र प्रतिष्ठा-पित भगवन-नन्न नारायण भट्टारकाय ततप्रति-पालक-लाटद्विज देवार्च्चक-आदि पादमूल-समेताय पूज-ओपस्थान-आदि-कर्म्मणे चतुरो ग्रामान् अत्रत्य हटि्टका तल पाटक समेता स्वमीमा-पर्यन्ता सोद्देशा सदशापचारा अकिञ्चित्प्र-ग्राह्या परिहृत सर्व्वपीडा भूमिच्छिद्र न्यायेन चन्द्र-आर्क क्षिति-समकाल तथ-एव प्रतिष्ठापिता । यतो भवद्भिस्-सर्व्वैर-इव भूमेर-द्दानफल-गौरवाद् अपहरणे च महानरकपति-आदि-भयाद्-दानम्-इदम्-अनुमोदय परिपाल-नीयाम् । प्रतिवासिभि क्षेत्रकरैश्-च् आज्ञाश्रवण-विधेयैर्-भूत्वा समुचित-कर-पिण्डक्-आदि सर्व्व प्रत्याय्-ओपनय कार्य इति ॥ वहुभिरव्वसुधा दत्ता राज-भिस्-सगर-आदिभि । यस्य यस्य यदा भूमिस्-तस्य तस्य तदा फलम् ॥ पष्टिम् वर्ष-सहस्राणि स्वर्गे मोदति भूमिद । आक्षेप्ता च्-अनुमन्ता च तान्यइव नरके वसेत ॥

स्वदत्ताम् पर-दत्ताम् वा यो हरेत वसुन्धराम् स- विष्ठाया कृमिर् =भूत्वा पितृभिस्-सह पच्यते ॥ इति कमलदल आम्वुविन्दु-लोला श्रियम्, अनुचिन्त्य मनुष्य-जीवित-ञ्-च । सकलम्-इदम्-उदाहृतञ्च वुध्वा न हि पुरुषै पर-कीर्त्तयोविलोप्या ॥ तडित-तुल्या लक्ष्मीस्तनुर्-अपि

च दीपामस-समा मर्वो कुल-एकान्त पर-कृतिम्-अकीर्ति तापयताम्। यदास्म आचन्द्रार्क नियतम् भवताम् अत्र च नृपा करिष्यन्ते कुन्मा पदु-अभिवर्धितम् किम् प्रवचन॥ अभिवर्धमान-विजयराज्य सम्वत् १२ माम-दिनानि ॥१२॥
श्री मानतस्य पौत्रेण श्रीमन्सुभटा-सूनुना। श्रीमता तास्मन् इदम् उत्कीर्ण गुण-धाम्निना ॥।

देवपाल का मालदा ताम्रपत्र-लेख

१ ओं स्वस्ति। सिद्धार्थस्य परार्थसुस्थित मतेस्स मार्गम(म्म)-स्यत
सिद्धिस्सिद्धिमनुत्तरां भगवतस्तस्य प्रजासु क्रिया त् (।*)
३ यस्मैवानुकरवसिद्धिपरवीरस्पृष्टवीर्योत्साग्जिता
४ निर्वृतिमासमाप सुगतस्सर्वार्थभूमीश्वर ॥ १॥ सौभाग्यमवनस्तुर्ल
५ भियस्स-पत्न्या
मोपाल पतिरभवन्नमुन्धराया (।*)
६ प्टाम्वे सति कृतिना सुख्य यस्मिन् भद्रया पृथुसगराक्ष्मोत्पमूणम् ॥ २॥
विजित्य यना जलधर्मसु पराम्भिमोचिता
७ मोक्षपरिग्रहा इति।
सनाप्यमुद्राप्यविलोचनाम्युनर्जमपु च(च)न्यूनवृमुर्भतजया ॥ ३ ॥
चलत्स्वनन्तेपू च(च) तैपु यस्य विश्वम्भरा-
८ मामिषित रजोभि ॥
पादप्रचारक्षमभन्तरिक्षमिह्ङ्गमाना मुचिरस्य (स्य) भूव ॥ ४॥* घास्यार्थ
भाजा चन्द्रोनुघास्य चर्म्माम्प्रतिष्ठापय
९ ता स्वधर्म्मे (।*)
श्रीधर्मपालेन सुतेन सोमूस्वर्मस्थितानामनृण पितृणाम् ॥ ४ ॥ अवलरिव
च जुमैर्यशीयविचकृतिरिव कथ्यमाना।
१ भिस्पन्दमम्प (म्प) रं प्रपदे चरण रेणुनिमन भूतमानौ ॥ ६ ॥ केदारे विधि
नोपयुक्तपयसां पंपालमैत्रैम्नु (म्नु) भी। गोकर्णादिषु चाप्यनुष्ठि ॥-
११ तवतान्तीर्थेष धर्म्या क्रिया (।*)
मृत्याना सुखमेव यस्य सकलानुद्धृत्य दुष्टानिमाल्लोकान्साधयतो (ऽ*) नुषङ्ग
जनिता सिद्धि परत्रा-
१२ प्यभूत् ॥ ७ ॥
तस्योर्विभिरवधावशानसमम संप्रपिताना पर। सत्कारस्पनीय जरमधिक स्वा
स्वा मताना भुवम् (।*) इत्य मावमता

१३ यदीयमुचित प्रीत्या नृपाणामभूत् । सोत्कण्ठ हृदय दिवश्च्युतवता जाति-
स्मराण्णामिव ॥ ८ ॥ श्रीपख (व) तस्य दुहितु क्षितिपतिना रा
१४ ष्ट्रकूटतिलकस्य
रण्णदेव्या पाणिर्जगृहे गृहमेधिना तेन ॥ ९ ॥ धृततनुरिय लक्ष्मी साक्षत्क्षि-
तिर्नु शरीरिणी । किमवनिपते कीर्तिम्-
१५ र्त्तायिवा गृहदेवता (।*)
इति विदधती शुच्याचा (रा) वितर्कवती प्रजा प्रकृतिगुरुभिर्या शुद्धान्त-
स्णैरकरोदय ॥ १० ॥ श्लाघ्या प्र(प) तिव्रतामौ मु-
१६ क्तारत्न समुद्रशुक्तिरिव ।
श्रीदेवपालदेवम्प्रसन्न वक्त्र सतमसूत ॥ ११ ॥ निर्म्मलोमनसि वाचि सयत
कायकर्म्मनि (णि) च य स्थित शुचौ (।*)
१७ राज्यमापनिरूपप्लवम्पितुर्वो (र्वो) धिसत्व इव सौगत पदम् ॥ १२ ॥
भ्राम्यद्भि विजयक्रमेण । करिभिस्तामेव विन्ध्याटवीमुद्दामप्लवमानवा
(वा) ष्पपय-
१८ (सो) दृष्टा पुनर्व (व)न्धव (।)
कम्वो (वो) जेषु च यस्य वाजिषु (व) भिध्वेस्तान्यराजौजसो हेषामिश्रित-
हारि-हेषितत्वा कान्तास्चिरप्रीणिता ॥ १३ ॥ य पूर्व व (व) लि-
१९ ना कृत कृतयुगे येनागमद्भर्गव-
स्त्रेताया प्रहृत प्रियप्रणयिना कर्ण्णेन यो द्वापरे । विच्छिन्न. कलिना शकद्विषि
गते कालेन लोकान्तरम्
२०
येन त्यागपथस्स एव हि पुनर्विस्पष्टमुन्मीलित ॥ ४ ॥ आ गङ्गागम-महितात्स
पत्नशन्यामासेतु (तो) प्रथितदशास्यकेतुकीर्त्ते (।) उर्वीमा वरुण
२१ निकेतनाच्च सिन्धो-
रा लक्ष्मीकुलभवनाच्च यो वु (बु) भोज ॥ १५ ॥
स खलु भागीरथीपथप्रवर्त्तमाननानाविधनौवाटकसपादित-सेतुष (ब) न्धनि-
हित (शै)-
२२ लशिखरश्रेणिविभ्रमात् निरतिशयघनघनाघनघट्टा (टा) श्यामायमानवा-
सरलक्ष्मीसमारव्व (ब्ध) सततजलदसमयसन्देहात् उदीचीनानेक-
२३ नरपतिप्राभृतीकृताप्रमेयहयवाहिनी-
खरखुरोत्खातधूलीधूसरितदिगन्तरालात् परमेश्वरसेवासमायाताशेषजम्बू
(म्बू) द्वी-

२४ पभूपास

पादातमरनमदवन मौमुद्गगिरिसमावासितश्रीमज्जयस्कन्धावारात् परमसौ-
गत-परमभट्टारकपरमम (ट्टा) रकम

५ हाराजाधिराजश्रीधर्मपालदेवपादानुध्यात

परमसौगत परमेश्वरः परमभटा (ट्टा) रको महाराजाधिराजः श्रीमान्दे-
वपालदेव

२ कुशली । श्रीनगरभुक्तौ राजगृहविषयान्तःपाति अजपुरनयप्रतिब (द्ध)
स्वसम्ब (म्ब) द्धाविच्छिन्नतलोपेत । नन्दिवनाक । मणि

२७ वाटक । पितिपिराकाननयप्रतिब (द्ध) नटिका । अचलानयप्रतिब (द्ध) ह
ह् (स्ति) ग्राम । गयाविषयान्तःपातिकुमुदसूत्रवीथीप्रतिब (द्ध) पालाम

२८ कग्रामान् । समुपगतान् (न्) सर्व्वानेव राजराणक । राजपुत्र । राजा-
मात्य । महाकार्त्ताकृतिक । महादण्डनायक । महाप्रतीहार । महा

२९ सामन्त ।

महादौःसाधसाधनिक । महाकमारा (मा) त्य (।*) प्रमातृ । शरभङ्ग (।*)
राजस्थानी (यौपरिक) विषयपति (।*) दाशापराधिक । चौरोद्धर

१ णिक । दाण्डि

क (।*) दाण्डपाशिक (।*) शौल्किक (।*) (गौ) ल्मिक । क्षेत्रपाल
(।*) कोट्टपाल । अङ्गरक्ष (।*) तदायुक्तक । विनियुक्तक । हस्त्यश्वोष्ट्र
नौब (ब) लव्यापृ-

११ तक (।*)

किशोरवडवागोमहिष्यधिकृत । दूतप्रे (प्रै) षणिक ।
गमागमिक । अभित्वरमाणक । तरिक । तरपतिक ।
गौड (ड्) -मालव-खश-हूण-कुलिक । कर्णा

१२ ट (ड्) ङ्ग ।

चाट्भ (ट*) सेवकादीनन्यांश्चाकीर्त्तितान् स्वपादपद्मोपजीविनः प्रतिवा-
सिनश्च ब्राम्ह (ब्राह्म) णोत्तरान् महत्तमकुटुम्बि (म्बि) पुरोगमेदान्ध्र

१३ क । चण्डाल-

पर्य्यन्तान् समाज्ञापयति विदितमस्तु भवताम् यथोपरि-लिखितस्वसम्ब (म्ब)
द्धाविच्छिन्नतलोपेत नन्दिवनाकग्राम । मणिवाट

१४ कग्राम ।

नटिकाग्राम । हस्तिग्राम । पालामकग्रामाः स्वसीमातृणयूतिगोचरपर्य्यन्ताः
सतलाः सोद्देशाः साम्रमधूकाः सजलस्थलाः

१५ सगर्त्तोषराः सदशापराधाः सचौरोद्धरणाः परिहृतसर्व्व (पीडा) अचाट

भटप्रवेशा अकिंचित्प्रग्रा (ह्य) राजकुलीय-

३६ समस्तप्रत्यायसमेता भूमिच्छि-

द्रन्यायनाचन्द्रार्क्कक्षितिसमकालम पूर्व्वदत्तभुक्तभुज्यमानदेव-व्र (ब) ह्मदेय-

वर्जिता मया

३७ मातापित्रोरात्मन (श्य) पुण्ययशोभिवृद्धये ॥

सुव (र्ण्ण) द्वीपाधिपम (हा) राजश्रीवा (बा) लपुत्रदेवेन दूतकमुखेन

व्यम्विज्ञापिता यथा मया

३८ श्रीनालन्दायाम्बिहार कारितस्तत्र

भगवतो (बु (ॱ) द्धभट्टारकस्य प्रज्ञापारमितादिसकलधर्म्मने श्रीस्थानस्या-

मार्ये तात्र (त्रि)-

३९ कवो (बो) धिसत्वगणस्याष्टमहापुरुषपुद्गलस्य चातुर्द्दिशायभिक्षुसङ्घस्य

व (ब) लिचरूसत्रचीवरिपिण्डपातशयनासनग्लानप्रत्ययभे-

४० षज्याद्यर्थं धर्मरत्नस्य लेखनाद्यर्थं विहारस्य च खण्डस्फुटितसमाधानार्थं

शासनीकृत्य प्रतिपादित (।*) यतो भवद्भि सर्व्वैरेव

४१ भूमेर्द्दानपाल (न*) गौरवादपहरणे च महानरकपातादिभयाद्दानमिद-

मभ्यनुमोप पालनीय प्रतिवासिभिरण्याज्ञाश्र-

४२ वणिविधेयै-

भूंत्वा यथाकाल समुचितभागभोगकरहिरण्यादिप्रत्यायोपनय कार्यं इति ॥

सम्वत् ३९ क (का) तिक दिने २१

४३ तथाच धर्मानुशन्सनश्लोका

व (ब) हुभिर्वसुधा दत्ता राजभि

४४ सगरादिभि (।*)

यस्य यस्य यदा भूमिस्तस्य तस्य तदा फलम् ॥ १६ ॥

४५ स्वदत्ताम्परदत्ताम्वा (यो) ह (रे) त वसुन्धरा ।

स विष्टाया कृमिर्भूत्वा पितृ भि

४६ सह पच्यते ॥ १७ ॥

षष्ठिम्वर्षसह (स्रा) णि स्वर्गे मोदति भूमिद । आक्षेप्ता चानुमन्ता च तान्येव

४७ नरके वसेत् ॥ १८ ॥

अन्यदत्ता द्विजातिभ्यो यत्नाद्रक्ष युधिष्ठिर । मही महीभृता श्रेष्ठ दा-

४८ नाच्छ्रेयो नु पालनम् ॥ १९ ॥

अस्मत्कुलक्रममुदारमुदा (ह) रद्भिरन्यैश्च दानमिदमभ्यनुमोदनीया ।

लक्ष्मपास्तडित्सलिलवुद्बु (बुद्बु) द (च)-

४९

वृन्दलुन्ध (ब्ध) मनसा भक्तया च शौद्धोदनेर्वु (र्बु) घ्वा शैलसरित्तरगतरला
६२ लक्ष्मीमिमा क्षोभनाम् ।
यस्तेनोन्नतसौधधामधवल सङ्घार्थमिश्रश्रिया नानासद्गुणभिक्षुसङ्घवसतिस्त-
स्यार्म्विहार कृत ॥ ३२ ॥ भक्त्या
६८ तत्र समस्तशत्रुवनितावैधव्यदीक्षागुरु कृत्वा शासन माहितादरतया
यम्प्रार्थ्य दूतैरसौ । ग्रामान् पञ्च विपञ्चितोपरियथोद्देशा-
६४ निमानात्मन
पित्रो (र्लो) कहितोदयाय च ददौ **श्रीदेवपाल** नृप ॥ ३३ ॥
यावत्सिन्धो प्रव (ब)न्ध पृथुलहरजटाक्षीभिताङ्गा च गङ्गा गुर्व्वी
६५ धत्ते फणीन्द्र प्रतिदिनमचले हेलया यावदुर्व्वी ।
यावच्चास्तोदयाद्री रवितुरगखुरोद्धृष्टचूडामणीस्तस्ता-वत्सत्कीर्त्तिरेषा
प्रभव-
६६ तु जगताम्सत्क्रिया पयती ॥ ३८ ॥

नारायणपालदेव का भागलपुर दानपत्र

ओ स्वस्ति ॥

१ मैत्री कारुण्यरत्न प्रमुदितहृदय
प्रेयसीं सन्दधान
२ सम्यक् सम्बोधिविद्या-सरिदम-
-ऌजल-क्षालिताज्ञानपङ्क ।
३ जित्वा य काम
कारि-प्रभव मभिभव शाश्वती प्राप शान्ति
४ म श्रीमान् लोकनाथो जय,
ति दशबलोऽन्यश्च **गोपालदेव** ॥ (१)
लक्ष्मी-जन्मनिकेतन समकरो वोढु क्षम क्षमा- र
पक्षच्छेदभमादु
पस्थितवता मेकाश्रयो भूभृता ।
६ मर्य्यादा-परिपालनैकनिरत शौर्य्यालयोऽस्मादभूद्दुग्धाम्भोधिविलास
७ हासि-महिमा **श्रीधर्म्मपालो** नृप ॥ (२)
७ जित्वेन्द्रराज-प्रभृती-नराती-
नुपार्जिता यन महोदय-श्री
दत्ता पुन

८ सा मल्लिकार्जुनमित्रे

धर्मानुयायातति-नामनाय ॥ (३)

रामस्य च गृहीत-सत्यतपसस्तस्यानुरूपो गुण

सीमिव स्वपा-

९ हि तुल्य-महिमा याकपालनामानुज ।

य श्रीमालय-विक्रमक-वसति भातुं स्थितः शासन

भून्या जनु-पताकिनी

१ मिरकरो वेकालपमा दिशः ॥ (४)

तस्मादुपेन्द्रचरित र्व्वसती पुमान

पुत्रो बभूव विजयी जयपालनामा ।

धर्म्मोहि

११ तां क्षमभिता भुवि वैजपालम

म पूर्व्वजे भुवनराज्य सुखान्यनैषीत् ॥ (५)

यस्मिन् भ्रातु प्रिवेशाद्भूजपति परित प्रस्थिते

१२ धेनु माधा

सौराष्ट्रान्तव भूराभिपपुर मजटाधुत्क्कामामभीध ।

वासाम्बके विराय प्रणयि-परिवृतो विभवु

११ क्षोण मूर्द्ध

राजा प्राग्ज्योतिषाणामुपशमित-समित् संकथा यस्य चाज्ञा ॥ (६)

श्रीमान् विग्रहपालस्तत्सूनुरजातशत्रुरि-

व जात ।

१४ चन्द्रनिभा प्रसाधन-विलोपि-विमलासि-जलधार ॥ (७)

रिपवो यन पुर्व्वीणा विपदा मास्मवीक्षता ।

पुरुषाम्

१५ प-वीर्थीनां सुहृदः सम्पदामपि ॥ (८)

लज्जेति तस्य जलधे रिव जह्नु-कन्या

पत्नी बभूव कृत-हैहय-वंशभूषा ।

यस्या शुची

१६ नि चरितानी पितुश्च वंशे

पत्युश्च पावन-विधि परमो बभूव ॥ (९)

दिक्पालैं क्षितिपालनाय दधत देहे विभक्ता

श्रिय

१७ श्रीनारायणपालदेव मसूयतस्यां स पुण्योत्तरं

य क्षोणीपतिभि शिरोमणिरुचा श्लिष्टाङ्घ्रि-पीठोपल
न्यायोपा-

१८ त्तमलङ्कार चरितै स्वैरेव धर्म्मासन ॥ (१०)
चेत पुराण-लेख्यानि चतुर्व्वर्ग्ग-निधीनि च
आरिप्सन्ते चतस्त्यानि चरितानि महीभृत ॥ (११)

१९ स्वीकृत-सुजन-मनोभि सत्यापित-सातिवाहन सूक्तै ।
त्यागेन यो व्यधत्त श्रद्धेया मङ्गराज कथा ॥ (१२)
भयादरातिभिर्यस्य रण-

२० मूर्द्धनि विस्फूरन् ।
असिरिन्दीवर-श्यामो ददृशे पीत-लोहित ॥ (१३)
य प्रज्ञया च धनुषा च जगद्विनीय
नित्य न्यवीविशद-

२१ नाकुलमात्म-धर्म्मे ।
यस्यार्थिनो सविध मेत्म भृश कृतार्था
नैवार्थिता प्रति पुनर्व्विदधुर्म्मनीषा ॥ (१४)
श्रीपतिरकृष्ण-कर्म्मा विद्या-

२२ धरनायको महाभोगी ।
अनल-सदृशोपि धाम्ना य श्चित्तमलसम श्चरितै ॥ (१५)
व्याप्ते यस्य त्रिजगति शरच्चन्द्र-गौरे र्यशो
भि-

२३ र्म्मन्ये शोभान्न खलु विभरामास रुद्राट्टहास ।
सिहस्मीणा मपि शिरसिजेर्व्वार्प्पिता केतकीना ।
पत्रापीडा सुचिर म

२४ भवत् भृङ्ग-शब्दानुमेया ॥ (१६)
तपो ममास्तु राज्य ते द्वाभ्यामुक्तामिद द्वयो ।
यस्मिन् विग्रहपालेन सगरेण भगीरथे ॥ (१७)
स खलु भा-

२५ गीरथीपथ-प्रवर्त्तमान-नानाविध-नौवाट-सम्पादित-
सेतुवन्ध निहित-शैलशिखरश्रेणी-विभ्रमात्, निरतिशय-घन-घनाघट-घटा

२६ श्यामायमान-वासरलक्ष्मी-समारब्ध-सन्तत-जलदसमय-सन्देहात्
उदीचीनानेकनरपति-प्राभृत्तीकृता-प्रमेय-हयवाहिनी-खर-

२७ खुरोत्खात-धूलीधूसरित-दिगन्तरालात, परमेश्वर-सेवा-समायाता-
शेष-जम्बूद्वीप-भूपालानन्त-पादात-भरनमदवने । श्रीमु-

२८ मुद्गगिरि-समावासित-श्रीमज्जयस्कन्धावारात् परमसौगतो महाराजाधिराज-
श्रीविग्रहपालदेव पादानुध्यात परमेश्वरः पर
२९ मभट्टारको महाराजाधिराज श्रीमन्नारायणपालदेव कुशली ।
तीरभुक्तौ । कक्षविषयिक-स्वसम्बद्धाविच्छिन्न-तलो-
१ पेत-मकुतिका-ग्रामे । समुपगताशेष-राजपुरुषान् । राज ।
११ राजनक । राजपुत्र । राजामात्य । महासान्धिविग्रहिक ।
महाक्षपटलिक । म
१२ हासामन्त । महासेनापति । महाप्रतीहार । महाकार्त्ताकृतिक ।
महा
११ दौ-साधसाधनिक । महादण्डनायक । महाकुमारामात्य ।
राजस्थानीयोपरिक । दाशापराधिक । चौरोद्धरणिक ।
१४ दाण्डिक । दाण्डपाशिक । शौल्किक । गौल्मिक । क्षेत्रप ।
प्रान्तपाल । कोट्टपाल । खण्डरक्ष । तदायुक्तक । विनियुक्तक ।
हस्त्य
१५ श्वोष्ट्र-नौबल-व्यापृतक । किशोर । वडवा । गोमहिषाजाविकाध्यक्ष ।
दूतप्रैषणिक । गमागमिक । अभित्व(र)माण । विषयपति
ग्रामपति । तरिक । गौड । मालव । खश । हूण । कुलिक ।
१६ कर्णाट । ला(ट) । चाट । भट । सेवकादीन् । अन्यांश्चाकीर्तितान् ।
१७ राजपादोपजीविनः प्रतिवासिनो ब्राह्मणोत्तरान् । महत्तमोत्तम पुरोगमेदा
न्ध्र(न्ध्र) चण्डाल-पर्य्यन्तान् । यथार्हं मानयति ।
१८ बोधयति । समादिशति च । मतमस्तु भवतां । कलशपोते ।
महाराजाधिराज-श्रीनारायणपालदेवेन स्वयं-कारित-सहस्रा
१९ यतनस्य । तत्र प्रतिष्ठापितस्य । भगवत शिवभट्टारकस्य ।
पाशुपत आचार्य्य परिषदश्च । यथार्हं पूजा-बलि-चरु-सत्र-नव-क
४ र्म्माद्यर्थं । शयनासन-ग्लान प्रत्यय भैषज्य-परिष्कारार्थं ।
अन्येषामपि स्वाभिमतानां । स्वपरिकल्पित विभागेन । अनवद्य-भो
४१ गार्थञ्च । यथोपरिलिखित-मकुतिकाग्राम । स्वसीमा-तृणयूति
गोचर-पर्य्यन्तः । सतलः । सोद्देशः । साम्रमधूकः । सजल
४२ स्थलः । सगर्त्तोषरः । सोपरिकरः । सदशापचारः । स
चौरोद्धरणः । परिहृत-सर्व्वपीडः । अचाटभट-प्रवेशः ।
अकिञ्चित्
४१ त्-प्रग्राह्यः । समस्त-भाग-भोग-कर-हिरण्यादि प्रत्याय-समेतः ।
भूमिच्छिद्रन्यायेनाचन्द्रार्क्क-क्षिति-समकालं यावत् माता-पित्रो

४४ रात्मनश्च पुण्ययशोऽभिवृद्धये । भगवन्त शिवभट्टारक-
मुद्दिश्य शासनीकृत्य प्रदत्त । ततो भवद्भि सर्व्वैरेवानु-
४५ मन्तव्यं भाविभिरपि भूपतिभिर्भूमेर्दानफल-गौरवदप-
हरणे च महानरकपात-भयाद्दानमिदमनुमोद्य पालनीय प्र-
४६ तिवासिभि क्षेत्रकरैश्चाज्ञा-श्रवण-विधेयीभूय यथाकाल
समुचित-भाग-भोग-कर-हिरण्यादि-सर्व्वप्रतपायोपनय का-
४७ र्य्य इति । सम्वत् १७ वैशाखदिने ९ (।।) तथा च धर्म्मा
नुशङ्सिन श्लोका ।
वहुभिर्व्वसुधा दत्ता राजभि सागरादिभि ।()
४८ यस्य यस्य यदा भूमिस्तस्य तस्य तदा फल ।।
षष्टिं वर्षसहस्राणि स्वर्गे मोदति भूमिद ।
आक्षेप्ता चानुमन्ता च तान्येव न-
४९ रके वसेत् ।।
स्वदत्ताम्परदत्ताम्वा यो हरेत वसुन्धरा ।
स विष्ठाया क्रमिर्भूत्वा पितृभि सह पच्यते ।।
सर्व्वानेतान् भाविन
५० पार्थिवेन्द्रान्
भूयोभूय प्रार्थमतेपप राम ।
सामान्योऽयन्धर्म्म-सेतु र्नृपाणा
काले काले पालनीय क्रमेण ।
इति क-
५१ मल दलाम्वु-विन्दुलोला
श्रियम नुचिन्त्य मनुष्य-जीवितश्च ।
सकलमिदमुदाहृतश्च वुद्धा
नहि पुरुषै परकीर्त्तयो विलो
प्या ।।
५२ वेदान्तैरप्यसुगमतम वेदिता व्रह्मत(ता)र्थ
य सर्व्वासु श्रुतिषु परम साङ्गवमङ्गैरधीती ।
यो यज्ञाना समुदित महाद-
५३ क्षिणाना प्रणेता
भट्ट श्रीमानिह स गुरवो दूतक पुण्यकीर्त्ति ।।
श्रीमता मह्वदासेन शू(शु) भदासस्य श (सु) नुना ।
इद सा(शा)

दुर्वृत्तानामयमरि-

कुल्याकीर्णोकर्णाटलक्ष्मी-

लुण्टाकाना कदनमतनोत्तादृगेकाङ्कवीर ।

यस्मादद्याप्यविहतवसामान्समेद सुभिक्षा

हृष्यत्पौरस्त्यजति नदिश दक्षिणा प्रे (त)भर्ता ॥ ८ ॥

उद्गन्धीन्याज्यधूमैर्म्मृगशिशुरनिताखिन्न-

९ वैखानमस्वी-

स्तन्यक्षीणि कीरप्रकरपरिचितव्र(व) ह्मपारायणानि ।

येनासेव्यन्त शेषे वयसि भवभयास्कन्दिभिर्म्मस्करीन्द्रै

पूर्णोत्सङ्गानि गङ्गापुलिनपरिसरारण्यपुण्याश्रमाणि ॥ ९ ॥

अचरमपरमात्मज्ञानभी-

१० ष्मादमुष्मान्निजभुजमदमत्तारातिमाराङ्कवीर ।

अभवदनवसानोद्भिन्ननिर्णिक्ततत्तद्गुणनिवहमहिम्ना वेश्म हेमन्तसेन (१०)

मूर्द्धन्यर्द्धेन्दुचूडामणिचरणरज मत्यवाक्कण्ठभित्तौ

११ शास्त्ररि-केशा पदभुवि भुजयो क्रूरमौर्व्वीकिणाङ्क ।

नेपथ्य यस्य जक्षमे सततमियदिद रजपुष्पाणि हारा-

स्ताडङ्कनूपुरस्रक्कनकवलयमप्यस्य भृत्याङ्गनानाम् ॥ ११ ॥

यद्दोर्व्वेल्लिविलासलब्ध(ब्ध)गतिभि शल्यैर्व्विदीर्णोरसा

१२ वीराणा रण(तो)र्थवैभववशाद्दिव्य वपुर्व्वि(र्व्वि) भ्रताम् ।

मसक्तामरकामिनीस्तनतटीकाश्मीरपत्राङ्कित

वक्ष प्रागिव मुग्धसिद्धमिथुनै सातङ्कमालोकितम् ॥ १२ ॥

प्रत्यर्थिव्ययकेलिकर्म्मणि पुर स्मेर मुख वि(बि)भ्रतोरे-

१३ तस्यैतदमेञ्च कौशलमभूद्दाने द्वयोरद्भुतम् ।

शत्रौ कोपिदधेऽवसादमपर सख्यु प्रसाद व्यधा-

देको हारमुपाजहार सुहृदामन्य प्रहार द्विपाम् ॥ १३ ॥

महाराज्ञी यस्य स्वपरनिखिलान्त पुरवधू-

१४ शिरोरत्नश्रेणीकिरणसरणिस्मेरचरणा ।

निधि कान्ते ( ) साध्वीव्रतविततनित्योज्ज्वलयशा

यशोदेवी नाम त्रिभुवनमनोज्ञाकृतिरभूत् ॥ (१४)

ततस्त्रिजगदीश्वरात्समजनिष्ट देव्यास्ततोप्यरातिव

१५ (व) लशातनोज्ज्वलकुमारकेलिक्रम ।

चतुर्ज्जलधिमेखलावलयसीमविश्वम्भरा-

विशिष्टजयमान्वयो विजयसेन पृथ्वीपति ॥ (१५)

उत्तुङ्गै सुरसद्मभिश्च विततैस्तल्लैश्च शेषीकृत
चक्रे येन परस्परस्य च सम द्यावापृथिव्योर्व्वपु ॥२५॥
दिक्शाखामूलकाण्ड गगनतलम-

२४ ह्याम्भोधिमध्यान्तरीय

भानो प्राक्प्रत्यगद्रिस्थितिमिलदुदयास्तस्य मध्याह्नशैलम् ।
आलम्व(म्ब) स्तम्भमेक त्रिभुवनभवनस्यकशेषगिरीणा
स प्रद्युम्नेश्वरस्य व्यधित वसुमतीवासव सौधमुच्चै ॥ (२६)
प्रासादेन तवामुनैव हरितामध्वा

२५ निरुद्धो मुधा

भानोद्यापि कृतोस्ति दक्षिणदिश कोणान्तवासी मुनि ।
अन्यामुच्छ्पयोयमृच्छतु दिश विन्ध्योप्यसौ वर्द्धता
यावच्छक्ति तथापि नास्य पदवी सौधस्य गाहिष्यते ॥ २७ ॥
स्रष्टा यदि स्त्रक्ष्यति भूमिचक्रे सुमेरुमृत्पिण्डविवर्त्तनाभि ।
२६ तदा घट स्यादुपमानमस्मिन् सुवर्ण्णकुम्भस्य तदर्प्पितस्य ॥ २४ ॥
वि(वि) लेशयविलासिनी मुकुटकोटिरत्नाङ्कुर-
स्फुरत्किरणमञ्जरीच्छुरितवारिपूर पुर ।
चखान पुरवैरिण स जलमग्न-

२७ पौराङ्गना-

स्तनैणमदसौरभोच्चलितचञ्चरीक सर ॥ २९ ॥
उच्चित्राणि दिगम्व(म्ब) रस्य वसनान्यर्द्धाङ्गनास्वामिनो
रत्नालकृतिभिर्व्विशेषितवपु शोभा शत सुभ्रुव ।
पौराढ्याश्च पुरी श्मशानवसतेर्भिक्षाभु-

२८ जोस्याक्षया

लक्ष्मी स व्यतनोद्दरिद्रभरणे सुक्ष्मो हि सेनान्वय ॥ ३० ॥
चित्रक्षौमेभचर्म्मा हृदयविनिहितस्थलहारोरगेन्द्र
श्रीखण्डक्षोदभस्मा करमिलितमहानीलरत्नाक्षमाल ।
वेषस्तेनास्य तेने गरुडमणितागोन-

२९ म कान्तमुक्ता-

नेपथ्यनृम्पिरिञ्छामसुचित चन कल्पकापालिकस्य ॥ ३१ ॥
वा(बा) हो केलिभिरद्वितीयकनकच्छत्रस्य धरित्रीतल
कुर्व्वाणेन न पर्यशेपि किमपि स्वेनैव तेनेहितम् ।
किन्तन्मे दिशतु प्रसन्नवरदोप्पर्द्धेन्दुमौलि

न्विजयते निज-गोत्र-चन्द्र । यस्य=आभिषेक=कलश-ओल्लसितै पयोभि प्रक्षा-

७ लित कलि-रज-पटलन्-धरिज्या । (६) यस्य=आसीद् विजय-प्रयाण-समये तुङ्ग-अचल-ओच्छैश-चलन-माद्यत् कुम्भि-पद-क्रम-आमम-भर भ्रश्यन्-महो-

८ मण्डले । चूडारत्न-विभिन्न-तालु-गलित-स्त्यान-आसृग्-उद्भासित शेष पेष-वशाद्-इव क्षणम्=असौ क्रोडे निलीन् आनन ॥(८) तस्माद्=अजाय-

९ त निज्-आयत-वा(बा)हुवल्लि-व(ब)न्ध-आ(व)-रुद्ध-नव-राज्यगजो नरेन्द्र । मान्द्र आमृत-द्रव-मुचा प्रभवो गवा यो गोविन्दचन्द्र इति चन्द्र इव्=आ-

१० म्बु(म्बु) राशे ॥(८) न कयम्=अप्य=अलभन्त रण-क्षमास्=तिसृषु दिक्षु गजान् अथ वज्रिण । ककुभि वभ्रमुर=अभ्रमुवल्लभ-प्रतिभटा इव यस्य घ-

११ टा-गजा ॥ (९) सो-य समस्त-राज-चक्र-म सेवित-चरण परमभट्टारक-महाराजाधिराज-परमेश्वर परममाहेश्व(र) निजभुजोपार्जि-

१२ तश्री कन्यकुब्जा(ब्जा) धिपत्य-श्री चन्द्रदेव-पादानुध्यात-परमभट्टारक-महाराजाधिराज-परमेस्व(श्व)र-परममाहेश्वर-श्री मदनपा-

१३ लदेव-पादानुध्यात-परमभट्टारक-महाराजाधिराज-परमेश्वर-परममाहेश्वर-अश्वपनि (ति) गजपतिनरपतिराजत्रयाधिप-

१४ ति-विविधविद्याविचार वाचस्पति-श्रीमद्-गोविन्दचन्द्रदेवो विजयी हलदोय-पट्टलाया महसोणमौअ-ग्रवा (म) निवासिनो मि(नि)-

१५ खिल-जनपदान=अपगतान=अपि (च) राज-राज्ञी-युवराज-मन्त्रि-पुरोहित-प्रतीहार-सेनापति-भाण्डागारिक-अक्षपटलिक-भिषग-मे(नै)मित्तिक्-आन्त पु-

१६ रिक-दूत-करितुर्गपट्टनाकरस्थानगोकुलाधिकारी-पुरुपाश-=च्=आज्ञा-पयति वो(बो) धयत्य्=आदिशति च यथा विदितम्=अस्तु भवता यद्व(थ्) =आपरि-

१७ लिखित-ग्राम स-जल स्थल स-लोह-लवण्-आकर स-मत्स्य-आकर स-परण् आकर स-गर्त्त-ओषर स-मधूक-चूत-वन-वाटिका-विटप-तृण-यूति-

१८ गोच(र) पर्यन्त स्-ओर्द्ध(व्)-आध ा्=चतुर-आघाट-विशुद्ध स्व-सीमा-पर्यन्त सवत् ११८२ माघ-सुदि १५ म(श) नौ श्री मदप्रतीहार-समावासे सोमग्र-

१९ हण-पर्व्वणि गङ्गाया स्नात्वा विधिवन=मन्त्र-देव-मुणि-मनुज-भूत-पितृ-गणास्=तर्प्पयित्वा तिमिर-पटल-पाटन-पटु-(टु) महसम्=उष्णरोचिष-

गाधिपुर-आधिगा(रा)ज्यम्=असम दोर-विक्रमेण=आर्जित ॥(४) तीर-
थानी का-

४ शि-कुशिक-आ(ओ)त्तरकोशल-(ए) द्रस्था (नी) यकानि परिपालयत=
आवि(धि)गम्य (।) हेम=आत्म-तुल्य अनिशा (श) ददता द्वि (ए)भ्यो
येन=आकिता वभु(सु)मनी(ती) स(श) तशलु (स्=तु) लाभि ॥(ऽ)

५ तस्य=आतमजा (जो) **मदनपाल** इति क्षिती(म्)द्र चूडाम (णि) र्=
ब्विजयते निज-गोत्र-चद्र । यस्य=आ(भि)षेक-कलस-ओल्लसितै पयोभि
(प्र) क्षालित(क) लि रज-पटल धरित्र्या ॥ (६)
यस्(य)=आ-

६ सीद्=विजय-प्रयाण-समये तुग्=आचल्-वीच्चै (श्-च) लन्-माद्यत् कुभि-
पद-(क्र) म् आ (स)म-भर-भ्र(श्य) न् महीमडले । चूडारत्न-विभिन्न-
तालु-म(ग)लित-स्त्यान-आसृग्-उद्भासित शेष पेष-वशाद्-इव (क्ष)-

७ णम्=असा(सौ) क्रोड (?) निलीन्-आनन ॥ (७)। त(स्म) आद=
अजायप(त) निज-आयत-वा(बा) हुवल्लि-व(ब) घ्-आव(र्)द्ध-नव-राज्य
गजो नरे( )द्र । सा(द्र)-आमृत-द्रव-मुरा(चा) प्रभवो गवा यो **गोविन्दचद्र**
इति-च( )द्र इव्=आंवु (बु)रास (शे) ॥ (८) ॥

८ (न)कथम्=अप्य=अलभत तलकुमास्=तिश्रिपु(षु) दिक्षु गजान्=अ
(थ) वज (र्) इण । (क) कुभि वभ्रभुर=अभ्रमुवल्लभ-प्रतिमटा इव य
(स्य) घटा-गजा ॥ (९)। (अ)जनि **विजयचद्रो नाम** तस्मान्=नर(ए) द्र
( ) सुरप-

९ तिर=इव भूभृत्-पक्ष-विच्छेद-दक्ष ।
**भुवन-दलन-हेला-हर्म्य-हम्मीर-नारी-नयन-जलद-धा(र्) आ-शांत-भूलोक-
ताष** (प) ॥ (१०) यस्मि (श्=च) लत्य उदधिनेमि-मही=जयाय
माद्यत-करीद्र-गुरु-भार-नि-

१० पीथि(डि)त्-एव(।) त्त(प्र) जापति-पद शरण-आर्थिनी (भू)स=त्व( )
गत्-तुरग-निवह्-आ(ओ)त्य-रजश-छलेन ॥ (॥) सो=य समस्त-राज-
ल(च)क्र-सस (ए) वि(वि)न (त)चरण । स व(च) परमभट्टारक-
महाराजाधि

११ राज-परम (ˋ) श्वर परममाह (ˋ) श(व्) र-निजभुज(ओ)पार्जित-
कान्य-कु(ब्जा(ब्जा)) धिपत्य-**श्री चंद्रद(१)**व-पादानुध्यात-परमभट्टारक-
महाराजाधिराज-परमेश्वर-परमभट्ट (१) श्(व्)र-**श्री(म)वनपाल-**
देव-

१२ पादानुध्यात-परमभट्टारक-महाराजाधिराज-परमेश्वर-परममाह(ˋ) श्वर-

अश्वप (प) तिगजपतिनरपतिराजत्रयाधिपति विविधविद्याधि विचार वाचस्पति श्री गोविन्दचन्द्रदेव

१३ पादानुध्यात-परमभट्टारक-महाराजाधिराज-परमेश्वर-परममाह ( ) श्वर अश्वपतिगजपतिनरपतिराजत्रयाधिपति-विविध-विद्यावि(चि) चार वाच स्पति-श्री मदविजयचन्द्र

१४ देवा(वो) विजयी ॥ जिआव-पट्टलाया हरिपुर-ग्राम-नि न(वा)सिना (नो) निधि(खि)ल-जनपदान्=उपगतान्=अपि च राज-रा(ज्ञी)-मन्त्रि-पुरोहित-प्रति हार-सेनापति (भाण्डा)

१५ गारी(क) अक्षपटलिक-भिषक (ग्) नमित्तिक-अंतःपुरि (क)-दू(त)-करितुरगपत्तनाकर-स्थानगोकुलाधिकारी-पुरु(षा) न्=आ (अ) ज्ञपति बो(बो) धयति (त्य=) मा(वि)दितम् (स्तु) भवतां यथा-

१६ विदितम्=अस्तु भवतां य(म)था(प्र) औपरि(लि)खित=ग्राम स-जल-(स्थल) स (लोह)-लवण (न्) आकर स मत्स्य और (ग)र । (स) मत्स्य-आकर स-आम्बार(म्र) (मधूक) वि(वि)टप (वा)टि(का)-सहित-।

१७ तृण-वा(यू)ति-गोचर-प(र) यन्त स्-आ(ओ)र्ध्व-आधस्=चतुर-आघाट् विशु(शु)द्ध (स्व-सी)मा-पर्यन्त । (च) तुरधि( ) शत्वधि(क) (द्वा) दशास(श) त स ( ) व (त्स) रे स ( ) का=वि सं १२२४ (मा)घमा(मा)स(सि) (शुक्ल) ? पक्ष)दशाम्यां

१८ (ति) थौ रवि-दिन स (ध-ए)ह श्रीमद्(वा)राणस्य(स्यां) गंङ्गाया( ) स्नात्वा द ( ) व-श्री (भग) आदिकेशवसन्निधौ विधिवद्=मन्त्र-दे (व) मुनि-मनुज-भूतन्(f)पृ-गणा (स=त) र्पयित्वा तिमिर-पटल-पाटन-पटु

१९ महसम्=उष्णारा(रो) चि(चि) षम्=उप (स्थ)आय-औषधिपति-शकल-शे(ख) र(स) र समभ्यर्च्य त्रिभु(भु)वन-त्रातुर=(म) गवत वासुदेवस्य पूजां विधाय प ( ) तस्य=एव दीक्षा-ग्रहण-प्रस्तावे (वे) मातापित्रोर्=आत्मनश्=च पु-

२० ण्य-यशो-वि(मि)वृद्धय अस्म (त्-द) स्मत्पा समस्तराजप्रक्रिया(वो) पेत-रा(यी) म(रा) ज्याभिषि(क्त)-भाव(हा) राजपुत्र-श्री-जय(चन्द्र)देव ( ) व ( ) न गोकर्ण्य (कु) शलता-पूत-करतल-ओदक-पू(र्व)म्=आ-

२१ (चंद्र-आर्क) या(वा)वत (त्) व (वं) गुरु-गोत्राय । व(वं) शुक्ल-। (अ) चमर्षण-विसा(ष्ठा) मि(भ) वि प्रवराय । दीक्षित-शुक्ल-(अ) पौत्राय । दीक्षि(ते) श्रीमहा-पौत्राय । मह(हा)पुरो (रो) हित श्री (क्षित) श्री-आगू-पुत्राय । ब्राह्मण

२२ (पु) जातिथि (ग) रवे । महापुरो (हि) त-श्री-प्रह्लादश (र्म)णे ( )

म्रा(म्रा) ह्मणापा (य) शासनीक्र (त्य) प्(प्र) दत्ता (त्तो) मत्वा पु (य) थादी (य) ग (मा) धि(न)-(भागभो)गकर(-प्र) वणिकर-ज(जा) ल(त) कर-गोकर-तुरुक्क-

२३ (व)ड-क(कु) मा(म) रगदियाणक-आदि समस्(त्) अ-नियतानि(य)त्-आदायान् आ(ज्ञा)विध (`)यी-(भूय) दस्यय =(`) ति ॥ स(भ)व ( ) ति च्-आग्र वग् (र्म्) आनुशा (शा) सिन प(ौ)राणिक-श्ल(ओ)का। (जैसा ऊपर के लेख मे उल्लिखित)

३१ लिश्वि(खि) तम् =इद ठकुव श्री-कुसुमपालेन प्रमाणम् =इवि(ति) ॥

परमार राजा भोजदेव का बंसवर अभिलेख

(वि० स० १०७६)

१ ओ जयति व्योमकेशौसौ य सर्गाय विभर्त्ति ता।
ऐंदवी शिरसा लेखा ज-
२ गद्बीजाकुदाकृति ।१। तन्वतु व स्मराणे कल्याणमनिश जटा ॥ क-
३ ल्पात समयोद्दाम तडितद्वलयपिंगला ।२। परमभट्टारक
महारा—
४ जाधिराज परमेश्वर श्री सीयक देव पादानुध्यात परमभट्टारक
५ महाराजाधिराज परमेश्वर श्री **वाक्पति राजदेव** पादानुध्यात
परम भ-
६ ट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर श्री **सिंधुराजदेव** पादानुध्यात
७ परमभट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर **श्रीभोजदेव** कुशली।
८ स्थली मडले घाघ्रदोरभोगात पातिवट पद्रके शमुपग-
तान्समास्तराजपु-
९ रुपान्ब्राह्मणोत्तरान्प्रतिनिवासि जनपदादीश्च समादिशत्य सु
व सविदित।
१० यथाऽस्माभि **कोकणविजयपर्व्वणि** स्नात्वा चराचर गुरु भगवन्त
भवानिपति
११ समभ्यर्च्य्य ससारस्यासारता दृष्ट्वा। वाताभ्रविभ्रममिद
वसुधाधिपत्यमापातया
१२ त्रमधुरो विषयोपभोग । प्राणास्तृणाग्रजलबिंदुसमा नराणा
धर्म्म सखा

१३ परमहो परलोक यान ।३। भ्रमत्संसार चक्रधारा धारामिमांभिय प्राप्य ये म
१४ हसुस्तेषां पश्चात्ताप परं फलं ।४। इति जगतो विनश्वरं स्वरूपमाकलय्योपरि
१५ स्वहस्तो मीमोजदेवस्य ।
१६ लिखितग्रामात भूमिवर्तन हलकं मि १ स्वसीमापृण गाचर यूति पर्यत हिरण्या
१७ यामसमेत सभागभोग भोगपरिकर सर्व्वायाय समेतं ब्राह्मण भारद्वाज वामन
१८ सुताय वशिष्ठ सगोत्राय वासिमाम्यंदिन शाखायन प्रवराय श्चिछन्द्यस्थान विनिर्गतपूर्व्व
१९ याय मातापित्रोरात्मनश्च पुण्ययशोभिवृद्धये अदृष्ट फलमंगीकृत्य चन्द्राकार्ण्ण
२ वक्षिति समकालं यावत्परया भक्त्या शासनेनोदक पूर्व्व प्रतिपादितमिति मत्वा त
२१ न्निवासि जनपदैर्यथा दीयमान भागभोगकर हिरण्यादि क- माज्ञा श्रवणविधेय
२२ भूत्वी सर्व्वमस्मै समुपनतव्यमिति ॥ सामान्य चैतत्पुण्यफलं बुध्वास्मद्वंशजैरन्य
२३ रपि भावि भोक्तृभिरस्मत्प्रदत्त धर्म्मादायोऽयमनुमंतव्य । पालनीयश्च ॥ उक्तं च च—
२४ हुभिर्व्वसुधा दत्ता राजभिः सगरादिभिः यस्य यस्य यदा भूमिस्तस्य तस्य तदा फलं
२५ यानीह दत्तानि पुराणरेन्द्रै दा नानि धर्म्मार्थ यशस्कराणि । निर्म्माल्य वाति प्रतिमानि
२६ तानि को नाम साधुः पुनराददीत । ६ । अस्मत्कुलक्रममुदार मुदाहरद्भिरन्यैश्च दानमि
२७ दमभ्यनुमोदनीय । लक्ष्म्यास्तडित्सलिल बुद्बुद चंचलाया दानं फलं पर यशः परिपाल
२८ न च । ७ । सर्व्वानिताम्भाविन पार्थिवेन्द्रान्भूयो भूयो याचते रामचन्द्र
२९ सामान्योयं धर्म्मसेतुर्नृपाणां काले काले पालनीयो भवद्भिः । ८ ।
३ इति कमल दलाम्बुबिन्दुलोलां श्रियमनुचिन्त्य मनुष्य जीवितं च । सकलमिदमुदा

३१ द्दुत च वुध्वा नहि पुरुपै परकीर्त्तयो विलोप्या इति ।
सम्वत् १०७६ माघ शुदि ५ ।
३२ स्वयमाज्ञा । मगल महाश्री । स्वहस्तोय श्रीभोजदेवस्य

परमार अभिलेख

(जयसिंह की उदयपुर प्रशस्ति)

(वि० स० ११११२)

१ ओं (।।) जयति व्योमकेशोसौ यस्सर्गाय विभर्त्तिता । ऐन्दवी मि(शि) रसा लेखा जगद्बीजा
२ कुराकृति ।। तन्वन्तु (न्तु) व स्मराराते कल्याणमनिश जटा । कल्पान्त समयोद्दाम तडिद्व-
३ लयपिङ्गला ।। परम भट्टारकमहाराजाधिराज परमेश्वर **श्री वाक्पति**
४ **राजदेव** पादानुध्यात परम भट्टारकमहाराजाधिराज परमेश्वर श्री **सिन्धुदेव** पादानुध्यात
५ परम भट्टारक महाराजाधिराज परमेश्वर श्री **भोजदेव** पादानुध्यात परमभट्टारक
६ महाराजाधिराज परमेश्वर **श्री जयसिंहदेव** कुशली ।। पूर्णा पथक मडले म(क्तु) त्याग्राम
७ द्विचत्वारिंश दन्त पाति भीम ग्रामे समुपगतान्समस्त राज पुरुषान्वा(ब्रा)ह्म -णोत्तरान्प्र
८ ति निवासि पट्टकिल जनपदारीश्च समादिशत्यस्तु व सविदित ।। यथा श्रीमद्वा (द्धा) रा व
९ स्थितैरस्माभि स्नात्वा चराचरगुरू भगवन्त भवानीपति समभ्य- र्च्यर्य ममारस्थासारतादृष्ट्वा ।
१० वाताभ्र विभ्रममिद वसुधाधिपत्यमपात मात्र मवुरो विपयोपभोग । प्राणास्तृणा-
११ ग्र जलविन्दु समानाराणा धर्म्म सखा परमहो परलोकयाने ।। भ्रमत्ससार चक्राग्रधा-
१२ रा धारामिमा श्रिय । प्राप्य येन ददुस्तेषा पश्चात्ताप पर फल ।। इति जगतो विनश्वर
१३ स्वरूपमावलप्यो परिलिखित ग्रामोय स्व मीमा तृणगोचर यूतिपर्यन्त सहिरण्य

१४ मागभोग सोपरिकर सर्व्वादाय समेतस्य (स्व) श्री अमरेस्व (स्व) रे पट्टपाला बाह्यणस्य

१५ स्व हस्तोयं श्री जयसिंह देवस्य ॥

द्वितीय-ताप

१६ मोजनादिनिमित्तं मातापित्रोरात्मनश्च पुण्य यशोभिवृद्धयेऽदृष्ट फर्ल मंगी

१७ कृत्य चन्द्रार्कार्णवक्षिति समकालं यावत्परया भक्तया शास (स)न नोदक पूर्व्वं प्रतिपादित इति

१८ मत्वा तन्निवासि पट्टकिल जनपदपदादीपमान भागभोगकर हिरण्यादिकं

१९ देवब्राह्मणभुक्ति वर्ज्जमाज्ञा श्रवणविधेयर्भूत्वा सर्व्वमेभ्य समुपनतव्य ।

२ सामान्य चैतत्पुण्यफलं बुद्धास्मद्वंशजैरन्यैरपि भाविभोक्तृभि -रस्मत्प्रदत्तधर्म

२१ दायोय मनुमन्तव्य पालनीयश्च उक्तं च । बहुभिर्व्वसुधाभुक्ता राजभि सगरादिभि

२२ यस्य यस्य यदाभूमिस्तस्य तस्य तदाफलं ॥ पानीय (ह) दत्तानि पुरातनैं र्हाता (ना)

२३ नि धर्म्मार्थ यशस्कराणि । निर्म्मास्य वान्ति प्रतिमानि तानि कोनाम साधु पुनरावदीत ॥

२४ अस्मत्कुलक्रममुदार मुदाहरद्भिरन्यैश्च दानमिद मभ्यनुमोदनीय । लक्ष्म्यास्तडित्स—

२५ लिल बुद्बुद चंचलाया दानंफल पर यश परि पालनं च । सर्व्वानेतान्भाविनः पार्थिवेन्द्रान्भूयो भूयो

२६ याचते रामभद्र । सामान्योय धर्म्म सेतुर्नृपाणां काले काले पालनीयो भवद्भि ॥ इति कमलदलाम्बु बिन्दुलोला श्रियमनुचिन्त्य मनुष्य जी

२८ वितं च । सकलमिदमुदाहृतं च बुद्धा नहि पुरुष परकीर्तयो विलोप्या इति ॥

२९ संम्वत ११३२ आषाढ़ बदि ११ (।) स्वयमाज्ञा । मङ्गलमहाश्री । स्वहस्तोयं

३ श्री जय सिंहदेवस्य(॥)

चंदेलवंशी राजा धंग का खजुराहो लेख

१ ओं नमो भगवते वासुदेवाय ।
दधानानेका य किरि पुरुष सिंहोरगजुष
तदाकारोच्छेद्या तनुनमुर मुम्यानभनरनन् ।
जघान श्रीनुग्रान्जगति मपिरुादीनयतुय
मेवेकुण्ठ कण्ठध्वनि चकित नि शेष मसन ॥—(१)
पायामु र्व्वल्लिवच्चनव्यनिकरे देवन्यविमानय
नद्यो विस्मित देवदानवनुतास्त्रिम्स्रम्मिल्लेलोकी
२ हरे ।
यासु ब्रह्मवितीर्णभयगलिव्यपादार विन्दच्युन
वस्तेद्यापि जगत्रयैक जनक पुण्यसमूद्धी हर ॥
देव पातुम व पर कणभृति व्योम्नीव ताराचित (२)
दैत्यामिग्रणल्लाच्छने दिविमद मत्यज्य मर्वानपि ।
तस्मिनञ्जन शैल भित्ति विपुले वक्ष( ) स्थले यस्य ता
येतुर्मन्दरसङ्ग मभ्रम वल्ललक्ष्मी कटाक्षच्छटा ॥ (३)
गभीरो—
३ म्वुधय शशाक रुचिमान्भाम्व
त्पनापो ज्ज्वलो
धीरो धात्रिमहान्मही धरवरा कल्पद्रुमास्त्यागवान् ।
आकल्पादविकल्प निर्म्मल गुण ग्रामाभिराम प्रभु
मत्य सूतयदि क्वचित्पुनरमूत्तुल्योयशो वर्मण ॥ (५)
प्रधानादव्यक्तादभवदविकारादिह महान-
हक्यरस्तस्मादजनि जनितोपग्रहगण ।
ततस्तन्मात्राणि प्रभव
४ मलभन्त क्रमवशादथैतेभ्यो भूतान्यनुभुवनेमम्य प्रववृते ॥ (५)
इहाद्यो विधाना कत्रिरखिल कल्प व्युपरतौ-
परसाक्षीदेवस्त्रिभुवन विनिर्माण निपुण ।
स विश्वेषामीश( ) स्मितकमल कि ञ्जल्क वसति-
र्महिम्नास्वेनैव प्रथममथ वेधा प्रभुरभूत् ॥ (६)
तस्माद्विश्वसृज पुराण पुरुषादाम्नाय धाम्न कवे र्ये भूवन्मु-
५ नय पवित्र चरिता पूर्व्वे मरीच्यादय ।
तमात्रि सुषुवे निरन्तर तपस्तीव्र प्रभाय मुन-

ज्यानिर्घोषवपटपदे क्रमचरत्सरव्ध्यधोयाल्विजि ।
अश्रान्त समराध्वरे प्रतिहत क्रोधानलोद्दीपिते
वैरोदर्चिषिय पशूनिवकृती मन्त्रैर्जुहावद्विप ॥(१७)
श्रीहर्ष भूप मथ भूमि भृताम्वरिष्ठ
सोसूत कल्पतरुकल्प मन-
११
ल्पसत्व ।
अद्यापियस्य सुविकासियश प्रसून
गन्धाधिवास सुरभीणि दिगन्तराणि ॥ (१८)
यत्र श्रीश्चसरस्वती च सहिते नीति क्रमो विक्रम-
स्तेजा सत्त्वगुणोज्ज्वल परिणता क्षान्तिश्चनैसर्गिको
सन्तोषोवि जिगीषुता च विनयो मानश्चपुण्यात्मन-
स्तस्यानन्त गुणस्य विस्मय निधे किन्नाम वस्तुस्तुम ॥ (१९)
भीरुर्द्धर्मापराधेमधुरिपु-
१२
चरणाराधने य सतृष्ण
पापालपेनभिज्ञो निजगुणगणनाप्रक्रमेष्वप्रगल्भ ।
शून्य पैशुन्य वादे नृतवचन समुच्चारणे जातिमूक
सर्व्वत्रैव प्रभाव प्रथित गुणतया नाम (कस्तू) यतेसौ ॥ (२०)
सोनुरूपा सुरुपाङ्ग कञ्चुकाख्यामकुण्ठधी ।
सवर्णाम्विधिनोवाह चाहमानकुलोद्भवा ॥ (२१)
यस्यापतिव्रत तुलामधिरोढु मीशा-
१३ नारुन्धती गुरुतरामभि मानिनीति ।
पत्यु समीहित विधान परापिसाध्वी-
कार्श्यन्तथा परमगादति लज्जितेव ॥ (२२)
गौडक्रीडा लतासिस्तुलित खसवल **कोशल** कोश लाना
नश्यत्कस्मीर वीर शिथिलित मिथिल कालवन्मालवान ।
सीदत्सावद्यचेदि कुरूतरुषु मरुत्मज्वरो **गुर्जराणा**
तस्मात्तस्या स ज जे नृपकुल-
१४
तिलक श्री **यशो धर्मराज** ॥ (२३)
स दाता राधेय स च शुचि वचा पाण्डुतनय
स शूर पार्थोपि प्रथित महिमान किमपिते ।
व्यतीता किं ब्रूमो यदिपुनरिहस्यु स्वचरिते
ह्रियानश्रीकुर्य्युर्वदनमवलोक्यंममधुना ॥ (२४)
ग्रस्त भ्रातरित तग्रभूमृति नृणा यक्लेशाय शस्त्रग्रह ।

रा वाल्याद विलुप्त सत्यसगर्यरापाणि पीता विगे ।
अम्रान्तार्यवीतीर्णं पूर्णं विभवंत (घेप्निता) काश्चिगि-
द्दूरोत्सपं कथा कृतोन्य पुल्कैयं नाभुभि( )स्तूयते ॥ (३२)
निन्दामुं मि पुरुषान्तर मन्नमेन शान्निप्रजातु सतत भ्रमणक्रमेण
यस्यातिपौरुप निरस्त मनुष्य भावे लोको नमु-

२०

द्गत कीर्त्तिरनिन्दितंवा । (३३)
एकैवोवाह लोकेस्मिन्पुत्रजन्मोन्नत शिर ।
कन्छुका येन धीरेण देवकीव मधु द्विपा ॥ (३४)
शौर्यौ दार्य नयादिनिर्मल गुण ग्रामाभिराम यशो
यस्याशेष विशुद्ध नाथतिलकन्नायन्तिसिद्धस्त्रिय ।
तस्यस्तोत्रममिय मद्दंनरवे स्पष्टप्रकाशीकृत -
त्रैलोक्यस्यमहस्त्रमस्य महसो दीप प्रदानोपम ॥ (३५)
क्रोधोद्वृत्तान्तक भ्रू कुटिल-

२१

पटुरत्न (१ ण) श्चण्डको दण्ड यष्टि-
ज्या घात स्फार घोर ध्वनि चकित मन मभ्रमभ्रान्त दृक्षु ।
स्पष्ट नष्टेपु दूर क्वचिदपि रिपुपु क्षत्रतेजोम्बु राशे
—(यंस्योज न व्य) रमीन्द्रू वन) विजयिनश्चण्डदो दिण्डकण्डू ॥ (३६)
यो लक्ष वर्म नृपते शरदिन्दु कान्त,
मास्यातु मिच्छति यश प्रसर वचोभि ।
दीप प्रभा परिचयेन विमुग्ध बुद्धि
र्मध्यन्दिने दिवसनाथ मुदीक्षतेसौ ॥ (३७)

२२ यत्राक्राम दवक्र मानस वरि व्याज प्रयोगापत-
त्पृथ्वीकम्पन लब्ध लाघवमघच्छेदि पद वामन ।
लोकालोक शिर शत प्रतिहत ज्योतिर्विवस्वान्नप-
तस्य क्रामति तन्निशाकर महा श्री स्पर्द्धिशुभ्र यश ॥ (३८)
धीरो दिग्विजयेपु केलिसरसी स्तीव्र प्रताप दघ-
न्नि शेप द्विपद व्यथो भयतटी विन्यस्त सेनाभर ।
मज्जन्मत्त करीन्द्र पंकिल जला श्रीलक्षवर्मा—

२३

भिष-
श्चक्रे शक्रसम कलिन्दतनयो जह्नो सुता च क्रमात् ॥ (३९)
आस्थानेषु महीभुजा मुनिजनस्थाने सता सगमे
ग्रामे पामर मण्डलीषु वणिजा वीथी पथे सत्वरे ।

बम्म मण्मनस कमासु निसर्मे रम्यौ मसौ विस्मया
दिस्यं तद्गुम कीर्तनैक मुनरा सर्वत्र मर्वेम्मसा ॥ (४)
मस्यामने घरस्सगकसादि प्रसमे
की म्मनसिन हृदयस्थमरिभिया
२४ र्मा ।
सिन्दूर मूपम विमर्जित मास्म पप
मुसमुण्डहार ममर्य कुचमण्डलं च ॥ (४१)
तैनतम्मारवामी कर कमस मसधोमवामम्मपावि
भाविम्मु-भांपु र्मम भयपट पटलो रोत्स्विा भोम मु ।
स्यारावैस्तुगार क्षितिपर विवरसर्वि मर्ढिम्मुराया
वृष्टे मामासु मम तृविम मस(त) तमो भिस्मयन्ती समेता ॥ (४२)
कलाधाक्रोटमाम मुहुरिति तव की
२५ रराज प्रपेदे
साहिस्तस्मात माप ङिपतुरमममेनागु हेरम्ब पाकः ।
तरमूनोर्वमपालासमप हृदयते प्राप्य निम्मे प्रतिष्ठा
मकुण्ठ कुण्ठितारि क्षितिपर तिसकः श्रीमत्तोवर्मराज ॥ (४३)
श्रीमक्ष स्वमुज प्रसाधित मही निर्व्याज राज्यस्थिति-
स्तस्मावात महोदमेरि म मिमु मुमूर्वजनागमाहृत ।
युद्धे मस्यपरावितार्थ सुभट प्रस्तूयमानस्तुतिनि
२६ त्यं नम्रमहीपमौलि गलित स्वमसूमितांघ्रिद्वम ॥ (४४)
माकाकजगरमा च मामम नदी तीरस्थिते मास्वत
कालिन्दीसरितस्तापित इतोऽप्या वेविवेधाश्रम ।
भातस्मावपि विस्मयकनिकमाद्गोमाभिधानादिगरे
य धास्ति विविमायतोर्जितभुज म्यापार लीलाजिता ॥ (४५)
मस्यागविक्रम विवेककलाविलास
प्रज्ञा प्रताप विनय प्रभवस्वरिमाव ।
२७ मभेकश्री
मुमनसो मनसामकस्मा
दस्मावकाल कलिकाल विरामशंकी ॥ (४६)
धम्मानु शासनविदा पितृमात्म्यमस्त वेदन मामम कवि
स इमां प्रशस्ति ।
मस्यामलं कविमस कृतिम कथासु रोमाञ्च कञ्चुक
युत परिकीर्तयन्ति ॥ (४७)

सस्कृतभाषाविदुषा जयगुण पुत्रेण कौतुकाल्लिखिता ।
रुचिराक्षरा प्रशस्ति करणिक जद्धेन गौडेन ।। (४८)
पाताद्भू । २८
मिपति पृथ्वी त्रयीधर्म प्रवर्धता ।
नन्दन्तु गोद्विजन्मान प्रजा प्राप्नोतु निर्वृतिम् ।। (४९)
सम्वत्सर दशशतेषु एकादशाधिकेषु सम्वत् १०११
उत्कीर्ण्णा चेय रूपकार
। श्री विनायक पालदेवे पालयति
वसुधा वसुधानधि गता निर्द्दग्~ वैरिभि ।
नमो भगवते वासुदेवाय ।। ।। नम सवित्रे ।।

चेदि राजा कर्णदेव का बनारस ताम्र-पत्र लेख

(चेदि सम्वत् ७९३)

१ (।।) ओ नम सि(शि) वाय ।।
निर्गुण व्यापक नित्य सि(शि) व परमकारण(ण) ।
भावग्राह्य पर ज्योतिस्तस्मै सद्व्र(द्ब्र)ह्मणे नम ।।–(१)
यद्वेधस्थितमव्य(य) प-

२ रमपि जो(ज्यो)तिस्चि(श्चि)दसु(श) प्रभ ।
सूर्याख्यस्य च (भा)स्वर प्रभृतयो यस्य स्फुरत्यूर्म्मय (।)
सर्व्वज्ञान(म) यो व(ब)भूव भगवास्तस्मान्मनुर्म्मानसो
यस्मात्सृष्टिरभूदि (य) (गु)

३ णवती स्त्रीपुन्निमित्ता तत । (२)
देव श्रीकार्त्तवीर्यं क्षितिपतिरभवद्भूषण (ण) भूतधामा
हेलोत्क्षिप्ताद्रिवि(बि) म्यस्तुहिनगिरिसुतास्ले(श्ले)षसन्तोषितेस (श) म् (।)
दोर्द्दण्डा—

४ काण्डसेतुप्रतिगमितमहापुररेवाप्रवाह-
व्याधौतयज्ञपूजागुरुजनितरुष रावण यो ववन्ध ।।–(३)
यस्य भ्रूभ (ङ्ग)भीता ददति नृपतय किल(ष्ट)
मावे प्रतिप

५ आ कै(कै) लास(सा)त्सहेल हरवृषभसमुत्खातमृ (शृ) गाग्रभिसे ।

१४ कर्म्मा दिगिभकरनिभाजानुबा (वा) हुर्महात्मा
भूमेम (र्भ) र्त्ताव (व) भूव क्षतरिपुनृपतिर्व्वा (र्व्वा) लहर्ष सु (ज) न्मा।
य सहृत्तानुरागानुकृतकृतय (यु) गाचारमासृ (श्री) त्य जात-
स्त्य-

१५ क्तान्योन्योपमर्द्द स्थिरवमतिरगास्तारिवर्गान्नि (स्त्रि) वर्ग्ग । (१३)
धन्योय दाम (श) रथिरेव रिपुर्द्दसा (शा) स्यो यस्याभवक्तिमपर समरो-
त्सवाय।

भ्रूभङ्ग (भ) ग्नमकलद्विषतो
१६ विगस्मानात्मानमाहवरसादिति य सुसोच ।। (१४)
सत्यव्रतैकनिरतस्य युधिष्ठिरस्य तस्यानुय (ज) प्रथितवा (वा) हुव (व)
-लोव (व्र) भूव ।
दुर्योधनारिव (व) लवि (वी) खर्धैकध-
न्वी पार्थोपर कलियुगे युवराजदेव ।। (१५)

१७ मृ (भू) भारक्षमदृम्स (क्शु) तिप्र (ण) यिनीमालम्व (म्ब) मानस्तन (नु)
कुर्व्वाण समरेपि नाग (क) पथगानागच्छतो विद्धि (ष) ।।
विस्या-

१८ ता भुवि भूरिमार्ग्गगमनामुच्चैर्द्दधद्वाहिनी
य साक्षत्परमेवस्व (श्व) र ( ) समभवत्सम्यक्सि (क्शि) वाराधनात् ।।
(१६)

तस्माद्भूल्लक्ष्मणराजदेव पुण्यौ (ण्यै) र्ज्जनाना (ना)
जनितव्यवस्थ ।

१९ आ (अ) वाप्य य धर्म्ममिव क्षितीस (श) चिराय लेभे जनता सुखानि ।। (१७)
य सत्यस्य निधि स्यि (श्रि) या च सरणि साम्ना च धाम्ना (च) यो
यो दाता च दयालु-
रेव च पद कीर्त्तेस्व (श्च) य ।

२० तस्यासीत्परमेप दूषणकण ( ) कारुन्य (ण्य) पुण्यात्मन
पायापायाविवेचन न यदभूत्सर्व्वस्वदानेष्वपि ।। (१८)
श्रीस (श) ङ्करगणदेव-

२१ स्ततोभवत्सकलभुवनतलनिलक ।
सा (शा) सति वसुधा यस्मिन्पलायित (त) क्वापि कलिनापि ।। (१९)
असौ निस्तृसता यत्र वक्रत्व पलितागमे (।)
रय चक्षपु चारि-

३१ त्सृजन्नर्थानर्थिसार्थेष्वचिन्तितान् ।
कोपे(प्ये)प भूपण(ण) भूमेर्जङ्गम कल्म(ल्प) पादप ॥ (३०)
स(श) क्रिन्नर्म (र्य) कने (नि) लयस्य गुणाकरस्य धम्मात्मन
स्तुतिपद किमिहास्ति कि (किं) चित् ।
३२ आसा(शा)स्यते परमिद क्वतिभि मदे(दै) व राजन्वती वसुमती भवते
(तै) वभृमात् । (३१)
तवे (दे) व गुणगणालकृत-
३३ स(श)रीर (स्वासा)ग समावासित श्रीमद्विजयकय त्परमभट्टारकमहाराजा-
धिराज परमेस्व(श्व) र श्रीवाम (दे) वपदानुध्यान (त) परमभट्टा
३४ रक महाराजाधिराजपरमेस्वर (श्व)र परममाहेस्व (श्व)र तृ (त्रि)
कलिंग्या (गा) विपति श्री-
मत्कर्णदेव( ) कुस (श) ली महादेवी महाराजपु(त्र) महाम-
३५ त्रि(णो) महामात्य महासन्धिविग्रहिक महाधर्म्माविकरणिक महाक्षपटलिक
महाकरणिक स(म) हाप्रतीहारो महासामन्तो ।
३६ महाप्रमातारो महास्व (श्व) माधनिको महा (भा) ण्डागारिको महाध्यक्ष
एतानन्यास्च (श्च)
कीर्त्तिताकीर्त्तितास्च यथार्ह मानयति वो(बो) धयति समाज्ञापयति विदित
३७ म(स्तु) भवता (ता) यथा (हपाथा) कासि (भूम्य) न्त(र्ग) त(सु)
सिग्राम साव्र(म्र) मधूक
सगर्त्तस्थलजजोषर सर्व्वाकिरण (नि) निभृतिसमुत्प
३८ त्तिसमेतस्च(श्च) तुराघ(घा)ट सीमापर्यन्त । वेसालग्रामविनिर्गताय
कोसिकगोत्रय ।
ओदलदेवरायविस्वामित्र त्रि-
३९ प्रवराय वाजस ेय सा (शा) खाय । महाप्रनत्ते वा (म) ननत्ते नारायण-
पुत्राय पण्डित श्रीत्रि-
स्व(श्व)रुपाय । इहैव पितु श्री
४० मद्गाङ्गेयदेवस्य सवत्सरे स्त्राद्धे फाल्गुन व(व) हुलपञ्चद्वितीयाया स(श)
नैस्च (श्च)
रवासरे वेण्यास्नात्वा भगवत देव देव त्रिलोचन-
४१ मस(श) नस (स) भार प्रकिल्पतपचोपच(चा)र(प्र) पचेन परया भक्त्या
समभ्यर्न्च्यास-
मस्य (श्च) द्ध (द्ध) या स्या (श्चा) द्ध विधायोभयभोगेन सासत्वेन
यचप्रदत्त ।

पुत्र पुरूरवनमोरगमाप मू-

नुर्दैवस्य तप्नजलराशि(शि) रमायनस्त्र ।

आसीदनन्यसममाग्यशतोपगाग्या गम्योर्व्वशी (शी) च नकुत्रमिहोर्व्वरा च॥२

आ (श्रा) न्वये किल शताधिकसप्तिमेयूणोपरुद्धयमुना-

वनविचित्रकीर्त्ति ॥

४ मप्ताब्धि(ब्धि) रत्नरम् (दा) नाभरणाभिरामबिम्ब (श्व) भ(रा) सु(शु)

भरतो व(ब)भूव ॥ (४)

हेलागृहीतपुनरुक्ततसमस्तम(श) गोये जयत्यधिकमस्य स कार्त्तवीर्य ॥

५ अत्रैव हैहयनृपान्वभपूर्व्वपुसि राजेति नाम म(श)शलक्ष्मणि चक्षमे य ॥(५)

स हिमाचल इव कलचुरिवस (श) मसूत क्षमाभृता भर्ता ।

मुक्तामाणिभिरिवामलवृत्तै पूत महीपतिभि ॥ (६)

६ तत्रान्वये नयवता प्रवरो नरेन्द्र पौरन्दरीमिव पुरी त्रिपुरी पुनान ॥

आसीन्मदान्धनृपगन्धगजाधि (राज) निर्माणकेसरियुवा युवराजदेव ॥ (७)

सिहासने नृप-

७ तिसिहमपुण्य सूनुमारुरुपन्नवनिभर्त्तुरमात्यमुख्या ॥

कोकल्लमर्ण्णावचतुष्टयवीचिसघसघट्टरुद्धचतुरङ्गचमूप्रचार ॥ (८)

इन्दुप्रभा निदति हारगुच्छ जुगुप्सते

८ चदनामक्षिपन्ती (।)

यत्र प्रभौ दूरतर प्रभाते वियोगिनीव प्रतिभाति कीर्त्ति ॥ (९)

मरकतमणिपट्ट प्रौढवक्षा स्मिताक्षो नगरपरिधदैर्घ्यी(र्घ्यं) लघय (न्दो)

र्द्वयेन ।

(शिर) सि

९ कुलिस(श) पातो वैरिणा वीरलक्ष्मीपतिरभवदपत्य यस्य गाङ्गेयदेव ॥ (१०)

सवीरसिहासनमौलिर (त्न) स विक्रमादित्य इति प्रसिद्ध ।

य(स्माद) कस्मादप (वर्ग ९) –

१० मिच्छन्नकु(च्छ) ल( ) (कु स्वजि ?) ता व(ब) भार (११)

प्राप्ते प्रयागवटमूलनिवेस (श) व (ब) न्धौ सार्द्धं शतेन गृहिणीभिरमुत्र

मुक्ति ।

पत्रोऽस्य खड्गदलि(तारि) करीन्द्रकुम्भमुक्ता फलै

(१२)

कुर्व्वन्मही ब्रा(ब्रा) ह्मणासा-

दरिक्षयनिव (व)र्हण (।)

२१ शा(मा) र्द्धं परसु(शु) रामेण य स्पर्द्धामधिरोहति ॥ (२४)

चाहमान नरेश विग्रहराज का अभिलेख

(विक्रम सम्वत् १०३०)

१ (थ) ॥

सर्व्वविघ्नशम (न सुरार्च्चित) पूर्व्वमेव शिव (भो) स्तनूद्भवम् ।

भुक्तिमुक्तिपरमार्थसिद्धिद त नमामि वर (द) ᴗ ᴗ ॥ (१)

२ (का) कुलितमानसै ।

स्तूयमानस्तु सद्देवै पातु वस्त्रिपुरातक ॥ (२)

पादन्यासावनम्रा नमति वसुमतो शेपभोगावलग्ना

(वा (वा)) हूत्क्षेपै स((म ?)— ᴗ ᴗ ᴗ ᴗ ᴗ ᴗ

— — र्क्कचन्द्रै ।

३ भिन्नावस्थ समस्त भवति हि भुवन यस्य नृत्ते प्रवृत्ते

स श्रीहर्षाभिधानो जयति पशुपतिर्द्दत्तविश्वानुकप ॥ (३)

सव्ये शल त्रिशिखमपरे दोष्णि (भि) न्नाक (पाल)

भूषा— — — — ᴗ ᴗ ᴗ

४ (भु) जग कठिका नीलकठे ।

नेदृग्वेषस्त्रिनयन मया क्वापि दृष्टो विचित्र

इत्थ गौर्या प्रहसितहर सस्मित पातु युष्मान् ॥ (४)

वेगाद्धुतार्यमादिग्रहगगनतल व्यश्नुवाना जलौघै-

र्न्यक्कुर्व्वाणा स(मु)(द्रान्)

५ क्षय (व) लितजलानूर्म्मिमालासहस्त्रै । – –

देवादभ्यर्थित व शशधरधवला स्वङ्र्घुनी चद्रमौले-

मौंलौ लीला वहन्ती स्फूटविकटजटाव(व)न्धने चीरिकाया ॥ (५)

चचच्चद्रार्क्कतार भुवनगगनदीद्वी(प) मिं (धु)-

६ -(प्र) पच

विश्व देवासराहिप्रथमुनिवर्ग्यक्षमर्त्यै सनाथम् ।

यस्यैच्छाशक्तिमायायसवपि सकलं जायते लीयते च
सोऽस्माहो हर्षदेवो भुवनविरचनासूत्र धारोप्रमय ॥ (६)
भूतं वाचामिदमथबिपुरमुररिपु
(श्री) तद्दर्प सहर्षं
७ रिवादेदेवपूर्वे भवतमुनिततिभि पूज्यमानोनोत्र सके ।
मौभूभाज्यापि हर्षो भिरिशिखरमुखोर्मेरस्तानुमहाय
सो स्ताद्वो विगस्यो त्रिगुणितमबमत्मथमौलि शिवाय ॥ (७)
निर्यसेवा (च)
८ (मा) सन्नानमुदहनवधि यजोपसंभाग्सत्वं (त्रं)
प्रान्तम्मासावसौवुमव (व) हलमहाकुमकूम्नामिवाक्षम् ।
संरमारंमभीमस्वनमसधमरोच्छेदि यस्याधसंके
वृष्टा देव (स्व) स्तं त्रिमिय (म) समये संहृतिर्ब्बो (र्वी) मुदे (व) ॥ (८)
९ देव पुरयपध्यास्ते ममभंकयमुच्चक ।
हर्षस्याति स हर्षाख्यो गिरिरेष पुनातु व ॥ (९)
धूरस्थर्द स्फोर्ड ।
यांव भो तिग्मं (रांम) प्रवहति स सुमा भवनौघानलक्ष्मी
सप्रलस्वर्ग्यगंधामलविभिवस्वो नैव — —
१ (स्व ?) यात्र ।
यस्यां यत्ते तथापि स्थिममविथमिनौमेप ह्लोत्थितीयां
साक्षाच्छंमूर्यास्ते तथपि हि परमं कारणं रम्यतायाः ॥ (१)
अष्टमूर्तिर्यमध्यास्ते विश्वाप्यकविभु स्वयम् ।
महिमा भूधरस्यास्य परमः कोपि — ⏑ ⏑ ॥ (११)
११ (एत) त्सर्वसिद्धकातिप्रबरतममहामण्डपामोवमर्द
प्रोन्माथामाबमाकाविरचितविकटापाण्डुपुणामिरामम् ।
मरौ शृंगोपयान् सुघटितवृषमत्तोरणद्वारम्यं
मानामगोगमुक्त जयति भगवतो हर्षदेवस्य (ह) —
(म्यम)— (१२)
१२ आद श्रीमुपपाल्याप्रथितनरसतिस्ववाहमानाख्ययोभूत्
श्रीमभमावा (वा?) सौवप्रबरनुपसतमस्य (स्य) वीरप्रसिद्धः ।
यस्य श्रीहर्षदेवे बरकनकमयी श्रीमती कीर्तिमूर्ति-
स्कारैवापि स्थिरत्वा प्रतपति परमे—
⏑ — — ⏑ — (ना?) ॥ (१३)

१३ पुत्र श्रीचन्द्रराजोभवदमलयशास्तस्य तीव्रप्रताप
सूनुस्तस्याथ भूप प्रथम इव पुनर्गूवकाख्य प्रतापो ।
तस्माच्छीचदनोभूत्क्षितिपतिभयदस्तोमरेश सदर्प्पं-
हत्वा रुद्रेनभूप समर (भुवि)
(व) लाद्ये (न लब्धा) जयश्री ॥ (१४)

१४ तत परमतेजस्वी सदा समरजित्वर ।
श्रीमान्वाक्यपतिराजाख्यो महाराजोभवत्सुत ॥ (१५)
येनादैन्य स्वसैन्य कथमपि दधता वाजिवल्गा मुमुक्षु
प्रागेव श्रासितेभ सरसि क(रि) रटड्डिडडिमैर्डि
(जे) ।

१५ वन्धक्ष्माभर्त्तुराज्ञा समदमभि (व) हन्नागतोनतपार्श्वं-
क्ष्मापालस्तत्रपालो दिशि दिशि गमितो ह्लोविपण्ण प्रसण्ण (न्न) ॥ (१६)
शूरस्येद ।
लोकैर्यो हि महीतले ननु हिरश्चद्रोपमो गोयते
त्यागैश्व (यं) जयेषु की (र्त्ति)-
(र) मला धर्म्मैश्च यस्योज्व (ज्ज्व) ल ।

१६ येनादायि हराय मदिरकते भक्त्या प्रभूत वसु
श्रीमद्वाक्पतिराजसूनुरसम श्रीसिंहराजोभवत् ॥ (१७)
हैममारोपित येन शिवस्य भवनो परि ।

१७ – – ा तोमरनायक सलवण सैन्याधि पत्योद्घत
युद्धे येन नरेश्वरा प्रतिदिश निर्न्ना (र्ण्णा) शिता जिष्णुना ।
कारावेश्मनि भूरयश्च विघृतास्तावद्वि यावद्गृहे
तन्मुक्तयार्थमुपागतो रघुकुले भूचक्रवर्त्ती स्वयम् ॥ (१९)
श्रीमा–

१८ (न्वि) **ग्रहराजोभू**त्तत्सुतो वासवोपम ।
वशलक्ष्मीज्जयश्रीश्च येनैते विधुरोद्धृते ॥ (२०)
श्रीसिंहराजरहिता किल चिंतयती भीतेव सप्रति विभुर्ननु को ममेति ।
येनात्मवा (बा) हुयुगले चिरसन्निवास सधीरितेति ददता निज-
(रा) ज्यलक्ष्मी ॥ (२१)

१९ येन दुष्टदमनेन सर्व्वत साधिताखिलमही स्वावा (बा) हुभि ।
लीलयैव वशवर्त्तिनी कृता किंकरीव निजपादयोस्तले ॥ (२२)
यस्य चारु चरित सना सदा शृण्वता जगति कीर्त्तित जैन ।

२६ — — —

नागाध्य गिरिचिदरिव स्फटमिनि तपनो नि स्पृहाणा यतीनाम् ॥ (३४)
आमीत्रैष्ठिकम्शो यो दीप्तगानुगतश्रन ।
तो(ग्र) वेगतपोजानपुण्यापुण्यगलक्षग ॥ (३५)
सदा शिवगगाका न्तन्येश्वरम्ममशुते ।
शावद्योतोभवन्निप्य नदीपिनगु

२७ (नक) म ॥ (३६)

गुरोराज्ञामय प्राप्य प्रतिष्ठागा शिवाल्यम् ।
ययाप्रारब्ध(न्ध) कार्याणामगीकृतभरोभवत् ॥ (३७)
पुरस्तात्पर्व्वतस्यागम्यितय येन कारितम् ।
सत्कूपो वाटिका दिव्या गाप्रपा घटितोपलै ॥ (३८)
सदैव वह्मानेन कूपेन स्वादुवारिणा ।
वाटिकामेच-

२८ — — — — — — प्रपाभरणन्तया ॥ (३९)

सत्पुष्पैरर्च्चन शम्भो पय पान गवामपि ।
कार्यद्वयमिद सार दर्शिन पुण्यकांक्षिणाम् ॥ (४०)
दिगव (व)र जटा भस्म तल्प च विपुल मही ।
भिक्षा वृत्ति कर पात्र यस्यैतानि परिग्रह ॥ (४१)
शिवभवनपु-

२९ — — ‿ (पा ?)र यदासीत्तदखिलमुपलोघै पूरयित्वा गभीरम् ।
समतलसुखगम्य प्रागण कात ममृणतरशिलाभि कारित व(व)धयित्वा ॥ (४२)
विश्वकर्म्मेव सर्व्वज्ञो वास्तुविद्या (म)-
— ‿ — (॥) – (४३)

- (ये) न निर्म्मितमिद मनोहर शकरस्य भवन समडपम्
(स)र्व्वदेवमयचारुतोरण स्वर्गखडमिव वेधसा स्वयम् ॥ (४४)
गगाधरवरभवने करणिकथीरुकसुतेन भक्तेन ।
अक्रियतेय सुगमा प्रशस्तिरिह धीरनागेन ॥ (४५)
यावच्छभो ‿ —

३१ — ‿ ‿ नसुरनदीचन्द्रलेखापतित्व
यावल्लक्ष्मीर्मुरारेरुसि विलसति द्योतते कौस्तुभ च ।

तथा नमस्त श्रीमन्नट (दे) त्रा शाकम्भरी न्वणकूटा प्रति विशोपकमेक दत्त । तथोत्तराम-

घोषहेआसिराना (न) — — — —

३९ (प्र)घोटक प्रति द्रम्म एको दत्त । (।।) पुण्यात्मभिर्दत्तानि देवभुज्यमानेक्षे-
त्राणि यथा ।

म(द्रा) पुरिराया पि(प्प) लमालिकाक्षेत्र निम्ब (म्ब)उिका (ग्रा)मे दर्भ-
टिकाक्षेत्र मरगन्जिकाया(ग्रा) टक्षे(क्ष) (त)र्पे) लाटक्षेत्र— — — —

४० — —(फ) लावणपद्रे गेम्भपाक्षेत्र तथाग्रेव हिहन्निकान (दि) सोमके
वृद्धलमिति ।।

सर्वानेतान्भाविनो भूमिपालान्भूयो भूयो याचने रामभद्र ।
सामान्योय धर्म सेतुर्नृपाणा काले काले पालनीया भवद्भि ((।।)) (४९)

चाहमान वंशी राजा विग्रहराज (वीसलदेवोपनामकस्य) का दिल्ली-स्तम्भ लेख

(सम्वत १२२०)

ओ ।। सवत् १२२० वैशाख शुदि १५ ।।

शाकम्भरी भूपति श्री मदावेल्ल देवात्मज श्रीमद्वीसल देवस्य ।।

।। ओ अम्भो नाम रिपुप्रियानयनयो प्रत्यर्थिदन्तान्तरे
प्रत्यक्षाणि तृणानि, वैभवमिलत्काष्ठ यशस्तावकम् ।
मार्गो लोकविरुद्ध एव विजन शून्य मनो विद्विषाम्
श्रीमद्विग्रहराजदेव ! भवत प्राप्ते प्रयाणोत्सवे ।। १ ।।

लीला मन्दिर सोद रेषु भवतु स्वान्तेषु वाम भ्रुवाम्
शत्रूणा तु न विग्रहक्षितिपते न्याय्योऽत्र वामस्त व।
शङ्का वा पुरुषोत्तमस्य भवतो नास्त्येव वारा निधे-
निर्मथ्यापहृतश्रिय किम भवान् क्रोडे न निद्रापति ।। २ ।।

ओ ॥ अविन्ध्यादाहिमाद्र न्विरचित विजयस्तीर्थयात्रा प्रसङ्गा—
दुद्ग्रीवेषु प्रहर्ता नृपतिषु विनमत्कन्धरेषु प्रसन्न ।
आर्यावर्त्तं यथार्थं पुनरपि कृतवान्म्लेच्छ विच्छेदनाभि
देवं शाकम्भरीन्द्रो जगति विजयते वीसलक्षोणिपाल ॥ १ ॥
ब्रूत (? ब्रूते) संप्रतिबाहुमान तिलक शाकम्भरी भूपति
श्रीमद्विग्रहराज एष विजयी सन्तान जानात्मजान् ।
अस्माभि करदं व्यधायि हिमवद्विन्ध्यान्तरालं भुव
शेषस्वीकरणाय मास्तु भवतामुद्योगशून्य मन ॥ ४ ॥
सम्वत् श्रीवि (१ क्र) माादित्ये १२२ वैशाख शुदि १५ गुरु ॥ लिखित
मिदं राजा ऽऽ देशात् ज्योतिषिक श्री तिलकराजप्रत्यक्षं गौडान्वयकायस्थमाहवपुत्र
श्री पतिना । अत्र समये महामन्त्री राजपुत्र श्री सल्लक्षण पालः ॥

कवि गंगधर का गोविन्दपुर-अभिलेख

(शक सम्वत १ ५९)

१ ओं (॥) ओं नमः सरस्वत्यै ॥
एकश्चोभवताभगीरथमरात् प्राप्ते तथा गङ्गया
मन्यत्र श्रिममुद्ग्रहत्यतिलघु तङ्गे गुणङ्करे ।
यद्य सम्भुवसम्भृतस्तनतटीसङ्गोपलम्पत्सुखं
नित्रा (भो) ⏑ —
२ द (भो) यादु यमिताभारिसध्य विश्वम्भर ॥ (१)
देवोसोमामिवोसोमभिरमतश्चो पवित्रासेव पुष्पः
शाकद्वीपपयस्य पुष्पाम्ब (म्बु) निधिवलयिती तत्र विप्रे मगाख्या ।
वङ्कुस्तत्र द्विजानां भमिलिखितलनोर्ष्या (म्मी) स्वत स्वाङ्ग— — —
३ धाम्नो यामाभिनाय स्वयमिह् महितास्ते यगत्या वसन्ति ॥ (२)
तेषा स प्रथम समस्तनियमज्ञानारमभिधापर्द
नृ (नृ) तया व्यापृत एव नित्यमयनव्यापारपारीणया ।
मायात्रयमुनिर्व (र्व) मूत्र भवतोद्वाराभिपाती तप
— —
४ मस्य मुखे जगति तमहाप्रभवलस्तोपम ॥ (३)
सोमस्थ तस्य सत्यायममृतमृतपूर्वैस्तपोभिरव सुप्रसर्वैर्यशोभि ।
मनापरे प (र) मतत्पमितदोष्णवर्जितयावदमनात्म पतमो द्विजाना ॥ (४)
कालेना ⏑ ⏑ — — —

५ विलुप्लविलसद्विद्याधने धन्विना
वीराणा धुरि चक्रपाणिरभवद्दामोदरस्यात्मज ।
यो वाल्मीकिरिवावतारितगिराधार स विश्वस्थि (ते) –
र्व्वङ्गस्य ⏑ ⏑ — चतुर्मुख इव ख्यातो गुणिग्रामणी ॥ (५)
– अतिस्थिरा पृथु —

६ त्कीर्त्तिर्ग्गरि (भास्य) द ।
दिक्चक्र यदि नारूढा तद्भ्रमत्यन्यथा कथ ॥ (६)
जातौ वासवकेशवाविव सुतौ तस्मात्प्रसन्नामरौ
मारीचादिव कस्य (श्य) पाद्दुपचिता धत्तुं कुले सत्क्रिया ।
ज्यायास्तत्र मनोरथो दशरथस्तस्यानुजन्मा (ययो)–
७ विद्या (चा) रशुचित्वशीलविलसत्कीर्त्या पवित्र जगत् ॥ (७)
मुख्यत्वेन सता यशोभिरखिलोहीतै स्वकर्ण्णश्रुतै
सन्मित्रोपगमेन तैरतिभृतैर्भोगैरयलोप (गै) ।
भ्रात्रोरत्न यत्रोर्नरेन्द्रनिहितै सप्रेमभि प्रस्य (श्र) यै-
८ श्यामनि द्विषदाननानि विदधे शुभ्रोप्यदभ्रो गुणा ॥ (८)
तौ भ्रातरावतितरा सहजोदितेन प्रेम्णा परस्परमनोहरणाभिरामौ ।
सौहार्दहृद्यचरितेषु ययोरधीर कालोपि नस्खलितमाप कलि कदाचिद् ॥ (९)
९ आनीतौ निजराज्यमुज्ज्वलयितु यत्नात् प्रतीतात्मना
सम्वासाय नरेश्वरेण शिविरी श्रीवर्ण्णमानेन तौ ।
तस्याज्ञामवलम्वा (म्व्या) तत्कुलमिद ताम्यामपि प्रापित
काञ्चित् कोटिमनुत्तरा गुणभुव कीर्त्तेर्विभूतेरपि ॥ (१०)
आ

१० सि (न्वोर्ग्ग) णनीयगौरवगुणेनैकेन (से) व्येनयो-
स्तस्मिन्मानपतेर्म्महीयसि गृहे प्रापि प्रतीहारता ।
अन्येनापि पुनर्म्मह (ल्ल) कधुरा व्यस्तेति विस्तारिणा-
वेतौ सत्त्वनयैर्व्व (र्व्वे) भूवतुरिह प्रक्षैकविज्ञानिकौ ॥ (११)
गत्वा श्री-

११ पुरुषोत्तम (भग) वयोद्द्य प्रतिष्ठापद
पारावारतटे पटीयसि लसच्चन्द्रग्रहातेहसि ।
सर्वस्वम्वितताार तर्प्पितपितृस्तोम करोल्लासितै-
स्तोयैर्य पिहितस्य पर्वणि विधो माहात्म्यमाप क्षण ॥ (१२)
सात (त्य)-

सुप्रीतयोर्भ (र्भ) गवतो मम नामधेयमाधेयमस्य पुन-
\ रित्यनुशासनेन ।

१९ स्वाराधितस्मरहरस्वरमानुरूपो रूपानुमेयसुनयस्तनयोजनिष्ट ।। (२०)
गङ्गाधराख्य स ततो जितात्मा य शैशवाद्विश्वजनीनवृत्त ।
विवर्द्धमान परलोकभीत्या सदात्मनीन नयमातता
न ।। (२१)

२० अभवदनुजो महीधर इति पुत्रौ श्रीमनोरथादुदितौ ।
आशीर्वराभिनन्दी हरिहरपुरुषोत्तमौ दशरथात्तु ।। (२२)
सत्कल्पप्रवणा श्रुतिप्रणयि (न) शिक्षाभिरुद्भासिता
सज्ज्योतिर्गतयो निरुक्तविशदाश्छन्दोवि-
धौ साधव ।

२१ (ख्या) ता व्याकरणक्रमेण विदुषाम (त्युच्च) धीशील (ना) -
द्वेदाङ्गप्रतिमा षडेव भुवने ते वि (वि) भ्राति भ्रातर ।। (२३)
तदन्तरे माननरेन्द्रचन्द्रामा स रुद्रमानोजनि येन भूभुजा ।
स्वमेदिनीमण्डलमादिकोलवद्बलादमित्रा
म्बु (म्बु) निधे समुद्धृत ।। (२४)

२२ पाणि (द्दनिचण प्रभौघ) लह (री) वक्तञ्च यस्य स्वय
मार्यादास्थितिमान्स एव जगता जीवातवश्चेत्कृता ।
तत्कि कल्पलताद्यहीन्द्रकमठौ सा चित्रभानुद्भमी
पद्येन्द्र निधयोम्भसामिति विधेर्द्धिक् प्रक्रि
यागौरव ।। (२५)

२३ सूक्ष्म दिक्करिदन्तकोटिमटिलु क्रा (न्तौ)? गि (री) णा ल (घु)
व्याप्तु व्योम पृथुस्थिताविह दिशि प्रोत वशि भ्रान्तिषु ।
क्षीराब्धी (न्दु) सुधादिप् प्रभवति ब्र (ब्र) ह्माण्डगर्भा (र्भा) द्ब (हि)
र्निर्यात्यस्ति यथेत्य (मी) श्वरगुणैरित्युद्भुत यद्यश ।। (२६)

२४ युद्धे व (ब) द्धोत्सवरिपुभटश्रेणि (सिद्ध) सदा यो
व (ब) न्वु शुद्धो विपदि विसरत्कार्यानिसमीमा ।
श्रेयान् सभ्य सदसि विशदे विश्वविश्वासपात्र
पातु मित्र हृदयमितरत्तस्य गङ्गाधरो ऽभूत् ।। (२७)
आचाराभ-

२५ रण सुभाषितत्वण सन्नीतिरत्नापण
प्रागल्भीरमण प्रशान्तकरण कारुण्यपारायण ।
य सौजन्यनिधि स्थिनावनुपधि सख्यस्य मुख्यो विद्वि-

शुभ्राम्ब(म्ब)रपरीधान जगत्तेनात कारित ॥ (३६)
आकाश पवन कृशानुरुदक धात्रीति लोकत्र-
यी-
३३ मूर्त्या ब्र(ब्र)ह्म विवर्त्तमानमयते यावद्विचित्राङ्गतिम् ।
नेत्रश्रोयमन प्रसादमदने तावत् मतामादरा-
दुन्निद्रा मुदमान्तरेषु कुरुता कीर्त्तिप्रशस्ती इगे ॥ (३७)
क्व शक्तिव्युत्पत्तिव्यतिकरविरोधेन सुलभा
कवी-
३४ ना पन्थानस्तदिह ननु केषामनुगम ।
स्वपूर्त्ते त्वेतस्मिन् सुजनजनितोनुग्रहगुण
प्रशस्तौ प्रागस्त्य वितरति स गङ्गावरगिराम् ॥ (३८)
नन्देन्द्रियाभ्रेन्दुसमे शकाब्दे (ब्दे) रुद्रात्मजश्चोद्धरणस्य नप्ता ।
इमा शि-
३५ लाशिल्पिवर प्रशस्ति स शूलपाणि स्वयमुच्चखान ॥ (३९)
शाक १०५९ (॥)

मालव नरेश का नागपुर अभिलेख

(विक्रम सम्वत ११६१)

१ ओ(॥×) ओ नमो भारत्वै ॥
प्रसादौदार्यमाधुर्य समाधि समतादय ।
युवयोर्ये गुणा सन्ति वाग्देव्यौ तेपि सन्तु न ॥ (१)
एक एव भुवन त्रये गि स श्री पतिर्भवतु वो विभूतये ।
यस्य मध्यमपदश्रितोप्यमी भास्करप्रभृतयश्च का सति ॥ (२)
जाति कृत्तञ्च वि (भाणा) गु-
२ णालकार चारव ।
सरसाश्च प्रसीदन्तु सूक्तय सूरयश्च न ॥ (३)
दुर्हरारिपुरभङ्ग भाषणो भूरिभूति मविशे (षभूषण ।
(रा) जराज कृतसत्क्रिय क्रि याइह्निवशसदृश शिव शिव ॥ (४)
जाता महार्णवोत्पन्ने ब्र(ब्र) ह्माण्डशुक्ति सपुटे ।
महेश (स्यार्च्चि)—
३ ता भुक्ता जयन्त्यम्भो जयोनय ॥ (५)
वैराग्य च सरागता च नृशिरोमाला च माल्यानि च
व्यघ्र नेक पचर्म्मणी च वरुने चा हीश्च हारादि च ।

९ वराजरामराजितो न लोद्भव सभारत

ग्रहेन्द्र चन्द्र योरिव व्यजायतायमन्वयम ॥×॥ (१५)

वशेस्मि न्वैरिमिह् क्षितिपतिरभवड्भूरि भूति प्रभाव-

प्रागल्भ्योदार्यशौर्य प्रचयपरिचय प्राज्यसौराज्य मिद्ध ।

नम्रक्ष्मापालयाल स्थल दलित ल्लुत कान्तकोटीर-

१० कोटि-

त्रुट्यन्माणिक्य चक्रम्य पुटित मणि मलाद पीठोप कण्ठ ॥ (१६)

सर्व्वाशा विजय प्रयाण समये यस्येन्द्र नीलप्रभै-

मर्मापूरात वारणै शुशुभिरे नष्टा वकाशा दिग-

सर्पन्मत्तकरीन्द्र चक्र चरण प्राग्भारदीर्ण्णस्थिरा

रन्ध्रोद्भूतविपन्न (ण्ण) शेष मविष

११ श्वासापरुद्धा इव ॥ (१७)

पाताले वड वामुखानलमिपात्पृथ्वीतले च स्फुर-

त्सौवर्ण्णा चल कैतवाद्वयति च ब्र(ब्र)ह्माण्ड खण्डच्छलात् ।

(च) न्चत्काञ्च न चक्रवाल वलय व्याजच्च दिङमण्डले

यस्याद्यापि समुल्लसत्य विचलीभूत प्रतापानल ॥ (१८)

स्वर्ल्लोकेपु च विद्विपत्क्षितिपु च व्यालेन्द्र रोहेपु च

१२ स्वराज च रिपुव्रज च मुरजिन्नागाधिराज च य ।

ऐश्वर्येण च विक्रमणे च धराभार क्षमत्वेन च

न्यक्कुर्व्वेश्च पराभवश्च समतिक्रामश्च पृथ्वीभयात् ॥ *(१९)

तस्माद्वैरिनृपावरीधनव धूवैधव्य दु खोद्भव-

द्वा(वा) ष्पाम्भा — कणशान्तकोपदहन श्रीसीयकोभून्नृप ।

१३ आविर्भावितनूतन स्थितिरभ व्र(ब्र)ह्माण्डखण्ड च्छला-

द्यस्याद्यपि विलोक्यते विय(द) धोधूम प्रतापा नल ॥ (२०)

अनुगगनमुदस्थु स्थूलमुक्तोत्त्यया ये पदसिदलित कुप्यत्कु-

म्भिकम्भस्थले य ।

सततमपि पतन्तस्तेद्य यवन्न पृथ्वी पृथुलतरलताराव्या-

१४ जभाजो भजन्ते ॥ (२१)

अत्याश्चर्यमदृष्टमश्रु तमिद कस्मै सभान्वक्ष्महे

को न्वेतत्प्रतिपद्यते चतदपि प्रस्तूयते कौतुकात् ।

उद्धृत्यापि वसुधराम् सदृशी लब्धा(ब्ध्वा) पि लक्ष्मी च य ।

कुर्व्वन्कार्यमनेकश सुमन सा मागान्न वैकुण्ठता ॥ (२२)

तस्यार्द्धे—

१५ रिव विनीव(व) द्युविपप्रारम्भ(म्भ) (मू)ढ्न्वर
प्रध्वंसकपिनाकपाणिरजनि श्रीसुन्दरराजो नृप ।
ग्राम प्राभृत मान्दिपाल विषया यस्य प्रतापानला
लोकालोकमहामहोध्रवलयम्याया महीमण्डलं ॥ (२३)
यस्मि मर्प्यति लीलयापि कम्पि सम्प समुग्न् —

१६ स्मित
माहम्पूहविसारिपृमिपरलक्ष्मासप्त दिग्मण्डल ।
भल्पाही (ना) करीन्द्र (मन्व) पपव प्रद्वलोसमोप्कहलम-
प्रद्वलच्छपप्रलनावनिर्मरमृतत्र (व) ह्याण्ड माप्लावर ॥ (२४)
यभिस्तृ (स्तैं) घनिरस्तमस्तकतमा सम्प्मा (म्मा) न्यमा दुस्तंम
दमतं स्वकन्व(व) म्पमु (ड) तममो पृष्मा भट

१७ मर्षोप्टतं ।
संहृर्पस्पिततोभिमानभिशराधाविसव्य कण्ठ हठा
द्वीर (स्मश्रू) रमगिमो रुधिरे संभूय भिन्नाङ्गना ॥ (२५)
तस्यासीदय पार्थिव पृथुयशा श्रीसिन्धुराजोनुज ।
स्फूर्ज्जद्राढ्यापस्फु (म) र्दः (सौन्य) मंधीर्मनिल ।
म संग्रामम्

१८ गाम्तवमिलितभुजा दुर्मतद्दूराम्लाघ
त्वत्कोमायितमप्ललामव (ऽ) त्वेनामल्पयद्मूमृत ॥ (२६)
जयति वयिनि यमामिव भावेन यत्र तरल तुरगवेगोद्भूतभूरेणुराशि ।
विकटकरटिभारमृष्टपृष्ठ एकभाग्रुवित इव समस्तावन्त कालाग्निधूम ॥ (२७)
गाम्भीर्य प्रक-

१९ चार्ण्यावस्य र्व व(व) लंकस्पान्त वातस्य च
स्वेमान कमठ विदुष (षुर) तां (व(व) द्याम्व) भागवस्य च ।
तेज कालकृतावनस्य च महीयस्त्वं प्रमाणस्य च
स्वीकृत्यव विनिर्म्मितं यमविद प्रस्माति पृथ्वी भुज ॥ (२८)
तस्सूनर्भुवनक भूषणममूद्भूपालचूडामणि-

२ च्छायाकम्व (म्ब) रचम्बि (म्बि) ताहिकमल श्रीमोजदेवो नृपः ।
यस्यापा (पि) घ (माम) यन्ति चरणौ सम्पसना (म्ना) छिन
स्तद्धि (व) न्वविनम्र निर्भर नटत्कोटीरकोटिश्रिय ॥ (२९)
रटत्पटपाटवप्रकटम्मर्गर्भ एस्फूर्ज्जितस्फु रत्कमरु-
डम्ब (म्ब) रौढ्मरित्ति मोकगामत ।

२१ स्फुटत्करटकुम्चरप्राद मणतत्मभ्रगभ्रम द्रुवन
(म)भ्रमज्जग (ति) यज्वम् (रुच्च) कं ॥ (३०)
वकुण्ठ कामन्तामनाय चतुगम्याय स्वयभृ पुन
पञ्चाम्याय हराय शम्भुरपि वड्वत्राय पुत्राय च ।
सनानीरपि दन्द शूकपतये जम्र सहमानना -
याद्यापि स्पृहय-
२२ त्यमत्र्यसमिती य(त्कीर्त्ति) मुत्कीर्त्तयन् ॥ (३१)
तस्मिन्वासवव(व) न्धुतामुपगते राज्ये च कुन्याकुले
मग्नस्वामिनि तस्य व(व) न्धुरुदयादित्यो भवद्भूपति ।
येनोद्वृत्व महार्ण्णवोपमभिलत्कर्णाटकर्ण्णप्र(भु)-
सुर्व्वीपालकदर्थिना भुवमिमा श्रीमद्वराहापित ॥ (३२)
२३ य-
स्मादुग्रतरप्रताप(पवनो) पास्ढदुर्द्दर्शता-
सादृश्योत्थरविभ्रमाद भिमुखै प्रपिञ्च यै पञ्चता ।
मन्ये सोयमित प्रतीति विततामर्ष प्रकर्षेण ते
भि(त्वा) भास्करमण्डल रिपुभटा प्रापु परा निर्वृति ॥ (३३)
एकस्या ममिती विलोक्य विजय य-
२४ स्यापरस्या स्तुव-
(न्स्वी?)—(वक्त ?) ता समर्थयति दृगिजहृवसहस्रद्वये ।
कित्वानन्दनिमीलितेक्षणतया श्रौते सुखै र्व्वञ्चित-
श्चक्षु कर्ण्णभकर्ण्णमप्यहिपति स्वीय वपुर्निन्दति ॥ (३४)
पुत्रस्तस्य जगत्त्रयैकतरणे सम्यक्प्रजापालन-
व्यापारप्र-
२५ वण प्रजापतिरिव श्रीलक्ष्मदेवोभवत् ॥
नीत्या येन मनुस्तथानुविदधे नासौ न वैवस्वत
सर्व्वत्रापि सदाप्यवर्द्धत यथा कीर्त्तिर्न्नवैव स्वत ॥ (३५)
सभूय ध्रियता गुरुर्व्व(र्व्व)लभराड्ढ कर्म्मराजादय
सद्यो नश्यत (वा द्रु) त नमत वा प्रत्य
२६ र्थिपृथ्वीभुज ।
चक्षुर्म्मक्षु पिधियतामनिमिषा पासु पुरा पुरय-
त्येव व्याहरति प्रयाण पटहो यस्य स्वनञ्छाधना ॥ (३६)
यस्मिन्मर्प्प(ति) वा(वा) न्ववोपि विधुरै पूर्व्वै परित्यज्यते
कल्याणस्य कथापि कातरतया नापेक्ष्यते दक्षिणै ।

ये कल्पानलनूमण्डलनिभा कादम्त्रि (म्त्रि) नीविद्विप
मवर्त्तोल्लासितान्धकारसुहृद न्नृटय-
३३ द्विपद्वा (द्वा) न्नवा ।
(व)— — ‿ ‿ (आहव) श्रमनुदे पा(थो) वणह्योद्यते-
र्यत्सामन्तमतङ्ग जैरचरितास्तेप्यम्वु(म्बु) धेरुर्म्मय ॥ (४५)
कुम्भसभव मोदर्य यथा पाचीभुपा(र्च्छ) ति ।
चोलावर्श्री(च) कै (र्भूत्वा) विन्ध्यवा (वा) न्ववतादघे ॥ (४६)
ली(ला)म्भ प्लवने यदीयपृतनामामन्त-
३४ मीमान्तिनी-
श्रोणि (श्रे) णि (वशी) यमाणर (श) नामुक्ता पतन्ति स्थया
ताभि सप्रति पप्रथेन् पृथवी यत्ताम्रपर्णीपय
पश्याद्यपि तदेव पाण्ड्रानृपते(र्ज्जी)वातवे(जा) य(ते) ॥ (४७)
स्वाभिन्नेप म सेतुटलभवतो रामस्य या मारुति-
प्रायोपाहृत-
३५ शैलशृङ्गरचितो वर्द्धि(ष्णविन्ध्या) यते ।
इत्या(दृ)त्य कुतूहलेन कथित तज्ञे (ज्ञै) खजाय य
सेनाहस्तिक सेतुनैव विदधे द्वीपान्तरोपक्रम ॥ (४८)
अथावभज्योभयया यमाशा यस्या (नवे) सर्प्पति सैन्यसङ्घे ।
अभूत्स्वकीया ककुभ व्यपायाद्गो-
३६ पायितु पाशभृदप्यपाश ॥ (४९)
मैनाकपुमुखा वसन्ति कुहचित्कालाग्नि रास्ते क्वचि-
त्सन्ति क्वापि तिमिगिलप्रभृतय कुत्रापि शेते हरि ।
एत द्वेत्ति न कोपि यत्र जलधौ(त) स्याप्य (शेष) पय ( )
(पीत्वा) यत्करिभि कृतैकचुलुकैस्तैस्तै-
३७ रगस्त्यायित ॥ (५०)
यै सभूय तिमिङ्गिलप्रभृतिभि ससर्प्पिणस्त(न्व) ते
पोताधानसव(ब)न्धुता शिखरिणो मैनाकमुख्या अपि ।
भ्राम्यन्मन्दरडम्व(ब) राणि दधिरे तैरप्यशेषम्वु(म्बु) धौ
यत्सेनागजराज(पीव) रकरा —‿नो च्छृङ्खलै ॥ (५१)
अथातितिक्षो रिव राज-
३८ राजमन्य तदाशा प्रति यस्य यातु ।
द्विधापि मीत्युज्झितवित्तपाशैर्भूपे प्रतीपौर्व्विभयैर्व्व(र्व्वं)भूवो ॥ (५२)
आरामा समर मरावपि तथा पुन्नारापूगादिम

कुड् (म्) विला (रे) य कूडिका =णि (ल) त्तुक्कु मेल इरै-निलम् उडैयाण तण मणैयिले अ-

४ गम् एड्डुट्टुकोडु डरुप (पाणैय) अड (ु) व व (दुपि) रा (य) त्तुक्कु उल मुप्पदु पिरायट्ट्टुक्कु मेल्पट्टार वेदत्तिलुम् शास्त्रत्तिलुम् का (र) य्यत्तिलुम् निपुअर =एराणप्पट्ट =इ-

५ रुप्पारै अ (र) त्थ =शौशमुम् आत् (म)- श (ौ) शमुम् उडैयर =आप् मूव्—(आ) ट्टिटण इ-प्पुरम् वारियञ =ञेय-(दि) ल् (आ) त्त (आ) र (व) आरिपञ =ञेय्द =ओलिन्द (प) एरुमक्कल्क्कु-

६ अणिय वन्दुक्कल अल्लात्तार (ँ) =क्कुडव् ओलैक्कु =प्पेर तोट्टि =चेरि-वलियेय तिरट (टि) प (ण) णिरदु शेरियिलुम् शेरियाल ओरु-पे (र-आडु आम) एदुम् =उरु (व =अ) रियात्ताण =ओरु -

७ वाल (णै) =क्कोडु कुडव-ओलै (व) आङ्गवि (त्) तु =प्पण्णिरुवारुम् सम् (वत्स) र—वारियम् =आविद - आगवुम् अ (दि) ण मिणवेय तोट्ट-वारियत्तवकु मेडपडि कु (उ) व-ओ-

८ लै वाङ्गि =प्पण्णिरुवरुम् तोट्ट-वारियम् = (आ)-वद =आ (ग) वुम् (।।) निणड (अ) ड ु- (कुड) व- ओलैय (उ) म एरि-वारिम (म् =आ)-

९ वद =आगवु =मुप (प) दु कुडव = (ओ) लै प- (डि) च्चु व (आ) रियम् शेयगिण (ड) मुणड ु (त) इडत्तु व (आ)- रियमुम् मुण्णूड्ड-अ (डुवदु) न् (आलु) म् नि रम् (वा) (व) आरियम् ओलि (द्) अणन (त) र (म्) इडु (म् वा) र (इ) यङ्गल (इ-व्य) वस्थै (य्-ओ) (ल) प्पडियेय कुडु-म्बुक्कु =क्कुडव- ओलै इट्टु =क्कुडव्- ओलै प (डिच) चुक् (को) न्ड (ए) य वा (रि) यम् (इ) डुवद् =आगवुम् (।।) वारियञ =जेयदार (क) कु वन्धुक्कलुम् श् (ए) रिगलिल् अ (न्योन्य) म्म् (ए)

१० म् म् कुडव-ओलैयि (ल्) पेर एलुदि इ (ड) प्पडादार = (आ) गवुम् (।।) पञ्जवार-वारि (य) त्तुक्कुम पोण - वारि - यत्तुक्कुम् मुप्पदु कुडु (म्) व (इ) लुम मुप (पदु) कुड (व =औ) लै इट्टु शेरिमाल् ओ (रु) त्तरै = क्कुडव्-औले पडि (त्) तु पण्णिरुवारिलुम् (अ) ड ुवर (प) ञ्ज (वार)- वारियम् =आवद -आगवुम् (।।) अडुवर प (ओण)-वारियम् =आवद- आगवु (म्) (।।) समवत्सर-वारि (य) म् अल्लात्त ।

११ वारिय (ङ) गल (ओ) रुक्काल शेय्दा (रै पि) राणै अ- (व)—वारियत्तुक्कु कुडव-औ-औ (लै) इड =प्पेडादद-आगवुम् (।।) (इ)-प्परिशेत्र =इव्व-आडु मुदल च (न्द्र) आ (दित्त) वत ए (ण) डुम् (कु) डव-औले (वारि) यमेय इडुवद् =आग देवेन्द्रण च (क्र) वर्त्ति (श्री) वीरनारायण श्री परान्त-

६ तण मगणैयुम् आग इ=च्चुट्ट
बन्धुक्कलैयुम् कुडव-औलै एलुदि=प्पु (ग) इड प्(पे)-डात्तार=आगवुम्
(॥) अगम्यागम-णत्तिलुम् महापादगङ्गल (इल) मुराब=अडैन (ड) नालु
महापादगत्तिलुम्म=एलुत्तुप्पट्टारैयुम् इवर (गलु) क्कुम् मुन् शुट्टप्पट्ट
इत्तिणै बन्धुक्कलैयुम कुडव-औलै एलुद (इ)=प्पुग (इ) ड=प्पेडादा
(र=आ) गवुम (॥) स (म्सर) ग्ग-(प) ति-(त) रै प्रायश्चित्तञ=
जेय्युम्-अल-(वु) म्
७ कुडव-औलै डडादद=आगवुम्
दियुम् साहसियर=आय=इरुप्पारैयुम् कुड (व-औ) लै एलुदि=प्पुगव=
इड=प्पेडाडार आगवुम् (॥) परद्रव्यम् अपहरित्ताणैयुम् कुडव-ओलै
एलुदि=प्पुग्व=इड=प्पेणादार=आगवुम् (॥) ए (प्पे) र्प्पट्ट कैय्यूट्टु
(ड) गोडाण कृ(त) प्रायश्चित्तञ=जेच्छु शुद्धर=आणारैपु(म्)
अव्वर प्रानान्तिकम
८ वारियत्त्क्कु=क्कुडव-औलै=एलुदि पुग (व=इड)=प्पेडादद=आग-
वुम् पादगम् शेयदु प्रायच्चित्(त) ञ=जेयदु शुद्धर=(आ) णारैयुम
ग्राम-कण डगर=आय प्रायश्चि(त्ताञ)=जेदु शु(द) धर=आणारैयु
(म्) अगम्यागमणम (शेदु) प्राप (श्चि) त्तञ - जेदु शुद्धर=आणारैयुम
आग इ-च्चुट्टप्पट्ट अण (ऐ) य्वरैयुम् प्राणा-(न्ति) कम् वार (इ)
यात्तुक्कु=क्कुडव-ओलै एलुद) (इ)=प्पुगष्=इड=प्पेडादद=आग-
९ वुम् (॥) आग इ-च्चुट्टप्पट्ट इत्तणैय्वरैयुम् नीक्कि इ-म्मुप्पदु कुडुम् (विलु)म्
कुडव-ओलैक्कु=प्पेरतीट्टि इ-प्पणिरडु शेरियिलुम्=आग इ-क्कुडुम्बुम
वेव्वेडेय वाय-ओलै पूट्टि मुप्पदु कुडुम्बुम् वेव्वेड कट्टि-=क्कुजम् पुग (इडु)
वद=आगवुम् (॥) कुडव-ओलै पडिक्कुम (वो) दु महासभै=त्तिरुवडियार
सवालवृद्धम् निरम् (व) = क्कूट्टि=क्कोडु अन्ड=उल्लूरिलू इरुन्ड
नम्बिमार ओरुवरैयुम् ओलिया-
१० मे महासभैयिले उलम-मडगत्तिलेय इरुत्तिक्कोडु अ-न्नम्बिमार नडुवेय अ-क्कुडत्तै
नम् (व) इ-मा (रि) ल वृद्धर=आय इरुप्पार=ओरु-(न) म्बि मेल
नोक्कि (र) ल्ला-ज्जण-मुड=गणुम्-आडडाल=एडुत्तु-क्कोडु निडक्क
पगलेय=अन्तरम्=अडियादाण=ओरुपालणै=क्कोडु ओरु=कुडुम्बु
वाङ(गिय) मड्ड=ओरु-कुडत्तुवकेय पुगव्=डट्टिक्कुलैत्तु अ-क्कुडत्तिल=
और-औलै वाङ्गि मद्ध्यस्थण कैमिले ।
११ (कु) डुप्पद=आगवुम् (॥) अ-क्कुडु(त) तव्=ओ (लै) मध्यस्थण
वाङ्गुम्बोदु अञ्चु विरलम् अगल वैत्तु उल्लङ्गैमिले एड्डु-क्कोल्व(आ) ण=

=ण्पेटादा (र) आगवुम (॥) इ-प्परिशे इव्व-आडु मुदल् चन्द्रादित्यवत्
एण (ड) उम् कुडव-औलै-वा-रियमे छडुवद =आग देव् (ए) न-द्रण चक्रव
(र) त्ति (ग) ण्टिनवत्मलन् कुञ्ज-रमल्लण भूरभूलामणि कल्पकचरितै
श्री-परके (म) रि (प) न्म-(र् कल) श्रीमु (ख) म् =अरुलिच्चेदु वरक
(क) आट्ट श्री -आ (ञा) ऐया-
१७ ल्शोल-नाट्टु =पुड्ङ्गरम्यै-नाट्टु श्रीवङ्ग-नगर् =वकरञ्जै-क (ओ)
(ओ) ण्डय-(क) मवित्त- भट्टण =आगिय शीमामिपेरुमाण =उडण
(ड) रुन्टुइ-प्परिशु शेम्बिवक्क न(म्) ग्राम-त्तुक्कु अ(म्यु) दयम् =आग
दुग्टर केट्टु =विशिष्टर व(र) द्विप्पद =आग य्यवस्थ(ऐ) शेयदौम्
उत्तरमेरु-चतुर्वेदिमङ्गलत्तु सभैऔम् (॥) इ-प्परिशु कुडियुल इरुन्दु प(र)
रमक्कल पणिक्क व्यवमयै एलुदिणे(ण्) मध्यस्थन्
१८ काडडिप्पै त्(त)ण शिववकुडि इराजमल्ल- मङ्गलप्रियेमेण (॥)

सिक्कों पर उत्कीर्ण-लेख

(अ) भारतीय-यूनानी तथा शक सिक्कों के मुद्रा-लेख

१ दिमित्र

बसिलियस डमद्रिया (यूनानी लिपि)

२ मिलिन्द

महरजस त्रतरस मेनद्रस (खरोष्ठी लिपि)

३ स्ट्रेटो तथा अगाथाक्लिया की मुद्रा

(एक ओर)

बसिलिसेस थियोट्रोपी अगाथाक्लिया (यूनानी अक्षर)

दूसरी ओर

महरजस ध्रमिकस स्त्रतस (खरोष्ठी)

४ हरमेयस तथा कुजुल

एक ओर (यूनानी लिपि)

बसिलियस स्टरोस एरमया

दूसरी ओर खरोष्ठी (प्राकृत)

कुजुल कसस कुषण यवुगस ध्रमथिदस

५ पार्थियन शासक मोअ

एक ओर (यूनानी लिपि)

बसिलियस बसिलियान मेगालो मयोय

दूसरी ओर खरोष्ठी (प्राकृत)

रजदि रजस महतस मोअस

६ अयस का मुद्रा-लेख

एक ओर (यूनानी लिपि)

बसिलियस बसिलियान मेगालाय अजोय

दूसरी ओर (खरोष्ठी में)

महरजस रजरजस महतस अयस
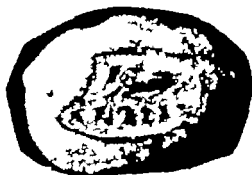
वीमकदफिस का स्वर्ण मुद्रा-लेख

एक ओर (यूनानी लिपि)

वेमिलियस ओयो कदफिसेस

दूसरी ओर (खरोष्ठी)

महरजस रजदिरजस सर्व लोग इश्वरस
महिश्वरस ध्रिभ कप्फिशस त्रतरस

कनिष्क का मुद्रा-लेख

(यूनानी लिपि)

शाओ नानो शाओ कनिष्को कुशानो

हुविष्क का मुद्रा-लेख

शाओ नानो शाओ ओइष्कि कोशानो

क्षत्रप रुद्रदामन का रजत मुद्रा-लेख

(ब्राह्मी-प्राकृत)

राज्ञो क्षत्रपस जयदामपुत्रस राज्ञो महाक्षत्रपस रुद्रदामस

जीवदामन का मुद्रा-लेख

राज्ञो महाक्षत्रपस दामजदस पुत्रस राज्ञो
महाक्षत्रपस जीवदामस

रुद्रसिंह तृतीय का मुद्रा-लेख

राज्ञ महाक्षत्रपस स्वामि सत्यसहपुत्रस
राज्ञ महाक्षत्रपस स्वामि रुद्रसहस

(ब) गुप्तवंशी मुद्रा-लेख

(गुप्तलिपि तथा छंदबद्ध संस्कृत)

समुद्रगुप्त का स्वर्ण मुद्रालेख

समरशत वितत विजयी जितरिपु रजितोदिव जयति
राजाधिराज पृथिवीमवित्वा दिव जयत्याहृत वाजिमेध

द्वितीय चन्द्रगुप्त का स्वर्ण मुद्रा-लेख

नरेन्द्र चन्द्र प्रथितरणो रण जयत्य जय्यो भुवि सिंह विक्रम
परम भागवतो महाराजाधिराज श्रीचन्द्रगुप्त

द्वितीय चन्द्रगुप्त का रजत मुद्रा-लेख

परमभागवत महाराजाधिराज श्रीचन्द्रगुप्त विक्रमादित्य
श्री गुप्तकुलस्य महाराजाधिराज श्री चन्द्रगुप्त
विक्रमाकस्य

प्रथम कुमारगुप्त का स्वर्ण मुद्रा लेख

क्षितिपतिरजितो विजयी कुमार गुप्तो दिव जयति
गुप्त कुलामलचन्द्रो महेन्द्र कर्माजितो जयति
गामवजित्य सुचरितः कुमारगुप्तोदिव जयति
भर्त्ता खड्गत्राता कुमार गुप्तो जयत्यनिश

प्रथम कुमारगुप्त का रजत मुद्रा लेख

परम भागवत राजाधिराज श्री कुमारगुप्त महेन्द्रादित्य
विजिता वनिरवनिपति श्री कुमार-गुप्तोदिवं जयति

स्कन्दगुप्त का स्वर्ण मुद्रा लेख

जयति महीतलम् सुधन्वी

स्कन्दगुप्त का रजत मुद्रा-लेख

परमभागवत महाराजाधिराज श्री स्कन्दगुप्त क्रमादित्य
विजितावनिरवनिपतिर्जयति दिवं स्कन्दगुप्तोयम् ।

(ख) पूर्व मध्ययुग के मुद्रा-लेख

(नागरी अक्षरों में—तीन पंक्तियाँ)

श्री मदादिवराह (प्रतिहार राजा भोज)
श्री मद् गांगेयदेव (कलचुरी शासक गांगेयदेव)
श्री मद् गोविन्द चन्द्रदेव (गहड़वाल राजा गोविन्द चन्द्र)
श्री अजय पाल देव (चौहान राजा अजयपाल)
श्री मद् कीत वर्म देव (चंदेल राजा कीर्तिवर्मन)
श्री मुहमदबिनसाम (सुल्तान मुहम्मद गौरी)

मुहरों पर उत्कीर्ण-लेख

(अ) **वसाढ की मुहरें** (कुशान लिपि, प्राकृत तथा सस्कृत)

(१) फरदाम्य मद्रियन पुत्रस्य
(२) महजतिए निगमस्य
(३) कुलिक निगमस्य
(४) श्री विन्ध्य वेधन महाराजस्य महेश्वर महासेनापति कृष्ठ राज्यस्य वृषध्वजस्य गोतमीपुत्रस्य
(५) आमात्य ईश्वरचन्द्रस्य

(ब) **वैशाली की मुहरें** (गुप्त लिपि, सस्कृत)

(१) युवराज पादीय कुमारामात्याधिकरणस्य
(२) श्री परमभट्टारक पादीय कुमारात्याधिकरणस्य
(३) श्री युवराज भट्टारक पादीय वलविकरणस्य
(४) तिराभुक्ती विनय स्थिति सस्थायकाधिकरणस्य
(५) तिरा कुमारामात्यधिकरणस्य
(६) महाप्रतिहार तरवर विनयसुरस्य
(७) श्रेष्ठी सार्थवाह कुलिक निगमस्य
(८) रणभाण्डागारविकरणस्य ।
(९) महादण्डनायक अग्नि गुप्तस्य ।
(१०) वैशान्यामर प्रकृति कुटुम्बिनाम् ।

(स) **नालदा की मुहरें**

(१) श्री नालदा महाविहारी अर्यभिक्षुसघस्य
(२) **मौखरि अवन्ति वर्मन का नालदा मुद्रा-लेख**

चक्षुस्समुद्राक्रान्त कीर्त्ति प्रतापानुरागोप
(नतान्य राजा) वर्णाश्रम व्यवस्थापन प्रवृत
चक्रश्चक्रधर इव प्रजानामर्तिहर श्री महाराज
हरिवर्मा तस्य पुत्रस्तत् पादानुध्यातोजय
स्वामिनी भट्टारिका देव्यामुत्पन्न श्री महाराज
आदित्यवर्मा तत्यपुत्रस्तत पादानुध्यातो हर्षगुप्ता
भट्टारिका देव्यामुत्पन्न श्री महाराजेश्वर वर्मा
तस्य पुत्रस्तत् पादानुध्यातोपगुप्ता भट्टारिका
देव्यामुत्पन्नो महाराजाधिराज श्री ईशानवर्मा

तस्य पुत्रस्तत् पादानुध्ययातो
लक्ष्मीवती भट्टारिका महादेव्यामुत्पन्नो
महाराजाधिराज श्री सर्ववर्मा
तस्य पुत्रस्तत् पादानुध्यात इन्द्रभट्टारिका
महादेव्यामुत्पन्न परम माहेश्वरो
महाराजाधिराज श्री अवन्ति वर्मा मौखरिः ।

(१) भास्कर वर्मन का नालन्दा मुद्रा-लेख

श्री गणपति वर्मा श्री यज्ञवा वत्याम श्री
महेन्द्र वर्मा श्री सुव्रतायाम् श्री नारायण वर्मा श्रीदे
वबत्याम् श्री महाभूति वर्मा श्री विज्ञान वत्याम्
श्री चन्द्रमुख वर्मा श्री भो—
गवेत्याम् श्री स्थितवर्मा तेनश्री नयन
श्री सुस्थित वर्मा श्री सोमायाम् श्यामा लक्ष्याम् श्री
सुप्रतिष्ठित वर्मा श्री भास्कर वर्मेति ।

शशाङ्क का रोहतास मुद्रा-लेख

श्री महासामन्त शशांकदेवस्य ।

(ख) कुर्कीहार कांस्य प्रतिमा-लेख (पालवंश)

१ स्वस्ति श्री राज्यपालदेव राज्ये सम्बच्छरे
२२ श्री महापणक महाविहारे कोपाकहिनो
मार्गा बाटकाया देवधर्म कृतम्
कीपाल हारो स्वपतिपालितम् । वसुना

२ स्वस्ति श्रीम-विग्रहपालदेव विजयराज्ये
सम्वत १२ देव धर्मोयम महायान जैन
प्रेमोपासक दुल्लभुत तीकुकस्य ।

३ स्वस्ति श्रीमत महिपाल देव राज्य सम्वत् ११
सुवर्णकार के सवस्स=स्य देवधर्म ।

(ग) मिट्टी की वस्तुओं पर उत्कीर्ण लेख

( ) ठिकरे का अभिलेख

सिद्धम् । स्वस्ति श्रीमान महाराज विग्रहपाल
देवस्य विजय राज्ये सम्वत्सरे ८ देवधर्मोयम्
शान्तिरक्षितस्य

(ii) कुम्हारपाव का लेख

आरोग्य विहारे भिक्षुसंघस्य

वृहत्तर भारत के अभिलेख

चम्पा नरेश इन्द्रवर्मा प्रथम का भद्रेश्वर का अभिलेख

(शकाब्द ७२१ = ७९९ ई०)

ओम् । यास्नाद्धर्मंगिम्सुरवरनिकरैश्चारणैश्चोत्तमौजो (।)
य यस्मायाति युम्नम्न जयति जगताञ्जायते जन्मजुष्ट ।
तार्क्ष्ये फ्णीन्द्रिन्द्रदैत्यैर्द्दिनि भुवि निभवैर्म्भावविभोगस्य भोक्ता (।)
यश्चक्षुद्ररक्ष क्षणमपि मगभृत्तस्य भवत्या समेत्यम् ॥
तस्य भगवतोऽसुरासुररिपुर्णानिन्नचरणयुगल सरोरुहमकरन्दस्य क्षीराण्र्णव-
तरङ्ग
गगनमिन्दुफेनशशिकरशुक्लतरभस्मावदातधवलतरशरीरप्रदेशस्या शेषभुवनो-
पजी व्यमानविप्रनीततर पङ्कजमृणालनालपादविम्वस्य सुरासुरपतिशिखरमङ्ग-
लपदद्वयरेणुगङ्गाप्रवाहस्यापि सुरसिद्धविद्याधरगणमुकुटकिरीटवरकनककण-
निकरसन्ध्यायमान चरणनखमणिदर्प्पणस्य पादयुगलारविन्दस्य शरण-
मधिकृत्य स भगवान् श्रीमानिन्द्रवर्म्मा प्रतिदिवसमेवमखिलदिगन्तरालधर्म्म-
स्थितितरमत्तमप्रतीत क्षितितले पुण्यमकरोत् ॥
श्रीमान् राजेन्द्रवर्म्मा वरजनमहितो यक्षरत्नप्रमुख्य
ख्यातस्तेषा प्रभावैर्म्मानुरिव जगतो रक्षणे क्षेमयुक्त ।
ब्रह्मक्षत्रप्रधानो जगति दिवि यथा यज्ञभागैर्म्महेन्द्रो
राज्ये वशप्रतीततस्सरुचिरिव शशी निर्म्मलाकाशदेशे ॥
स जयति विक्रमतया भुजद्वयेनोद्वहन्निव धरणी सकलचम्पाधिराज्यवसुमती-
तलपति-तशतमख इव धनञ्जय इवाप्रतिहनपराक्रमोऽपि हरिरिव विजिता-
शेपरिपुवृन्दद्धस्सुरासुरगुचरणद्वयारविन्दजनितसुस्फीतदेशातिशयविक्रमस्त
भुवि देवराजसदृश
पूर्व्वजन्मानवरतमखकुशलतप फलतया धनद इव धनत्मागतिशयेन
राजलक्ष्म्यालिङ्गितमृदुतरशरीरप्रदेश प्रमुदितमनसा तस्य नगरीप्रतीतत-
रवसुवात-रतमानुक्रमरक्षणस्वशक्तिप्रभावोर्ज्जितयिन पद्रववणश्रिमव्यवस्थि-
तिस्सुरनगरीव राजधान्यासीत् ॥
स श्रीमान् नृपतिस्सदा विजयते भूमौ रिपोस्सर्व्वत

यज्ञस्त्राग्निमयमस्य विग्रहमपायदाधिपस्यौजगा ।
वज्रायुधप्रभव प्रभव विभवो भाग्यप्रभावान्वित
सत्क्रया विष्णुरिव प्रमथ्य च रिपू धर्मस्थिति पालयन् ॥
श्रीमद्राधिपतिरपरस्त्रिभुवन रक्षातत्परतेजोऽग्नि मिद्
मन्वर्थ्योरपरस्तथाच मुनिभिर्वर्णितविधाय ।
पातालप्रभवश्च वीर्यतरसा वालेन वा योगिना
भक्तस्तर्म्मनसा प्रभावविभवे गत्नुपते सम्भवा ॥
नगर्य्यां परिचमोऽद्भुतस्यिभिर्लोक समन्वित ।
द्रुतस्तेजसो भक्त्या सोऽयं भाति महीतले ॥
भार्ं स्वस्य धुर्मं यस्माज्जगतां पाति तेजसा ।
भद्रस्याधिपतिस्तस्मात्स भद्राधिपतीश्वर ॥
अथ चिरकालेन कोशकोष्ठागारदासदासीरजतसुवर्ण्णरत्नादिपारिभोगभुक्तस्य
भुवनचर्माञ्चितपादपंकजरेणुरेव स्वेन तेजसा सकलजगद्धितकारणस्समभवत् ॥
ततश्च कलियुगवोपातिततमभावेन मायामतगर्ज्जबलसर्वानिर्द्धृतेपि
भवाम्बराद्रिनमिते शककाले स एव शून्योऽभवत् ॥
बहुवर्षसहस्राणि स बभूव महीतले ।
स्वं स्थानं वहनं यत्तु ह्यकरोत् स्वस्य मायया ॥
अथ तस्य तदपि राजेन्द्रवर्म्मणा पुनस्स्थापितमेव सकलकोशकोष्ठागा
ररजतसुवर्ण्णमकुटरत्नहारादिपरिभोगदासा पुरविलासिनीदासदासीगोमहिष
समाश्रित्य तस्मै तेन दत्तम्बितप्रसादेन ॥
तस्यापि पार्थिवं किन्तु स्थापितं श्रीगवर्म्मणा ।
इन्द्रभद्रेश्वरेतिनाम्ना ततश्चाभूत् स एव वा ॥
तस्यैव स्थापितन्तेन हर्म्यं कोशम्बरस्थिरं ।
समुद्रम्बरकोशं हि शाके शशियमाद्रिप ॥
स एव राजा परिपालयन्महीं
यथा प्रजास्ता मुदितास्स्वविक्रमे ।
स्वधर्म्मयत्नात् प्रथितो महीतले
सदा रिपूणाञ्जयति स्म तेजसा ॥
स धर्म्मकुलसम्भवस्वामी शूरसमन्वित– ॥
भक्त्या पराक्रम निर्जित्य मही पायात्समन्तत ॥
तस्मै भगवते सकलकोटिहितकारणाय श्रीभद्रेश्वरदेवेतिति स भगवान्
श्रीमाभिन्द्रवर्म्मा चम कोष्ठागारे चिचमजतमद्र्य चिरस्थिताभिरि प्रदेय
भक्त्या शुद्धेन मनसा दत्तवानिति ॥

इन्द्रभद्रेश्वरस्यैव सर्व्वद्रव्य महीतले ।
ये रक्षन्ति रमन्त्येते स्वर्गे सुरगणैस्सदा ॥
ये हरन्ति पतन्त्ययते नरके वा कुलैस्सह ।
यावत् सूर्य्योऽस्ति चन्द्रश्च तावन्तरकदु खिता ॥
लुब्धेन मनसा द्रव्य यो हरेत् परमेश्वरात् ।
नरकात् न पुनर्गच्छेन् न चिरन्तु स जीवति ॥

जावा के राजा शैलेन्द्र का कलसन् अभिलेख

नमो भगवत्यै आर्य्यतारायै ॥
या तारयत्यमितदु खभवाब्धिमग्न लोक विलोक्य विधिवत् त्रिविधैरुपायै ।
सा व सुरेन्द्रनरलोकविभूतिसार तारा दिशत्वभिमत जगदेकतारा ॥
आवर्ज्य महाराज पण पणकरण ।
शैलेन्द्रराजगुरुभिस्ताराभवन हि कारित श्रीमत् ॥
गुर्वाज्ञया कृतज्ञैस्तारादेवी कृतापि तद्भवनम् ।
विनयमहायानविदा भवन चाप्यार्यभिक्षूणाम् ॥
पङ्कुरतवानतीरिषनामभिरादेशशस्तितभी राज्ञ
ताराभवन कारितमिदमपि चाप्यार्य्यभिक्षूणा ॥
राज्ये प्रवर्द्धमाने राज्ञ शैलेन्द्रवशतिलकस्य (।)
शैलेन्द्रराजगुरुभिस्ताराभवन कृत कृतिभि
शकनृपकालातीतै र्वर्षशतै सप्तभिर्म्महाराज ।
अकरोद्गुरुपूजार्थं ताराभवन पणकरण ॥
ग्राम कालसनामा दत्त सघाय साक्षिण कृत्वा ।
पङ्डारतवानतीरिषदेशाध्यक्षान्महापुरुषान् ॥
भूदक्षिणेयमतुला दत्ता सघाय राजसिंहेन ।
शैलेन्द्रवर्मभूपैरनुपरिपाल्यार्यसन्तत्या ॥
सुम्नपकुरादिभि सत्तावानकादिभि ।
सुम्नप्तीरिखादिभि पत्तिभिश्च साधुभि ॥
अपिच ॥
सर्वानेवागामिन पार्थिवेन्द्रान् भूयो भूयो याचते राजसिंह ।
सामान्योयन्धर्म्मसेतुर्नराणा काले काले पालनीयो भवद्भि ॥
अनेन पुण्येन विहारजेन प्रतीत्य जातार्थविभागविज्ञा ॥
भवन्तु सर्वे विभयोपपन्ना जना जिनानामनुशासनस्था ॥

करिस्यामपर्णं करणं श्रीमानमियावते भाविमृपाम् ।
भूयो भूयो विधिवद्विहारपरिवास्मार्थमिति ॥

कम्बोज के राजा भववम्मन का अभिलेख

/

(लगभग ६ ई)

जितमिन्दुवतंसन मूर्ध्ना मङ्गा बभारन्या ।
उमाभुमङ्गविभ्रमोमि मालामाक (?) मिवाममाम् ॥ १ ॥
राजा श्री भववर्मेति पतिरासीन्महीभृताम् ।
अप्रधृष्यमहासत्वस्तुङ्गो मरुरिवापरः ॥ २ ॥
सौमाम्बये प्रसूतस्य सोमस्येव पयोनिधौ ।
केनापि यस्य हवसतु वाग्मकीर्ति सदाहवे ॥ ३ ॥
वण्ड समुत्था दुर्धर्षा मूरय मायावतीन्द्रिया ।
यशा पञ्चस्या येन जिता बाहोपु का कथा ॥ ४ ॥
नित्यदानपय सिक्तकरास्व मदङ्कुशान् ।
आरमानुकारादिव म समराय समग्रहीत् ॥ ५ ॥
शरत्कालमियासत्य परानावृतेजसः ।
द्विपामसह्यो यस्यैव प्रतापो न वरेरपि ॥ ६ ॥
यस्य सेनारजो धुतमुज्झितासरितिव्वमि ।
रिपुस्त्रीगण्डदेशेपु चूर्णभावमुपागतम् ॥ ७ ॥
रिपौरिव मन गुप्तं नगरीपरिखाजलम् ।
यस्य योधमराबीतमासई रविना (?) सह ॥ ८ ॥
परितायामपि पुरि ज्वलता यस्य तेजसा ।
पुन स्त इवारोप प्राकारे बातदेवसः ॥ ९ ॥
जित्वा पर्वत भूपाकान्तनौति सकुला भुवः ।
बन्धिमि सगुणामीर्म (?) यशोभिरिव यो दिवः ॥ १ ॥
येनयुद्धरत्वरयानां मर्मघाताकदवलं दृतम् ।
परेषामवगिर्मेरेतिमन्ता पराकर्म ॥ ११ ॥
शक्यानि पूर्व विजिता भूमिरम्बुविभेसमा ।
प्रभुत्वे समया येन मव पन्चादजीयत ॥ १२ ॥
यस्याहत्या प्रभावेन परे युध्यजिना अपि ।
राजश्रियमनुपमादाय नमन्ति चरणाम्बुजे ॥ १३ ॥
परैभावान्युपयमतिक्रान्ति विचिन्त्यया ।

अजित्वाम्भोधिपर्यन्तामवनिं यो न शाम्यति ॥ १४ ॥
अवाप्य षोडश कला शशाङ्को याति पूर्णताम् ।
असख्या अपि यो लब्ध्वा न पर्यस्त कदाचन ॥ १५ ॥
नास्ति सर्वगुण कश्चिदिति वाक्य महाधियाम् ।
येनासीद्विकृतमिद (?) स्वेनापि वचसा विना ॥ १६ ॥
तस्य राजाधिराजस्य नवेन्दुरिव य सुत ।
गुणकान्त्यादिभिर्योगादुन्नेत्रयति य प्रजा ॥ १७ ॥
राग दधाति भूपाना — — रतभरीचय ।
यस्य ॥ १८ ॥
शैव पद गते राज्ञि दृष्ट्वा यमुदित प्रजा ।
मुञ्चन्ति युगपद्वाष्प लोकानन्दसमुद्भवम् ॥ १९ ॥
।
॥ २० ॥
नवे वयसि वृत्तस्य यस्य राज्यभरोद्यतम् ।
चियायते कुमारस्य सैनान्य मरुतामिव ॥ २१ ॥
उपधाशुद्धिमान्भत्यस्तयोरवनिपालयो ।
॥ २२ ॥
. ।
॥ २३ ॥
हेमौ करङ्ककलशावित्यादिश्रियमुत्तमाम् ।
यो लब्ध वान्प्रसादेन स्वामिनोरुभयोरपि ॥ २४ ॥
न किंचित्स्वाम्यसमुक्तामाप्त येन कदाचन ।
भोजन वसन— — — यानाद्याभरणानि वा ॥ २५ ॥
प्राणै रसारलब्धुभि पितृपिण्डविवर्धित ।
स्वामिनोऽर्थे गुरुस्थेय क्रेतुमैहत यो ययम् (?) ॥ २६ ॥
लक्ष्म्या गाढोपगूढोऽपि पूर्वाभ्यासवलेन य ।
मुनिना चरित धत्ते क्षमाशमपरायण ॥ २७ ॥
सुप्रकाशितशौर्यस्य सङ्ग्रामत्यागयोरपि ।
भीरुत्वा यस्य विख्यातमकीर्तेर्वृजिनादपि ॥ १२८ ॥
प्रीणयन्नद्य — — — रुच कुर्वन्द्विद्यामपि ।
पक्षद्वय यो मित्रत्वमनयद्गुणसपदा ॥ २९ ॥
कलिना वलिना धर्मो भग्नैकचरणोऽपि यम् ।
महास्तम्भमिवालम्ब्य चतुष्पादिव सुस्थित ॥ ३० ॥

आधात्स्वतीरयनाघृत्य तनुभियमिवात्मनः ।
यदा पुष्पमयीमेव यः स्थिरां बह्मन्यत ॥ ११ ॥
इदमुग्रपूरवीध सुभक्त्या मिक्रुमेश्वरम् ।
प्रतिष्ठापितवानत्र श्रीमद्देवरसंयकम् ॥ १२ ॥
दासगोक्षत्रयहेमादिदेयमप्यमपायत ।
प्रमाणमिह ते सन्तु यतमो देवयाचकाः ॥ १३ ॥
या यथा यजमानस्य पुत्राः संबन्धिनाऽपि च ।
देवस्वं गोपमुच्चीरस प्रमाणि (?) भवन्ति च ॥ १४ ॥
यद्दत्तमस्मै देवाय यजमानेन भक्तितः ।
ये नरा हर्तुमिच्छन्ति ते यान्तु नरकं चिरम् ॥ १५ ॥

बोर्नियो

मूल वर्मा का कुटी यूप अभिलेख

१ श्री मतः श्री नरेन्द्रस्य
२ कुण्डुगस्य महात्मनः (।*)
३ पुत्रो (ऽ*) श्ववर्म्मो विख्यातः
४ वंश-कर्त्ता यथांशुमान् (॥*)
५ तस्य पुत्रा महात्मानः
६ त्रय स्त्रय इवाग्नयः (।*)
७ तेषां त्रयाणां प्रवरः
८ तपो-बल-दमान्वितः (॥*)
९ श्री मूलवर्म्मा राजेन्द्रो
१ यष्ट्वा बहु सुवर्णकम् (।*)
११ तस्य यज्ञस्य यूपो (ऽ*) यम्
१२ द्विजेन्द्रैस्सम्प्रकल्पितः (॥*)
१३ श्री मतो नृप मुख्यस्य
१४ राज्ञ (*) श्री मूलवर्म्मण (।*)
१५ दान पुण्यतमे क्षेत्रे
१६ यद्दत्तम्वप्रकेश्वरे (॥)
१७ द्विजातिभ्यो(ऽ) ग्निकल्पेभ्य
१८ विंशतिर्ग म सहस्रकम् (।)
१ तस्य पुण्यस्य यूपो (ऽ*) यम्
२ कृतो विप्र रिहागतैः ।

नेपाल-अभिलेख

महादेव का चांगुनरायण का स्तम्भ लेख

(शक् सम्वत् ३८६=४६४ ई०)

१ सवत् ३०० (+*) ८० (+*) ६ ज्येष्ठ-मासे शुक्लपक्षे प्रतिपदि १ (।*)
२ (रो*)हिणी-नक्षत्र-युक्ते चन्द्रमसि मुहूर्त्ते प्रशस्ते (ऽ*) भिजिति (॥)
३ (श्री*) वत्साङ्कित-दीप्त-चारु-विपु(ल*) प्रोद्वृत्त-व (ज्ञ) स्थल
४ —वज्ञ ‿ न-पद्मवाहु (रुचिर) स्म (र्त्तृ*)-प्रवृद्धोत्सव (।)
५ (त्लै)–लोम्य-भ्रमयन्तव ‿ ‿ ‿ — व्यासङ्ग-नित्यो (ऽ) व्यय
६ (दो*) लाद्रौ निवसञ्जयत्यनि (मि) षैरभ्यर्च्यमानो हरि (॥) १
७ — — त्सा ‿ ‿ — ‿ — य प्रताप-विभ (वैर्व्या) याम-सृक्षेपकृत
८ (राजभू*) द्वृषदेव इत्य (नुपम) (स) त्य-प्रतिज्ञोदय (।)
९ (सवृद्ध)- सवितेव दीप्त-किर (णै *) सम्यग्वृ (तै) स्वै सुतै
१० (विद्व) द्भिर्व्वहु-गर्व्वितरच (पलै) (रूयातै*) विनीतात्मभि (॥) २
११ (त) स्याभूतनय समृद्ध-(विष) य सङ्ख्येष्वजेयो (ऽ) रिभि
१२ (राजा) शङ्करदेव इत्यय ‿ — — तिप्रद सत्यधी (।)
१३ (प्रज्ञा)-विक्रम-मान-मन-वि (भवै) र्ल्लब्ध्वा यश पुष्कलम्
१४ — — — ‿ ररक्ष गामभि (मतैर्भृ) त्यै (र्मृगे) न्द्रोपम (॥) ३
१५ (तस्या)प्युत्तम-धर्म-कर्मय (शस*) (पुत्रोऽर्थ) विद्धार्मिक
१६ (क)र्म्मा (तमा) विनयेप्सुरुत्त (मगगुण) (श्री-ध)र्म्मदेवो नृप (।)
१७ (ध)र्म्मेणैव कुलक्रमागत ‿ — — — ‿ राज्य महत्

२७ देवी राज्यवती तु तस्य नृपतेर्भार्य्याभिधाना सती
२८ श्रीरेवानुगता भविष्यति तदा लोकान्तरासङ्गिनी (।)
२९ यस्याञ्जात इहानवद्य-चरित श्री-**मानदेवो** नृप
३० कान्त्या शारद-चन्द्रमा इव जगत्प्रह्लादयन्सर्व्वदा (॥) ७
३१ प्रत्यागत्य स-गद्गदाक्षरमिदन्दीर्घं विनिश्वस्य च
३२ प्रेम्णा पुत्रमुवाच साश्रु-वदना यात पिता ते दिव (।)
३३ हा पुत्रास्तमिते तवाद्य पितरि प्राणैर्वृथा किम्मम
३४ राज्यम्पुत्रक कारयाहमनुयाम्यद्यैव भर्त्तुर्गतिम् (॥) ८

मध्य एशिया का अभिलेख (खोटान)

१ नवत्मरे १० ममे ३ म्रिवञ्ञ १० (+*)४ (+*) ४(।) इञ क्षुनमि
 तोनान महूरयरय- तिरय ह्निञ्ञदेव-विजि

२ दर्मिहस्य(।) त-कलि अम्ति मनुश(=शे) नग रग(=गे) रव्वर्नसें नम(।)
 तय मद्र(=द्रे) दि (।) अन्ति मयि उट (।) तनुवग मो उट अ-

३ क्तिज्जनु ह्रदि धह्रि-अधि दद्रिजु वशो (।) त इदनि सो उठो विङ्निमि
 मून्य(=ल्ये) न मप(=पे) महस्य-अप्टि ४ (+*)

४ ४(+*) १००० मुल्गि वगि ति-वधगस्य मग ज़ि (।) तस्य उटस्य किद
 (=दे) वगितिवधग (=ग) निरवशिपो मुल्यो मम(=से) धितु स्व-

५ र्नसस्य ग्रह्निदु शुवि उवग दु(।) अजि उवदयि सो उट वगि ति-वधगस्य
 तनुवग मन्नित ययग म ग रनीय (।)

६ सर्वकिच वारनीय (।) यो पचेम-कलि तस्य उटस्य किद (=दे) चुदियदि-
 विदियदि विवदु उयवियदि त(=तेन) न तथ

७ धङु धिनदि यय रजधर्मु स्यादि (।) मय धलवगु वहुवित (=वे) लिखिदु
 स्वर्नसस्य अजिपनयि परदु स्प श न

८ र स

९ ननिवधग (=गे) सक्षि शशिवक (=के) सक्षि स्पनियक (=के)
 सक्षि (।।)

अनुक्रमणिका

शुद्धि-पत्र

अशुद्ध	शुद्ध	पृष्ठ सख्या
अन्ल	अन्य	२
उज्जयिनी	उज्जयिनी	२
आठव	आठवें	३
स्तम्भ	स्तूप	३
प्रतिमा	प्रतिमा	४
वाराणसी	वाराणसी	४
ताम्रमत्र	ताम्रपत्र	४, ५, ६
श्रेणिया	श्रेणियाँ	५
चोडापेडा	चोडापाडा	७
प्रोग	प्रयोग	७
अकियोग	अतियोक	७
पैत्तिक	पैत्रिक	७
प्रमुत्व	प्रभुत्व	८
पुलमवी	पुलमावि	८, ८९, ३२ (मू० ले०)
अतिरिक्त	×	८
प्रभत्व	प्रभुत्व	९
खारवेल	खारवेल	९, १०, १४, २३
ग	अग	१०
×	पौत्र	११
तामपत्र	ताम्रपत्र	११
उत्ती	उत्तरी	१२
लक	लका	१२

अशुद्ध	शुद्ध	पृ० सं०
पुलभावी	पुलमावि	१३, १२३, ३३, ३४ (मू० ले०)
पीडिक	पीढक	१३
वही	नही	१८
लिखेने	लिखने	१८
प्रातीय	प्रान्तीय	१९
मल्य	मूल्य	२०
एशिया	एशिया	२०, ३४
९० फी	९० वी	२१
रूपकता	रूपता	२१
हाथा	हाथी	२३
मिविन्दपञ्हो	मिलिन्दपन्हो	२४
सभामण्डय	सभामण्डप	२६
भारणीय	भारतीय	२९
रुद्रदायन	रुद्रदामन	३०, १८२
द्रसिह	रुद्रसिह	३०
भीतली	भीतरी	३१
पुरुषमेघ	पुरुषमेध	३३
यूम	यूप	३३
अभिलेखो का	अभिलेखो के	३४
अश्वमेघ	अश्वमेध	३६
ये थोड	ये थोडे	३क
तपागतो	तथागतो	४१
अवदच्य	अवदत्	४१

अशुद्ध	शुद्ध	पृ०	सं०	अशुद्ध	शुद्ध	पृ	सं०
महाप्रबमण	महाभ्रमण		४१	तिहास	इतिहास		६८
पुप	पुष्प		४२	मिहिरगुल	मिहिरकुल ६९		११
कन	करकन	४२	८१				२ ९
इलोरा	इलौरा		४४	कुणिन्द	कुणिन्द		७५
सिक्का	सिक्कों		४९	धर्ममहापात्र	धर्ममहामात्र		८१
क्षमप	क्षत्रप		४९	इंदार	इंदौर		८६
मांगदेव	सोमदेव		४९	मास	माम		८९
मामार	आधार		४	चदेव	चन्द्रदेव		९१
मुहरें की	मुहरों की		४९	माद	मादर		९७
मिहे	मिन्हें		४९	इ कमा	हि क्मा		१ १
मुहर	मुहरें		४९	चि	चित्र		१ ग
कुदाई	खुदाई		४९	बध्यदान	बध्यमान		११४
देवता को	देवता की		४९	×	के		१२१
प्रतिमा है	प्रतिमा से		४९	घोडव्डी	घोसुण्डी		१२६
गोबे	भीमे		४९	अमिलख	अभिलेख		१२८
गुप्त	गुप्त		४९	वप	वर्ष		१३६
माप्त	माप्त		४९	पान्क	पाठक		१३७
	मुद्रा-सिक्कों में		४९	अवेस	आवेश		१३७
रखी	रक्खी		५	×	राजाने		१३९
वैसाली	वैशाली		५	×	का उल्लेख		१४
की सारी	का सारा		५	उल्लख	उल्लेख		१४२
राज आज्ञा	राजाज्ञा		५१	धम	धर्म		१५१
कणिष्क	कनिष्क		५४	आदुमेख	आडीमेख		१५९
समि	भूमि		५५	श्लेष का	श्लेष की		१६१
वेदेशिक	वैदेशिक		५६	प्रसग बस	प्रसंग वश		१६७
कराल	कराले		५७	आमागाही	आमायाधी		१९
	मर		५७	प्रकमावी	पुक्रमावि		१९१
परम्परा	परम्परा		६२	×	की		१९१
			६४	बक	बंक		१६९
			०	पस्कम	पस्कम		२ १

अशुद्ध	शुद्ध	पृ० स०
कहापना	कहापन	२०६
याना	यानी	२०६
द्रसिह	रुद्रसिंह	२१३
×	मानते हैं	२१५
नाम कृत	कृत नाम	२१८
विद्वामो	विद्वानो	२१९
फ्रीट	फ्लीट	२२०
उायगिरि	उदयगिरि	२२०
परिवतन	परिवर्तन	२२६
तिहाम	इतिहाम	२३६
व र्गन दिया था	वर्णन किया था	२३७
लोगो का	लोगो को	२३९
रपमन	रैप्सन	२४०
समह	समूह	२४२
जुवल	रजुवल	२४५
मानसरा	मानसेरा	२४६
जम	जन्म	२४६
विकलित	विकसित	२४७
रत	भारत	२४८
स	सन्	२५४
९ ी	९ वी	२५४
न	ने	२५६
कलान्तर	कालान्तर	२५६
लिख	लिखने	२५६
गौतमीपुत्र	गौतमिपुत्र	३, ८, ६३, ६४, ६८, ७१, ७२, ८६, ८९, १३८, १७९, २०६, २०८, २१०, २१३, २१८, २५७, ३१ (मू ले)
अध्याय १०	अध्याय १२	२६२
मध्यएसिया	मध्यएशिया	२६२
×	था	२३४
वलि	वालि	२६८
यशोवर्भन	यशोवर्मन्	२७१
गौड	गौड	२० (मूल लेख)
सम्भनदेई	रुम्मनदेई	२२ (मू. ले.)
नालिक	नासिक	२९ (मू. ले
शातपर्णी	शातकर्णी	३१ (मू ले.)
गुणोघर	गुणोधर	७८ (मू. ले)
पारीदपुर	फरीदपुर	९० (मू. ले)
उत्तर-गुप्त की	उत्तर-गुप्त युग की	९५ (मू ले.)
मिहिकुल	मिहिरकुल	१०८ (मू. ले)
पुलेकेशी	पुलकेशी	११५ (मू. ले)
अपहोल	अयहोल	११५ (मू ले.)
विजयसेन को	विजयसेन की	१७० (मू ले)

	Rs	Sh
Pandey Rajabali—Indian Palaeography second edition revised with plates	20-00	40
Paradkar M D—Similes in Manusmriti	6-00	1?
Pischel Comparative Grammar of the Prakrit Languages translated from the origi nal German edition into English for the first time by Dr Subhadra Jha Only few copies	50-00	10?
Radha Krishna, S Dr and others Belvalkar Felicitation Volum	30-00	60
Raja C. K Dr—Some Fundamental Problems in Indian Philosophy 1960	20-00	40
Sastri Jagdish Lall—Bhoja Prabandha—with Sanskrit, Comm Hindi and English translations, prose order and vocabulary 1955	3 75	8
Sastri-Mangal Deva—Rigveda Pratisha khya English trans	20-00	40
Sastri-Nilakanth—Age of the Nandas and Maurya 1952 with 19 plates	20-00	40
Schubring, W—LehreDer Jainas or-Doctrine of the J ines from the old resources translated into English for the first time under the supervision of the original auther	30-00	60
Seal, B N—Positive Sciences of the Ancient Hindus Th authoritative and long out of print Book 1958	15-00	30
Sharma, R. S—Sudras in Ancient India the survey of th position of the lower orders down to circa A. D 1958	15-00	30
Sarma, R. S—Aspects of Political ideas and Institution in Ancient India 19 9	12-00	—
Sircar D C—Studies in the Geography of Ancient and Medieval India 1960	15-00	/
Stein A. Sir—Rajatarangini or th History of Kashmir by Kalh na translated into English with very important notes in 2 big Vols.		
Tripathi, R. S—History of Kanauj to the Moslem Conquest with a Foreword ы Dr L. D Burnett 1939		
History of Ancient India—an r ritative upto-date and ompendious the h story institutions and culture of		
Upadhyaya B—Select In eription with n tes, translation in Hind		
Valiuddin Mir—Quranic		
Varma, V P—Studies in Thought nd its metap hysi Second edition revised nd enl		